'भागवत पुराण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एवं धर्म'

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

की पी-एच०डी० उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

शोध - पर्यवेक्षक
प्रो० बी०एन० रॉय
से०नि० अध्यक्ष, इतिहास विभाग

प्रस्तुतकर्ता
शीतल त्रिपाठी
शोध छात्र, इतिहास विभाग

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा (उ०प्र०)

(प्रो०)बी०एन० रॉय
से० नि० अध्यक्ष, इतिहास विभाग
पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय
बाँदा (उ०प्र०)

दिनांक- 06/12/2000
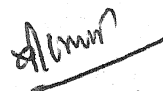
प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि-

१. शीतल त्रिपाठी ने मेरे निर्देशन में ''भागवत पुराण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एवं धर्म'' विषय पर शोध कार्य किया है।

२. इन्होंने मेरे यहाँ निर्धारित अवधि तक उपस्थिति दी है।

३. इनका शोध कार्य मौलिक है।

यह शोध प्रबन्ध अब इस स्थिति में है कि इसे पी-एच०डी० उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है।

(बी०एन० रॉय)
निर्देशक

आभार

इस विश्व में कोई भी व्यक्ति पूर्ण ज्ञानवान नहीं बन सकता उसे कुछ बनने और कुछ करने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति का सहारा लेना पडता है जो पूर्ण ज्ञानी हो। यद्यपि यह सत्य है कि इस संसार में पूर्ण ज्ञानवान परमात्मा के, अतिरिक्त कोई भी नहीं है। हमारा गुरू भी केवल एक विषय में ही ज्ञानी हो सकता है। किन्तु ऐसी विलक्षण प्रतिभा के कुछ लोग भी है जो अनेक विद्याओं के ज्ञाता होते है। उन अनेक विद्याओं के ज्ञाता महापुरूषों को जगत गुरू के नाम से सम्बोधित किया जाता है। उन्हीं परम पूज्य जगत गुरूओं में कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास का नाम सर्वोपरि है। ऐसी मान्यता है कि श्री वेदव्यास अष्टादश पुराणों के रचयिता हैं तथा अट्ठाइसवें व्यास हैं, इसलिए श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास को जगत गुरू स्वीकार करता हुआ उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

कृष्ण जैसे महान व्यक्त्वि इस संसार में द्वापर युग में हुए जिनके महान कृत्यों के कारण हम उन्हें परमपिता परमात्मा और ईश्वर के रूप में स्वीकार करने लगे। उन्होंने इस संसार में अवतरित होकर धर्म की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिए जो कार्य किए उन कार्यों से वे अमर व्यक्त्वि हो गये। तद्‌युगीन साहित्यकार ही नहीं अपितु इस विश्व के अनेक महान सहित्यकारों ने कृष्ण के ऊपर अनेक ग्रन्थों की रचना की है इसलिए यशोदा नन्दन श्रीकृष्ण के प्रति भी हमें सदैव आभारी रहने की आवश्यकता है। यदि कृष्ण जैसे महान व्यक्तित्व न होते तो भागवत पुराण भी न होता और उनके नाम पर चलने वाला यह भागवत धर्म भी न होता तथा यह शोध प्रबन्ध जो भागवत पुराण पर किया गया है वह भी न होता। इसलिए कृष्ण के प्रति आभार व्यक्त करना और सदैव उनका ऋणी रहना यह हमारा नैतिक कर्तव्य है ।

इस विश्व में वह व्यक्ति महान होता है जो किसी अज्ञानी व्यक्ति को ज्ञान प्रदान करता है तथा उचित मार्ग दर्शन करके किसी भी व्यक्ति को प्रगति के पथ पर अग्रसर करता है। पं0 जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय के इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष श्री

वीरेन्द्रनाथ रॉय के प्रति मै आभार व्यक्त करता हूँ। उन्होंने मुझे प्रेरित किया कि मैं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से पी–एच0डी0 उपाधि हेतु शोध कार्य करूँ। उन्होंने ही इस महत्वपूर्ण विषय में मुझे शोध कार्य करने के लिए प्रेरित किया और प्रत्येक संसाधन से विषय सामाग्री उपलब्ध करायी, इसके लिए मै उनके प्रति हृदय आभार व्यक्त करता हूँ।

प्राचीन भारतीय संस्कृति, धर्म तथा सामाजिक व्यवस्था पर शोधकार्य अनेक विद्वानों ने किए हैं। मुख्य रूप से 'पुराण विमर्श' के रचयिता आचार्य वल्देव उपाध्याय के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। उनके द्वारा रचित सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों ने मुझे शोध कार्य पूरा करने में प्रेरणा प्रदान की। इसके अतिरिक्त पं0 गोपीनाथ कविराज, डा0 ईश्वरी प्रसाद व शैलेन्द्र शर्मा, डा0 पाण्डुरंग वामन काणे, डा0 रामशरण शर्मा, डा0 सिद्धेश्वरी नारायण रॉय, डा0 हरिनारायण दुबे, डा0 निरूपण विद्यालंकार तथा डा0 के0 सी0 श्रीवास्तव के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। उनकी महत्वपर्णू कृतियों ने शोध–प्रबन्ध को ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्य प्रदान किए हैं जिनकी आवश्यकता मुझे थी। मुख्य रूप से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के डा0 जयनारायण पाण्डे के प्रति मैं विशेष आभार व्यक्त करता हूँ जिनके अनुभवों और परामर्श ने भागवत पुराण के रचनाकाल को तर्कसम्मत आधार प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त मैं शोध छात्र सन्तोष तिवारी तथा बरकत उल्ला के प्रति आभारी हूँ जिनसे शोध से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण जानकारियाँ मुझे उपलब्ध हुई।

श्री राधा कृष्ण बुंदेली के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ उन्होंने मुझे शोध से सम्बन्धित परामर्श के साथ–साथ पुस्तकीय सहयोग प्रदान किया। वामदेव संस्कृत विद्यालय बाँदा के प्रधानाचार्य पं0 रामऔतार वाजपेयी के पुस्तकीय सहयोग के लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

बिना संसाधन के और पारिवारिक सहयोग के कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होते, मैं अपने परिवार के बुजुर्ग सदस्यों तथा अपने अग्रज श्री शोमदत्त त्रिपाठी के प्रति आकार व्यक्त

करता हूँ जिन्होंने मुझे शोध कार्य करने के लिए प्रेरणा प्रदान की और मेरा मनोबल ऊँचा किया। मेरे पिता श्री दीनदयाल तिवारी एक ग्रामीण व्यक्ति हैं किन्तु उनकी इच्छा अपने पुत्रों को योग्य बनाने की रही है तथा मेरी माता श्रीमती राजकुमारी मेरे अध्ययन से सदैव सन्तुष्ट रही है। मैं अपने माता–पिता के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ और उन्हें यह विश्वास दिलाता हूँ कि उनका यह पुत्र एक दिन उनके मस्तिष्क में परिकल्पित स्वप्न को जरूर पूरा करेगा। मैं अपने अनुज अखिलेश कुमार शुक्ल (डा0 शुक्ला) का भी आभारी हूँ जिसने इस शोध कार्य में मुझे निराश नहीं होने दिया।

अन्त में मैं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के अनुसन्धान विभाग से जुड़े सभी योग्य विद्वानों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मेरा विषय शोध कार्य करने हेतु स्वीकार किया। पं0 जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय के इतिहास विभाग के पूर्व प्रवक्ता डा0 लवकुश द्विवेदी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। आज वे हमारे प्रवक्ता न हों किन्तु वे प्रेरणा स्रोत रहे है और सदैव रहेंगे। तथा आशा करता हूँ कि उनका आर्शीवाद सदैव मेरे साथ रहेगा।

आप सबका आभारी

शीतल त्रिपाठी

शीतल त्रिपाठी

06-12-2000

प्राक्कथन

मानव की यह प्रकृति रही है कि वह अपने जीवन की स्मृतियों को हर तरह से सुरक्षित रखना चाहता है। उसे यह जानकारी थी कि उसका जीवन पूर्ण रूपेण प्रकृति पर निर्भर करता है और वह निश्चित अवधि के उपरान्त समाप्त हो जाता है। वह चाहता है कि उसके सम्बन्ध में आगे आने वाली पीढी जानकारी प्राप्त करे। जब भाषा नहीं थी उस समय उसने अपनी जानकारी को बनाये रखने के लिए विभिन्न शैलों में, गुफाओं में, शैल चित्रों का निर्माण किया जो गिरि कन्दराओं में आज भी उपलब्ध हो जाते है। भाषा और लेखन सामग्री की उपलब्धि के पश्चात इतिहास लेखन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी। इसी क्रम में पुराण लेखन विधि को अपना कर इतिहास लेखन किया गया तथा अष्टादश पुराणों के माध्यम से यह कार्य पूरा किया गया। ये पुराण तद्‌युगीन सामाजिक व्यवस्था, धर्म तथा व्यावहारिक आचरण पर पूर्ण प्रकाश डालते है। इन पुराणों को सुनने और सुनाने की प्रथा भारतवर्ष में सर्वत्र प्रचलित थी।

पुराण लेखन की परम्परा सभ्यता के विकास के साथ भारतवर्ष में प्राचीन काल से प्रारम्भ हो गयी थी। इन पुराणों में समय–समय पर संसोधन होता रहा है तथा नवीन घटनाएँ इनमें शामिल की जाती रही हैं। अनेक पुराणों के लेखक कृष्ण द्वैपायन व्यास अट्‌ठाइसवें व्यास के रूप में माने जाते है। किवदन्ती यह है कि अष्टादश पुराणों और अष्टादश उप पुराणों की रचना कृष्ण द्वैपायन व्यास ने की, किन्तु पुराणों की कथावस्तु का अध्ययन करने के पश्चात यह सत्य प्रतीत नहीं होता कि पुराणों के रचनाकार कृष्ण द्वैपायन व्यास ही होगें। पुराणों के ही अनुसार कृष्ण द्वैपायन व्यास का जन्म विष्णु के सत्रहवें अवतार के रूप में भगवान श्री राम से पहले हुआ तथा पुराणों की रचना राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय के शासन काल में प्रारम्भ हुई। पुराणों में उन राजवंशों का उल्लेख है जिनका अस्तित्व 650 ई0 पूर्व से लेकर बारहवीं शताब्दी तक था। यह सत्य है कि बारहवीं शताब्दी से हजारों वर्ष पूर्व

उत्पन्न होने वाले बारहवीं शताब्दी तक की घटनाओं का उल्लेख नहीं कर सकते थे। इसलिए पुराणों की रचना कुछ ऐसे अज्ञात विद्वानों ने की हैं जिन्होंने अपना नाम रचनाकार के रूप में पुराणों में कहीं नहीं दिया, इन पुराणों में सर्वत्र व्यास शैली का अनुसरण किया गया है। इस शैली में वाचक और श्रोता होते है।

शोध कार्य के दौरान मुझे भागवत महापुराण पढने का अवसर प्राप्त हुआ तथा मै नें इसका अध्ययन गम्भीरता से किया। इस पुराण में कथायें भी हैं जिनका वर्णन अन्य पुराणों में भी उपलब्ध होता है, परन्तु श्री कृष्ण के सन्दर्भ में सर्वाधिक विस्तृत वर्णन इसी पुराण में उपलब्ध होता है। इस पुराण में ज्ञानमार्ग और भक्ति मार्ग की तुलना की गयी है तथा भक्ति मार्ग को ज्ञानमार्ग से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुये उसके लिए भागवत धर्म की स्थापना की गयी है। धर्म में हिंसा का सर्वत्र विरोध किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भागवत महापुराण में सत्य, अंहिसा, प्रेम का समावेश बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव के कारण हुआ। इसमें अवतारवाद की परिकल्पना करके पुर्नजन्म के सिद्धान्त की पुष्टि की गयी है तथा यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि विराट पुरूष विष्णु साधु, सन्तों की रक्षा के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए सदैव अवतार धारण करते हैं। भागवत पुराण के सिद्धान्त भगवत गीता के कर्मवाद पर आधारित है तथा इसमें तीस ऐसे नियमों का विश्लेषण भी किया गया है जिनसे सम्पूर्ण समाज की रक्षा हो सकती है, शोध कार्य में मुझे यह जानकारी उपलब्ध हुई।

मेरा शोध विषय 'भागवत पुराण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एवं धर्म' है जो वास्तव में भागवत महापुराण में यर्थाथ रूप में दिखलाई देता है। भागवत पुराण की रचना कृष्ण के अस्तित्व के समाप्त होने के पश्चात लगभग बारह सौ वर्ष बाद हुई। इसलिए लेखक कृष्णकाल की सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का काल्पनिक वर्णन तो कर सकता है किन्तु उसके मस्तिष्क में उस युग का यथार्थ होगा जिस युग में भागवत का रचनाकार उत्पन्न हुआ तथा अपने युग की सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों को अपनी आँखों से

देखा है। स्पष्ट है कि शोध कर्ता रचनाकार के काल और तद्युगीन परिस्थितियों को समझता हुआ भागवत पुराण में वर्णित समाज एवं धर्म को नौवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक ही मानता है, उसे ही ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया है और शोध प्रबन्ध में उसी को अपना आधार भी बनाया।

शोध प्रबन्ध के लेखन में मैनें सदैव निर्धारित शोध विधियों का अनुसरण किया है। मेरा यह प्रयत्न रहा है कि किसी भी प्रकार के शोध के लिए निर्धारित वैज्ञानिक विधि का उल्लंघन न हो। मेरी यह कोशिश रही है कि शोध–प्रबन्ध के शीर्षक से शोध विषय किसी भी तरह विषयान्तरित न हो। यह ध्यान रखा गया है कि जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शोध–प्रबन्ध की रचना की गयी है उनकी उपलब्धि भी इसमें स्पष्ट रूप से प्रकट हो। आवश्यकतानुसार शोध के उद्देश्यों का पूर्ति नहीं होने पर भटकाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसलिए मैने शोध्–प्रबन्धकी रचना में पूर्ण सावधानी से काम लिया है। अतः यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है किया यह प्रबन्ध शोध उद्देश्यों की पूर्ति कर रहा है।

इसके प्रथम अध्याय में भागवत पुराण की सम्पूर्ण विषय वस्तु शामिल है। बारह स्कन्धों, तीन सौ पैंसठ अध्याय तथा अठारह हजार श्लोकों वाले महाग्रन्थ भागवत पुराण की समस्त विषय वस्तु का अध्ययन इसमें शामिल है। इसी अध्ययन में भागवत पुराण के रचनाकाल को विविध ऐतिहासिक साक्ष्यों के साथ निर्धारित किया गया है। उस युग की राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन भी शोध प्रबन्ध में है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में तद्युगीन वर्ण व्यवस्था का वर्णन भागवत पुराण के अनुसार किया गया है। इस युग में सम्पूर्ण समाज वर्ण एवं जाति व्यवस्था में विभाजित था जिसका व्यावहारिक स्वरूप सर्वत्र दिखाई देता था। प्रत्येक वर्ण से सम्बन्धित व्यक्ति का विशिष्ट सामाजिक महत्व था वह अपने वर्ण और जाति का प्रतिनिधित्व भी करता था। इस वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था को तद्युगीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भी प्रभावित किया

था। इस युग में अनेक धर्म ग्रन्थों तथा धर्मसूत्रों की रचना हो चुकी थी जिनके अनुसार लोगों को बाध्यता थी कि वे अपने वर्ण और जाति धर्म का अनुपालन करें।

शोध–प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में धर्म की चर्चा विस्तार से की गई है। ऐसा माना गया है कि व्यक्ति का धर्म से सम्बन्ध जन्म से ही हो जाता है। धर्म से विशेष लाभ पुरोहितों का हुआ तथा उन्हें धार्मिक कार्य कराने हेतु विशेष राजनैतिक संरक्षण भी प्रदान किया गया। समाज में आश्रम व्यवस्था का महत्व तथा पुरूषार्थ से उसका क्या सम्बन्ध था इसका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

शोध–प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में भक्ति भावना के मूल बीज पर विचार किया गया हैं। भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताओं और तदानुसार धर्म को भी परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। भागवत पुराण में जिस भक्ति परम्परा का विवरण उपलब्ध होता है उसका विकास किन परिस्थितियों में हुआ तथा भागवत धर्म का जो प्रभाव समाज में पड़ा उसका उल्लेख भी किया गया है। कृष्ण भक्ति के वास्तविक स्वरूप को शोध प्रबन्ध के माध्यम से समझने का प्रयत्न किया गया है। इस शोध प्रबन्ध में भारतीय समाज में कृष्ण जन्म उनकी लीलाओं का विस्तृत वर्णन धार्मिक दृष्टि से शोध प्रबन्ध में किया गया है। किन परिस्थितियों में श्रीकृष्ण के सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता हैं इसका उल्लेख भी शोध प्रबन्ध में हैं।

शोध प्रबन्ध के पाँचवे अध्याय में तद्‌युगीन व्रत, तीज, त्योहार, तथा धार्मिक अनुष्ठान के सन्दर्भ में विस्तार से चर्चा की गई है। धर्म और संस्कृति में तीज–त्योहारों के महत्व को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। भागवत पुराण में जिन तीज–त्योहारों की चर्चा की गई है उनका कृष्ण भक्ति से सम्बन्ध था उसमें भी प्रकाश ड़ाला गया है। शोध–प्रबन्ध में वैष्णव तीज–त्योहारें को मनाये जानने की विधि का वर्णन किया गया है तथा उसका सम्बन्ध धर्म से जोडा गया है। शोध–प्रबन्ध में धार्मिक अनुष्ठानों एवं संस्कारों को परिभाषित किया गया है तथा इन दोनों के आपसी सम्बन्धों को भी दर्शाया गया है। इस शोध प्रबन्ध

में धार्मिक तीर्थ स्थलों पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। तीर्थ यात्रा के महत्व को समझाने का प्रयत्न किया गया है। इसी अध्याय के अन्त में 'ज्योतिष और तन्त्र का धर्म से सम्बन्ध' जोडते हुए शकुन और अपशकुन पर विचार किया गया है।

शोध प्रबन्ध के छठवें अध्याय में सृष्टि सृजन में स्त्रियों के योगदान की चर्चा की गई है। भागवत पुराण में दर्शायी गई स्त्रियों की स्थिति यर्थाथ को भी शोध प्रबन्ध में शामिल किया गया है। भागवत पुराण में वर्णित महिला पात्रों के सन्दर्भ में भी विस्तार से चर्चा की गयी है। शोध प्रबन्ध में यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को महान बनाने में स्त्रियों का विशेष योगदान होता है। लेकिन पुरूष का भी आकर्षण स्त्रियों के प्रति होता हैं तथा वह स्त्रियों को पिता, पुत्र, बन्धु, व पति के रूप में सदैव सहयोग प्रदान करता है।

शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय में सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध का सारांश उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त शोध प्रबन्ध का मूल्यांक भी प्रस्तुत किया गया है। इसी के अर्न्तगत शोध के विविध उद्देश्यों के सन्दर्भ में प्रकाश डाला गया है। इस शोध प्रबन्ध की तुलना पुराणों पर अब तक किये गये अन्य शोध कार्यो से की गयी है। शोध प्रबन्ध के अन्त में उपलब्ध शोध परिणामों की भी चर्चा की गयी है। यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि यह शोध प्रबन्ध विस्तृत अध्ययन और अथक परिश्रम से पूरा किया गया है। यह व्यर्थ की शब्द रचना मात्र नहीं है बल्कि इस शोध प्रबन्ध की उपयोगिता धर्म, आध्यात्म तथा इतिहास के विद्यार्थियों के लिए हमेशा रहेगी।

इस शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में उन सभी महान व्यक्तियों का योगदान है जिनकी पुस्तकों का उपयोग मैनें किया तथा जिनके निर्देशों से महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ। मैं विषय का सर्वज्ञ ज्ञाता नहीं हूँ। भूल करना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है जो मुझ में भी है। यदि कतिपय कारणों से शोध–प्रबन्ध में त्रुटियाँ हो गयी हों तो मुझे न्युन ज्ञानी समझकर आप सभी भद्र पुरूष और विदुषी महिलाएँ मुझे उन त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे तथा उसे मेरी अज्ञानता ही समझेगें।

आपका अपना ही,
शीतल त्रिपाठी
06–12–2000

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भूमिका

अ- भागवत पुराण की विषय वस्तु।

ब- भागवत पुराण का रचना काल।

स- भागवत के रचना के समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ।

द- भागवत के रचना के समय सामाजिक एवम् सांस्कृतिक परिस्थितियाँ।

य- उपरोक्त परिस्थितियों का भागवत की रचना में प्रभाव।

भूमिका

'भागवत पुराण की विषय वस्तु'

भारतीय संस्कृति विश्व की प्रचीनतम संस्कृति है,आज तक यह नहीं ज्ञात हो सका कि यहाँ की सामाजिक संरचना का आधार क्या था। हम केवल वेदों पर विश्वास करते हुए, उन्हें ही सामाजिक सृजन का आधार मानते है। वेदों में सामाजिक, नैतिक मूल्यों का जो वर्णन उपलब्ध होता हैं, उसी को हमने सामाजिक आदर्श माना। उनमें वर्णित आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, संस्कार व्यवस्था को ही, भारतीय संस्कृति का आधार माना जाता है।इस सन्दर्भ में वेदों की रचना के पश्चात जो भी ग्रन्थ रचे गये उन्होंने भी वेदों को अपना आदर्श माना तथा इन ग्रन्थों को पुराणों की संज्ञा दी गयी।

पुराण का व्याकरण की दृष्टि से अर्थ है कि जो पुरातन कथाओं का वर्णन करे उसे पुराण कहते हैं। लोगों का यह कथन है कि वेदों के समय में भी पुराणों का अस्तित्व था और बाद में भी उसका अस्तित्व बना रहा, किन्तु इनकी रचना शैली वेदों की रचना शैली से भिन्न है। पाँचवी शताब्दी में अमर सिंह ने पुराणों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में व्यापक प्रकाश डाला तथा उन्हें अष्टादश पुराण तथा अष्टादश उपपुराणों में विभाजित किया तथा पुराणों की मुख्य पाँच विशेषताएँ दर्शाई गयी, किन्तु भागवत पुराण में ये विशेषतायें किंचित भिन्न हैं।

1— सृष्टि, सृजन, विनाश और पुनर्निर्माण।

2— देवताओं की वंशावली।

3— मनुष्यों के युगों का विवरण।

4— राजाओं की वंशावली।

5— पुराणों में वर्णित भूगोल।

पुराणों के अनुसार यह सृष्टि सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चार युगों में विभाजित है, तथा इन चार युगों के पश्चात प्रलय होता है और पुनः श्रृष्टि सृजित

होती है। इन चारों युगों में परमात्मा लोक कल्याणार्थ जन्म लेता रहता है। पुराणों से अर्न्तदृष्टि मिलती है कि इस युग में जो भी है वह नाशवान है, आनन्द और वैभव भी स्थाई नहीं है। इसलिए आत्म सुख को ही सब कुछ मानना चाहिये।

पुराण मनुष्यों को उनके उत्तर दायित्व का बोध कराते हैं, वे यह सिखाते हैं कि संसार में सफलता के लिये अति विशिष्ट कर्तव्य करने चाहिये तथा जो व्यक्ति मानवता के मार्ग में रोडे अटकाता है उससे संघर्ष करना चाहिये। पुराणों का कथन है कि कर्म। के बीच मस्तिष्क में पैदा होते हैं, बाद में वह समस्त संसार में फैल जाते हैं। पुराण पतित व्यक्ति के उत्थान का सन्देश देता है उनका यह मानना है कि जो कर्म शरीर के माध्यम से किये जाते हैं, उनमे नैतिकता और पवित्रता होनी चाहिये। पुराणों में वैराग्य के स्थान पर गृहस्थ आश्रम पर बल दिया गया है, पुराणों में कर्मवाद के साथ–साथ भाग्यवाद को भी स्वीकार किया गया है।

पुराणों में ईश्वर की भावना को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। तथा देवताओं की भी परिकल्पना की गयी है। इन पुराणों में ब्रह्मा को विश्व सृष्टा तथा विष्णु को विश्व रक्षक व शिव को महान संहारक माना गया है, किन्तु इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अनेक देवताओं की उपासना अपनी अपनी इच्छा के अनुसार की जाने लगी।[2]

श्री मद्भागवत महापुराण में सर्वाधिक उत्कृष्ट वर्णन प्रेममार्ग का मिलता है, इसमें श्रीकृष्ण और गोपिकाओं की प्रेमकथा को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मानवीय सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य को भी जोड़ा गया है तथा बाँसुरी वादन के माध्यम से हृदय की भावनाओं की अभिव्यक्ति की गयी है।[3] भागवत में जो प्रेमकथा है, वह ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित है तथा कृष्ण को ईश्वर और गोपिकाओं को आत्मा स्वरूप माना गया है, इस प्रेम गाथा में आत्मा का परमात्मा से मिलन दिखाया गया है, इसमें वर्णित प्रेम पथभ्रष्ट करने वाला नहीं है। जैसे मेघ चन्द्रमा को छुपा लेते हैं उसी प्रकार व्यक्ति का अहं भाव आत्मा को छुपा लेता है।

जब वह अहं का परित्याग करता है तो परमात्मा उसके लिये सुलभ हो जाता है।

पुराणों मे प्रेम के साथ भक्तिमार्ग को भी दर्शाया गया है, भक्ति मार्ग को ज्ञानमार्ग से श्रेष्ठ बतलाने की चेष्टा भागवत में की गयी है। इसमें बताया गया है। कि ज्ञान मार्ग उन लोगों के लिये है जो जीवन से थक चुके हैं किन्तु जिनकी इच्छायें शेष है, उन्हें कर्म करके उन्हें पाने का प्रयत्न करना चाहिये। भक्ति मार्ग को फलदायी बताया गया है, स्वतः परमात्मा कृष्ण कहते हैं अपने–अपने कर्म करो परन्तु मेरे प्रति निष्ठा की भावना के साथ यदि तुम सत्य पवित्रता एवं साहचर्य के साथ जीवन व्यतीत करोगे तो तुम भक्ति के माध्यम से मेरे पास पहुँच जाओगे। इसमें यह भी बतलाया गया है कि किसी भी व्यक्ति को बहुत अधिक घमण्ड नहीं करना चाहिये गर्व सर्वनाश का कारण है। जब द्वारका पुरी के यदुवंशी चरित्र हीन और घमण्ड़ी हो गये तब भगवान कृष्ण ने उन्हें द्वारका छोड़कर प्रभाष जाने का निर्देश दिया। भागवत कहती है प्राकृतिक वस्तुओं से शिक्षा ग्रहण करो, अपने दुर्भाग्य के दिनों में भी पृथ्वी के समान दृढ़ रहो, पर्वत यह सन्देश देते है। कि सदैव दूसरों का कल्याण करो, वायु तुम्हे यह शिक्षा देती है कि तुम गतिशील बनो अैर सर्वत्र व्याप्त हो जाओ, जल तुम्हे पवित्र पावन रहने की शिक्षादेता है। अग्नि तुम्हें शिक्षा देती है कि ज्ञान की ज्योति सदैव तुम्हारे अन्दर प्रज्जवलित रहे, मधुमक्खी तुम्हे शिक्षा देती है कि थोड़ा थोड़ा तुम सार तत्व सबसे ग्रहण करो, पुराण यह शिक्षा प्रदान करतें हैं कि मनुष्य सदैव परहित के लिये जिन्दा रहे और अपने सुकृत्यों से दूसरों को लाभ पहुँचाये। बहुत से लोग यह अनुभव करते हैं कि स्वर्ग में वह आनन्द नहीं है, जो आनन्द दूसरों की पीड़ा हरण करने में है।

समस्त पुराणों में उच्च स्तर की दार्शनिक एवं नैतिक सामग्री है। इन पुराणों में संस्कारों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। इनमें व्यक्तियों को अनीति से दूर रहने की सलाह दी गई है पुराणों के माध्यम से कथाओं का सहारा लेते हुये यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि विश्व के विकास में संघर्ष करते हुये लक्ष्य की ओर बढा

जा सकता है। सागर मन्थन में निकले विष को भगवान शिव ने पान किया उसे कंठ में धारण किया, चन्द्रमा को माथे में धारण किया तथा कंठ में सर्पों को स्थान दिया अर्थात देवता वही है जो विष का वरण करे और उसे अमृत में परिणित कर दे। पुराणों में स्वर्ग और नरक का वर्णन भी उपलब्ध होता है, पाप और अपराध करने वाला व्यक्ति नरक गामी होता है और अच्छा कर्म करने वाला व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त करता है।[4] पुराणों में तदयुगीन विज्ञान का वर्णन भी अति विस्तार से किया गया है, इसमें शून्य से लेकर बड़ी संख्या तक के अंक तथा गणित के सिद्धान्त वर्णित है। इसमें आयुर्वेद युद्ध पद्धिति तथा विविध वस्तुओं के निमाण सम्बन्धी विज्ञान का वर्णन है। इन पुराणों मे शास्त्र, इतिहास और प्रचलित संस्कृति का समन्वय है। पुराणों के सृजन में मनोविज्ञान और अनुभव का सहारा लिया गया है, जिसके कारण पुराण अति विस्तृत एवं व्याख्या युक्त हो गये ।[5]

आचार्य बल्देव उपाध्याय के मतानुसार पुराणों को विषय वस्तु की द्रष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) वैदिक साहित्य की पुष्टि।

(2) वेदों की भाषा जो कठिन थी, उस भाषा का सरलीकरण किया गया है।,

(3) वेदार्थ निर्णय में मुनियों का परस्पर विरोध।

पुराणों की भाषा सरल है तथा पुराणों में आख्यानो के माध्यम से विषय वस्तु को समझाने का प्रयत्न किया गया है, पुराण जनता के हृदय को अपनी ओर आकर्षित करते हैं पुराण के सन्दर्भ में नारदीय पुराण का यह श्लोक दृष्टव्य है–

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थ वरानने।

वेदाः प्रतिष्ठिताःसर्वे पुराणे नात्र संशयः।।[6]

पुराणों की संरचना विविध दृष्टिकोंणों को रखकर की गयी है तथा महापुराणों की संख्या अठारह है यह निम्नलिखित है– मयुक्त (1) मत्स्य और (2) मार्कण्डेय, भकारादि दो (3) भविष्य और (4) भागवत, ब्र युक्त तीन पुराण (5) ब्रह्माण्ड (6)

ब्रह्मवैवर्त तथा (7) ब्रह्म वकारादि चार (8) वामन (9) वराह (10) विष्णु (11) वायु (शिव) (12) अग्नि (13) नारद (14) पद्य (15) लिंग (16) गरूड़ (17) कूर्म (18) स्कन्द। इन महापुराणों के अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं जो निम्नलिखित हैं– (1) सनतकुमार (2) नरसिंह (3) स्कन्द (4) शिव धर्म (5) आश्चर्य (6) नारदीय (7) कपिल (8) वामन (9) औशनस (10) ब्राह्मण (11) वारूण (12) कालिका (13) माहेश्वर (14) साम्ब (15) सौर (16) पाराशर (17) मारीच (18) भार्गव।[7]

यदि ऐतिहासिक दृष्टि से पुराणों का मूल्यांकन किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि पुराण इतिहास के संरक्षक है। इसमें जो सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मनवन्तर तथा वंशानुचरित जो उपलब्ध होते है उनका सीधा सम्बन्ध इतिहास से है। इतिहास का शुभारम्भ सृष्टि सृजन के साथ प्रारम्भ हो जाता है तथा पुराणों में इसे क्रम के अनुसार जोड़ा गया है और अन्त प्रतिसर्ग अथवा प्रलय से होता है। तात्पर्य यह हुआ कि ये पुराण सृष्टि सृजन से लेकर उसके विनाश तक के घटनाक्रम को सविस्तार वर्णित करते है। पुराणों के सन्दर्भ में ये श्लोक दृष्टव्य है–

(1) मद्धयं भद्धयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापल्लिग–कूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते।[8 (1)]

(2) सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितम् चेति पुराणं प०चलक्षणम्।[8 (2)]

पुराणों की कुछ अति विशिष्ट विशेषतायें है–

(1) पुराण ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

(2) पुराण प्राचीन भौगोलिक परिस्थिति का अध्ययन कराने वाले ग्रन्थ है।

(3) पुराण विश्व कोष है।

(4) पुराण धर्म और देवता से सम्बन्धित हमारे धार्मिक ग्रन्थ है।

पुराणों के माध्यम से भारतीय संस्कृति उजागर होती है, कोई भी विद्वान पुराणों की आलोचना पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर कितना ही करें, किन्तु

पुराणों से अच्छे ग्रन्थ कोई और नहीं हो सकते इनमें रचनाकार ने यशस्वी आदर्श चरित्र का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। इन पुराणों में पुराणकार ने परिश्रम के साथ ज्ञान और वैराग्य का भी विश्लेषण किया है इसलिये पुराण भारतीय संस्कृति की महान धरोहर है । यथा—

'कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।

विज्ञान—वैराग्य—विवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम।[1]

भागवत पुराण का सामान्य परिचय—

श्री मद्भागवत पुराण भगवान कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास की सर्वोत्कृष्ट रचना मानीजाती है। भगवान व्यास को इस ग्रन्थ की रचना के बाद अत्यन्त शान्ति उपलब्ध हुई। इस ग्रन्थ में सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधन ज्ञान, सिद्ध ज्ञान, साधन भक्ति, साध्य भक्ति का वर्णन है। भगवान प्रेममय है तथा प्रेम से ही उनकी उपलब्धि हो सकती है, इसका वर्णन श्रीमद्भागवत में है। इस ग्रन्थ में अमोघ प्रयोंगों का उल्लेख मिलता है। व ऐश्वर्य प्राप्ति के उपाय भी बतलाये गये है।

कुल मिलाकर इस ग्रन्थ में बारह स्कन्ध है तथा इसके पहले भागवत महात्म्य का वर्णन है। इसमें लिखा गया है कि भागवत श्रवण करने तथा उसका पाठ करने से भक्तों को कष्ट से छुटकारा मिलता है। मृतव्यक्ति को प्रेतयोनि से छुटकारा मिलता है। प्रथम स्कन्ध में भागवत गीता का महात्म्य, भगवान के अनेक अवतारों का वर्णन भगवान के कीर्तन की महिमा तथा राजा परीक्षित की कथा है। इसमें युधिष्ठिर के अपशकुनों का भी वर्णन है। प्रथम स्कन्ध की समाप्ति श्रृंगी ऋषि द्वारा परीक्षित को अभिशाप देने के बाद समाप्त होता है।

द्वितीय स्कन्ध में ध्यान विधि, भगवान के विराट और सूक्ष्म स्वरूपों का वर्णन, विभिन्न देवताओंकी उपासना विधि, सृष्टि के सन्दर्भ में विविध प्रश्न, सृष्टि का वर्णन, विराट स्वरूप की विभूतियों का वर्णन, भगवान की विविध लीलाओं का वर्णन, ब्रह्मा जी द्वारा भागवत का उपदेश और भागवत के दश लक्षणों का वर्णन है।

तृतीय स्कन्ध में उद्धत और विदुर की भेंट, बाल लीलाओं का वर्णन तथा सृष्टि क्रम का वर्णन, विराट शरीर की उत्पति, ब्रहमा जी की उत्पति, ऋष्टि का वर्णन, सम्वत सर तथा ऋष्टि का विस्तार, वाराह अवतार, जय, विजय को अभिशाप हिरण्याक्क्ष वध, देवहूति की कथा, भक्तियोग का महात्म्य तथा मोक्ष का वर्णन है।

चतुर्थ स्कन्ध में स्वायम्भू मनु की कथा, भगवान शिव और दक्ष की कथा, ध्रुव की कथा, राजावेणु की कथा, महाराज पृथु के वंश की कथा, राजा पुरंज्जन की कथा तथा प्रचेताओं की कथा वर्णित है।

पंचम स्कन्ध प्रियव्रत चरित से प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात आग्नीध्र चरित, राजा नाभि का चरित्र, मृगयोनि में उनका जन्म, भरत के वंश का वर्णन, सूर्य की गति का वर्णन राहु आदि ग्रहों की स्थिति तथा नरकों की विविध गतियों का वर्णन।

छठवें स्कन्धमें अजामिल उपाख्यान का वर्णन है। इसमें यम और यमदूतों का संवाद, नारद जी कादक्ष पुत्रों को उपदेश देना, बृहस्पति द्वारा देवताओं का त्याग तथा विश्व रूप को देवता के रूप में स्वीकाकर करना है। इसमें इन्द्र और वृकासुर के संग्राम का वर्णन है जिसमें दधीचि की अस्थियों से र्निमित वज्र का प्रयोग किया गया है। इसमें चित्रकेतु की कथा व दिति और अदिति की संतानों का वर्णन है। इस स्कन्ध के अन्त में पुंसवन संस्कार विधि का वर्णन है।

सप्तम स्कन्ध नारद और युधिष्ठिर के संवाद से प्रारम्भ होता है। उसमें हिरण्याक्ष वध, प्रहलाद की कथा, भगवान का नरसिंह अवतार, मानव धर्म, वर्ण धर्म और स्त्री धर्म का वर्णन है। ब्रह्मचर्य व वानप्रस्थ के नियम, पतिधर्म का निरूपण गृहस्थ धर्म, सदाचार तथा गृहस्थों के लिये मोक्षधर्म का वर्णन है।

अष्टम स्कन्ध में प्रचलित सम्वतसरों का वर्णन है, उसके पश्चात गजेन्द्र ग्राह की कथा, इसके पश्चात मनु के प्रथम कर्मों का निरूपण है फिर राजा बलि और वामन भगवान की कथा है।

नवम् स्कन्ध में वैवस्वत मनु की कथा है। इसमें मनु के पाँच पुत्रों के वंश का

वर्णन है। इसमें च्यवतन अैर सुकन्या का चरित्र, नाभाग और अम्बरीष की कथा, इक्ष्वाकुवंश का वर्णन है। राजा त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र की कथा का वर्णन है । भागीरथ की कथा, भगवान राम की कथा इक्ष्वाकु वंश के शेष राजाओं का वर्णन है, चन्द्रवंश का वर्णन, इसमें परशुराम की कथा क्षत्र बुद्ध आदि राजाओं एवं ययाति का वर्णन है फिर पुरूवश, भरतवशं पांचाल और कौरव के वंश का वर्णन है। अनु द्रुहु, तुर्वसु और यदु के वंश का वर्णन, विदर्भ के वंश का वर्णन है। भागवत के नवम् स्कन्ध में तदयुगीन राजवंशों का विस्तार से वर्णन है।

दशम स्कन्ध में वसुदेव देवकी के पुत्र के रूप में कृष्ण की उत्पति गोकुल में उनका जन्मोत्सव, पूतना, शकट भंजन और वृणावर्त का उद्धार, विविधप्रकार की बाल लीलायें तथा वत्सासुर, वकासुर और अघासुर का उद्धार, कालिया का नाथना, गऊओं और गोपियों की रक्षा करना, गोवर्धन धारण करना, श्री कृष्ण का अभिषेक, नन्द जी की मुक्ति, सुदर्शन और शंखचूड़ का उद्धार, श्री कृष्ण बलराम का मथुरा गमन, कुब्जा का उद्धार, कंस का उद्धार, उद्दव और गोपियों की बातचीत अक्रूर जी का हस्तिनापुर गमन।

दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध में जरासन्ध का युद्ध, द्वारका पुरी का निर्माण, कालयवन का विनाश, रूक्मणी हरण, कृष्णरूक्मणी विवाह, भौमासुर का उद्धार, सोलह हजार एक सौ राजकन्याओं के साथ भगवान का विवाह। भगवान की सन्तति का वर्णन, रूक्मी का वध ऊषा अनुरूद्ध मिलन, भगवान श्री कृष्ण का वाणासुर से युद्ध, नृगराज की कथा बलराम जी का ब्रज आगमन, पौण्ड्रक और काशीराज का उद्धार, कौरवों पर बलराम का कोध, भगवान कृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पधारना, जरासन्ध की कैद से राजाओं का छूटना, साल्व के साथ यादवों का युद्ध, श्री कृष्ण के द्वारा सुदामा जी का स्वागत भगवान कृष्ण और बलराम के गोपी गोपिकाओं की भेंट, भगवान कृष्ण की पटरानियों से द्रौपदी की मुलाकात, सुभद्रा हरण, राजा जनक के यहाँ जाना, भृगु जी द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा, मरे हुये ब्राह्मण बालक को वापस

लाना। भगवान कृष्ण के लीला विहार का वर्णन है।

ग्यारहवें स्कन्ध में यदुवंश के ऋषियों का श्राप, राजा जनक और नव योगीश्वरों का संवाद, माया से छुटकारा पाने के लिये कर्मयोग का उपदेश, भगवान के अवतारों का वर्णन, भक्तिहीन पुरूषों की गति और भगवान की पूजा—विधि, स्वधाम पधारने के लिये देवताओं को श्रीकृष्ण का उपदेश, अवधूत उपाख्यान पृथ्वी से लेकर कबूतर तक आठ गुरूओं की कथा, अजगर से लेकर पिंगला तक नौ गुरूओं की कथा फिर कुरर से लेकर भृंगी तक सात गुरूओं की कथा। लौकिक तथा पारलौकिक भोगों की असारता का निरूपण, बद्ध, मुक्त और भगवत जनों के लक्षण, सतसंगत की महिमा, कर्म त्याग की विधि, भक्तियोग की महिमा, भिन्न भिन्न सिद्धियों के नाम और लक्षण भगवान की विभूतियों का वर्णन वर्णाश्रम धर्म का निरूपण, वानप्रस्थ तथा सन्यासी के धर्म, भक्ति ज्ञान, यम, नियम साधनों का वर्णन, ज्ञान योग, कर्मयोग का वर्णन तथा गुण दोष की व्याख्या, तत्वों की संख्या, संख्या योग, तीनों गुणों की वृत्ति, कियायोग का वर्णन और परमार्थ निरूपण, भागवत धर्म की व्याख्या, यदुकुल का संहार और भगवान के स्वधाम गमन तक है।

द्वादश स्कन्ध में कलियुग के राजवशों का वर्णन कलियुग का धर्म, राज्य धर्म, युगधर्म, कलियुग के दोषों से बचने के उपाय, चार प्रकार के प्रलय, शुकदेव जी का अन्तिम उपदेश, परीक्षित को परमगति, वेदों और शास्त्रों में भेद, अथर्ववेद की शाखायें और पुराणों के लक्षण फिर मार्कण्डेय ऋषि की कथा, भगवानके अंग, उपांग आयुधों का वर्णन तथा विभिन्न सूर्य गणों का वर्णन भागवत् की संक्षिप्त विषयसूची विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या और भागवत् की महिमा।

ग्रन्थ के अन्त में भागवत के महात्म्य का वर्णन है। इसमें राजा परीक्षित और वज्रनाभ का सत्संग, शाण्डिल्य मुनि के मुख से भगवान की लीला का रहस्य ब्रजभूमि का रहस्य, यमुना और कृष्ण पत्नियों का संवाद, भागवत की परम्परा और उसके स्वरूप का वर्णन स्रोता और वक्ता के लक्षण तथा श्रवण विधि और महात्म्य का वर्णन

है।

भागवत पुराण में प्रत्येक पुराण की श्लोक संख्या का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार है– ब्रह्म पुराण में दस हजार श्लोक, पद्य पुराण में पचपन हजार, विष्णु पुराण में तेइस हजार और शिवपुराण में श्लोक संख्या चौबीस हजार है।

'ब्राह्मं दशसहस्त्राणि पाद्यं प०चोनषष्टि च।

श्री वैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विशति शैवकम् ।।[10]

श्री मद्भागवत में अठारह हजार, नारदपुराण में पच्चीस हजार, मार्कण्डेय पुराण में नौ हजार तथा अग्नि पुराण में पन्द्रह हजार चार सौ श्लोक है।

दशाष्टौ श्रीभगवतं नारदं प०चविंशतिः। मार्कण्डं नव ब्राह्मंच दशप०च चतुःशतम्।।[11]

भविष्य पुराण में श्लोकों की संख्या चौदह हजार पाँच सौ, ब्रहमवैवर्त पुराण की श्लाक संख्या अठारह हजार तथा लिंग पुराण में ग्यारह हजार श्लोक है–

चतुर्दश भविष्यं स्यान्तथा प०चशतानि च । दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्त लिंग मेकादशैव तु।।[12]

वाराह पुराण में चौबीस हजार, स्कन्ध पुराण की श्लोक संख्या इक्यासी हजार एक सौ, वामन पुराण की श्लोक संख्या दस हजार है।

चतुर्विशति वाराहमेकाशी त्रिसहस्त्रकम्। स्कान्दं शतं तथा चैकं वामन दश कीर्तिकम्।।[13]

कूर्म पुराण में श्लोकों की संख्या है सत्रह हजार, मत्स्य पुराण में चौदह हजार, गरूड़ पुराण में उन्नीस हजार और ब्रह्माण्ड पुराण में बारह हजार श्लोक है।

कौर्म सप्तदशा ख्यातं मात्सयं तत्तु चतुर्दश।

एकोनविंशत्सौपर्ण ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ।।[14]

इस प्रकार हम देखते है कि समस्त पुराणों में श्लोकों की संख्या कुल मिलाकर चार लाख है। इसमें से भागवत पुराण की श्लोक संख्या अठारह हजार है।

'एवं पुराणसन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः।

तत्राष्टादशसाहस्त्रं श्रीभागवत मिष्यते।।[15]

समस्त पुराणों में भागवत पुराण को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इस महाग्रन्थ में

आदि, मध्य, और अन्त में वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथायें है। इस महाग्रन्थ में भगवान कृष्ण से सम्बन्धित अनेक लीलाओं की कथा है। समस्त पुराणों का पठन पाठन करने के पश्चात यदि भागवत पुराण का पठन पाठन नहीं किया जाता तो समस्त पुराणों के पाठ का कोई फल नहीं मिलता, जैसे नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु, वैष्णवों में शंकर, वैसे ही पुराणों में भागवत् है।

'निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा।

वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा।।'[16]

यह भागवत पुराण सर्वथा निर्दोष है भगवान के प्यारे भक्त वैष्णव इस ग्रन्थ से प्रेम करते है। इस ग्रन्थ में जीवन्मुक्त, परमहंस, सर्वश्रेष्ठ, माया रहित ज्ञान का वर्णन है, इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को जोडा गया है इसके पढ़ने से भक्ति की प्राप्ति होती है।

'श्री मद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं।

यस्मिन पारमंहस्य मेकममलं ज्ञानं परं गीयते।।

तत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं।

तच्छृण्वन विपठन विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः।।'[17]

अठारह पुराणों में भागवत को सर्वश्रेष्ठ पुराण की संज्ञा दी जाती है, इसमें भगवान विष्णु की महिमा का गुणगान है। पुराणों के विभाजन के अनुसार सात्विकी पुराणों के अर्न्तगत नारद, गरूड़, पद्म, वाराह, के साथ भागवत पुराण का भी स्पष्ट संकेत होता है। यह वर्णन पद्म पुराण में उपलब्ध होता है।

'वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।

गरूडं च तथा पाद्यं वाराह शुभदर्शने।।

सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।।'[18]

दान सागर ग्रंथ के रचयिता का यह कथन है कि देवी भागवत को भागवत की संज्ञान नही दी जा सकती क्योंकि भागवत देवी भागवत से श्रेष्ठ है व इसमें दान

विधियों का सविस्तार वर्णन नही है। जबकि दूसरे पुराणों में दान विधियों का सविस्तार वर्णन है। भागवत पुराण में सर्ग के स्थान पर संस्था शब्द का प्रयोग हुआ है। जबकि विष्णु पुराण में प्रतिसर्ग के स्थान पर प्रतिसंचर शब्द का प्रयोग हुआ है। भागवत पुराण में मन्वन्तर शब्द का प्रयोग काल मापन के लिये हुआ है। इनकी संख्या चौदह है और प्रत्येक मन्वन्तर का एक विशिष्ट मनु हुआ है।

"मान्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।

ऋषयोऽअशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ।।"[19]

मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि, और भगवान के अंशावतार इन छः विशिष्टताओं से युक्त समय को मन्वन्तर कहते है।

पुराणों के दस लक्षण जो आचार्यो ने बताये है वे सब के सब भागवत पुराण में उपलब्ध होते है। ये लक्षण सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरितम्, संस्था हेतु और अपाश्रय में विभाजित है। भागवत पुराण में एक विशेष बात यह है कि भगवान त्रयोदोश का हनन आसानी से कर देते है, किन्तु उनका अवतार केवल लीला विलास केलिये होता है। कोई भी व्यक्ति उनका कीर्तन भजन करता हुआ उद्धार प्राप्त कर सकता है।

"नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।।"[20]

भगवान का कार्य आनन्द रस का आस्वादन कराना और आनन्द ग्रहण करना है इसीलिये वे अवतार धारण करते है।

"स्वच्छन्दोपान्त देहाय विशुद्धज्ञान मूर्तये।

सर्वस्मै सर्व बीजाय सर्वभूतात्मने नमः ।।"[21]

भगवान का कार्य अवतार लेकर जीव को मुक्ति अथवा मोक्ष प्रदान करना है।

"श्रृण्वन् गृणन् संस्मरयँश्च चिन्तयन्।

नामानि रूपाणि च मङलानि ते।

क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो राविष्टचेता न भवाय कल्पते।।'[22]

भगवान समस्त सृष्टि के सृजेता व प्रलय के कारक है। परमात्मा सृष्टि के सृजन और उसके विनाश से जाना जाता है अर्थात जो भी उत्पन्न होगा उसकी मृत्यु होगी।

'हेतुर्जीवोऽस्य सर्गा देश्विद्याकर्मकारकः ।

यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुताप रे।।'[23]

भगवान परब्रह्म परमेश्वर है और सबका आश्रय दाता है।

''व्यति रेकान्वयो यस्य जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिषु।

मायामयेषु तद् ब्रह्म जीव वृत्ति स्वयाश्रयः ।।'[24]

यह परब्रह्म परम सत्य हमारे नजदीक है और हमसे दूर भी यही अधिष्ठान यही साक्षी और यही परम् तत्व है।

यदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु।

बीजादि पचतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ।।'[25]

भागवत में दस लक्षणों की पुष्टि की गयी है ये सभी दस लक्षण यत्र तत्र भागवत में उपलब्ध होतें है। संसार में तीन प्रकार के जीवों की परिकल्पना की जाती है इनको मानव, देवता और दैत्यों में विभाजित किया जाता है। ये भक्त की आस्थाओं पर निर्भर होता है कि वह किसकी कैसे पहचान करता है। भगवान के नाम स्मरण से ही अनेक पाप मिट जाते है जिससे लगता है कि भागवत पुष्टिमार्ग का संरक्षण करती है।

''न हि भगवन्नघटित मिदं त्वद्दर्शनान् नृणामखिलपापक्षयः।

यन्नामसकृच्छ्रवणात् पुल्कस कोऽपि विमुच्यते संसारात् ।।'[26]

परमात्मा की कृपा हमेशा प्रत्येक के प्रति रहती है, कर्म करने के लिये जो जीवके हृदय में वासना उत्पन्न होती है उसी के कारण वह सदैव कर्म बन्धन में जकड़ा रहता है तथा कर्म से ही उसे शुभ तथा अशुभ फल उपलब्ध होते है। वह

सृष्टि के प्रवाह में सदैव प्रवाहित होता रहता है, किन्तु उसका उद्धार उस समय तक नही हो पाता जब तक वह भगवत लीलाओं का श्रवण नहीं करता। भगवत लीला ही उसे संसार सागर से पार उतारती है।

"निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सशक्तिभिः ।।"[27]

जीवन के अन्त में आत्मा अपनी समस्त शक्तियों के साथ सो जाती है। उस स्थिति को प्रलय कहते है। उस समय अपने वास्तविक शरीर का परित्याग करके जीव जब परमात्मा में लीन हो जाता है। तब उसका मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अन्त में जीव को नेत्र, गोलोक, सूर्यलोक आदि में आश्रय उपलब्ध होता है। इस तरह हम देखते है कि भागवत पुराण में ईश्वर को सृष्टि का सृजेता, पालनहार, आश्रयदाता, और मुक्तिदाता माना गया है।

श्री बल्देव उपाध्याय के अनुसार भागवत पुराणा संस्कृत साहित्य का अनुपम रत्न है यह भक्ति शास्त्र का सब कुछ है यह उसका कल्पतरू और फल दोनों ही है। अनेक आचार्यो ने भागवत पुराण को अपनी जीविका का साधन माना जाता है। इस ग्रन्थ का प्रभाव बल्लभाचार्य सम्प्रदाय तथा चैतन्य सम्प्रदाय पर बहुत अधिक पड़ा है। यह ग्रन्थ अद्वैतवाद का स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन करता है।

"अहमेवासमेंवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहंयदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम् ।।"[28]

अद्वैतवाद के अनुसार सृष्टि के पूर्व में केवल परम् तत्व था और सृष्टि के अन्त में भी यही तत्व रह जायेगा, इसी को योगीजन परमात्मा और भक्त जन भगवान के नाम से पुकारते है।

'वदन्ति तत् तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मोति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।[29]

योगी लोग इसे निर्गुण (निर्विकार) कहते हैं तथा यही ब्रह्म है, विष्णु, रूद्र, ब्रह्मा तथा पुरूष ये चार प्रकार के सगुण रूप धारण करता है। यही परब्रह्म, युग की

परिस्थितियों के अनुसार अवतार धारण करते है। परमात्मा का माया से कोई सम्वन्ध नही रहता ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र इनके गुण अवतार है, इसी प्रकार कल्प अवतार युगावतार और मन्वन्तरावतार परमात्मा के होते है। भगवान का कोई स्वरूप नही है। फिर भी वह स्वरूप धारण करता है।

भूतैर्यदा पचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्।

स्वाशेन विष्टः पुरूषाभिधानमवाय नारायण आदिदेवः ।[30]

(उपरोक्त श्लोक आचार्य वल्देव उपाध्याय के पुराण विमर्श में उपलब्ध पृष्ठ–14में)

ऋतेऽर्थ यत् प्रतीययेत न प्रतीयेत चात्मानि।

तद् विद्यादात्मनो माया यथा भासो यथा तमः।[31]

भागवत पुराण में भगवान की उपलब्धि के लिये साधन मार्ग का विश्लेषण किया गया है। रचनाकार ने इस ग्रन्थ का सृजन एक साधन मार्ग के रूप में किया है। वे बताते है कि भक्तिमार्ग से ही व्यक्ति अपना उद्धार कर सकता है।

न साधयति माँ योगो न सांख्य धर्म उद्धव ।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।।[32]

प्रीणनाय मुकुन्दस्य न व्रतं न बहुज्ञता।

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।

प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिश्न्यद विडम्बनम्।।[33]

'डा0 हरिनारायण दुबे' ने भागवत पुराण की प्रशंसा करते हुये अपने विचार प्रकट किये हैं, उनके अनुसार सम्पूर्ण भागवत में बारह स्कन्ध तथा तीन सौ पैतींस अध्याय है। इसमें श्लोकों की संख्या अठारह हजार है तथा इस पुराण का नाम श्री मद्भागवत है यह ग्रन्थ देवी भागवत से अतिश्रेष्ठ है तथा वैष्णव भक्ति का प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें पुराण के दस लक्षण उपलब्ध होते है।[34]

यदि भाषा शैली की दृष्टि से इस पुराण की समीक्षा की जाये तो पुराण की भाषा संस्कृत अवश्य है किन्तु उमें प्राकृत के शब्द कहीं न कहीं मिल जाते है।

प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान पॉर्जिटर का मानना है कि पुराणों की प्रारम्भिक भााषा प्राकृत थी, जिसे बाद में संस्कृत में परिणत कर दिया गया,[35] किन्तु पॉर्जीटर के इस कथन का समर्थन कीथ, जैकोबी, पुसाल्कर व बल्देव उपाध्याय नहीं करते है।[36]

इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार पुराणों की भाषा आख्यान युक्त होने के कारण प्रतीकात्मक है। जिनसे यथार्थ की खोज बिना विज्ञान के आधार के नहीं हो सकती, कपोल कल्पना को किसी भी प्रकार से ऐतिहासिक साक्ष्य नही माना जा सकता, अन्त में भाषा के सन्दर्भ में बल्देवउपाध्याय का कथन सत्य है कि पुराणों की भाषा संस्कृत है तथा इनकी रचना शैली महाकाव्यों से अलग है।[37] इस प्रकार हम देखते है कि भागवत पुराण भगवत् भक्ति उजागर करने वाला श्रेष्ठ ग्रन्थ है, इसमें भगवान श्री कृष्ण के चरित्र का सविस्तार वर्णन है। इसके अतिरिक्त यह ग्रन्थ ज्ञान का अथाह सागर है। इसमें वे उपाय सुझाये गये है जिनसे भक्त परमात्मा को बहुत आसानी से प्राप्त कर सकता है यह मार्ग बहुत ही सरल है।

(2) भागवत पुराण का रचनाकाल—

सामान्यतः मान्यता यह है कि समस्त पुराणों के रचनाकार कृष्णद्वैपायन वेदव्यास है तथा इनके पहले भी सत्ताइस व्यास और हो चुके है जो निम्न है—

(1) स्वायम्भुव मनु (2) प्रजापति वेदव्यास (3) शुक्राचार्य (4) बृहस्पति (5) सूर्य (6) मृत्यु (7) इन्द्र (8) वसिष्ठ (9) सारस्वत् (10) त्रिधामा (11) त्रिवृष (12) शततेजा (13) धर्म (14) तरक्षु (15) यारूणि (16) धनंजय (17) कृतंजय (18) ऋतंजय (19) भरद्वाज (20) गौतम (21) राजश्रवा (22) श्रेष्ठ शुष्मायण व्यास (23) तृणबिन्दु (24) वाल्मीकि (25) शक्ति (26) पराशर (27) जातूकर्ण।[38]

इन सभी व्यासों ने पौराणिक ग्रन्थों की रचनायें की यदि ऐतिहासिक द्रष्टिकोण से देखा जाये तो पुराण पुरूष वेद व्यास कुरू वंश के संस्थापक थे। वे महाभारत के बहुत पहले उत्पन्न हुये थे, जबकि महाभारत और अन्य पुराणों की रचना महाभारत के बहुत समय बाद परीक्षित के पुत्र राजा जनमेजय के बाद हुई थी। यदि पुराणों

की विषय सामग्री का अवलोकन किया जाये तो पुराण कृष्णद्वैपायन व्यास कृत प्रतीत नही होते क्योंकि इन पुराणों में जो घटना क्रम है तथा राजाओं की जो वंशावलियाँ उपलब्ध है उनसे यह सिद्ध होता है कि इनका रचनाकाल छः सौ ई0पू0 से लेकर सम्राट हर्षवर्द्धन के समय तक का रहा होगा। परन्तु यवनों तथा तुर्कों के आगमन का विवरण भागवत पुराण में उपलब्ध होता है इसलिये भागवत पुराण के रचना का उपरोक्त काल मान्य नहीं हो सकता । इस सन्दर्भ में एक बात और ध्यान देने योग्य है कि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने वेद आदि ग्रन्थों को सरल ढंग से प्रस्तुत करने के लिये एक नवीन शैली का आविष्कार किया होगा जिसके अन्तर्गत आख्यानों के माध्यम से विषयवस्तु को समझाने की कोशिश की गई । इस शैली की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें एक वक्ता होता है और दूसरा स्रोता कभी—कभी जब कोई बात वक्ता की स्रोता को समझ में नही आती तो वह वक्ता से प्रश्न करता है तथा वक्ता उस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करता है।

पुराणों के किसी भी रचनाकार ने इनकी रचना के सन्दर्भ में किसी निश्चित रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया इससे एक बात और प्रकट होती है कि पुराण अतिप्राचीनकाल से लिखे जाते रहे होंगे तथा आने वाली पीढियाँ, उस युग में घटने वाली घटनाओं को पुराणों में शामिल करती रही होंगी। इसलिये ये पुराण वास्तविक रचनाकाल को छोडकर संशोधित घटनाओं के कारण तद्‌युगीन रचनाकाल से जुड़ गये।

भागवत की रचना के सन्दर्भ में विद्वानों में कभी एक मत नही रहा, पहले बहुत से लोग इसे पुराण की संज्ञा ही नहीं देते थे, क्योंकि वे भागवत नाम के दो ग्रन्थ मानते थे। प्रथम ग्रन्थ भगवान कृष्ण के चरित्र से सम्बन्धित तथा द्वितीय ग्रन्थ को देवीचरित से सम्बन्धित मानते थे। उनका यह मानना था कि भागवत पुराण, पुराणों की विशेषताओं को पूरा नहीं करता जबकि अन्य विद्वान भागवत को पूर्ण पुराण मानते है। डा0 भण्डारकर के मतानुसार भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में तमिल देश के

वैष्णव सन्तों का वर्णन स्पष्ट दिखायी देता है। इसलिये उनका मानना है कि भागवत की रचना नवीं शताब्दी के बाद की है।[39] किन्तु अन्य विद्वान इस मत का समर्थन नही करते । दीप देव और अलवार जो भागवत के टीकाकार है उनके अनुसार भागवत कहीं प्राचीन है। देवगिरि के राजा महादेव यादव जिनका अस्तित्व सन् 1260 से लेकर 1271 तक था तथा इनके उत्तराधिकारी रामचन्द्र 1271 से 1308 तक रहे। इनके मन्त्री हेमाद्रि पंडित थे इनके सभासद दीप देव थे। इन्हौने भागवत पुराण के आधार पर हरिलीलामृत तथा मुक्ताफल नामक दो ग्रन्थ लिखे, इनका कथानक भागवत से लिया गया है।

"तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि।"[40]

मुक्ताफल भागवत के कमनीय पदों का एक संग्रह है। हेमाद्रि ने अपने ग्रन्थ चर्तुवर्ग चिन्तामणि में भागवत के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि भागवत की रचना तेरहवीं शताब्दी से पहले की हैं।

विशिष्टाद्वैत मत के संस्थापक माध्वाचार्य ने बारहवीं शताब्दी में **"भागवत तात्पर्य निर्णय"** ग्रन्थ की रचना की, इसी प्रकार रामानुजाचार्य ने बारहवी शताब्दी में भागवत के अनक पदों को वेद स्तुति में उद्घृत किया। सुप्रसिद्ध विद्वान माठर ने अपने ग्रन्थ में भागवत के अनेक श्लोंको का उदाहारण दिया है। भागवत का चीनी अनुवाद 557 ई0 से लेकर 559 ई0 के बीच हुआ। शंकराचार्य ने सातवीं शताब्दी में गोविन्दाष्टक और प्रबोध सुधाकर में भगवान कृष्ण की ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जो भागवत में वर्णित हैं। शंकराचार्य के दादा गौड़पादाचार्य ने अपनी पुस्तक **"पंचीकरण व्याख्या"** में भागवत के श्लोंको का उदाहरण दिया है। यदि हम गौड़पाद के उदाहरण को ध्यान में रखें तो भागवत पुराण ईसा की छठवी शताब्दी के पूर्व की रचना प्रतीत होती है। पद्म पुराण के भागवत महात्म्य के अनुसार शुकदेव जी ने महाराज परीक्षित को भाद्र शुक्ल नवमी को यह कथा सुनाई। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय परम्परानुसार यह ग्रन्थ पाँच हजार वर्ष पुराना

होगा, किन्तु उपयुक्त ऐतिहासिक साक्ष्य के अभाव में यह रचनाकाल सही प्रतीत नही होता है। पुराणों के रचनाकाल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान सिद्धेश्वरी नारायण रॉय का मानना है कि पुराणों की रचना किसी एक काल विशेष में नहीं हुई क्योकि वेदो में भी पुराण शब्द का प्रयोग हुआ है। [41]

ऋग्वेद में एक स्थल पर पुराण और एक स्थल पर पुराणी शब्द का प्रयोग मिलता है,[42,43] उपरोक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि वैदिक काल में भी पुराणों का महत्व था, किन्तु यह पता नहीं लगता कि उस युग के पुराणों के नाम क्या थे? अथर्ववेद में भी दो मन्त्रों में पुराण और पुरणवित् दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। [44,45] वेदों के अतिरिक्त गोपथ ब्राम्हण , उपनिषद में भी पुराण शब्द का प्रयोग हुआ है।[46] इसके अतिरिक्त शतपथ् ब्राह्मण [47] तैत्तरीय आरण्यक [48] बृहद आरण्यक [49] छान्दोग्य उपनिषद[50] में इसका प्रयोग इतिहास के अर्थो में मिलता है। अनेक धर्मसूत्र ग्रन्थों में भी पुराण शब्द का उल्लेख हुआ है, ये धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, [51] याज्ञवल्क्य स्मृति [52] आपस्तम्ब धर्मसूत्र [53] आदि हैं। इससे यह मालुम पड़ता है कि कुछ पुराणों की संरचना चौथी अथवा पाँचवी शताब्दी ई0 पू0 में अवश्य प्रारम्भ हो गयी होगी, चौथी शती ई0 पू0 तक पुराणों को मौलिक ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया जाता रहा होगा तथा व्यक्ति इनमें बहुत अधिक श्रृद्धा रखते रहे होंगे। जिन राजवंशों का वर्णन पुराणों में उपलब्ध होता है, उनसे भी पुराणों के रचना काल का पता लगता है। अनेक पुराणों में बुद्ध की चर्चा है, इससे यह सिद्ध होता है कि या तो उन पुराणों की रचना बौद्ध युग के बाद हुई अथवा उनकी गाथा को परिशिष्ट के रूप में जोड़ा गया। अनेक प्राचीन ग्रन्थों में भी पुराण शब्द का उल्लेख मिलता है। मुख्य रूप से भविष्य पुराण और भागवत पुराण में इसका उल्लेख है। पं0 मधुसूदन ओझा ने अपने ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है। [54] सुप्रसिद्ध विद्वान हाजरा के अनुसार पुराणों की रचना 550 ई0 से लेकर 650 ई0 के मध्य में हुई। [55] दण्डी ने अपने काव्य आदर्श में पुराणों का उल्लेख किया है। इसलिये अठारह पुराणों का भी यही रचनाकाल

माना जाता है। [56]

लोकमान्य तिलक के अनुसार भागवत पुराण की रचना 600 ई0 से लेकर 700 ई0 के मध्य हुई । [57] डा0 हरिनारायण दुबे के अनुसार पुराणों की संरचना ई0 पू0 तृतीय शताब्दी में प्रारम्भ हो गयी थी, इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं।[58] उन्होंने उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में पुराण का उल्लेख किया है।

''मुख्यैखग्रहीत वा राजानं तत् प्रियाश्रितः।
इतिवृत्त पुराणाभ्यं बोधयेदर्थशास्त्रवित्।।''[59]

प्रसिद्ध विद्वान बाणभट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ हर्षचरित और कादम्बरी में पुराणों को महत्व दिया है। कुमारिल भट्ट ने जैमिनी सूत्र के भाष्य में पुराणों का

'' पुराणमिवयथा विभागावस्थापित सकलभुवनकोशाम।''
''आगमेषु सर्वेष्वेव पुराणरामायण भारतादिसम्यगनेक प्रकाशः शापवार्ता श्रूयन्ते'',[60]

उल्लेख किया है, ये सातवीं शताब्दी के विद्वान हैं।[61] शंकराचार्य ने शारीरिक भाष्य में पुराण के अनेक श्लोक उद्धत किये हैं। ये आठवीं शताब्दी के आचार्य थे।[62] याज्ञवल्क्य ने भी अपनी स्मृति में पुराणों का उल्लेख किया है।[63] सुप्रसिद्ध विद्धान हाजरा के मत को उचित ठहराते हुए अनेक विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि भागवत् पुराण की रचना सातवीं शताब्दी के पूर्व हुई, सभी विद्धानों ने इस मत का समर्थन किया है।

यदि काल की दृष्टि से पुराणों का मूल्यांकन किया जाय तो इस बात के स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध होते हैं कि पुराणों की रचना का शुभारम्भ वैदिक काल में ही हो गया था। संभवतः कृष्णद्वैपायन के पूर्व के सत्ताइस व्यासों ने विविध पौराणिक ग्रन्थों की रचना की होगी किन्तु न तो उन पुरणों के कोई नाम उपलब्ध होते हैं और न उनके ऐतिहासिक साक्ष्य, जो भी अठारह महापुराण और अठारह उप पुराण उपलब्ध होते हैं उनका रचयिता कृष्णद्वैपायन वेदव्यास को स्वीकार किया जाता है। पुराणों में

अनेक वर्णन ऐसे उपलब्ध होते हैं जिनका सम्बन्ध ईसा की छठवीं शताब्दी से है, इसलिये पुराणों की सरंचना को बहुत प्राचीन न मानते हुए उन्हें ईसा पू0 पाँचवी शताब्दी से लेकर छः सौ ई0 तक का माना जा सकता है।

भागवत महापुराण की विषय सामग्री को देखते हुए उसके रचना काल के संदर्भ में कुछ नये तथ्य उभरकर सामने आये हैं, जहाँ भागवत पुराण में कलियुग वर्णन दिया हुआ है वहाँ यवनों और तुर्कों का उल्लेख आया है। इसलिए भागवत् पुराण की रचना के सन्दर्भ में यह तर्क उभर कर सामने आता है कि इसकी रचना नवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक हुई।

(3) भागवत के रचना के समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ—

भागवत महापुराण में अनेक राजाओं के वंश का उल्लेख होता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि लेखक तद्‌युगीन राजनीतिक परिस्थितियों तथा उससे पहले की राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित है। भागवत् के नवम् स्कन्ध में शर्याति का वंश सबसे पहले उपलब्ध होता है। राजा शर्याति मनु के पुत्र थे, उनकी एक पुत्री का नाम सुकन्या था, उसका विवाह च्यवन ऋषि से हुआ था। शर्याति के तीन पुत्र थे— उत्तानबर्हि, आर्नत व भूरिषेण।

"उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः।

शर्यातिरभवन् पुत्रा आनर्तद् रेवतोऽभवद्।"[64]

आर्नत के पुत्र का नाम रेवत था तथा रेवत के सौ पुत्र थे, इनकी एक पुत्री रेवती भी थी जिसका विवाह कृष्ण के भाई बलराम के साथ हुआ।

नवम् स्कन्ध में ही दूसरा वंश राजा निमि का उपलब्ध होता है, निमि के पिता का नाम इक्ष्वाकु था। राजा निमि मृत्यु के पश्चात दुबारा जीवित हुए, इनके पुत्र का नाम मिथिल था तथा मिथिल के पुत्र का नाम जनक, जनक के पुत्र का नाम उदावसु, उसके पुत्र का नाम नंदिवर्धन, नंदिवर्धन के पुत्र का नाम सुकेतु, सुकेतु के पुत्र का नाम देवरात, देवरात के पुत्र का नाम वृहद्रथ, बृहद्रथ के पुत्र का नाम

महावीर्य, महावीर्य के पुत्र सुधृति, सुधृति के पुत्र का नाम धृष्टिकेतु, उसके पुत्र का नाम हर्यश्व व उसके पुत्र का नाम मरू हुआ। मरू के पुत्र का नाम प्रतीपक, प्रतीपक के पुत्र का नाम क्रतिरथ, क्रतिरथ के पुत्र देवमीढ़, देवमीढ़ के पुत्र का नाम विश्रुत, विश्रुत के पुत्र का नाम महाधृति हुआ। महाधृति के पुत्र का नाम कृतिरात, कृतिरातक के पुत्र का नाम महारोमा, महारोमा के पुत्र का नाम स्वर्णरोमा, स्वर्णरोमा के पुत्र का नाम हस्तरोमा, हस्तरोमा के पुत्र महाराज श्रीध्वज हुये। श्रीध्वज के पुत्र का नाम कुशध्वज, कुशध्वज के पुत्र का नाम धर्मध्वज, धर्मध्वज के दो पुत्र कतध्वज और मित्रध्वज, क्रतध्वज के पुत्र का नाम केशध्वज, मित्रध्वज के पुत्र का नाम खाण्डिक्य हुआ। केशध्वज के पुत्र का नाम भानुमान, भानुमान के पुत्र का नाम शतदुम्न था, शतदुम्न के पुत्र का नाम शुचि, शुचि के पुत्र का नाम सनद्धाज उसके पुत्र का नाम उर्ध्वकेतु, उर्ध्वकेतु के पुत्र का नाम अज, अज के पुत्र का नाम पुरूजित, पुरूजित के पुत्र का नाम अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमि के पुत्र का नाम श्रुतायु, श्रुताय्रु के पुत्र का नाम सुपार्श्वक, उसके पुत्र का नाम चित्ररथ, उसके पुत्र का नाम मिथलापति, मिथलापति के पुत्र का नाम क्षेमाधि, उसके पुत्र का नाम समरथ, समरथ के पुत्र का नाम सत्यरथ, सत्यरथ के पुत्र का नाम उपगुरू, उपगुरू के पुत्र का नाम उपगुप्त, उपगुप्त के पुत्र का नाम वस्त्रनन्त, वस्त्रनन्त के पुत्र युयुध, युयुध के पुत्र का नाम सुभाषण, सुभाषण के पुत्र का नाम श्रुत, उसके पुत्र का नाम जय, जय के पुत्र का नाम विजय, विजय के पुत्र का नाम ऋतु, ऋतु के पुत्र का नामसुनक, सुनक के पुत्र का नाम वीतिहन्त, वीतिहन्त के पुत्र का नाम धृति, धृति के पुत्र का नाम बहुलाश्व था। इस प्रकार यह वंश चला तथा मैथिल वंश में उत्पन्न सभी नरपति मैथिल कहलाने लगे। इस वंश का अस्तित्व भागवत् के रचना काल तक रहा, इनकी राजधानी बिहार राज्य के पाटिलीपुत्र के आस–पास और दरभंगा रही, इनका राज्य नैपाल, बंगाल तथा उड़ीसा तक विस्तृत था।

पौराणिक युग में दूसरा महत्वपूर्ण वंश चंद्रवंश था, इस वंश के संस्थापक

पुरूरवा थे, यह पौराणिक मान्यता है कि बृहस्पति की पत्नी तारा और चन्द्रमा के योग से राजा पुरूरवा का जन्म हुआ इसके पश्चात पुरूरवा का सम्बन्ध उर्वशी से हुआ। उर्वशी और पुरूरवा का सम्बन्ध शुक्तिमती नगरी के पास चैत्ररथ वन के पास वर्षों रहा। पुरूरवा और उर्वशी के संयोग से छः पुत्र हुए, इनके नाम आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय हुए। श्रुतायु के पुत्र का नाम वासुमान, भीम के पुत्र का नाम कांचन, कांचन के पुत्र का नाम होत्र और होत्र के पुत्र का नाम जहू, जहू के पुत्र का नाम कुरू और कुरू के पुत्र का नाम अजरव, अजरव के पुत्र का नाम कुश, कुश के चार कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ थे, इनमें कुशाम्बु के पुत्र का नाम गाधि हुआ चंद्रवंश से ही हैहय वंश का उदय हुआ। इस वंश का शक्तिशाली सम्राट सहस्त्रबाहु अर्जुन था, जिसे परशुराम ने परास्त किया था। राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए, विश्वामित्र के पुत्र का नाम शुनःशेप था। जब उन्होनें विश्वामित्र की बात न मानी तो उन्हें श्राप दिया कि तुम म्लेक्ष हो जाओ। विश्वामित्र जी के अन्य पुत्र अष्टक, हरीत, जय और कृतिमान थे। इस वंश से इस बात का पता लगता है कि प्रयाग राज से लेकर शुक्तिमती नगरी, यमुना का दक्षिणी किनारा और दशार्ण देश की सीमा तक चन्द्रवंश का प्रभाव व्यापक था। पुरूरवा के एक पुत्र का नाम था आयु, उसके पाँच पुत्र थे, नहुष, क्षत्रवृद्ध, रज, रम्भ और अनेना। क्षत्रवृद्ध के पुत्र का नाम सुहोत्र था। सुहोत्र के तीन पुत्र काश्य, कुश, गृत्समद हुए, गृत्समद के पुत्र का नाम शुनक और शुनक के पुत्र का नाम शौनक, शैनक जी का जन्म इसी वंश में हुआ। काश्य के पुत्र का नाम काशि, काशि के पुत्र का नाम राष्ट्र, राष्ट्र के पुत्र का नाम दीर्घतमा तथा दीर्घतमा के पुत्र का नाम धन्वन्तरि व इनके पुत्र का नाम केतुमान, केतुमान के पुत्र का नाम भीमरथ, भीमरथ के पुत्र का नाम दिवोदास, दिवोदास के पुत्र का नाम द्युमान, द्युमान के अलर्क, अलर्क के पुत्र का नाम संतति, संतति के पुत्र का नाम सुनीथ, सुनीथ के पुत्र का नाम सुकेतन, सुकेतन के पुत्र का नाम धर्मकेतु, धर्मकेतु के पुत्र का नाम सत्यकेतु, सत्यकेतु के पुत्र का नाम धृष्टकेतु, ६

ृष्टकेतु के पुत्र का नाम सुकुमार, सुकुमार के पुत्र का नाम वीतिहोत्र , वीतिहोत्र के पुत्र का नाम भर्ग, भर्ग के पुत्र का नाम राजा भार्गभूमिका हुआ। इसी वंश में रम्भ के पुत्र का नाम रभस उसके पुत्र का नाम गम्भीर, गम्भीर के पुत्र का नाम अक्रिय हुआ तथा इससे ब्राह्मण वंश का शुभारम्भ हुआ। ब्राह्मणों में भृगु वंश को श्रेष्ठ माना गया। भागवत पुराण में ही भरत वंश का वर्णन उपलब्ध होता है, आगे चल के यही वंश कुरू और पाण्डव वंश में परिणत हुआ, जिन्होंने महाभारत जैसे संग्राम को जन्म दिया जिनकी गौरव गाथा महाभारत के अतिरिक्त समस्त पुराणों में उपलब्ध होती है। इस वंश में भरद्वाज के पुत्र मन्यु तथा मन्यु के पाँच पुत्र वृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य , नर और गर्ग का उल्लेख है। नर के पुत्र का नाम संस्कृति, संस्कृति के दो पुत्र गुरू और रन्तिदेव, मन्यु के पुत्र गर्ग से शिनि, शिनि से गार्ग्य का जन्म हुआ। यह क्षत्रिय था फिर भी इससे वंश चला, गृहक्षत्र के पुत्र का नाम हस्ति जिसने हस्तिनापुर बसाया। इसके तीन पुत्र अजमीढ़, द्विमीढ़ और कुलमीढ़ थे। अजमीढ़ के पुत्र प्रियमेध ब्राह्मण हुए, अजमीढ़ के एक पुत्र का नाम बृहदिषु; बृहदिषु के पुत्र का नाम जयद्रथ, जयद्रथ के पुत्र का नाम विशद और विशद के पुत्र का नाम सेनजित था। द्विमीढ़ के पुत्र का नाम यवीनर, यवीनर के पुत्र का नाम कतिमान, कतिमान के पुत्र का नाम सत्धृति हुए। इसी वंश में आगे चलकर भर्याश्व के पुत्र मुद्ल से यमज (जुडवाँ), इनके पुत्र का नाम दिवोदास तथा कन्या का नाम अहिल्या था। जिसमें अहिल्या का विवाह गौतम से हुआ जिससे गौतम के पुत्र शतानन्द का जन्म हुआ। शतानन्द के पुत्र का नाम शतद्रुति उसके पश्चात इनके बीज से कृपाचार्य का जन्म हुआ और लडकी का नाम कृपी था, इसका विवाह द्रोणाचार्य से हुआ। इस वंश से यह जानकारी प्राप्त होती है कि एक ही वंश से उत्पन्न व्यक्ति क्षत्रिय और ब्राह्मण धर्म दोनों ही ग्रहण कर सकते थे, जातीय बन्धन कठोर नहीं थे।

पांचाल, कौरव और मगध देश के राजाओं का वर्णन भी भागवत पुराण के नवम् स्कन्ध के बाइसवें अध्याय में उपलब्ध होता है। इसमें पुराण के नवम् स्कन्ध के

बाइसवें अध्याय में उपलब्ध होता है, इसमें दिवोदास के पुत्र का मित्रेयु , मित्रेयु के चार पुत्र च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक, सोमक के सौ पुत्र जिनमें सबसे बड़ा जन्तु सबसे छोटा पृषत, पृषत के पुत्र के पुत्र का नाम राजा द्रुपद था। द्रुपद की पुत्री का नाम द्रौपदी और पुत्र का नाम धृष्टद्युम्न था, धृष्टद्युम्न के पुत्र धृष्टकेतु थे, ये लोग भार्गव वंश में उत्पन्न हुये तथा पांचाल नरेश कहलाये।

अजमीढ़ के दूसरे पुत्र का नाम ऋक्ष था, उनके पुत्र का नाम सम्बरण था, सम्बरण के पुत्र का नाम कुरू तथा इन्हीं के नाम से यह क्षेत्र कुरूक्षेत्र कहलाया। कुरू के चार पुत्र हुए परीक्षित, सुधन्वा, जहु और निषधाश्व, सुधन्वा से सुहोत्र, सुहोत्र से च्यवन व च्यवन से क्रति, क्रति से उपरचर वसु तथा इनसे बृहद्रथ आदि कई पुत्र हुए। बृहद्रथ से कुशाम्ब, मत्स्य, कृतग्र और चेदि हुए ये लोग कौशाम्बी मत्स्य और चेदि देश के राजा हुए। बृहद्रथ का पुत्र था कुशाग्र, कुशाग्र का ऋषभ, ऋषभ का सत्यहित, सत्यहित का पुष्पवान, पुष्पवान का जहुना पुत्र हुआ। बृहद्रथ की दूसरी पत्नी के गर्भ से दो टुकड़े निकले जरा नाम की राक्षसी ने इन दोनों टुकडों को जोड दिया जिससे जरासन्ध पैदा हुआ, यह पाटिलीपुत्र का राजा हुआ। जरासन्ध के पुत्र का नाम सहदेव, सहदेव के पुत्र का नाम सोमापि, सोमापि के पुत्र का नाम श्रुतश्रवा, कुरू के ज्येष्ठ पुत्र परीक्षित के कोई सन्तान नही थी। जहु का पुत्र सुरथ, सुरथ का विदूरथ, विदूरथ का सार्वभौम, सार्वभोम का जयसेन, जयसेन का राधिक, राधिक का पुत्र आयुत, आयुत का क्रोधन, क्रोधन का देवतिथि, देवतिथि का त्रष्य, त्रष्य का दिलीप और दिलीप का पुत्र प्रतीप हुआ। प्रतीप के तीन पुत्र थे देवापि शान्तनु, ब्राह्मीक, जिनमें शान्तनु राजा हुये शान्तनु के छोटे भाई बाह्मीक का पुत्र सोमदत्ता राजा हुआ। उसके तीन पुत्र थे भूरि, भूरि श्रवा और शल। शान्तनु और गंगा के सहयोग से भीष्म पितामह का जन्म हुआ, शान्तनु का दूसरा विवाह सत्यवती से हुआ जिससे चित्रांगद विचित्रवीर्य हुए तथा एक पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास भी उत्पन्न हुए शान्तनु के दूसरे पुत्र विचित्रवीर्य का विवाह अम्बिका और अम्बालिका से हुआ परन्तु

विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गयी तब भगवान व्यास ने सत्यवती के कहने से दोनों रानियों से दो पुत्र उत्पन्न किये इनका नाम धृतराष्ट्र और पाण्डु था। धृतराष्ट की पत्नी का नाम गांधारी था उसके दुर्योधन आदि पुत्र हुये। एक पुत्र दुःशला था, पाण्डु के पाँच पुत्र हुए इनमें तीन पुत्र युधिष्ठिर भीमसेन अर्जुन कुन्ती से तथा दूसरी पत्नी माद्री से नकुल और सहदेव उत्पन्न हुये। युधिष्ठर के पुत्र का नाम प्रतिबिन्ध्य, भीमसेन के पुत्र का नामश्रुतसेन, अर्जुन के पुत्र का नाम श्रुतकीर्ति, नकुल के पुत्र का नाम शतनीक और सहदेव के पुत्र का नाम श्रुतकर्मा था । इन सभी की माता द्रौपदी थी युधिष्ठिर की पौरवी नाम की पत्नी से देवक और भीमसेन की पत्नी हिडिम्बा से धटोत्कच और काली नाम की पत्नी से सर्वदत्त नाम के पुत्र हुए। सहदेव पत्नी पर्वत की कुमारी विजया से सुहोत्र और नकुल की पत्नी करेणुमती से नरमित्र नामक पुत्र हुआ। अर्जुन की पत्नी नाग कन्या उलूपी के गर्भ से डरावान अैर मणिपुर नरेश की कन्या से बभुवाहन का जन्म हुआ। अर्जुन की सुभद्रा नामक पत्नी से अभिमन्यु का जन्म हुआ, अभिमन्यु से परीक्षित का जन्म हुआ, महाभारत युद्ध में जब सम्पूर्ण वंश नाश हो गया तो कुरू वंश के तुम्ही एक जीवित उत्तराधिकारी बचे और तुम्हारे पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन, और उग्रसेन है। जनमेजय के पुत्र का नाम सतनीक, सतनीक का पुत्र अश्वमेधज उसका पुत्र असीम कृष्ण उसका पुत्र नेमिचक्र हुआ। हस्तिनापुर के विनाश के बाद यह वंश कौशाम्बी में राज्य करेगा, नेमिचक्र का पुत्र चित्ररथ, चित्ररथ का पुत्र कविरथ, कविरथ का पुत्र द्रष्टिमान, द्रष्टिमान का पुत्र सुश्रेण उसका पुत्र सुनीथ, उसका पुत्र नृचक्षु उसका पुत्र सुखीनल, सुखीनल का पुत्र परिटलव उसका पुत्र सुनय, सुनय का पुत्र मेधावी, मेधावी का नृपुंजय, नृपुंजय का दूर्व, दूर्व का तिमि, तिमि का पुत्र बृहद्रथ, बृहद्रथ का पुत्र सुदास, सुदास का पुत्र सतनीक, सतनीक का पुत्र दुर्दमन का वहीनर, वहीनर का दण्डपाणि, दण्डपाणि का पुत्र निमि, निमि का पुत्र खेम होगा, यह इस वंश का अन्तिम राजा होगा। यदि हम छठीं शताब्दी तक के राजवंशों का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है

कि छः सौ ई0 पू0 में परीक्षित के छठी पीढ़ी के राजा प्रतिचेत का राजय काफी समय तक यहाँ रहा। उसके पश्चात कौशाम्बी में पाण्डव वंशी नरेशों का राज्य था। जिनका अधिकार कौशाम्बी से लेकर बाँदा, हमीरपुर तथा झाँसी जनपद तक फैला हुआ था, स्पष्ट है कि भागवत पुराण में जिस तरह के वंश वृक्षों का वर्णन किया गया है वे राजनीतिक घटनाक्रम को ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में परिणित करते हैं।

महाभारत युग में यदुवंशियों ने राजनीति को सर्वाधिक प्रभावित किया है, इसी वंश में भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार धारण किया और वे महान चरित्र नायक बने यह वंश राजा यदु से चलता है। राजा यदु के चार पुत्र थे सहस्त्रजित क्रोष्टा, नल और रिपु। सहस्त्रजित से शत्जित का जन्म हुआ, शतजित् के तीन पुत्र हुए महाहय, वेणुहय, व हैहय। हैहय के पुत्र का नाम धर्म, धर्म के पुत्र का नाम नेत्र, नेत्र के पुत्र का नाम कुन्ति, कुन्ति के पुत्र का नाम सोहंजि, सोहंजि के पुत्र का नाम महिष्मान, महिष्मान के पुत्र का नाम भद्रषेन, भद्रसेन के पुत्र दुर्मद और धनक थे, धनक के चार पुत्र क्रतवीर्य , क्रताग्नि, क्रतवर्मा और क्रतीजा ,क्रतवीर्य का पुत्र अर्जुन था इसे सहस्त्रबाहु अर्जुन भी कहते हैं। इसके पुत्रों का नाम जयध्वज, सूर्यसेन, वृषभ, मधु और उर्जित था, जयध्वज के पुत्र का नाम तालजंग था इसके सौ पुत्रों का संहार महर्षि और्वकी ने कर दिया। वीतिहोत्र के पुत्र का नाम मधु था इस में वृष्णि सबसे बड़ा था। मधु, वृष्णि और यदु के कारण यह वंश माधव, वार्षण्ये और यादव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। और्ष का पुत्र व्रजनिवान पैदा हुआ, आगे चलकर इस वंश की संख्या बढ़कर एक करोड़ हो गयी। इसी परिवार में शैव्या नाम की एक कन्या हुई उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम विदर्भ था।

विदर्भ (नागपुर के आसपास का इलाका) राज्य का सूत्र पात इसके नाम से हुआ, इस वंश में रोम, पाद, बंभ्रु, कृति, डशिक, चेदि, दमघोष और शिशुपाल आदि राजा हुए। इस वंश का महाभारत काल में बहुत अधिक महत्व था, भगवान श्री कृष्ण ने शिशुपाल का बध किया था। महाभारत काल तक के राजवंश का अध्ययन करने के

पश्चात हम इस निष्कर्ष में पहुँचते हैं कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में सामन्तशाही शासन व्यवस्था स्थापित हो गयी थी और यह वंशवाद का अनुसरण करती थी। राजा लोग अपनी प्रतिष्ठा के लिए युद्ध किया करते थे तथा समुचित सलाह के लिए योग्य मन्त्रियों की नियुक्ति करते थे। जब राजा लोग अधिक शक्तिशाली हो जाते थे तो ये लोग पथ श्रष्ट हो जाते थे। प्रजा का सुखी और दुःखी होना राजा की इच्छा और योग्यता पर निर्भर करता था तथा कुछ शाासकों में मानवीय गुणों का अभाव था और कुछ शासक धार्मिक क्रत्यों में विश्वास करते हुए प्रजा को सुख देने का प्रयत्न करते थे। इस ससमय न्याय और युद्ध व्यवस्था परम्परागत थी।

भागवत पुराण के द्वादश स्कन्ध के प्रथम अध्याय में उन राजाओं का वर्णन उपलब्ध होता है जिन्होनें ईशा की प्रथम शताब्दी से लेकर छठीं शताब्दी तक शासन किया। रचनाकार के अनुसार वृहद्रथ वंश का अन्तिम राजा रिपुंजय होगा, इसका मन्त्री सुनक, रिपुंजय का बध कर देगा और अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बना देगा। यह वंश एक सौ अड़तीस वर्ष तक राज्य करेगा।

प्रद्योत वंश के बाद नागवंशीय राजाओं का राज्य स्थापित होगा, इस वंश का संस्थापक शिशुनाग होगा तथा इसके वंशा के लोग तीन सौ साठ वर्ष तक राज्य करेंगे। इस वंश में काकवर्ण तथा क्षेमधर्म आदि प्रमुख राजा होगें, इसके पश्चात महानन्द वंश का राज्य होगा तथा इस वंश के पश्चात मौर्यवंश का साम्राज्य स्थापित होगा। इस वंश का प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त होगा व इसी वंश में अशोक वर्धन नाम का राजा होगा तथा इसी वंश में सुयश, संगत, शालिशूक और सोमशर्मा आदि राजा होगें। मौर्यवंश के राजा एक सौ सैंतीस वर्ष तक राज्य करेंगे इसके पश्चात बृहद्रथ का सेनापति पुष्पमित्र शुंग होगा। यह अपने स्वामी को मारकर राजा बन जायेगा, इस वंश में अग्निमित्र स्वज्येष्ठा, वसुमित्र, भद्रक, कुलिन्दघोष, वज्रमित्र आदि शासक होंगे, ये एक सौ बारह वर्ष तक शासन करेंगे। इसके पश्चात कण्व वंश का शासन स्थापित होगा, कण्व वंश की स्थापना वसुदेव से होगी, तत्पश्चात भूमित्र नारायण

और शुशर्मा आदि शासक होंगे यह वंश तीन सौ पैंतालीस वर्ष तक शासन करेगा। इसके पश्चात आन्ध्र वंशीय शासकों का राज्य होगा, इस वंश में श्री शान्तकर्ण आदि बहुत से राजा होंगे। इन राजाओं का राज्य चार सौ छप्पन वर्ष रहेगा। इसके पश्चात यवन और तुर्कों का राज्य होगा तथा मगध देश में अलग राजा होंगे जो आगे चलकर अपने धर्म को परिवर्तित कर लेगें, कालान्तर में क्षत्रियों के विनाश की बात भी भागवत् गन्थ में कही गयी तथा क्रोध आदि कारणों से देश का विभाजन, लूट आदि घटनाएँ बढेगी। इस ग्रन्थ में यह भी वर्णन उपलब्ध होता है कि कश्मीर और सिन्ध नदी के तट पर म्लेक्क्षों और शूद्रों का राज्य होगा।

'सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम्।

भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चा ब्रह्मवर्चसः।।'[65]

यदि हम भागवत रचनाकार की भविष्य घोषणा शैली को तद्युगीन राजनीतिक और एतिहासिक गतिविधि स्वीकार कर लें तो भागवत पुराण में वर्णित आँकडे, राजवंश और राजनीतिक घटनाएँ बहुत कुछ सही प्रतीत होती हैं। नन्दवंश के पूर्वजों का शासन 544 ई0 पू0 से लेकर 412 ई0 पू0 तक रहा। इस वंश में शिशुनाग और काकवर्ण आदि राजा हुए, जिसका उल्लेख भागवत में हुआ—

'शिशु नागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः।

क्षेमधर्मा तस्यसुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ।।[66]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत का कथन ऐतिहासिक साक्ष्य की पुष्टि करता है। इसके पश्चात नन्द वंश का शासन 344 ई0 पू0 से लेकर 325 ई0 पू0 तक रहा, इसका भी उदाहरण भागवत में उपलब्ध हो जाता है।

' स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लाङितशासनः।

शासिष्यति महापदों द्वितीय इव भार्गवः।।'[67]

नन्द वंश की समाप्ति कौटिल्य यके प्रयासों से हुई तथा उसके पश्चात मौर्य वंश की स्थापना हुई। इस वंश में चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक आदि प्रसिद्ध सम्राट हुए

व इस वंश ने 323 ई0 पू0 से लेकर 184 ई0 पू0 तक शासन किया।

' नवनन्दान् द्विजः कश्चित प्रपन्नानुद्धरिष्यति।

तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ।। [68]

भागवत पुराण में शुंग राजवंश का भी उल्लेख मिलता है, इस वंश ने 184 ई0पू0 से लेकर तीस ई0 पू0 तक शासन किया, इस वंश का संस्थापक पुष्यमित्र था। इसके ऐतिहासिक साक्ष्य भागवत में उपलब्ध होते हैं।

' समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरूकुलोद्वह।

हत्वा वृहद्रथं मौर्य तस्य सेनापतिः कलौ।।

पुष्यमित्रस्तु शुडाह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति।

अग्निनमित्रस्ततस्त स्मात् सुज्येष्ठोअथं भविष्यति।।' [69]

इसके पश्चात आन्ध्रवंशीय शासकों का राज्य स्थापित हुआ, इन राजाओं की संख्या दस है तथा इस वंश ने 174 ई0 तक शासन किया।

' हत्वां काण्वं सुशर्मणं तद्भृत्यो वृषलो बली।

गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कचित् कालमसत्तमः।।' [70]

इसी समय भारत में विदेशी आक्रमण हुए इन्होंने भी भारतवर्ष में अपना राज्य स्थापित किया, इन नरेशों में यवन, कुषाण और शक नरेश आते हैं। इनका राज्य भी लगभग तीन सौ वर्षों तक भारतवर्ष में रहा।

भागवत महापुराण में यवनों, शकों और कुषाणों को म्लेक्ष वंशीय माना गया है तथा इनके राज्य का भी अनुमान तीन सौ वर्षों का लगाया गया है। गुप्त साम्राज्य के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की कोई जानकारी भागवत पुराण में उपलब्ध नहीं होती, इसलिए भागवत् पुराण की रचना ईसा की चौथी शताब्दी प्रतीत होती है। यदि तुर्कों का आक्रमण भारतवर्ष में प्रारम्भिक युग में माना जाय तो वह 712 ई0 में सिंध पर मोहम्मद बिन कासिम का आक्रमण था, उसने सिन्ध के शासक दारा को जीत लिया था। यदि भागवत के इस तुर्क को स्वीकार किया जाय कि यहाँ तुर्कों

का शासन रहा तो भी इसकी रचना सातवीं शताब्दी के अन्त की ही मानी जाती है क्यों कि इस ग्रन्थ में तदयुगीन राजनीतिक उथल–पुथल का वर्णन मिलता है।

'ततौऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरूष्ककाः।

भूयो दश गुरूण्डाश्च मौना एकादशैव तु।।' [71]

यवनों का आक्रमण भारतवर्ष में 281 ई0 पू0 में प्रारम्भ हुआ तथा यह आक्रमण 180 ई0 पू0 तक बना रहा। तुर्कों का आक्रमण सातवीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ हुए थे। भागवत के इन प्रसंगों को भविष्य के साथ जोड़ा गया है किन्तु सारी की सारी घटनायें कपोल कल्पित नहीं हैं, ये तद्युगीन राजनीतिक व ऐतिहासिक साक्ष्य है जो यह सिद्ध करते हैं कि भागवत का रचनाकार एक ऐसा जागरूक लेखकथा , जो तद्युगीन राजनीतिक परिस्थितियों से परिचित था।

(4) भागवत के रचना के समय की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ–

श्रीमद्भागवत का रचनाकार एक बहुत ही बुद्धिमान व्यक्ति था, जिसने तद्युगीन सामाजिक परिस्थितियों का अवलोकन बडी ही सूक्ष्म दृष्टि से किया था। पुराणों की रचना करने वालों ने वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था को ही मान्यता प्रदान की तथा वेद के नियमों का सरलीकरण करते हुए, उस परम्परा को आगे बढाया है और उसकी रक्षा की है। जिसके परिणाम स्वरूप वर्तमान समय में भी वर्णव्यवस्था का वही स्वरूप तथा सामाजिक संस्कार आज भी दिखाई देते हैं। अनेक सभ्यताओं के प्रभाव के कारण सामाजिक परिस्थितियों में थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है किन्तु यह परिवर्तन बहुत अधिक नहीं कहा जा सकता।

सबसे पहले यह सिद्धान्त उभरकर सामने आता है कि सृष्टि का सृजन किस प्रकार से हुआ? भारतीय धर्मशास्त्र और सामाजिक विश्वास के अनुसार पहले परमपिता परमात्मा ने सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र, और तारों का निर्माण किया उसके पश्चात पंचतत्व पैदा किए, तत्पश्चात द्रव्य, कर्म और काल के अनुसार जीवों

की उत्पत्ति की ये जीव रजोगुणी, तमोगुणी और सतोगुणी हुए। इसके पश्चात ये जीव जल, थल, और आकाश में उड़ने वाले पैदा हुए। इन जीवों में शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण होते हैं। इसके पश्चात स्थूल शरीर और स्थूल शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हुईं, ये सब पंचमहाभूतों से उत्पन्न हुए। जीवों के बारे में यदि विचार किया जाय तो यह पृथ्वी अण्डाकार थी और जल में डूबी हुई थी, इससे जो विराट पुरूष पैदा हुआ और उसने जो प्राणी बनाये वे वंश और कर्म के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में उत्पन्न हुए।

पुरूषस्य मुखं बृहमं क्षत्रमेतस्य बाहतः।

ऊर्धोवैश्यों भागवतः पदाभ्यां शूद्रोअभ्यजायत ।। [72]

यह विभाजन यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया जाये तो यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्राह्मण की पहचान उसके मुख अथवा उसकी विद्वता से होती है क्षत्रिये की पहचान उसकीभुजाओं अथवा शौर्य से होती है वैश्य की पहचान उसके कृषि कार्य और उद्योगों से होती है क्योंकि वह समाज के ऊपर के दो वर्गों का बोझ बर्दाश्त करता है तथा शूद्र की पहचान उसके सेवा कार्यों से होती है।

जिस सृष्टि का निर्माण ब्रह्मा ने किया उसमें अज्ञान की पाँच वृत्तियाँ तम अथवा अविद्या, मोह अथवा अष्मिता, महामोह (राग), तामिस्त्र (द्वैष), अन्धतामिस्त्र (अभिनिवेश, अन्धानुकरण) कीरचना की । इसका तात्पर्य यह है कि विश्व में जब मानवों का उदय हुआ तो वे मूर्ख थे, उन्हें किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था वे पशुवत थे। इसके पश्चात उन्हें हदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी के माध्यम से अनुभव प्राप्त हुये। ज्ञान के पश्चात धर्म का उदय हुआ, धर्म से परमात्मा का आभास हुआ तथा कर्म के माध्यम से अच्छे और बुरे लोगों की पहचान हुई । इसी समय बुद्धिमान व्यक्तियों ने अनेक प्रकार के धर्मग्रन्थों की रचना की विद्यादान, तप और सत्य धर्म के अंग स्वीकार किये गये। चार प्रकार की वृत्तियाँ उत्पन्न हुई पंच कर्मो का उदय हुआ, भाषा का उदय हुआ, संगीत के सात स्वरों का उदय हुआ, सामाजिक

व्यवस्था का निर्माण हुआ तथा स्त्री और पुरूषों के मध्य में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुये दोनों में मैथुन क्रिया से सृष्टि का विकास हुआ। समाज की व्यवस्था के लिये राजाओं की उत्पत्ति हुई । स्वयंभू मनु विश्व के प्रथम राजा थे जिनकी पत्नी का नाम शतरूपा था तथ इनकी पाँच संतोने थी जिनमें तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ थी। इस प्रकार से हम देखते है कि सृष्टि की उत्पत्ति और सृष्टि का विस्तार, वर्णव्यवस्था, संस्कार व्यवस्था का उदय धीरे धीरे ज्ञान की वृद्धि के साथ हुआ। इस सामाजिक व्यवस्था के विस्तार को इतिहास भी स्वीकार करता है इतिहासकार प्रारम्भिक मानव को पूर्वपाषाण युग, उत्तर पाषाण युग, आखेट युग, चारागाह युग और कृषि युग में विभाजित करके मानव विकास की परिकल्पना करते है। इसी सिद्धान्त की पुष्टि भागवत द्वारा भी होती है। इसका उल्लेख भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध के बारहवें अध्याय में विस्तार से है।

जिस प्रकार से मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार से यक्ष राक्षस आदि भी उत्पन्न हुये है, वास्तव में ये मनुष्य ही है। आपने अपने कर्म के अनुसार इनके नाम अलग अलग हो गये है। इसके पश्चात भूत और पिशाच की परिकल्पना हुई जिन्हें आँखों से नहीं देखा जाता, मृत्यु के उपरान्त जीव की यह गति होती है, किन्तु जो व्यक्ति तप, विद्या, योग, और समाधि पर विश्वास करते है उन्हें भूत, पिशाच, प्रेत आदि का भय नहीं होता । यह वर्णन भी भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के बाईसवें अध्यााय में उपलब्ध है अर्थात कहने का यह तात्पर्य है कि कालान्तर में अनेक प्रकार के अन्धविश्वास समाज में उत्पन्न हो गये थे समाज के विकास के साथ साथ ज्ञानवान पुरूषों ने नाना प्रकार के अन्वेषण किये तथा उन्होने पृथ्वी का दोहन प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले दूध की खोज हुई और गो–पालन प्रारम्भ हुआ, बाद में पृथ्वी के अनेक खनिज पदार्थो का दोहन प्रारम्भ हुआ, यहाँ के लोगों ने वीर्य ओज और शक्ति प्राप्त करने के लिये अनेक भोग पदार्थ बनाये। दानवों और राक्षसों ने पेय पदार्थ मदिरा का अविष्कार किया फिर अनेक वस्तुयें र्निमित हुई।

मिट्टी के पात्र बने, गन्धर्वों ने संगीत को जन्म दिया, रुधिरासव का प्रयोग माँसाहरी व्यक्ति करने लगे इसके पश्चात कृषि का आविष्कार हुआ। फलादि वृक्षों के माध्यम से अनेक वस्तुयें उपलब्ध की जाने लगीं जो शाकाहारी व्यक्ति थे वे अन्न का उत्पादन करके उसका प्रयोग भोजन के रूप में करते थे। इसके पश्चात राजाधिराज पृथु ने पृथ्वी को समतल किया फिर उस समतल भूमि में निवास स्थानोंका निर्माण कराया। इस प्रकार अनेक गाँव,कस्बे, नगर, दुर्ग, अहीरों की बस्ती, पशुओं के रहने के स्थान, छावनियाँ, खाने, किसानों के गाँव और पहाड़ों की तलहटी के गाँव बसाये।

'अथास्मिन् भगवान वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता।
निवासान् कल्पयाचक्रे तत्र तत्र यथार्हतः।।
ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च।
घोषान् व्रजान् सशिविरानाकरान् खेट खर्वटान्।। [73]

भारतवर्ष में वर्ण का विशेष महत्व है, सृष्टि के प्रारम्भ में उस समय केवल एक ही वर्ण था तथा वेदाध्ययन, तपस्या, शौच, दया अैर सत्य ही सब कुछ था। आगे चलकर वेदों की संख्या चार हुई तथा उसके पश्चात चार वर्ण उत्पन्न हुये, कालान्तर ब्राह्मण श्रेष्ठ क्षत्रिय उत्तम वैश्य मध्यम और शूद्र अधम माने गये। भागवत के अनुसार शूद्र उन लोगों को माना गया हैं जो ब्राह्मण, गऊ और देवताओं की निष्कपट भाव से सेवा करते है और जो भी मिल जाये उसमें सन्तुष्ट रहते हैं किन्तु इसमे एक ऐसा वर्ग भी है। जो अपवित्र है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, ईश्वर और परलोक की चिन्ता नही करता बात बात पर झगड़ता है तथा काम, क्रोध और तृष्णा के वश में रहता है इन्हे अन्त्यज कहा गया है। इसी प्रकार भागवत में समाज के व्यक्तियोंको आश्रम धर्म पालन करने की भी सलाह दी गयी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण समाज को वर्गों में बाँटकर सामाजिक संघर्ष को दूर करने की चेष्टा की गई है समाजिक कल्याण की दृष्टि से यह विभाजन बुद्धि क्षमता शारीरिक क्षमता, साधन क्षमाता और

कार्य क्षमता पर आधारित है।

(5) उपरोक्त परिस्थितियों का भागवत की रचना में प्रभाव–

साहित्यकार युगद्रष्टा होता है क्योंकि उसका जन्म भी समाज में होता है, समाज में ही उसका पालन पोषण होता है। समाज के मध्य रहकर वह शिक्षा ग्रहण करता है तथा जिन व्यक्तियों से उसका सम्पर्क होता है व जिनके साथ वह लोक व्यवहार स्थापित करता है उनका प्रभाव भी उसके ऊपर पड़ता है । वह अपने साहित्य में वही लिखता है जिसका उसने अपने जीवन में अनुभव किया है तथा जिन शास्त्रों, कलाओं और विज्ञानों का उसने अध्ययन किया है। उसका भी प्रभाव उसके साहित्य पर पडता है। उसके साहित्य में सुख दुःख की अनुभूति, करूणा, आनन्द, वेदना, और उन आदर्शों की अभिव्यक्ति होती है। जिनकी स्थापना वह समाज में करना चाहता है। इसलिये वह जिस साहित्य का सृजन करता है उस साहित्य में ऐसे सामाजिक परिद्रश्य उपस्थित करता है जिनका प्रभाव उसके मस्तिष्क में पडा है।

भागवत का रचनाकार कोई एक व्यक्ति नहीं है। यदि हम भागवत का रचनाकार कृष्ण द्वैपायन व्यास को स्वीकार करे तो वह रचनाकार महाभारत के पूर्व हुआ था तथा उसके सम्मुख कई विशेष घटनाओं ने जन्म नहीं लिया था। यदि भागवत पुराण की विषय सामग्री को ध्यान में रखा जाये तो इसकी विषय सामग्री में 1200 ई0 तक की ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। इसके वास्तविक रचनाकार का पता आज तक नहीं लग सका है। इस कृति को आज भी कृष्ण द्वैपायन व्यास की रचना माना जाता है। इस सन्दर्भ में एक बात और भी हो सकती है कि किसी विशेष समयावधि में इसका पुनर्लेखन और सम्पादन किया गया हो जिसके माध्यम से तद्रयुगीन धटनाओं को उसमें जोड़ दिया गया हो।

पौराणिक ग्रन्थों की रचना शैली और ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना शैली में व्यापक अन्तर प्रतीत होता है। पौराणिक शैली में काल और समय निर्धारण में विशेष

ध्यान नहीं दिया गया, इसमें देवताओं, ऋषि, मुनियों, तथा कुछ व्यक्तियों को सार्वकालिक मान लिया गया है। उन व्यक्तियो को सृष्टि की उत्पति से लेकर प्रत्येक युग में प्रस्तुत कर दिया गया है तथा कुछ राजाओं की काल अवधि लाखों और हजारों वर्ष निर्धारित कर दी गयी है। इससे पुराणोंकी ऐतिहासिकता सन्देह जनक हो गयी, पुराणों में कुछ घटनायें अतिशयोक्ति पूर्ण है। जिन्हे यथार्थ की पृष्ठ भूमि में किसी भी प्रकार से स्वीकार नहीं किया जा सकता। भारतीय इतिहास की लेखन विधि वैज्ञानिक शैली अपनाकर सन् 1560 के बाद विकसित हुई है। इस शैली को विकसित करने में अग्रेंज विद्वान मैक्समूलर, वेवर, बी0ए0 स्मिथ, डा0 ग्रियर्सन और कनिंघम का महान योगदान है। इतिहास की इस लेखन पद्धति को भारतीय विद्वानों और शोध कर्ताओं ने भी अपनाया है। इस शैली के माध्यम से एतिहासिक साक्ष्यों को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तथा इसमें तद्‌युगीन यथार्थ के अलावा कुछ और स्वीकार नहीं किया जाता है। इस शैली में अतिरंजना और अतिशयोक्ति को कोई स्थान नहीं है, इसलिए यह शैली वर्तमान परिवेश में अपनायी गयी। यदि पुराण भी वैज्ञानिक आधार को लेकर लिखे गये होते तथा उसमें कालक्रम, गणना आदि को सही ढंग से प्रस्तुत किया गया होता तो हमारे यहाँ उपलब्ध अठारह महापुराण और अठारह उपपुराण हमारे ऐतिहासिक धरोहर होते तथा हमें अलग से इतिहास लिखने की कोई आवश्यकता न होती किन्तु यह कार्य एक वर्ग विशेष के अधीन था। जो अध्ययन—अध्यापन, पुस्तक लेखन का कार्य करता था, वही यह कार्य करता रहा, उसने पुराण लेखन में प्राचीन परम्परा का ही अनुसरण किया तथा नवीन विधाओं के प्रति उसका कोई ध्यान ही नहीं गया।

हम पूरी तरह पुराणों पर अविश्वास भी नहीं कर सकते, भागवत पुराण में सृष्टि के क्रमिक विकास को जिस तरह प्रस्तुत किया गया है वह सृष्टि के विकास के सिद्धान्त से पूरी तरह मेल खाता है। अन्तर केवल यह है कि सृष्टि के विकास का वर्णन परिकल्पित ब्रह्म के माध्यम से हुआ है। इसमें भी यह बात स्वीकार की गयी

है कि परमाणु संयोजन की चुम्बकत्व पद्धति से सृष्टि का सृजन और परमाणु विघटन के सिद्धान्त से सृष्टि का विनाश होता है तथा सम्पूर्ण जीवजगत् के विकास के निम्न सिद्धान्त भागवत पुराण में स्वीकार किये गये हैं। इनमें बीजारोपण, अंकुरण, पल्वन, विकास, पूर्ण विकास, स्थिरता, ढ़लाव और पूर्ण विनाश शक्ति है। इससे यह सत्य उद्‌घाटित होता है कि जिस चीज का सृजन हुआ है उसका विनाश सुनिश्चित है। कालचक्र सदैव अपनी धुरी पर घूमता है, नवीन वस्तुएँ समय अवधि में पुरानी हो जाती हैं तथा उनका विनाश होता है और नष्ट हुई वस्तुओं के स्थान पर नव सृजित वस्तुएँ सदैव आती रहती हैं। सृष्टि का एक ही आधार सत्य है कि बीज नाशवान नहीं होता वह अंकुरण के साथ अपने स्वरूप में परिवर्तन करके फल में समा जाता है तथा फल अपना स्वरूप नष्ट करके बीज को नवांकुरण के लिए प्रेरित करता रहता है। सृष्टि का यह सिद्धान्त भागवत पुराण में कई स्थानों में देखने को मिलता है।

जिस युग में पुराणों का निर्माण हुआ उस समय समाज काफी विकसित हो गया था। भाषा और ज्ञान का उदय हो चुका था, अनेक धार्मिक स्तूपों का सृजन प्रारम्भ हो चुका था तथा उनमें पुराण भी थे। रचना कार के समय में, भारतीय समाज में वैष्णव धर्म, शैव धर्म, सूर्य उपासना शौर्य उपासना, शक्ति उपासना प्रारम्भ हो गयी थी। समस्त पुराणों ने इन्द्र, वरूण, परिजन्य, मरूत, अग्नि, सोम, अश्वनि, वृहस्पति, ब्रह्मा, देवसम मानव योनियाँ, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, नाग आदि देवरूप में उपस्थित थे।

भागवत काल में यज्ञों का भी बहुत महत्व था, अनेक पुराणों और भागवत में भी यंज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञशाला, यूप, पशु यज्ञीय पात्र, कुश, समिधा, आज्य, हविष, पुरोडाश, मन्त्र उच्चारण तथा यज्ञ पुरोहित का उल्लेख मिलता है। इस युग में अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय और अग्निष्टोम, दसपूर्णमास, अग्निहोत्र तथा नरमेध आदि यज्ञों का महत्व था। पौराणिक युग में तीर्थों का महत्व बढ़ा करीब–करीब

सभी पुराणों में विशिष्ट तीर्थ स्थानों का वर्णन है, इन तीर्थों में प्रयाग, वाराणसी, गया, मथुरा , कुरूक्षेत्र, पुष्कर तथा द्वारका का महत्वपूर्ण स्थान है। पुराणों में तीर्थ यात्रा के कर्तव्य तथा तीर्थयात्रा विधि का भी वर्णन मिलता है।

पुराणों में वर्ण और जातियों की उत्पत्ति और सामाजिक व्यवस्था का विस्तार से वर्णन है, इसके अतिरिक्त वर्ण व्यवस्था का दार्शनिक आधार, वर्ण का सामाजिक स्तर, जाति परिवर्तन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, के कर्तव्य, दास, चाण्डाल और वर्ण संकर जातियों का उल्लेख भी पुराणों में उपलब्ध होता है।

पुराणों में आश्रम व्यवस्था और संस्कार व्यवस्था को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है। पुराणों में यह बल दिया गया है कि व्यक्ति ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास का पालन नियमानुसार करे। पुराणों में संस्कारों के सन्दर्भ में यह बल दिया गया है कि वह सोलह संस्कारों का अनुपालन भी शास्त्रों के अनुसार करे। इन पुराणों में शिक्षा सम्बन्धी भी विविध प्रकार के निर्देश उपलब्ध होते हैं, इनमें विद्या आरम्भ का समय, शिक्षा केन्द्र, शिक्षा विधि, अवकाश, छात्रोचित कर्तव्य, आचार्य, अध ययन के विषय, स्त्री शिक्षा आदि का विस्तार से वर्णन है।

पुराणों में स्त्रियों के साथ उदारता का व्यवहार किया गया है, नारी प्रतिष्ठा को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। इनमें कन्या को पूज्य और दया का पात्र माना गया है, पैतृक सम्पत्ति में पुत्री के अधिकार सम्बन्धी नियम भी पुराणों में उपलब्ध होते हैं। इनमें स्त्री शिक्षा के स्वरूप का भी वर्णन मिलता है तथा भार्या और विधवा स्त्रियों के कर्तव्य भी पुराणों में सविस्तार वर्णित है। सती प्रथा और पर्दा प्रथा का भी वर्णन उपलब्ध होता है।

तद्युगीन वस्त्र व्यवस्था और अलंकरण व्यवस्था का उल्लेख पुराणों में है। इसके अतिरिक्त केश विन्यास, अलंकार और अनुलेपों का भी उल्लेख पुराणों में है। पुराणों में तद्युगीन भोजन व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है, तद्युगीन व्यक्ति विविध प्रकार के अनाज, भोज्य पदार्थ, मिष्ठान, सब्जियाँ, दूध–दही, घी, मान्साहार,

भोजन सम्बन्धी नियम तथा मदिरापान के सम्बन्ध में भी अनेक विवरण उपलब्ध होते हैं।

पुराणों में वास्तु विज्ञान का भी उल्लेख है, इसमें भूमि मापन, वस्तु विधाविधि, नगर मापन विधि, विविध प्रकार के भवन, गृह उद्यान, जलाशय आदि के वर्णन भी उपलब्ध होते हैं।

पुराणों में तद्‌युगीन व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति का भी उल्लेख है, इनमें कृषि, कृषि की विविध विधियाँ, विविध प्रकार के अनाज, वाणिज्य, विनिमय के साधन, विविध प्रकार के शिल्प तथा मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं। पुराणों में मनोरंजन के मुख्य रूप से द्यूतक्रीड़ा, मृगया, झूला, मल्ल युद्ध, जल कीड़ा, गोष्ठी और संसद अभिनय एवं नाटक उत्सव और संगीत के उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

भागवत पुराण से यह निष्कर्ष निकलता है कि भागवत पुराण का रचनाकार तद्‌युगीन समाज से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ भागवत पुराण की रचना करता है। वह विरक्ति की भावना के विपरीत, अनुराग की भावना के अनुसार प्रेम भावना को और प्रवृत्ति मार्ग को परमात्मा की शक्ति का उपयुक्त साधन मानता है। कृष्ण की विविध प्रेम लीलाओं तथा गोपिकाओं के उनके प्रति प्रेम को भागवत के दशम् स्कन्ध में बढ़ा– चढाकर प्रस्तुत किया गया है। ऐसा लगता है कि भागवत का लेखक ऐसे युग में उत्पन्न हुआ जब अलगाववाद फैल रहा था। नफरत और घृणा की भावनाएँ समाज को विघटित कर रही थी, ऐसे समय में आवश्यकता थी कि समाज में प्रेम भावनाएँ पैदा की जाएँ, अद्वैत और विशिष्टाद्वैतवाद के माध्यम से समाज के सम्पूर्ण वर्ग को एक विशिष्ट व्यक्ति के नेतृत्व में संघठित किया जाए जिससे समाज की विघटन कारी शक्तियाँ परास्त हों तथा विरक्त भाव रखने वाले व्यक्ति तिरस्कार का अनुभव करें। इस युग में भगवान कृष्ण के नेतृत्व में धार्मिक आन्दोलन खड़ा किया गया, जिसमें नवधा भक्ति के माध्यम से धार्मिक जनता को आकर्षित किया गया। कालान्तर में भागवत की विषय सामग्री से प्रभावित होकर

वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण की भक्ति भावना को आगे बढ़ाया। निश्चित ही भागवत पुराण ने भारतीय समाज में एक नवीन जागरण उत्पन्न किया, जिससे धर्म और संस्कृति संरक्षित हुई, इससे धर्म ग्रन्थ का महत्व बढ़ा, लोग इसके पठन–पाठन तथा श्रवण को धार्मिक कार्य मानने लगे।

सन्दर्भ गन्थ

1. चैतन्य, कृष्णा 'न्यू हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर', वाराणसी, 1965, पृष्ठ 239;
2. पद्म पुराण, पूना, 1895 ;
3. पाणिष्कर, बी0एल0एस, भागवत पुराण, बम्बई, 1929 ;
4. विष्णु पुराण, द्वितीय खण्ड;
5. अग्नि पुराण, पूना, 1900, अध्याय 319 ;
6. नारदीय पुराण, 2–24–17 ;
7. उपाध्याय, बल्देव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1983, पृष्ठ 83 ;
8. (1) देवी भागवत पुराण, 1–3–2 ;
   (2) पद्म पुराण ;
9. भागवत पुराण, 12–3–14 ;
10. वही, 12–13–4 ;
11. वही, 12–13–5 ;
12. वही, 12–13–6 ;
13. वही, 12–13–7 ;
14. वही, 12–13–8 ;
15. वही, 12–13–9 ;
16. वही, 12–13–16 ;
17. वही, 12–13–18 ;
18. पद्म पुराण;
19. भागवत पुराण, 12–7–15 ;
20. वही, 10–29–14 ;
21. वही, 10–27–11 ;
22. वही, 10–2–37 ;

23. वही, 12—7—18 ;

24. वही, 12—7—19 ;

25. वही, 12—7—20 ;

26. वही, 6—16—44 ;

27. वही, 2—10—6 ;

28. वही, 2—9—32 ;

29. वही, 1—2—11 ;

30. वही, 1—4—3; (उपाध्याय, बल्देव, पुराण विमर्श, पृष्ठ 147)

31. वही, 2—9—33 ;

32 वही, 11—14—20 ;

33. वही, 7—7—51,52;

34. दुबे, हरिनारायण, पुराण समीक्षा, संसकरण प्रथम, इलाहाबाद 1984, पृष्ठ 57;

35. पार्जीटर, डायनेस्ट्रीज ऑफ द कलि एज, पृष्ठ 77 से 83 तक;

36. जर्नल ऑफ रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन 1914, पृष्ठ 1027 व 1028 में;
उपाध्याय, बल्देव, पुराण विमर्श, पृष्ठ 582 ;
पुसाल्कर, ए0डी0, स्टडीज इन द एपिक्स एण्ड द पुराणाज, पृष्ठ 25 से 30 तक;

37. उपाध्याय, बल्देव, पुराण विमर्श, पृष्ठ 580 ;

38. कल्याण, संस्करण 1997, पृष्ठ 221—222;

39. भण्डारकर, आर0जी0, वैष्णविज्म ;

40. भागवत पुराण, 12—13—19 ;

41. राय, सिद्धेश्वरी नारायण, पौराणिक धर्म एवं समाज, संस्करण प्रथम, इलाहाबाद, 1968, पृष्ठ 27, 28;

42. ऋग्वेद, 3—5—49, 3—58—6, 10—130—6 ;

43. वही, 9—99—4 ;

44. अथर्ववेद, 11—7—27 ;

45. वही, 11—8—7 ;

46. गोपथ, ब्राह्मण 1—2—10 ;

47. शतपथ, ब्राह्मण, 13—4—3—12,13 ;

48. तैत्तरीय आरण्यक, 2—9 ;

49. वृहदारण्यक उपनिषद्, 2—4—11 ;

50. छान्दोग्य उपनिषद्, 7—1—2,4, 7—2—1 ;

51. गौतम धर्म सूत्र, 11—19 ;

52. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1—3 ;

53. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2—23—35 ;

54. पुराणोत्पत्ति प्रसंग, पृष्ठ 5 से 10 तक;

55. हाजरा, आर0 सी0, 'स्टडीज इन द पौराणिक रिकार्डस ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कॅस्टमस';

56. जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, 1906, पृष्ठ 41 ;

57. पाण्डेय, एस0एन0, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 101;

58. दुबे, हरिनारायण, पुरण समीक्षा, संस्करण प्रथम, इलाहाबाद, 1984, पृष्ठ 39 ;

59. अर्थशास्त्र, 5—6;

60. कादम्बरी, पूर्व विभाग;

61. जैमिनी सूत्र, 10—4—23 ;

62. ब्रह्मसूत्र भाष्य, 2—1—1, 1—3—30, 1—3—28 ;

63. याज्ञवल्क्य स्मृति, 3—170 ;

64. भागवत पुराण, 9—3—27 ;

65. वही, 21—1—39 ;

66. वही, 12—1—5 ;

67. वही, 12—1—10 ;

68. वही, 12—1—12 ;

69. वही, 12—1—15,16 ;

70. वही, 12—1—22 ;

71. वही, 12—1—30 ;

72. वही, 2—6—37 ;

73. वही, 4—18—30,31 ;

द्वितीय अध्याय

"वर्ण एवं जाति व्यवस्थाओं का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विवेचन"

1- भागवत पुराण में वर्णित वर्ण एवं जाति व्यवस्था का सैद्धान्तिक स्वरूप।

2- वर्ण एवं जाति व्यवस्था का व्यावहारिक स्वरूप।

3- प्रत्येक वर्ण का सामाजिक महत्व एवं प्रतिनिधित्व।

4- वर्ण एवं जाति व्यवस्था को प्रभावित करने वाले राजनीतिक कारण।

5- वर्ण एवं जाति व्यवस्था को प्रभावित करने वाले धार्मिक कारण।

6- धार्मिक भावना का शूद्रों पर प्रभाव और दबाव।

अध्याय—द्वितीय

" वर्ण एवं जाति व्यवस्थाओं का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विवेचन"

1— भागवत पुराण में वर्णित वर्ण एवं जाति व्यवस्था का सैद्धान्तिक स्वरूप :—

भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था अति प्राचीन है, यहाँ के व्यक्ति सदैव से परम्पराओं और मान्यताओं का अनुकरण करते हुए वर्ण व्यवस्था को परमात्मा की कृति मानते हैं। जबकि वर्ण व्यवस्था का निर्धारण सामाजिक व्यवस्था के उद्देश्य से किया गया, इस व्यवस्था की समालोचना कुछ विद्वान अच्छे अर्थों में करते हैं और कुछ इसकी निन्दा भी करते हैं। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान 'सिडनी लो' ने अपनी पुस्तक 'विजन ऑफ इण्डिया' में वर्ण व्यवस्था की बहुत तारीफ की है।[1] इसी प्रकार की प्रशंसा ऐब्बे डुबोय ने भी की है किन्तु 'मेन' ने अपने ग्रन्थ 'ऐंश्येण्ट लॉ' इस व्यवस्था की निन्दा की है।[2] इसी प्रकार शेरिंग ने भी अपने ग्रन्थ 'ट्राइब्स एण्ड कॅस्टम्स' में इसकी निन्दा की है।[3] किन्तु मेरी डिथ ने अपनी पुस्तक 'योरोप एण्ड एशिया' में इस व्यवस्था की बड़ी तारीफ की है।[4]

भारतवर्ष में यह व्यवस्था जन्म एवं व्यवसाय पर निर्धारित है। प्राचीन काल में इस प्रकार की व्यवस्थायें फारस और रोम में भी उपलब्ध थीं। इस व्यवस्था की निम्न विशेषताएँ है—

1— वंश परम्परा अर्थात एक जाति में सिद्धान्तः जन्म से ही स्थान प्राप्त हो जाता है।

2— जाति के भीतर ही विवाह करना एवं एक ही गोत्र में कुछ विशिष्ट सम्बन्धियों में विवाह न करना।

3— भोजन सम्बन्धी वर्जना

4— जाति के अनुसार जन्म से ही व्यवसाय का निर्धारण।

5— जाति श्रेणियाँ, कुछ तो उच्चतम और कुछ नीचतम।

6— जाति सभा या जातीय पंचायत के नियमों का अनुसरण।

भारतवर्ष में यह वर्ण व्यवस्था आज की नहीं है बल्कि वेद युगीन है, वेदों में वर्ण का अर्थ रंग या प्रकाश होता है। ऋग्वेद में वर्ण के सन्दर्भ में अनेक श्लोक उपलब्ध होते हैं।[5] ऋग्वेद के अतिरिक्त तैत्तरीय ब्राह्मण में भी दो वर्ण उपलब्ध होते हैं, इन्हें दैवीय वर्ण और असुर्य वर्ण कहते हैं, आसुर्यों को शूद्र की श्रेणी में रखा जाता है।[6]

यदि हम वेदों का विशेष अध्ययन करें तो हमें पुरूषसूक्त में ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य और शूद्र चार वर्णों का वर्णन उपलब्ध हो जाता है।[7] वेदों के अनुसार ब्राह्मण शब्द का प्रयोग किसी जातीय अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ। ऐतरेय ब्राह्मण में सिर्फ इतना आया है कि ब्राह्मणों का भोजन सोम है तथा क्षत्रियों का भोजन न्यग्रोध (वृक्ष के तन्तुओं का पानी) है। इससे यह मालुम पड़ता है कि उत्तर वैदिक काल में ब्रह्माण और क्षत्रिय दो वर्ण तो निश्चित ही थे किन्तु वैदिक युग के पश्चात क्षत्रिय जो जन्म से क्षत्रिय नहीं थे, वे जन्म से माने जाने लगे किन्तु जातीय व्यवस्था कठोर हाने के कारण एक ही परिवार के दो व्यक्ति ब्राह्मण और क्षत्रिय धर्म अपना सकते थे।[8] वैश्यों का उदाहरण भी वेदों में मिलता है, ये लोग कृषि और व्यवसाय करते थे। आर्यों ने जिन जातियों को जीत लिया था और उन्हें अपना दास बना लिया था, वे आगे चलकर शूद्र कहलाने लगे थे तथा वे अपने स्वामियों की सेवा करने लगे थे।

धार्मिक ग्रन्थों में ब्राह्मणों को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है तथ उन्हें पवित्र ज्ञान अर्जन करने के कारण और उसे पढ़ने के कारण मानव देवता के रूप में स्वीकार किया गया है, इसीलिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। ब्राह्मणों के चार गुण बतलाए गये हैं—

1— ब्राह्मण (ब्राह्मण रूप में पवित्र माता—पिता वाला गुण अर्थात ब्राह्मण रूप में पैतृकता)

2— प्रतिरूपचर्या (पवित्राचरण)

3– यश (महत्ता)

4– लोकपंक्ति (लोगों को पढ़ाना या पूर्ण बनाना)

इसलिए ब्राह्मणों को चार विशेष अधिकार प्रदान किए गये व इन विशेष अधिकारों के कारण समस्त समाज को यह निर्देश दिया गया है कि वे ब्राह्मणों का आदर करें। दूसरा निर्देश यह है कि कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण को कष्ट न दें, कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण को अपना गुलाम न बनाये और ब्राह्मणों को आवश्यकतानुसार दान दे।

वेदों में क्षत्रियों के बारे में समुचित उपदेश उपलब्ध होते हैं, इनके लिए राजन् शब्द का उपयोग हुआ है। इनमें यदु, तुर्वशु, द्रुहा, अनुपुरू, भृगु, तृत्सु वंश के लोग ही राजा हो सकते थे। राजाओं से यह आशा की गयी कि वे ब्राह्मणों की रक्षा करें तथा किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के पहले ब्राह्मणों से सलाह ले, ब्राह्मण बिना राजा के रह सकता था किन्तु राजा के यहाँ पुरोहित का होना अनिवार्य था। कभी–कभी राजा लोग घमण्ड से प्रेरित होकर पुरोहित का अपमान भी करते थे, वे अत्याचारी थे और ब्राह्मणों के प्रति उनके हृदय में कोई आदर भाव नहीं था।[९] सामान्यतः क्षत्रिय, ब्राह्मणों का सम्मान करते थे।

तैत्तरीय संहिता में वैश्यों के संदर्भ में वर्णन उपलब्ध होता है, इस युग में वैश्य पशुओं की कामना के लिए यज्ञ करते थे। इस ग्रन्थ के कथनानुसार जो देवता संग्राम में पराजित हो गये, वे या तो वैश्य बन गये अथवा फिर असुर बन गये। कहते है कि समाज में वैश्यों की संख्या अन्य व्यक्तियों से अधिक है। इसी ग्रन्थ में आया है कि ऋक मन्त्रों से ही वैश्यों का उदय हुआ, यर्जुवेद से क्षत्रियों का और ब्राह्मणों का उदय सामवेद से हुआ। इससे जानकारी मिलती है कि वैश्य पशुपालन करते थे, कृषि करते थे तथा ये ब्राह्मणों और क्षत्रियों से दूर रहते थे और उनकी आज्ञा का अनुसरण करते थे। जाति व्यवस्था का इतना अधिक प्रचार–प्रसार हुआ कि देवताओं का विभाजन भी वर्णों के अनुसार हो गया। अग्नि और वृहस्पति ब्राह्मण थे,

इन्द्र, वरूण, यम क्षत्रिय थे, वसु–रूद्र विश्वेदेव एंव मरूत ये वैश्य देव थे तथा पूषा शूद्र था। इसी प्रकार ऋतुओं का भी विभाजन था ब्राह्मण बसन्त ऋतु, क्षत्रिय ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु को वैश्य कहा गया है। उत्तर वैदिक काल और उसके पश्चात इस वर्ण व्यवस्था में अनेक उपजातियाँ उत्पन्न हो गयी थी। इनमें नाई,[10] तष्टा अर्थात बढई,[11] भिषक अर्थात वैद्य,[12] कर्मार (लोहार)[13] एवं सूत आदि जातियों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त चमार, कुम्भकार, निषाद, धनुषनिर्माता, शिकारी, रेभ, भीमल, कोलाल, रज्जुसर्ग आदि जातियों का उल्लेख मिलता है। किरात आदि अनार्य आदिवासियों का उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वर्ण अथवा जाति व्यवस्था का सिद्धान्त भारतीय सभ्यता के विकास के साथ उत्पन्न हुआ तथा इसका मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण समाज को विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर्मानुसार वर्ग में विभाजित करना था।

वैदिक ग्रन्थों के अतिरिक्त पुराणों में भी वर्णव्यवस्था का उल्लेख मिलता है, विष्णु पुराण में वर्णों की उत्पत्ति के संन्दर्भ में यह उल्लेख मिलता है। इस पुराण के अनुसार ब्राह्मण विष्णु के मुख से, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य जंघा से व शूद्रों की उत्पत्ति चरणों से हुई।

'त्वन्मुखाद् ब्राह्मणास्त्वत्तो बाहोः क्षत्रमजायत।

वैश्यास्तवोरूजाः शूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्रगताः।।'[14]

इसी प्रकार का वर्णन वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण तथा मत्स्य पुराण में उपलब्ध होता है, वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णों को उत्पन्न करने वाला ब्रह्म तथा मत्स्य पुराण में वर्णों को उत्पन्न करने वाला वामदेव है।

'वक्त्राघस्य ब्राह्मणाः संप्रसूता यद्धक्षस्तः क्षत्रिया पूर्वभागे।

वैश्याश्चोरोर्यस्य पदभ्यां च शूद्राः सर्ववर्णाः गात्रतः संप्रसूता।'[15]

'वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान।

राजन्यान सृजद्बाहोर्बिट छूद्रानूरूपादयोः।।'[16]

वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त की प्रशंसा सर्वत्र की गयी है, किसी भी पुराण में इस व्यवस्था की निन्दा नहीं की गई। पुराण रचना कारों का यह मानना है कि चर्तुवर्ण विभाजन सामाजिक व्यवस्था का विधान है, यदि इस व्यवस्था में बिगाड़ आ जाता है तो अराजकता उत्पन्न होती है। इसलिए आवश्यक है कि सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखा जाये इसका उल्लेख विष्णु पुराण में उपलब्ध होता है।

'मर्यादां संस्थापक मास.................................... वर्णानामाश्रमणां च ' ।[17]

प्रत्येक वर्ण व्यवस्था के लोगों को यह निर्देश दिया गया है कि व्यक्ति अपने—अपने वर्ण के अनुसार धर्म का पालन करे, इस वर्ण व्यवस्था के अनुसरण के अनुसरण से ही पापों से बचा जा सकता है।

'प्रच्छन्न पापा ये जेतुमशक्या मनुजा भुवि।'[18]

धर्मसंस्थापनार्थाय..वर्णानां प्रविभगश्च।'[19]

वर्ण व्यवस्था का दार्शनिक आधार भी स्वीकार किया गया है। पुराणों में यह वर्णन उपलब्ध होता है कि व्यक्ति अपने पूर्वजन्मों के कर्मों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में उत्पन्न होते हैं।

'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा।

भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः।।[20]

पुराणों में वर्णित वर्ण व्यवस्था में भेद रखा गया ताकि उनकी पहचान आसानी से की जा सके तथा इनका निर्धारण कर्म के अनुसार है।

'द्विजाति संश्रितं कर्म तादर्थ्य तेन पोषणम् ।[21]

वर्णव्यवस्था के सिद्धान्त में यह भी मान्यता है कि समाज का प्रत्येक वर्ण अपने—अपने युगों में महत्वपूर्ण स्थान रखता रहा है।

'ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं त्रेता तुक्षत्रियस्य स्मृतम्।

वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम्।।[22]

वर्ण व्यवस्था के अनुसार मृत्यु के उपरान्त उन्हें अलग—अलग लोकों का

अधिकारी माना गया है। पुराणों में यह भी वर्णन मिलता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के नाम भी अलग–अलग ढंग से रखे जाते हैं। ब्राह्मणों के नाम के बाद शर्मा, क्षत्रिय के नाम के बाद वर्मा, वैश्यों के नाम के बाद गुप्त तथा शूद्रों के बाद दास लगाने का विधान था।

'शर्मेति ब्राह्मणस्ययोक्तं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम्।

गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः।।[23]

वर्णव्यवस्था में प्रत्येक वर्ण के अलग–अलग कर्तव्य निश्चित किये गये हैं तथा ब्राह्मणों को क्षत्रिय से, क्षत्रियों को वैश्य से, वैश्यों को शूद्र से श्रेष्ठ माना गयाहै।

'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।

इज्यायुधवाणिज्याद्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः।।'[24]

पुराणों में अनेक ऐसे उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जिनमें जाति परिवर्तनों को स्वीकार किया गया है। अनेक ब्राह्मणों ने क्षत्रिय धर्म स्वीकारा और अनेक क्षत्रिय ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए।

'मुद्गलाच्च मौद्रगल्याः क्षात्रोपेता द्विजातयो वभूव।[25]

श्रूयंते हि तपः सिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयो नृपाः।[26]

अनेक उदाहरण पुराणों में ऐसे भी उपलब्ध हुए हैं कि शूद्र अपने तप के कारण ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए हैं और ब्राह्मण अपने कुकर्म के कारण शूद्र बन गये।

'विधूय मातृजं कायं ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्विभः।[27]

पृषधस्तु भनुपुत्रो गुरूगोवधान्छूद्रत्वमगमत्।[28]

पृषध्रो हिंसा भित्वा तु गुरोर्गा निशि तत्क्षये।

शापाच्छूद्रत्व मापन्नश्च्यवनस्यमहात्मनः।।[29]

पृषध्रो गोवधाच्छुद्रो गुरूशापादजायत।[30]

वर्ण परिवर्तन अथवा जाति परिवर्तन पथभ्रष्ट अथवा दूसरी जाति के कर्म अपनाने के कारण होता था, कभी–कभी वैवाहिक सम्बन्धों के कारण भी ये जाति

परिवर्तन होता था।

भागवत महापुराण में भी वर्णव्यवस्था का वर्णन सविस्तार उपलब्ध होता है तथा यह व्यवस्था भी वेदों व अन्य पुराणों के अनुसार ही है। भागवत पुराण में वर्ण विभाजन में कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। इसमें कहा गया है कि जो ब्राह्मण जन्म और कर्म से शुद्ध द्विजों के लिये यज्ञ, अध्ययन, दान और ब्रह्मचर्य का अनुपालन करते है वे ही ब्राह्मण हैं अर्थात अध्ययन करना, अध्यापन करना, दान लेना, दान देना, यज्ञ करना ये ब्राहम्ण के छः कर्म है, इन्ही से ब्राह्मण की पहचान होती है।

'संस्कारा यदविच्छन्नाः स द्विजोऽजो जगाद्रयम्।

इज्याध्ययन दानानि विहितानि द्विजन्मनाम्।

जन्मकर्मावदानां कियाश्चाश्रमचोदिताः।'[31]

विप्रस्याध्यय नादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः।'[32]

क्षत्रियों के कर्तव्यों का निर्धारण करते हुये भागवत पुराण में क्षत्रियों का यह निर्देश दिया गया है कि वे दान न ले तथा जीवन भर प्रजा की रक्षा करें तथा ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों से कर तथा जुर्बाना वसूल करें।

'विप्रस्याध्यनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः ।

राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वा करादिभिः ।।'[33]

वैश्यो के सन्दर्भ में भागवत पुराण में यह निर्देश दिया गया है कि वैश्य ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन करते हुये, गो रक्षा कृषि और व्यापार के माध्यम से अपनी जीविका चलायें तथा शूद्र का धर्म है कि वह द्विजातियों की सेवा करें और उससे अपनी जीविका निर्वाह करे।

'वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्म कुलानुगः।

शूद्रस्यद्विजशुश्रूषा स्वामिनो भवेत् ।'[34]

ब्राह्मणों को यह निर्देश दिया गया है कि ब्राह्मण अपनी जीविका यज्ञ, अध्ययन

आदि कराकर धन प्राप्त करके अथवा बिना माँगे जो मिल जाये उससे भिक्षा वृत्ति से अथवा किसानों के खेत में पड़े अन्न कणों को बीनकर अपना जीवन यापन कर सकता है। यदि कभी आपत्ति पड़ जाये तो वह किसी भी वृत्ति का सहारा ले सकताहै ये वृत्तियाँ ऋतु (बीनकर अन्न खाना), अमृत (बिना माँगे जो मिल जाये), मृत (माँगकर खाना), सत्यानृत (वाणिज्य वृत्ति) है।

'ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा।

सत्यानृताभ्यां जीवेत न वृत्या कथंचन।।'[35]

भागवत पुराण में ब्राह्मणों को यह निर्देश दिया गया है कि वे सम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, भगवत परायणता और सत्य को धारण करें।

'शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम्।

ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्राह्मलक्षणम्।।'[36]

क्षत्रियों के सन्दर्भ में यह निर्देश उपलब्ध होते है कि वे युद्ध में उत्साह दिखलाये, वीरता के कार्य करें, धैर्य से काम ले, अपने तेज का प्रदर्शन करें, त्याग करें इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करें, क्षमा की भावना रखे ब्राहम्णों का आदर करें, ये क्षत्रियों के कर्तव्य है।

'शौर्य वीर्य धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा।

ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ।।'[37]

वैश्यों के कर्तव्यों को दर्शाते हुये भागवत पुराण में यह विवरण उपलब्ध होता है कि देवता, गुरू, भगवान के प्रति, अर्थ, धर्म और काम इन तीन पुरूषार्थों की रक्षा करना, आस्तिकता, उद्योगशीलता, व्यवहारिक निपुणता ये वैश्यों के कर्तव्यों है।

देवगुर्णच्युतें भक्तिस्त्रिवर्ग परिपोषणम्।

आस्तिक्यमुघमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम्।।'[38]

शूद्रों के कर्तव्य को निर्देशित करते हुये भागवत महापुराण में ये निर्देश दिया

गया है कि वे उच्च वर्ग के सामने विनम्र रहे अपना हृदय पवित्र रखें स्वामी की सेवा निष्कपट भाव से करें, ऐसे यज्ञ करें जिनमें वैदिक मन्त्रों का उच्चारण न होता हो, चोरी न करें, सत्य बोले, गऊ और ब्राह्मणों की रक्षा करें तथा वे शूद्रों की रक्षा करें।

'शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया।

अमन्तयज्ञों हस्त्येयं सत्यं गोविप्ररक्षणम्।'[39]

इस प्रकार हम देखते है कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति अन्य पुराणों के अनुसार ही भागवत पुराण मे भी स्वीकार की गई है तथा वर्णो का निर्धारण कर्म के अनुसार है। इसका मुख्य उद्देश्य है कि सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाना, इसीलिये वर्ण व्यवस्था की परिकल्पना सृष्टि विकास कम से जोडी गई और यह माना गया कि वर्ण व्यवस्था भी परमात्मा कृत है।

'पुरूषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः।

ऊर्धो वैश्यो भागवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत्।।'[40]

क्योकि यह एक स्वाभाविक सिद्धान्त है कि जब किसी सिद्धान्त के सृजेता का नाम उपलब्ध नही होता तो उस सिद्धान्त को परमात्मा कृत मान लिया जाता है क्योंकि यह सृष्टि कब और कैसे उत्पन्न हुई इसका विकासक्रम कितना पुराना है यह कोई नहीं जानता तथा यह भी सार्वभौमिक सत्य है कि मनुष्य रूप में उत्पन्न प्राणी अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः नही कर सकता। इसके लिये उसे अपने ही जैसे अन्य मनुष्यों का सहारा लेना पडता है, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पृथक पृथक मनुष्यों को पृथक–2 दायित्व का भार सौंपा गया, जो सम्पूर्ण समाज के लिये विशिष्ट साधन उपलब्ध कराते है। इन कार्यो को चार भागों में विभक्त किया प्रथम भाग ज्ञान और शिक्षा, द्वितीय भाग समाज की रक्षा , तृतीय भाग पशुपालन, कृषि उद्योग तथा चतुर्थ भाग समाज की सेवा हैं इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुये। भारतीय समाज में चार वर्णो की स्थापना की गयी तथा प्रत्येक वर्ण को अलग अलग कार्य सौपें गये। भारतीय समाज को ध्यान में रखते हुये वर्णो

का औचित्य सही है तथा इनका निर्धारण निम्न सिद्धान्तों के अनुसार हुआ है—

परम्परागत सिद्धान्त—

समाजशास्त्रियों के मतानुसार वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार हुई, इस सिद्धान्त के सन्दर्भ में ऋग्वेद तथा पुराणों के उदाहरण दिये जा सकते है। शास्त्रों के मतानुसार प्रभु के मुख से ब्राह्मण बाहु से क्षत्रिय जंघा से वैश्य और पदों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। तथा तदानुसार हर वर्ण को अलग अलग कार्य विभाजित किये गये है। ज्ञान देने का कार्य ब्राहम्णों को सौंपा गया, समाज की रक्षा का कार्य क्षत्रियों को सौंपा गया तथा उद्योग और कृषि का कार्य वैश्य को और सेवा कार्य शूद्र को सौंपा गया। यदि सम्पूर्ण शरीर की संरचना का विश्लेषण किया जाये तो मुख से ही सम्पूर्ण शरीर संचालित होता है। ज्ञान के भी यही लक्षण हैं इसलिये इसे ब्राह्मण माना जा सकता है। शरीर का द्वितीय महत्वपूर्ण अंग वह है जिससे व्यक्ति कर्म करता है और कर्म से ही शरीर की रक्षा करता है इसलिये क्षत्रिय है। उदर और जंघायें सम्पूर्ण शरीर को शक्ति प्रदान करती है और उसका पालन पोषण करती है इसलिये उन्हे वैश्य का दर्जा दिया जाता है। सम्पूर्णशरीर का भार पैरों पर होता है और पैर ही व्यक्ति के शरीर को कहीं भी ले जा सकते है। इसलिये शूद्रों को पैरों की कोटि में रखा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह सम्पर्ण समाज एक शरीर है जिसमें ज्ञान का आदान प्रादान बुद्धिजीवियों को रक्षा का भार, योद्धाओं को साधन आपूर्ति का भार व्यवसायियों को और समाज का अन्य भार सेवकों को सौंपा गया है। इस विधि से समाज रूपी शरीर परम्परा का अनुसरण करता हुआ अपना अस्तित्व बनाये हुये है।

रंग का सिद्धान्त—

वर्ण व्यवस्था का दूसरा सिद्धान्त रंग का सिंद्धान्त है सुप्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत में भृगु ऋषि ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। उनके मतानुसार पहले ब्रह्म ने ब्राह्मणों की सृष्टि की उसके पश्चात अलग अलग रंगो वाले तीन वर्णो की

उत्पति की। उनके अनुसार ब्राह्मणों का रंग सफेद, क्षत्रियों का रंग लाल, वैश्यों का पीला और शूद्रों का रंग काला निर्धारित किया गया किन्तु भृगु के सिद्धान्त पर विश्वास नही किया जा सकता। यदि रंग के आधार पर इस सिद्धान्त को न स्वीकार किया जाये गुणों के आधार पर किया जाये तो यह विश्लेषण सही सिद्ध हो जाता है। ब्राह्मण सात्विकी गुण धारण करते है। इसलिये उनके वर्ण को श्वेत माना गया है। क्षत्रिय लोग युद्ध आदि करके खून से खेलते रहते हैं इसलिये उनके रंग को लाल स्वीकार किया जा सकता है। वैश्य लोग भोग विलास की वस्तुयें उत्पन्न करते हैं इसलिये उनके रंग को पीला स्वीकार किया जा सकता है। जो लोग अपना धर्म छोड़कर असत्य का सहारा लेते है, कपट रखते हैं, अपराधों को जन्म देते है उनके रग को काला मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर स्वीकार किया जा सकता है।

कर्म तथा धर्म का सिद्धान्त–

वर्ण व्यवस्था को समझने के लिये कर्म का भी सिद्धान्त ग्रहण किया जा सकता है क्योकि कर्म ही वर्ण व्यवस्था का अभिन्न अंग है। वैदिक युग में मनुष्य की चार आधारभूत आवश्यकतायें थी–

(1) पठन–पाठन धार्मिक तथा बौद्धिक कार्यों की पूर्ति।

(2) राज्य व्यवस्था का संचालन तथा समाज की रक्षा।

(3) आर्थिक क्रियाओं की पूर्ति।

(4) सेवा।

किसी भी समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिये ये चार वयवस्थायें उसी युग में नहीं सभी युगों में आवश्यक थी।इसलिये समाज की सेवा और उसकी व्यवस्था को बनाये रखने के लिये सम्पूर्ण भारत में वर्ण व्यवस्था को स्वीकार किया गया तथा हर वर्ण के अलग अलग कर्तव्य निर्धारित किये गये। इस सिद्धान्त का दूसरा पहलू यह भी था कि कोई भी व्यक्ति कर्तव्य के माध्यम से ही अपने जीवन की दिशा निर्धारित करता है। जब कोई व्यक्ति किसी परिवार में जन्म

लेता है। तो उसे अपने कर्तव्यों का पालन भी तदानुसार करना पडता है। उन्ही कर्तव्यों से ही उसके जीवन का विकास होता है। जैसे जैसे व्यक्ति की आवश्यकताओं में वृद्धि हुई वर्णों का जाति में परिगणन होने लगा और जातियां, उपजातियों में परिणित हो गयी। कभी कभी भाग्य के वशीभूत होकर व्यक्ति वर्ण धर्म का परित्याग करके दूसरा कार्य करने के लिये मजबूर होता है। व्यक्ति दूसरा कार्य करने के लिये यह कहकर स्वीकार कर लेता है कि वह ऐसा पुर्नजन्म के कर्मफल के अनुसार कर रहा है। इसलिये वर्णव्यवस्था को कर्म के अतिरिक्त भाग्य और पूर्वजन्म के संस्कार भी प्रभावित करते है।

गुणका सिद्धान्त–

बहुत से व्यक्तियों का यह मानना है कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति गुणां के सिद्धान्त के आधार पर हुई, कौन व्यक्ति किस वर्ण का सदस्य है इसका निर्धारण गुणों के आधार पर किया जाता है। जब जल देवता ने युधिष्ठिर से यह प्रश्न पूछाँ कि ब्राह्मण कौन है ? यूधिष्ठिर ने उत्तर दिया जो सत्यवादी है, दानी है, दयालू है, क्षमाशील है, चरित्रवान है, जो दूसरों के प्रति सहानुभूति रखता है तपस्वी है वही ब्राह्मण है। जल देवता ने प्रश्न किया कि यदि ये गुण किसी शूद्र में आ जाये तब उसनेयह उत्तर दिया कि वह शूद्र नहीं ब्राह्मण है। यदि ये गुण किसी ब्राह्मण में नही है तो वह शूद्र है। इससे सिद्ध होता है कि गुण और कर्म के अनुसार वर्ण निर्धारित होते है। स्मृति ग्रन्थों में सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण स्वीकार किये गये है। ये सारे गुण हमारे शरीर में उपलब्ध हैं जिस व्यक्ति में सतोगुण है वह ब्राह्मण है जिसमें रजोगुण है वह क्षत्रिय है जिसमें तमों ओर रजोगुण दोनो है वह वैश्य और जिसमें तमो गुण है वह शूद्र है इसलिये वर्णों का निर्धारण व्यक्ति के स्वाभाविक गुणों के अनुसार होता है।

जन्म का सिद्धान्त–

अनेक विद्वान यह बात स्वीकार करते है कि व्यक्ति जिस परिवार में जन्म

लेता है वह उसी परिवार के वर्ण का माना जाता है। श्री बी0 के0 चटर्जी इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करते है कि द्रोणाचार्य का व्यवसाय युद्ध करना था, इसलिये उन्हे कर्म के अनुसार क्षत्रिय स्वीकार किया जाना चाहिये किन्तु उनका जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ इसीलिये वे ब्राह्मण कहलाये। इसके विपरीत युधिष्ठिर सतोगुणी थे किन्तु वे क्षत्रिय के क्षत्रिय ही रहे ब्राह्मण नही कहलाये इसलिये जन्म का सिद्धान्त वर्ण व्यवस्था में तर्क के अनुसार सही प्रतीत होता है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र उसके बाद वह कर्मों से शुद्ध होकर वह विविध प्रकार के वर्ण धारण करता है। जन्म के सिद्धान्त को न स्वीकारते हुये अनेक विद्वान गुण अैर कम्र के अनुसार वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करते है। उनके मतानुसार वाल्मीक एक ड़कैत थे जब उन्होंने अपने कर्म में सुधार किया तो वे साधु और ब्राह्मण बन गये । स्पष्ट है कि व्यक्ति अपने कर्म के अनुसार वर्ण को परिवर्तित भी कर सकता था।

भागवत पुराण में वर्णित वर्ण व्यवस्था वंश के साथ साथ कर्म पर आधारित है तथा इस महान ग्रन्थ में प्रत्येक वर्ण के लिये निश्चित कर्मों का निर्धारण किया गया हैं।

2—वर्ण एवं जाति व्यवस्था का व्यावहारिक स्वरूप—

वर्ण व्यवस्था का व्यावहारिक स्वरूप सैद्धान्तिक स्वरूप से पूरी तरह भिन्न प्रतीत होता है। विज्ञान पर विश्वास करने वाला कोई भी व्यक्ति इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर सकता कि परमेश्वर ने वर्णों को स्वतः जन्म दिया होगा तथा वह ब्रह्म कौन होगा जिसके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र पैदा हुआ होगा।[41]

स्पष्ट है कि जिस प्रकार परमात्मा तथा उसकी उत्पत्ति अपरिभाषित है, उसी प्रकार जीव की उत्पति के सन्दर्भ में कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते । जितने भी साक्ष्य या सिद्धान्त उपलब्ध होते है वह सब के सब अनुमान पर आधारित है। आज तक कोई भी ग्रन्थकार यह नहीं बता पाया कि मानव बीज पृथ्वी में कहाँ से

आया और कैसे आया जिस प्रकार से जीव जगत की उत्पत्ति रहस्यमय है, परमात्मा की उत्पत्ति रहस्यमय है, उसी प्रकार से समाज की भी उत्पत्ति अत्यन्त रहस्यमय है। इसलिये जब किसी की उत्पत्ति का यथार्थ उपलब्ध नहीं होता तो उसे परमात्मा कृत मान लिया जाता है।

समाज का विकास अत्यन्त मन्थर गति से हुआ है, जब व्यक्ति अनुभूतियों को प्रकट करने के लिये भाषा का अनुसरण करने लगा और जीवन को व्यतीत करने के लिये कुछ वस्तुओं की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उसमें वस्तु की आवश्यकता के अनुसार समाज के विकास को ध्यान में रखते हुये चार प्रकार की आवश्यकताओं का अनुभव किया। उसमें प्रथम आवश्यकता ज्ञान अैर बुद्धि के अनुभव की उत्पन्न हुई क्योंकि वह यह जानता था कि बिना ज्ञान और बुद्धि के विकास के समाज प्रगति नहीं कर सकता, इसलिये उसने समाज के विलक्षण व्यक्तियों की खोज की जो बुद्धि और चिन्तन शक्ति के धनी थे उन्हे समाज का नेतृत्वकर्ता व्यवस्थापक माना गया तथा उनके हाथों में शैक्षिक व सामाजिक व्यवस्था के कार्य सौपे गये इन लोगों को ब्राह्मण माना गया। समाज की दूसरी बडीआवश्यकता समाज की रक्षा व्यवस्था थी, व्यक्तियों ने अनुभव किया कि समाज के लिये शक्तिशाली व्यक्तियों की आवश्यकता है जो उनकी रक्षाकर सकते हैं तथा अनीत करने वाले व्यक्तियों को दण्डित भी कर सकते है। इसलिये इन्हे शाषन का अधिकार देकर इन्हे राजा स्वीकार किया गया तथा इनके कन्धे पर राज्य में रहने वाली जनता की सुरक्षा और न्याय तथा अनुशासन का भार सौंपा गया। ये लोग शौर्य का प्रदर्शन करके अपने राज्य की सीमाओं की रक्षा करते थे। इसलिये इन्हे क्षत्रिय की संज्ञा दी गयी, ये लोग शारीरिक द्रष्टि से सुदृढ़ और संघर्षशील होते थे। समाज के भरण पोषण के लिये ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी जो पशुपालन, कृषि और उद्योग के माध्यम से समस्त जनता को विविध प्रकार की उपयोग करने वाली वस्तुएँ प्रदान कर सकते थे। जिन्होनें यह कार्य अपनाया उन्हें वैश्य की श्रेणी में रखा गया। अब समाज में ऐसे

व्यक्तियों की आवश्यकता थी जो सेवा कार्य करें, इन व्यक्तियों को जिन्होंने सेवा कार्य करना स्वीकार किया उन्हें शूद्र के नाम से पुकारा गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज की आवश्यकता के अनुसार समाज को जिन चार वर्गों में विभाजित किया गया, उन्हें ही वर्ण की संज्ञा दी गयी।

श्रीमद्भागवत में जो श्लोक वर्णों की उत्पत्ति के संदर्भ में दिया हुआ है, यदि उसका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया जाय तो भी यह ज्ञात हो जायेगा कि ब्राह्मण की पहचान उसके मुखमण्डल से प्रकट होने वाले तेज से हो जाती है। मुखमण्डल शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, इसमेंनेत्र देखने का कार्य करते हैं, कर्ण सुनने का काम करते हैं, मुख अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है तथा विशिष्ट प्रकार के स्वादों को ग्रहण करता है। मुखमण्डल के ऊपरी भाग में सुरक्षित मस्तिष्क तर्क और ज्ञान शक्ति से सुसज्जित है, जो सम्पूर्ण शरीर को अपने निर्देशानुसार चलाता है। इसी प्रकार ब्राह्मण के ज्ञान की पहिचान ज्ञान और अनुभूति तथा तर्क शक्ति पर होती है। इसीलिए ब्राह्मण मुख से ही पहचाना जाता है और ब्रह्मा के मुख से ही उसकी उत्पत्ति स्वीकार की जा सकती है। किसी भी शक्तिशाली व्यक्ति की पहचान उसके शारीरिक सौष्ठव से होती है उसकी शक्ति को देखकर व्यक्ति उससे भयभीत रहता है तथा उसके अनुशासन का अनुसरण करता है। इसलिए क्षत्रिय की पहचान उसकी भुजाओं से होती है, इसी बात को ध्यान में रखते हुए क्षत्रिय को ब्रह्मा की भुजाओं से उत्पन्न माना जा सकता है। वह व्यक्ति जो समाज की विविध आवश्यकताओं के अनुसार विविध प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करता है और उनका वितरण समाज के अन्य व्यक्तियों के मध्य करता है। उसे संसाधन और श्रमशीलता के आधार पर वैश्य के रूप में स्वीकार किया जाता है और उसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के जांघों से मानी जा सकती है। इसी प्रकार के व्यक्ति जिनके पास बुद्धि, शारीरिक शक्ति और संसाधन का अभाव है समाज ने उन्हें भी जीने का अधिकार दिया है ऐसे लोगों को पहचान कर उन्हें शूद्र की श्रेणी में रखा गया है तथा

इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से मानी गयी है। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति का सिद्धान्त व्यवहारिक द्रष्टि से समाज की आवश्यकतानुसार है।

जो भी वर्ण व्यवस्था उपलब्ध होती है वह सब पुरूषों के आधार पर है, स्त्रियों का कोई वर्ण स्वीकार नहीं किया गया। वो जिस परिवार में अपना वैवाहिक सम्बन्ध बनाती है उन्हें कालान्तरमें उसी वर्ण का माना जाता है। शास्त्रों में अनेक उदाहरण ऐसे उपलब्ध हो जाते हैं जिसमें एक वर्ण की कन्या का विवाह दूसरे वर्ण की कन्या से होता है तथा अनेक ऐसे ब्राह्मणों के उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं जिन्होंने शूद्र वर्ण की कन्याओं से विवाह किया है। इसलिए बालिकाओं और स्त्रियों के वर्ण के सन्दर्भ में यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि बालिकाएँ विवाह के पूर्व पिता के वर्ण की होती है और विवाह के उपरान्त पति के वर्ण की हो जाती है। किन्तु जहाँ वैवाहिक सम्बन्ध जातीय आधार पर सम्पन्न होते हैं वहाँ विवाह के पूर्व और विवाह के बाद कन्या का वर्ण नहीं बदलता। जब स्वयम्बर प्रथा का प्रचलन था उस समय कन्या को यह पूर्ण स्वतन्त्रता थी कि वह अपना पति किसी भी वर्ण के व्यक्ति को चुन सकती थी।

स्त्रियों को यह निर्देश दिये गये थे कि वे अपने पतियों की सेवा करें उनकी आज्ञा का अनुसरण करें पति के सम्बन्धियों को प्रसन्न रखे तथा पति को ही परमेश्वर के रूप में स्वीकार करें। भागवत पुराण में इसका अनुसरण करने की सलाह स्त्रियों को दी गयी है।

'स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्।।'[42]

भागवत रचना कार का यह मानना है कि स्त्री सृष्टि की वृद्धि करती है, वंश को आगे बढ़ाती है, अपनी संतानों को वर्ण, आश्रम तथा धर्म के सन्दर्भ में प्रारम्भिक ज्ञान प्रदान करती है इसलिए वह वर्ण व्यवस्था की संरक्षक भी है। जितने भी महापुरूष इस संसार में उत्पन्न हुए उनका जन्म स्त्रियों के ही गर्भ से हुआ तथा

स्त्रियाँ ही उसे महान बनाती हैं। श्रीराम और कृष्ण जैसे महान व्यक्ति जिन्हें हम भगवान के रूप में स्वीकार करते हैं तथा जिनकी उपासना और वन्दना भी करते है वे सभी अपनी—अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए माता ही समाज, वर्णव्यवस्था तथा धर्म का पालन करना सिखाती है, इसलिए प्रत्येक वर्ण में स्त्रियों का सहायोग ही उसे आगे बढ़ानें में सहायक होता है।

भारतवर्ष में अनेक ऐसी जातियाँ भी हैं, जो वर्ण व्यवस्था को स्वीकार नहीं करतीं तथा उनके लोग किसी भी जाति की औरतों से तथा महिलाएँ किसी भी जाति के पुरूष से विवाह कर लेती हैं, ऐसी जातियों को वर्णसंकर कहते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में इसका उल्लेख उपलब्ध होता है—

'वृत्तिः सङरंजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत्।

अचौराणाभया यानामन्त्यजान्तेऽवसापिनाम्।।'[43]

वर्णसंकर जातियों की पहचान वर्ण के अनुसार नहीं की जा सकती तथा वह जिस वृत्ति का आश्रय लेकर अपने स्वधर्म का पालन करता है और धीरे—धीरे स्वाभाविक कर्मों से ऊपर उठ जाता है तो वह गुणातीत हो जाता है और उसके वर्ण की पहचान उसके कर्म के अनुसार की जाती है।

'वृत्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृतं।

हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणितामियात्।।'[44]

जिस पुरूष का वर्ण निश्चित न हो तो वह जिस वर्ण के लक्षण से मिलता होगा उसे उसी वर्ण का माना जायेगा, इसका उल्लेख भागवत पुराण में स्पष्ट रूप से मिलता है—

'यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णभित्यजकम्।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्।।'[45]

कुल मिलाकर यह समझना चाहिए कि वर्ण व्यवस्था का व्यावहारिक स्वरूप जन्म परम्परा के साथ—साथ वर्ण, गुण और कर्म पर भी आधारित होता है। ६

ार्मशाास्त्रियों और पुराण रचनाकारों ने कुछ नियम समस्त मानवों के लिए एक से बनाये हैं, उनका अनुपालन करना हर वर्ण के लिए आवश्यक है। सभी वर्णों को यह निर्देश दिया गया है कि वे सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित–अनुचित का विचार, मन का संयम, ब्रह्मचर्य, त्याग, सरलता, संतोष, समदर्शी, महात्माओं की सेवा, संसारिक भोगों से छुटकारा, दान, ईष्टदेव पर आस्था, सन्तों को आश्रय देना, भगवान श्रीकृष्ण के नाम गुणलीला आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार करना, भगवान को अपना स्वामी सखा मानना, उन के प्रति समर्पित रहना ये तीस प्रकार के आचरण सभी वर्णों के लिए बतलाए गये हैं और इसे मानव धर्म की संज्ञा दी गई है। भागवत पुराण में इसका वर्णन उपलब्ध होता है–

'सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्य च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्।।
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथाहितः।
तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।।
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्म समर्पणम्।।
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान्राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति।।'[46]

वर्ण के व्यावहारिक स्वरूप का अध्ययन करने के लिए पुरूष सूक्त ब्राह्मण में और शतपथ ब्राह्मण में यह उल्लेख मिलता है कि प्रारम्भ में केवल दो ही वर्ण थे। प्रथम वर्ण में आर्य तथा उनके वैरी, द्वितीय वर्ण में दस्यु अथवा दास, यह निर्धारण उनके रंग और संस्कृति को लेकर किया गया था। संहिता काल में आर्यों ने दस्युओं को पराजित कर दिया था, इसलिए उनके लिए अलग श्रेणी का सृजन किया गया

, ये लोग बाद में शूद्र कहलाने लगे। ब्राह्मण साहित्य काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीन वर्ण स्थापित हुए, इन वर्णों में ब्राह्मणों को उच्च स्थान दिया गया। वैदिक काल के पहले चाण्डाल आदि जातियों का सृजन हो गया था तथा सभ्यता के विकासक्रम में प्रथक जातियों का कलाओं और शिल्पकारों के उद्भव विकास के साथ अनेक उपजातियाँ इन वर्णों से निर्मित हुई।

वर्णसंकर जातियों के सन्दर्भ में कुछ ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रखा जा सकता है, इन तथ्यों के अनुसार (1) यदि एक पुरूष अपने से निम्न जाति वाली स्त्री से विवाह करता है तो उसका वर्ण पिता का वर्ण माना जायेगा।[47](2) यदि कोई भी व्यक्ति उच्च श्रेणी की महिला से विवाह करता है तो उससे उत्पन्न सन्तान अपने माता अथवा पिता किसी भी वर्ण को अपना सकती हैं।[48]

वर्ण संकर जातियों के सन्दर्भ में भी अनेक धर्मसूत्रों में उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। इनमें पुल्कस और वेण शब्द आये हैं जो वर्णसंकर जाति के थे। इनमें दास जातियों का उल्लेख हुआ है इनमें प्रमुख रथकार, श्वपाक, कुक्कुट आदि के नाम आते हैं। इन ग्रन्थों में बीस मिश्रित वर्णों का नाम आता है जो तेइस प्रकार के व्यवसाय करते थे। याज्ञवल्क्य ने चार वर्णों के अतिरिक्त तेरह अन्य जातियों का वर्णन किया है। उषना ने चालीस जातियों का उल्लेख किया है तथा उनके विलक्षण व्यवसाय की भी चर्चा की है। यदि समस्त स्मृति ग्रन्थों का अवलोकन किया जाय तो लगभग सौ जातियाँ ऐसी उपलब्ध होती हैं जो विभिन्न वर्णों के सहयोग से उत्पन्न हुई हैं, इस सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने वर्णसंकर शब्द का प्रयोग मिश्रित जातियों के लिए प्रयुक्त किया है।[49] मनु स्मृति में उल्लेख आया है कि जब किसी वर्ण के सदस्य दूसरे वर्ण की नारियों के साथ सम्भोग करते हैं या ऐसी नारियों से विवाह करते हैं जिनसे नहीं करना चाहिए अथवा अपने वर्णों के कर्तव्यों का पालन नहीं करते तब वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं।[50]

वर्णसंकरता को शास्त्रकारों ने ठीक नहीं माना और इसके लिए कठोर नियम

बनाने का निर्देश दिया तथा उन्होंने यह व्यवस्था दी की जो वर्ण नियमों का उल्लंघन करे उन्हें दण्डित किया जाय।[51] शास्त्रों में यह भी निर्देश दिया गया है कि राजा का यह कर्तव्य है कि उसे वर्ण और आश्रम की रक्षा करनी चाहिए और लोगों को ऐसा करने से रोकना चाहिए।[52] वर्ण व्यवस्था के उल्लंघन के कारण समाज में अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती थीं तथा इसका प्रभाव संस्कारों में भी पड़ता था। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय नारी से विवाह करता है और उससे कोई कन्या उत्पन्न होती है तो उसे सवर्णो कहा जायेगा, इसी प्रकार से अगर पुत्र उत्पन्न होगा तो उसे भी सवर्ण कहा जायेगा। यदि कोई ब्राह्मण शूद्र नारी से विवाह करता है और उससे कन्या उत्पन्न होती है तो उसे परासव कहा जायेगा। यदि कोई पुत्र उत्पन्न होगा तो वह भी परासव कहा जायेगा। यदि परासव पुत्र किसी शूद्र कन्या से विवाह करता है तो वह भी शूद्र हो जायेगा। जातक कर्मों के अनुसार इस प्रकार वर्ण व्यवस्था में परिवर्तन होता रहता हैं यदि कोई ब्राह्मण शूद्र से विवाह करे और उससे कोई कन्या उत्पन्न हो तो उसे निषादी कहा जाता था, यदि यह निषादी किसी ब्राह्मण से विवाह करती है तो वह आगे चलकर ब्राह्मण वर्ण में अपनी सन्तानों सहित शामिल हो जाती है। इसी प्रकार कभी–कभी यह भी बतलाया गया है कि कोई व्यक्ति यदि अपने वर्ण के अनुसार आचरण नहीं करता तो उसका भी वर्ण आगे चलकर बदल जायेगा। यदि कोई ब्राह्मण शूद्र वर्ण का कार्य करे और उसका पुत्र भी शूद्र वर्ण का कार्य करे तो वह शूद्र हो जायेगा। इसलिए व्यवहारिक दृष्टिकोण से वर्ण व्यवस्था शिथिल थी तथा इसमें परिवर्तन हो सकता था। अनेक शिलालेख विविध स्थानों में उपलब्ध हुए हैं, जिनमें अर्न्तजातीय विवाह की चर्चाएँ पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए कदम्ब कुल प्रारम्भ में ब्राह्मण था कालान्तर में वह क्षत्रिय हो गया। व्यवसाय परिवर्तन के कारण वर्ण भी परिवर्तित हो जाता था। महाभारत में अनेक ऐसे उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जिनमें अनेक राजा क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गये जैसे राजा वीतहव्य ब्राह्मण बन गये।[53] इसी प्रकार आष्ट्रिषेण, सिन्धुद्वीप, देवापि तथा विश्वामित्र

ब्राह्मण बने।[54]

यदि व्यावहारिक दृष्टि से वर्णव्यवस्था का विश्लेषण किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि वह पैदा किसी भी वर्ण में हो सकता है किन्तु उसके वर्ण का वास्तविक निर्धारण उसके कर्म के अनुसार ही निर्धारित होता है। वह गुण, योग्यता, संसाधन और शक्ति के आधार पर वर्ण परिवर्तित कर लेता था तथा कन्याओं के लिए कोई वर्ण स्थाई नहीं था। जन्म के समय वह पिता के वर्ण की होती और विवाह के उपरान्त वह पति के वर्ण की हो जाती थी। वर्ण व्यवस्था ऐसी कोई लक्ष्मण रेखा नहीं थी जिसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता था। केवल विरोध वो लोग करते थे जो कि इस व्यवस्था को परम्परागत जन्म से स्वीकार करते थे। उनका मानना था कि यह एक ईश्वरीय विधान है, इसका उल्लंघन धर्म विरूद्ध है।

3– प्रत्येक वर्ण का सामाजिक महत्व एवं प्रतिनिधित्व–

श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्ण आश्रम धर्म का पालन करने पर बल दिया गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी अपने जीवन के अन्तिम काल में यह उपदेश दिया कि सतयुग में केवल एक ही वर्ण था और उस वर्ण का नाम हंस था तथा वेद ही धर्म और वर्ण का प्रणेता था। उस समय केवल एक ही प्रकार का परमात्मा था, जिसकी उपासना तद्युगीन व्यक्ति किया करते थे, अर्थात सृष्टि के प्रारम्भ में किसी भी प्रकार की वर्ण व्यवस्था नहीं थी और न कोई विशिष्ट धर्म था, केवल किसी एक शक्ति विशेष को सृष्टि का सृजेता माना जाता था तथा लोग उसी की उपासना किया करते थे–

'आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः।

कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात् कृतयुगं विदुः।।

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक।

उपासते तपोनिष्ठा हसं मां मुक्तकिल्विषां।।[55]

जब त्रेता युग का शुभारम्भ हुआ उस समय ऋग्वेद, सामवेद और यर्जुवेद

अस्तित्व में आये और विद्या का विकास हुआ, यह विद्या अर्ध्वयु, उद्‌गाता और कर्म से त्रयी विद्या के नाम से विख्यात हुई। इन विद्याओं के अनुसार पहले व्यक्ति ने कल्पना शक्ति अथवा चिन्तन शक्ति का सहारा लिया, उसके पश्चात् उसने सिद्धान्तों का सृजन किया फिर इन सिद्धान्तों को क्रिया में परिणित करने के लिए कर्म को जन्म दिया। इस कर्म व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए परमात्मा ने वर्णों को जन्म दिया।

'विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरूपादजाः।

वैराजात् पुरूषाज्जाता य आत्माचारलक्षणः।।'[66]

भागवत में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि वर्ण का निर्धारण व्यक्ति के स्वभाव और उसके आचरण के अनुसार हुआ है।

भागवत महापुराण के अनुसार वर्णों में विभाजित समाज में ब्राह्मण को सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त है क्योंकि ब्राह्मण में सम, दम, तपस्या, पवित्रता, संतोष, क्षमाशीलता, सरलता, परमात्मा से अनुराग, दया और सत्य ऐसे विशेष गुण हैं, जो अन्य वर्णों में उपलब्ध नहीं होते। ब्राह्मण ज्ञानवान है वह समाज को शिक्षा देता है, समस्त धार्मिक और संस्कारिक कर्म सम्पन्न कराता है। वह समाज को पथभ्रष्ट होने से बचाता है और राष्ट्र रक्षा के लिए उचित परामर्श देता है, जिससे राष्ट्र, धर्म और संस्कृति की रक्षा होती है। इसीलिए चारों वर्णों में ब्राह्मण को ही श्रेष्ठ माना गया है। निश्चित ही योग्य ब्राह्मण वे व्यक्ति थे जिन्होंने वेदों और पुराणों की रचना करके समस्त भारतीय समाज को ज्ञान दृष्टि प्रदान की है। भागवत पुराण में ब्राह्मणों की अत्यधिक प्रशंसा की गयी है—

'शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम।

मद्‌भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः।।'[67]

ब्राह्मणों के पश्चात वरीयता के आधार पर क्षत्रियों को द्वितीय स्थान उपलब्ध है, ये लोग शारीरिक शक्ति से पूर्ण रहते हैं। इनके मस्तिष्क में सदैव ओज रहता है

ये लोग हर कार्य का सम्पादन बडे ही उत्साह से करते हैं। क्षत्रिय लोग अत्यन्त सहनशील भी होते हैं, वे कुसमय में उत्पन्न जनता की क्रोधमयी भावनाओं को सहन करते हैं। समाज और जनता के प्रति वे उदारता की भावना रखते हैं तथा ऐसे उपाय करते हैं जिससे राज्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हों। उद्योग धन्धों से परिपूर्ण बने ताकि प्रजा को किसी भी प्रकार का कष्ट न होने पाये, वे अपनी राज्य व्यवस्था, शासन व्यवस्था, सुरक्षा व्यवस्था से राज्य को स्थिरता प्रदान करते हैं। क्षत्रिय लोग योग्य विद्वानों का सम्मान करते हैं उन्हें राज्याश्रय प्रदान करते हैं तथा ऐश्वर्य शाली होते हैं। वे लोग अनेक बस्तियों का निर्माण करते हैं, दुर्गों का निर्माण करते हैं, दुर्गों में अपने निवास के लिए महलों का तथा धर्म रक्षा के लिए पूजा स्थलों का और राष्ट्र रक्षा के लिए सेना भी रखते हैं। यह क्षमता केवल क्षत्रियों के पास होती है, इसलिए ब्राह्मणों के बाद समाज में उन्हें दूसरा सम्मान जनक स्थान प्राप्त है। भागवत पुराण में इसका उल्लेख मिलता है–

'तेजोबलंधृतिः शौर्य तितिक्षौदार्यमुद्यमः।
स्थैर्य ब्रह्मण्यवैश्वर्य क्षत्रप्रकृतस्त्विमाः।।[58]

समाज में एक ऐसा वर्ग था, जो न तो ब्राह्मणों के सम्मान योग्य था और न क्षत्रियों के समान बलशाली किन्तु यह वर्ग साधन सम्पन्न वर्ग था। भागवत पुराण में यह निर्देश है कि वैश्य वर्ण ईश्वर पर विश्वास रखें, ब्राह्मणों तथा अन्य कमजोर व्यक्तियों को दान दे, किसी प्रकार का कोई घमण्ड न रखे तथा योग्य व्यक्तियों की सेवा करें। जोधन उनके पास संचित है उससे सन्तुष्ट न होकर उद्योग और पशुपालन के माध्यम से, कृषि के माध्यम से और बढ़ायें, इसीलिए वैश्य धन संचय करने वाला, उद्योगों को प्रोत्साहन देने वाला व्यक्ति माना गया है और उसे समाज में तीसरा स्थान उपलब्ध है।

'आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम्।
अतुष्टिरर्थोपचयै वैश्य प्रकृत यस्त्विमाः।।[59]

ऐसे व्यक्ति जिनके पास कोई बुद्धि नहीं थी, कोई शक्ति नहीं थी तथा जिनके पास संसाधनों का अभाव था, उन्हें समाज का चौथा वर्ण माना गया। उन्हें यह निर्देश दिया गया कि वे समाज के बुद्धिजीवी वर्ग, गाय तथा देवताओं की सेवा निष्कपट भाव से करें और जो मिल जाए उसी से अपने परिवार का निर्वाह करें। स्वाभाविक है कि जिस व्यक्ति के पास अपना कोई दिमाग नहीं है, शरीर में कोई ऐसी शक्ति नहीं है कि वह अपना अस्तित्व बनाकर रख सकें, उसके पास अपने कोई संसाधन नहीं है जिससे अपना कोई उद्योग कर सकें, इसलिए वह इस स्थिति में उच्चवर्ग की सेवा करके ही अपनी जीविका के संसाधन जुटा सकता है। इसलिए इस वर्ण को समाज का चतुर्थ वर्ण माना गया है।–

'शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया।

तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः।।[60]

भागवत पुराण में यह वर्णन मिलता है कि कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जो समाज के लिए कष्टकारी थे। ये लोग अपवित्र कार्य करते थे सदैव झूठ बोलते थे, चोरी करके उदर पूर्ति करते थे, ईश्वर पर विश्वास न करके अधार्मिक कार्य करते थे, वे पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक आदि कि विचारधारा पर कोई आस्था नहीं रखते थे। ये लोग अकारण झगडते थे, ये चरित्रहीन स्त्रियों से बलात्कार्य करने वाले, अकारण कोध करने वाले तथा लालची स्वभाव के होते थे। इन्हें शूद्र वर्ण के अर्न्तगत रखा गया है और इनसे किसी भी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित न करने की सलाह दी गयी है।

'अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः।

कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेव सायिनाम्।।[61]

सभी वर्णों के लिए कुछ सामान्य कर्तव्य भी बतलाये गये हैं। इसमें लोगों को यह निर्देश दिया गया है कि व्यक्ति मन, वाणी और शरीर से किसी की हिंसा न करें, यहाँ हिंसा से यह तात्पर्य माना गया है कि मन में किसी के विनाश की बात सोचना भी हिंसा है। किसी भी व्यक्ति का वाणी से अपमान करना अथवा उसके विरूद्ध

अप्रतिष्ठा सूचक शब्दों का प्रयोग करना भी हिंसा है। किसी भी व्यक्ति का अकारण बध न करें, किसी के धन का अपहरण न करें, काम, क्रोध तथा लोभ से दूर रहें और वह कार्य करें जिससे समाज के समस्त प्राणियों को सुख मिले, समस्त वर्णों की समाज में श्रेणियाँ निर्धारित करते हुए भगवान कृष्ण का यह प्रमुख संदेश भागवत पुराण में उपलब्ध होता हैं।

'अहिंसा सत्यमस्तेयम काम क्रोध लोभता।

भूतप्रियहिते हा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः।।'[62]

यदि जनसंख्या के आधार पर वर्णों का प्रतिनिधित्व मूल्यांकित किया जाए तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि ब्राह्मण जिसे समाज में सर्वोच्च वर्णमाना जाता है, उनकी संख्या समस्त वर्णों की अपेक्षा बहुत कम है। क्योंकि समाज के प्रारम्भिक विकास में बुद्धिजीवी तथा ज्ञान देने वाले व्यक्ति बहुत कम थे। वैदिक युग के पश्चात उत्तर वैदिक युग में ब्राह्मणों का वर्गीकरण वंश और गोत्र के अनुसार हुआ तथा कई प्रकार के ब्राह्मण अस्तित्व में आये। बौद्ध काल से लेकर गुप्त युग तक ब्राह्मणों की कुछ और उपजातिया, संस्कार और कर्मो के अनुसार बनी, राजपूत युग में ब्राह्मण की जातियों का निर्माण क्षेत्रीयता के आधार पर भी हुआ। उदाहरणार्थ जैसे बुन्देलखण्ड में रहने वाले ब्राह्मण जुझौतिया कहलाये, कन्नौज के आस–पास रहने वाले ब्राह्मण कनौजिया कहलाये तथा मिथिला के आस–पास रहने वाले ब्राह्मण मैथिल कहलाये। इसके पश्चात सनाढ्य, द्विवेदी, त्रिवेदी, चर्तुवेदी, आदि आज भी बहुत से ब्राह्मण वर्ग हैं परन्तु जनसंख्या की दृष्टि से, पन्द्रह प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। यदि क्षत्रिय जाति का प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर देखा जाये तो सम्पूर्ण उत्तर भारत और मध्य भारत में इनके अनेक राज्य रहे। इनके प्रमुख वंशों में सूर्यवंश, चन्द्रवंश, इक्ष्वाकुवंश आदि थे, जो राजपूत काल में अनेक उपजातियों में विभक्त हो गये। इन क्षत्रियों में परमार, चौहान, चन्देल, गुर्जर प्रतिहार, पॉल, मौखरि, बुन्देला, बघेला आदि प्रमुख क्षत्रिय वर्ग थे। इनकी जनसंख्या ब्राह्मणों की ही भाँति

पन्द्रह या बीस प्रतिशत ही है, इन लोगों ने सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनेक छोटे–बड़े राज्य स्थापित किये थे। ब्रिटिश युग में छोटे बडे राजाओं की संख्या चार सौ से अधिक थी तथा जमींदार और जागीरदारों की संख्या हजारों में थी। वर्तमान युग में सन् 1947 के पश्चात् भारतवर्ष से राजतन्त्र पूरी तरह समाप्त हो गया। इसीलिए क्षत्रियों का वर्ण धर्म। के हिसाब से अस्तित्व नहीं रहा किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में ये लोग अपने शक्ति और धन की वजह से अपना दबदबा बनाए हुए हैं।

सम्पूर्ण भारत में वैश्यों की संख्या भी लगभग बीस प्रतिशत है, ये लोग पशुपालन कृषि और व्यवसाय से जुड़े हुए हैं तथा ज्यादातर लोग आज भी अपने पैतृक व्यवसाय को कर रहे हैं। वैश्य भले ही धन से सम्पन्न हों, उद्योग–धन्धों में निपुण हों फिर भी ग्रामीण अंचलो में इस जाति को दब्बू जाति कहा जाता है और इसे किसी प्रकार का कोई सम्मान उपलब्ध नही हैं। इस जाति में भी अनेक उप जातियाँ उत्पन्न हो गई इनकी प्रमुख उपजातियाँ मारवाडी, अग्रवाल, गहोई, अयोध्यावासी, ओमर, द्रढ़ ओमर, पुरवार, केसरवानी, कसौंधन आदि है। पूरे भारतवर्ष में वैश्यो की 376 उप जातियाँ है आज भी समाज पर इनका आर्थिक नियन्त्रण सम्पूर्ण भारत में है। चतुर्थ श्रेणी अथवा शूद्र वर्ण के लोग जनसंख्या में सर्वाधिक है प्राचीनकाल में इस वर्ण की उप जातियाँ वर्तमान समय से कम थी तथा इन्हें कारूण[63], किरात[64], कुक्कुट[65], कुण्ड[66], कुकुन्द[67], कुम्भकार[68], कुलाल[69], कुलिका[70], कुशीलव[71], कृत[72], कैवर्त[73], आदि जातियाँ थी। इसके अतिरिक्त कोलिक, क्षत्ता[74], खनक [75], खश[76], गुहक[77], गोज[78], गोप[79] गोलक[80], चक्री[81], चर्मकार[82], चाक्रिक[83], चाण्डाल[84], चीन[85], चुउचु[86], चुचुक[87], चैल निर्णजक[88], जालोपजीवी[89], झल्ल[90], डोम्ब[91], तक्षा या तक्षक[92], तन्तुवाय[93], ताम्बूलिक[94], ताम्रोपजीवी[95], तुन्नवायु (दर्जी)[96], तैलिक [97], दरद [98], दाश (मछुवा) [99], दिवाकीर्त्य [100], दौष्मन्त[101], द्रविड़[102], घ्रिग्वण[103] , धीवर[104] , ध वजी[105], नट[106], नर्तक[107], नापित[108], निच्छि[109], निषाद[110], पहलव[111], पाण्डुसोपाक[112], पारद[1113], पारशव[114], पिंगल[115], पुण्ड्र या पौण्ड्रक[116], पुलिन्द[117], पुल्कस[118], पुष्कर[119],

पुष्पध[120], बर्बर[121], बुरूड़[122], भट[123], भिल्ल[124], भिषक[125], भूप[126], भूर्जकण्टक[127], भृज्जकण्ठ (अम्बष्ठ)[128], भोज[129], मद्रगु [130], मणिकार[131], मत्स्य बन्धक[132], मल्ल[133], मागध[134], माणविक[135], मातंग[136], मार्गव[137], मालाकार[138], माहिष्य[139], मूर्धावसिक्त[140],मृतप[141], मेद[142], मैव[143], मैत्रेयक[144], म्लेच्छ[145], यवन[146], रंगावतारी[147], रजक[148], रउजक[149], रथकार[150], रामक[151], लुब्धक[152], वन्दी या बन्दी[153], वराट[154], वरूड़[155], वाटधान[156], विजन्या[157], वेण[158], वेणुक[159], वेलव[160], वेदेहक[161], व्याघ्र[162], व्रात्य[163], शक[164], शबर[165], शूलिक[166], शैख[167], शैलूष[168], शौण्डिक[169], श्वपच या श्वपाक[170], सात्वत[171], सुधन्वाचार्य[172], सुवर्ण[173], सुवर्णकार[174], सूचक[175], सूचिक[176], सूत[177], सूनिक[178], सैरिन्ध्र[179], सोपाक[180], सौधन्वन[181],

मध्यकाल के जाति विवेक एवं शूद्रकमलाकर (17 वीं शताब्दी) नामक ग्रन्थों में कुछ और जातियों का वर्णन हैं जिनमें कुछ निम्न हैं –

आघासिक, आवर्तक, आहितुण्डिक, औरभ्र, कटधानक, कुन्तलक, कुरूविन्द, घोलिक, दुर्भर, पौष्टिक, प्लव, बन्धुल, भस्मांकुर, मन्यु, रोमिक, शालाक्य या शाकल्य, शुद्ध मार्जक, सिन्दोलक या स्पन्दालिक

श्री मद्भागवत पुराण मेंयह उल्लेख आया हैं कि भगवान श्रीकृष्ण का स्वागत कुरू और के कय देश के राजाओं ने किया तथा भगवान कृष्ण ने भी उनका यथोचित सत्कार किया। इस अवसर पर सूत, मागध, बन्दीजन, ब्राहम्ण, गन्धर्व, नट तथा विदूषकों ने विविध संगीत वाद्यों से भगवान श्रीकृष्ण तथा उपस्थित जनता का स्वागत सत्कार किया। भागवत पुराण में उन जातियों का उल्लेख हुआ है, जो नृत्य गायन आदि के माध्यम से जनता का मनोरंजन करके अपना पेट पालती थी।

'मानितो मानयामास कुरूस०जयकैकयान्।

सूतमागधगन्धर्वा वन्दिनश्रोयमन्त्रिणः।।

मृदंगशंख पटहवीणापणवगोमुखैः।

ब्राहम्णाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगः।।'[182]

उपरोक्त श्लोकों में उन जातियों का उल्लेख किया गया है जिनका महत्व

मगध क्षेत्र में था ये जातियाँ गन्धर्व नट आदि थीं।

भागवत पुराण में भविष्य के राजाओं के वंश का वर्णन करते हुये यह उल्लेख आया है कि मगध का राजा विश्वस्फूर्ति उच्चवर्ण की जातियों को जिनमें पुलिन्द, युद्र और मद्र आदि शामिल होंगे उन्हे म्लेक्ष के सामान निम्न कोटि की जातियों में बदल देगा।

'मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जि पुरंजयः।

करिष्यत्परो वर्णान् पुलिन्दयदुमद्रकान।।'[183]

यह स्पष्ट है कि जिस समय भागवत पुराण की रचना हुई, उस समय भारतवर्ष में पुलिन्द, यदु, मद्र आदि जातियाँ थी। पहले यह उच्च वर्ण में शामिल थी किन्तु पथभ्रष्ट होने के कारण ये जातियाँ निम्न वर्ण में शामिल हो गयीं।

भागवत पुराण में यह स्पष्ट उल्लेख है कि यवन जो दक्षिण पश्चिम एशिया में निवास करते थे उनका आक्रमण मथुरा में हुआ। यह तीन करोड़ म्लेक्षों की सेना लेकर मथुरा में आक्रमण करने आया था तथा इसका नाम कालयवन था। इधर भगवान श्री कृष्ण को जरासन्ध की सेना से भी भय था इसलिये उन्होने मथुरा से अलग द्वारकापुरी बसाने का निश्चय किया, उसके पश्चात कालयवन से बदला लेने की बात सोची।

'तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम्।

तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे।।'[184]

ऐसा प्रतीत होता है कि भागवत महापुराण के समय विदेशी आक्रमण भारतवर्ष में प्रारम्भ हो गये थे। इस समय दक्षिण पश्चिम एशिया के निवासियों को म्लेक्ष तथा पवन के नाम से सम्बोधित किया गया, हो सकता है कि भगवान श्रीकृष्ण के समय में भी इनका अस्तित्व रहा हो तथा मगध के राजा जरासन्ध से इसके सम्बन्ध रहे हों। इसलिये कालयवन ने जरासन्ध को सहयोग देने के उददेश्य से मथुरा पर आक्रमण किया होगा, जरासन्ध और कालयवन की सेना से भयभीत होकर यादवों

को सुरक्षित स्थान में बसाने का निश्चय किया गया। म्लेक्ष और यवन विदेशी जातियाँ थी, जिनका विलय भारतीय समाज में नही हो पाया।

इस प्रकार हम देखतें है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन वर्णों की जनसंख्या तद्युगीन समाज और देश में पचास प्रतिशत से अधिक नहीं थी। पचास प्रतिशत जनसंख्या शूद्रों की थी जो तीन भागों में विभाजित थे। प्रथम भाग में विभाजित शूद्र चरित्रवान थे, द्वितीय भाग मे विभाजित शूद्र चरित्रहीन एवं दुष्कर्मी थे तृतीय भाग मे विभााजित वे विदेशी जातियाँ थी जो भारतीय संस्कृति और वर्ण व्यवस्था पर आस्था नही रखती थी किन्तु समाज पर ब्राह्मण और क्षत्रियों का ही वर्चस्व था।

4– वर्ण एवं जाति व्यवस्था को प्रभावित करने वाले राजनीतिक कारण–

सम्पूर्ण भारतवर्ष मे सामाजिक व्यवस्था के उददेश्य से सम्पूर्ण समाज को चार वर्णों मे विभाजित किया गया था। ये वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र थे तथा इन पर नियन्त्रण रखने के लिये एक ऐसे वर्ग को चुना गया जो सम्पूर्ण समाज पर नियन्त्रण रखें। इसे सम्पूर्ण समाज का शासक माना गया तथा इसे यह कार्य सौंपा गया कि वह निश्चित भू भाग में बसी अपनी प्रजा की रक्षा का भार सम्भाले और जो शान्ति व्यवस्था भंग करे उसे दण्डित करें। राज्य व्यवस्था करने वाला जो वर्ग था वह समाज का द्वितीय वर्ण क्षत्रिय था यह आज तक निश्चित नहीं हो पाया कि राज्य व्यवस्था किन सिन्द्धान्तों के आधार पर भारतवर्ष में कायम की गयी। भारतवर्ष भौगोलिक द्रष्टि से विभिन्न जलवायु वाला अैर प्राकृतिक भिन्नता वाला क्षेत्र था, यहाँ भाषा, पहनावा, आचार–व्यवहार अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग है। इसलिये राजनीति भी निश्चित विचारधारा को लेकर प्रवाहित नहीं हो सकी, भारतवर्ष की राजनीति को विभिन्न ग्रन्थों में राजधर्म, दण्डनीति, नीतिशाष्त्र तथा अर्थशास्त्र के नाम से सम्बोधित किया गया है। इन ग्रन्थों में राजा के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया हैं तथा राजा पर यह भार डाला गया कि वह प्रजा पर नियन्त्रण रखे, समाज

में धर्मआचरण रखने के लिये धर्मशास्त्रों मे वर्णित नियमों का पालन करें। नीतिशास्त्र में राजा द्वारा अपनाये जाने वाले साधनों और उपायों की चर्चा की गयी है तथा अनुशासन हीनता पर प्रजा को दण्ड देने का भी अधिकार राजा को दिया गया है। मैक्समूलर के अनुसार भारतवर्ष दार्शनिकों का देश था, यहाँ विविध विचार धाराओं को लेकर संघर्ष होता था। यहाँ प्राचीन काल में समस्याओं का उदय, उनका भविष्य तथा उनको दूर करने के उपाय पर भी विचार होता था।, यदि कहा जाये कि भारतवर्ष का विश्व की राजनीति में कोई स्थान नही था।[185] किन्तु मैक्समूलर का यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता, भारतवर्ष की राजनीति अपनी मौलिक राजनीति हैं इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध विद्वान का यह कथन है कि पूरे विश्व मे हिन्दुओं की एक विशिष्ट श्रेणी है, जिन्होनें विश्व इतिहास को प्रभावित किया है तथा उनके राजनीतिक सिद्धान्त है अपने मौलिक सिद्धान्त हिन्दू राज्य व्यवस्था के सिद्धान्त समय और क्षेत्र से बंधे हुये थे। जो लोगों को यह विश्वास दिलाते थे कि यदि किसी प्रकार का सन्देह उत्पन्न होता था तो उस पर विचार राजनीतिक द्रष्टिकोण से कर लिया जाता था।[186] इस प्रकार हम देखते है। कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और उसके सिद्धान्त बहुत ही उपयोगी और समाज को प्रभावित करने वाले थे।

भारत में जो विदेशी यात्री प्राचीन काल में आये उन्होंने भारतवर्ष के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विवरण अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किए हैं। मुख्य रूप से मैगस्थनीज जो सिकन्दर का दूत था, उसने 'इण्डिका' नामक पुस्तक की रचना की उसने इस पुस्तक में प्राचीन गणतन्त्रों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृतान्त में मौखरि शासन पद्धति व मन्त्रियों की कार्य पद्धति का उल्लेख किया है। भारतवर्ष की राजनीति के सन्दर्भ में अनेक शिलालेख और ताम्रपत्र भी उपलब्ध होते हैं, इनसे राजनीतिक व्यवस्था का पता लगता है। राजा और राज्यअधिकारी ताम्रपत्रों के माध्यम से आदेश दिया करते थे, राजा मन्त्रिमण्डल पर पूर्ण नियन्त्रण रखता था। अनेक शिलालेखों से इसका पता चलता है, अशोक के शिलालेख उसके

उद्देश्यों की घोषणा करते हैं कि वह किस प्रकार का शासन चलाना चाहता है। इसी प्रकार उपलब्ध मुद्राओं के माध्यम से भी तद्युगीन राजनीतिक व्यवस्था का पता लगता है।

भारतीय दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरूषार्थ के चार अंग माने गये हैं तथा मोक्ष को अन्तिम लक्ष्य माना गया है। धर्म, अर्थ, और काम राज्य के ही माध्यम से उपलब्ध होते थे तथा राज्य को मोक्ष प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण साधन माना गया है क्यों कि राज्य से ही धर्म, अर्थ और काम संभावित था। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये राज्य के विभिन्न अंग, सत्य, स्वरूप, अधिकार और कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। शुकनीति में यह वर्णन आया है, जैसे इन्द्र की पत्नी कभी भी विधवा नही हो सकती उसी प्रकार धर्म विमुख लोग जो शासन नही चाहते या मोक्ष के आकांक्षी नही हैं वे एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते शुकनीति में राज्य को त्रिवर्ग फलदाता बताया गया है।

'नमोस्तु राज्यवृक्षाय षाड्गुण्याय प्रशाखिने।

सामादिचारू पुष्पाय त्रिवर्गफलदायिने।'[187]

प्राचीन साहित्य में यह विवरण उपलब्ध होता है जहाँ राजा और राज्य का कोई अस्तित्व नहीं है, वहाँ अराजकता फैल जाती है। मनुष्य लोग अपनी रक्षा के लिये इधर उधर भागते हैं इसलिये भगवान ने विश्व की रक्षा के लिये राजाओं की सृष्टि की है।[188] जिस देश में राजा नहीं होता उस देश में शक्तिशाली व्यक्ति कमजोर व्यक्तियों को नष्ट कर देते हैं इसलिये गरीबों की रक्षा के लिये राजा की नियुक्ति की गई तथा ब्रह्म ने सर्वप्रथम मनु को राजा के रूप में स्थापित किया और मनु ने प्रजा से कहा कि राजकोष की वृद्धि के लिये प्रजा अपने पशुओं और स्वर्ग का पंचासवाँ भाग अन्न का दसवाँ भाग कर के रूप में दें तभी वह प्रजा की रक्षा कर सकेगा जिसे प्रजा ने स्वीकार लिया व तभी से राजा को कर देने लगे।

राज्य स्थापना के साथ ही शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिये दण्ड व्यवस्था

का विधान किया गया, दण्ड सिद्धान्त के अनुसार अप्राप्ति की प्राप्ति , प्राप्ति का परीक्षण, परीक्षित का परिवर्धन, परिवर्धन का सदुपयोग, तीर्थ आदि में वितरण आदि सम्भव है। अतः समाज की सारी व्यवस्था दण्ड पर आश्रित मानी गयी महाभारत में यह उल्लेख आया है कि यदि चतुर्वण्य के लोग अपने अपने कर्म और मर्यादाओं का पालन न करें तो राजा का कर्तव्य है कि वह दण्डनीति अपना कर प्रजा को अपने अपने कार्य करने और मर्यादा बनाये रखने के लिये बाध्य करे।

'चतुर्वण्ये स्वकर्मस्थे मर्यादा नाम संकरे।

दण्डनीति कृते क्षेपे प्रजानाम कुतोभये।।'[189]

कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को दण्ड नहीं दे सकता यदि वह ऐसा करता है तो इसे प्रतिशोध कहा जायेगा। इसलिये अनीति के विरूद्ध दण्ड की व्यवस्था करना राजा का ही धर्म है। महाभारत और दूसरे ग्रन्थों में राजा के विविध कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। मौर्य काल और गुप्तकाल में भी राजाओं के कर्तव्य अपराधों को रोकना, कलाओं को प्रोत्साहन देना तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप करना था।इस समय राज्य के अधिकारों का आधार प्रचलित परम्परायें और विधियाँ थी, जिनका अनुपालन करना अनिवार्य था। कोई व्यक्ति राजा की आज्ञा का उल्लंधन नहीं करता था, राज्य को भी एक जीवित शरीर के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। शुकनीति के अनुसार राज्य रूपी शरीर का सिर राजा है, मन्त्री आँख है, सुहत (मित्र) कान है, कोण मुख है, बल मन है, दुर्ग हाथ है और राष्ट्र उसके पैर हैं। शुकनीति में ही एक स्थान पर राज्य को एक वृक्ष की संज्ञा दी गयी है। उसमें कहा गया है। कि राज्य रूपी वृक्ष जड़ राज्य है स्कन्ध मंत्री है सेनापति शाखाये है सैनिक पत्ते और फूल है, प्रजा फल है और भूमि उसके बीज हैं। राज्य के सम्बन्ध में यही विचार धारा सर्वत्र उपलब्ध होती है। राज्य कानून अथवा धर्म की सर्वोच्च सत्ता है, इस सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए विधाता ने चार वर्ण उत्पन्न करने के बाद स्थिरता बनाये रखने के लिए धर्म को उत्पन्न किया तथा उसे सर्व शक्तिशाली

बनाया। फिर राजा का निर्माण किया जो धर्म की रक्षा के लिए चारों वर्णों पर अपना अनुशासन रखता है। धर्म का कार्य सत्य का अनुपालन करना है, इसलिए धर्म और सत्य की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है।

मानव अपनी प्रकृति से स्वच्छन्द प्राणी है। वह अपनी कामवासनाओं के वसीभूत है, इसके लिए वह गलत आचरण करता है। इसलिए उसे दण्ड देकर रास्ते में लाया जा सकता है, राज्य का यही कर्तव्य है। अराजकता उस समय तक दूर नहीं हो सकती जब तक शक्ति का प्रदर्शन किया जाए। भारतीय राज्य व्यवस्था में धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। राजा स्वतः अपने राजधर्म का पालन करता था तथा जनता की सुख सुविधा के लिए वह सर्वांगीण विकास की योजना बनाता था। वेश्यावृत्ति, घूस, मदिरापान आदि बुराइयों पर नियन्त्रण रखता था। धर्म और सदाचार को प्रोत्साहन देता था, विद्वानों और धर्म प्रचारकों को प्रोत्साहन देता था। दीन दुखियों के कष्ट निवारण के लिए, धर्मशास्त्रों का निर्माण करवाता था, चिकित्सालय खुलवाता था और निर्धनों के लिए अन्य क्षेत्र खोले जाते थे। कुल मिलाकर राज्य के कार्य तथा जनता का हित चिन्तन करता था और इसके अतिरिक्त राजा शत्रुओं के आक्रमण से राज्य की रक्षा भी करता था।

यदि राज्य, राजा और राजा के कर्तव्यों का विश्लेषण किया जाए तो कुल मिलाकर राज्य का नियंत्रण चारों वर्णों के ऊपर था। राजा धर्म का पालन करता था, आश्रम धर्म का पालन कराता था तथा जो भी इन नियमों का उल्लंघन करता था, उन्हें वह दण्ड भी दे सकता था।

राज्य की शासन व्यवस्था संचालित करने के लिए राज्य के सात अंगो की परिकल्पना की गयी है। इसमें राज्य का स्वामी, अमात्य, राज्य की राजधानी, राष्ट्र, राजकोष, और दण्ड तथा मित्र शामिल हैं। मनु स्मृति में यह उल्लेख उपलब्ध होता है

'स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदंजै सुहृतथा।

सप्त प्रकृतयो ह्योताः सप्तांगं राज्यमुच्यते।।[90]

करीब करीब सभी ग्रन्थों में राज्य के सत्तानवे सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया है। प्राचीन भारत में महाराजा, कुल राज्य, भोज राज्य, स्वराज्य, वैराज्य, राष्ट्रीय राज्य, द्वंय राज्य अराजक राज्य, उग्र राजन्य राज्य, साम्राज्य नगर राज्य, और संघ राज्य थे। ये सम्पूर्ण भारतवर्ष में यत्र–तत्र फैले थे और अपने अपने दण्ड विधान के अनुसार राज्य पर नियन्त्रण रखते थे। ये राज्य प्रजा की रक्षा करना, धर्म की रक्षा करना, कर वसूलना, प्रजा का कल्याण करना और आर्थिक व्यवस्था बनाये रखने का कार्य करते थे। राज्य में कानून को सर्वोच्च महत्व दिया जाता था। इसके पश्चात मानव प्रवृत्तियों पर ध्यान रखा जाता था। अपराध नियन्त्रण के लिये सन्तुलित दण्ड व्यवस्था अपनायी जाती थी। यह प्रयास किया जाता था कि वहाँ के निवासी अपने अपने स्वधर्म का पालन करें । सर्वप्रथम जो आश्रम व्यवस्था ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ निर्धारित की गई थी तथा जिसका सम्बन्ध व्यक्ति की विभिन्न आयु से था उसके पालन पर जोर दिया जाता था। ब्राह्मण का धर्म अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना और करवाना दान लेना और दान देना था। क्षत्रिय का धर्म अध्ययन करना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्र धारण करना और प्राणियों की रक्षा करना था। वैश्य का स्वधर्म अध्ययन करना, यज्ञ करना, दान देना, कृषि, पशुपालन ओर व्याार द्वारा धनोपार्जन करना था।शूद्र का स्वधर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना, कृषि, पशुपालन, व्यापार और शिल्प आदि के कार्यों से जीविका उपार्जन करना था। प्राचीन धर्मशास्त्रियों ने वर्ण व्यवस्था का अनुपालन करने पर बल दिया। इसलिये उन्हे सलाह दी जाती थी कि कोई भी व्यक्ति स्वधर्म की अवहेलना न कर, इसलिये राजा स्वधर्म की अवहेलना करने वालों को दंडित करके नियन्त्रित रख सकता था। वेदों के अनुसार शान्ति व्यवस्था सुरक्षा अैर न्याय राज्य के मूल उद्देश्य थे। इसके अतिरिक्त राजा का यह भी कर्तव्य था कि वह सदाचार को प्रोत्साहित करे, दुष्टों को

दण्ड दे धर्म का संवर्धन अर्थात कृषि, उद्योग, वाणिज्य, की प्रगति करे।, काम संवर्धन, शान्ति और व्यवस्था स्थापित करके प्रत्येक नागरिक को बिना विघ्न बाध्य के जीवन सुख भोगने का अधिकार मिले। संगीत, नृत्य चित्रकला तथा स्थापत्य का विकास करे, ललित कलाओं का संरक्षण करे, यह राज्य का प्रमुख उद्देश्य था। राज्य को राज्यशास्त्रियों, दार्शनिकों, तथा वैज्ञानिकों ने व्यावहारिक द्रष्टिकोण अपनाकर चारों वर्णों के हित चिन्तन की सलाह दी थी।

राजा पृथु ने श्रीमद्भागवत महापुराण के माध्यम से यह उपदेश दिया कि राजा होने के नाते मेरा कार्य प्रजाजनों का शासन करना, उनकी रक्षा करना, उनकी आजीविका का प्रबन्ध करना तथा उनकी अलग अलग मर्यादायें बनाये रखना है।

'अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः।

रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेनुषु स्थापिता पृथक्।।'[191]

राजा पृथु कहते है कि जो राजा प्रजा को धर्म मार्ग की शिक्षा न देकर केवल उससे कर वसूल करने में लगा रहता है वह केवल प्रजा के श्राप का ही भागी होता है और अपने ऐश्वर्य से हाथ धो बैठता है अर्थात राजा का यह कर्तव्य है कि जो ध ान कर के रूप में प्रजा से वसूल करे उसे जनकल्याण के लिये व्यय करे—

'य उद्धरेतकरं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन्।

प्रजानां शमलं भुंडे. भगं च स्वं जहाति सः।।'[192]

उसने अपनी प्रजा को भी यह सलाह दी कि सभी लोग अपने आश्रम और वर्ण धर्म के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करते रहें।

तत् प्रजा भर्तृपिण्डार्थ स्वार्थ मेवानसूयवः।

कुरूताधोक्षज धियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ।।'[193]

पृथु कहते हैं कि मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि जन प्रजाजन अपने अपने धर्मों के द्वारा धार्मिक कार्य करते है अर्थात उन्हौंने प्रजा को यह सलाह दी कि हर व्यक्ति अपने अपने धर्म का पालन श्रृद्धा और भक्ति के साथ करे।

'अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रहं

हरिं गुरूं यज्ञभुजामधीश्वरम् ।

स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका

निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ।'[194]

पृथु ने ब्राह्मण वर्ण को सबसे ऊँचा माना है तथा अन्य वर्ण के लोगों को सलाह दी हैं कि वे विनयपूर्वक ब्राह्मण की सेवा करें, क्यों कि ब्राह्मण सभी शास्त्रों के जानकार मोक्ष प्रदाता तथा देवताओं को प्रसन्न करने वाले होते हैं।

यत्सेवयाशेष गुहाशयः स्वराड्

विप्रप्रियतुष्यति काममीश्वरः ।

तदेव तद्धर्मपरै र्विनीतैः

सर्वात्मना ब्रह्मंकुलं निषेव्यताम् ।।'[195]

राजा पृथु ने यह उपदेश दिया कि प्रत्येक राज्य के राजा का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह योग्य ब्राह्मण का सम्मान करे और उसे राज्याश्रय प्रदान करे। सनकादि मुनियों ने राजा पृथु को उपदेश दिया कि राजा उदारमन, प्रियवचन, हितकर वचन, बोलने वाला, सौम्य गुणों के द्वारा प्रजा का रंजन करने वाला होना चाहिए तभी उसका नाम राजा सार्थक है। जिस प्रकार गर्मी में पृथ्वी का जल खींचकर सूर्य वर्षाकाल में उसे पुनः पृथ्वी पर बरसा देता है तथा अपनी किरणों से सबको ताप पहुँचाता है। उसी प्रकार राजा कर रूप में प्रजा से धन लेकर उसे अकाल आदि के समय मुक्त हस्त से प्रजा के हित में लगा देते थे।

' विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ।

सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ।।'

' गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः ।

मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्येगुणैः संरउजन प्रजाः ।।

राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापर ।

सूर्यवद्धिसृजन गृहन प्रतिपंश्च भुवो वसु ।।[196]

पृथु को उपदेश देते हुये सौनक आदि ऋषि यह बतलाते है कि राजा को अग्नि के समान तेजवान, इन्द्र के समान अजेय, पृथ्वी के समान क्षमाशील और मनुष्य की समस्त कामनायें पूरा करने वाला होना चाहिये।

'दुर्धर्षस्तेज से वाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः।

तिविक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्ट दो नृणाम।।[197]

कभी कभी राजा को प्रजा की इच्छा का भी ध्यान रखना चाहिये तथा किसी अभीष्ट कार्य के लिये धन खर्च करने में संकोच नहीं करना चाहिये, उसे धैर्यवान होना चाहिये।

'वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन्।

समुद्र इव दुर्बोधः सत्वेनाचल राडिव।।'[198]

राजा का यह भी कर्तव्य है कि वह दुष्टों का दमन करे, शत्रुओ का नाश करें, आश्चर्यपूर्ण वस्तुओं का संग्रह करें, राजकोष की वृद्धि करें तथा ध्यान को छुपा कर रखें।

'धर्मराडिव शिक्षायामाश्रर्च्ये हिमवानिव।

कुबेर इव कोशाढयो गुप्तार्थो वरूणो यथा।।[199]

राजा का शरीर बलशाली होना चाहिये, उसका पराक्रम सामान्य व्यक्तियों से अधिक होना चाहिये वह बोलने में होशियार, काम करने में तेज तथा अन्य के क्रोध ा को बर्दाश्त करने वाला नहीं होना चाहिये।

'मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा।

अविष ह्यतया देवो भगवान् भूतराडिव।।[200]

राजा को रूपवान, उत्साही, प्रजापालक और राज्य करने में सामर्थ्यवान होना चाहिये, उसे विचारवान, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला, गऊ, ब्राह्मण, गुरूजनों का शुभचिन्तक और परोपकारी होना चाहिये।

'कन्दर्प इव सौन्दर्य मनस्वी मृगराडिव।

वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः।।

बृहस्पति र्ब्रह्मवादे आत्मवत्वे स्वयं हरिः।

भक्त्या गोगुरूविप्रेषु विष्वक्सेना नुवर्तिषु ।

ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमें ।।'[201]

कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकलता है कि बुद्धिजीवी विद्वान ब्राह्मणों ने राज्यधर्म से सम्बन्धित सद्ग्रन्थों की रचना की तथा राजाओं ने उन सद्ग्रन्थों के नियमों को कानून समझकर उन्हे अपने राज्य और समाज में लागू किया तथा उस राज्य में रहने वाली चारों वर्णो की प्रजा ने उसका अनुपालन किया।

शुकदेव जी मानव जीवन, राज्य और पृथ्वी के यथार्थ को व्यक्त करते हुये कहते हैं कि अनेक राजागण जो स्वयं मौत के खिलौने है वे विजय अभियान छेड़ते है। वह लोग सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी बनना चाहते हैं और समुद्र को अपनी खाई मानने लगते है। पहले वह एक देश को जीतते हैं फिर दूसरे देश को जीतते है। वे नहीं जानते कि उनकी मृत्यु सुनिश्चित है, वे राज्य के लालच में पिता–पुत्र, भाई–भाई आपस में लड़ जाते हैं और एक दूसरे को मारते हैं बाद में स्वयं मर जाते हैं । बडे बडे राजा इस संसार में हुये जिनका नाम मात्र शेष है अब वे नहीं है, इसलिये कोई भी व्यक्ति शक्तिशाली नहीं है इसलिये यह राज्य राजा की मात्र धरोहर है, राजा का कर्तव्य है कि इसे धरोहर समझकर जनता का पालन निःस्वार्थ भाव से करें। राज्य विस्तार के लिये हिंसा का सहारा न लें तथा पारिवारिक सम्बन्धों में कटुता न आने दें। यह पृथ्वी शाश्वत है और इसमे रहने वाले तथा राज्य करने वाले नरेश केवल खिलौने मात्र है।

'दृष्ट्राऽऽत्मनि जये व्यग्रान नृपान् हसति भूरियम्।

अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडन का नृपाः।।

काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद् विदुषामपि।

येन फेनोपमें पिण्डे येऽति विश्रम्भिता नृपाः ।[102]

यदि समाज में वर्ण व्यवस्था का निर्धारण धार्मिक भावनाओं के आधार पर हुआ है तथा यदि यह स्वीकार किया जाये कि धर्म और समाज दोनों ही परमात्माकृत है, तो निश्चित ही वर्ण और धर्म कर्तव्यों का बोध कराते हैं। इस समाज में राजा भी द्वितीय वर्ण का सदस्य है जो प्रथम वर्ण के निर्देश के अनुसार शासन करता है। तथा वह अपनी राजनीति का प्रभाव व सिद्धान्त व्यावहारिक रूप में चारों वर्णों में डालता है। शान्ति व्यवस्था के उद्देश्य से समाज के अन्य वर्ण राजा की राजनीति से प्रभावित होकर उसका अनुपालन करते है। यदि राज्य व्यवस्था ने वर्ण व्यवस्था का संरक्षण न किया होता तो भारतीय संस्कृति का प्राचीन स्वरूप जो वर्ण व्यवस्था पर आधारित थी, वह आज हमें किसी भी स्थिति में दिखलाई नहीं देती । इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय राजनीति में वर्ण व्यवस्था के मौलिक स्वरूप को बनाये रखा व उसे राजनीति के प्रभाव में रखा। इस वजह से हमारी विशिष्ट संस्कृति जो विश्व की प्रचीनतम संसकृति है वह भारतीय समाज में आज भी दिखलायी देती है।

राजनीति ने वर्ण व्यवस्था को यहाँ तक प्रभावित किया कि ब्राह्मणो ने अपने लिये पूरी तरह संरक्षण प्राप्त कर लिया। यदि ब्राह्मण कोई अपराध भी करता था तो उसे या तो क्षमा कर दिया जाता था या बहुत हल्का दण्ड दिया जाता था । यदि कोई दूसरे वर्ण का व्यक्ति ब्राह्मणों के प्रति कोई अपराध करता था, तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। वाल्मीकि रामायण में भी यह उदाहरण उपलब्ध होता है कि जब सम्भूक नाम का शूद्र तपस्या कर रहा था, उसी समय एक ब्राह्मण बालक की मृत्यु हो गई थी। मृत्यु का कारण सम्भूक की तपस्या को माना गया और सम्भूक को दण्ड दिया गया । इसी प्रकार परशुराम ने सैकड़ोकी संख्या में क्षत्रियों का वध किया किन्तु उन्हें किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जा सका। क्षत्रिय भी अपने लिये कुछ विशेष अधिकार रखता था। दशरथ नन्दन भगवान श्रीराम ने ब्राह्मण वंशीय राजा रावण की हत्या की थी किन्तु उन्हें किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगा। सामर्थ्यवान

व्यक्ति निरंकुश होकर किसी भी प्रकार का उत्पीडन करने के लिये स्वतंत्र प्रतीत होता है। निम्नवर्ण वैश्य और शूद्र सदैव दबाकर रखे गये थे, व धार्मिक और सामाजिक बन्धनों के कारण इनकी प्रतिभाओं को अवरूद्ध कर दिया गया था तथा इन्हें एक ही प्रकार का कार्य करने के लिये बाध्य किया गया। समाज में शूद्रों और दासों की स्थिति अत्यन्त निन्दनीय रही, इन्हे यज्ञ करने, वेद पाठ करने आदि का अधिकार नहीं प्रदान किया गया। यदि शूद्र योग्य था और उसके अन्दर विलक्षण प्रतिभा थी तो उसे विकसित नही होने दिया गया। यह एक पक्षपात पूर्ण राजनीतिक दबाब ही था। इसमें निम्नवर्ण के विकास की गति को अवरूद्ध कर दिया गया था।

इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण धर्म के विरूद्ध 650 ई0 पू0 में एक जनाआंदोलन उठा जिसमें ब्राह्मण धर्म का विरोध किया गया और दो नये धर्म उभरकर सामने आये। ये दो नये धर्म कालान्तर में बौद्ध धर्म और जैन धर्म के नाम से विख्यात हुये। भारतवर्ष के करोडो लोगो ने इस धर्म को अपनाया तथा इस धर्म ने विदेशों में भी लोकप्रियता प्राप्त की।

जिस वर्ण व्यवस्था का निर्माण धर्म स्थापना के उद्‌देश्य से किया गया था। उसका विकास और अनुपालन त्रेता युग में ही एक चौथाई समाप्त हो गया।

'त्रेतायां धर्मवादानां तुर्याशो हीयते शनैः।

अधर्मया दैरनृतहिंसा सन्तोष विग्रहैः। ।'[03]

द्वापर युग आते आते वर्ण व्यवस्था में और ढील आयी इस युग में हिंसा असन्तोष, झूठ ओर द्वैष, अधर्म के इन चरणों की वृद्धि हो गयी। इसके कारण तपस्या, सत्य, दया और दान आधे रह गये तथा इस युग में क्षत्रिय और ब्राह्मणों की प्रधानता हो गयी।

तपः सत्यदयादानेष्वर्ध हसति द्वापरे।

हिंसतुष्टय नृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्म लक्षणैः ।।

हिंसतुष्टय नृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्म लक्षणैः ।।

यशस्विनो महाशालाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ।

आढयाः कुटुम्बिनो हृष्टा वर्णाः द्विजोत्तराः ।।[204]

जब कलियुग का आगमन होता है तो वर्ण व्यवस्था की स्वीकृति केवल एक चौथाई रह जाती है। जैसे जैसे समाज का विकास होता जाता है वर्ण व्यवस्था का लोप होता जाता है। इस युग में लोग लोभी दुराचारी तथा कठोर ह्रदय के होते है तथा बिना किसी कारण से एक दूसरे के शत्रु बन जातें है। लालसा अैर तृष्णा की वृद्धि हदय में हो जाती है। इस युग में शूद्र और केवट जाति के लोग सत्ता में आकर या सत्ता का लाभ उठाकर अपना विकास कर लेते है।

'कलौ तु धर्म हे तू नां तुर्याशोऽधर्म हेतुभिः ।

एधमानैः क्षीयमाणो ह्मन्ते सोऽपि विनθक्ष्यति ।।

तस्मिँल्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्क वैरिणः ।

दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदाशोत्तराः प्रजाः ।।

जब राज्य व्यवस्था छिन्न हो जाती हैं और राजा का नियंत्रण समाज पर नहीं रह जाता, उस समय झूठ, कपट, तन्द्रा, निद्रा हिंसा, विषाद, शोक, मोह, भय ओर दीनता बढ जाती है। उस समय कलियुग माना जाता है। वे भौतिकवादी हो जाते है, उनकी इच्छायें प्रबल हो जाती है। तथा स्त्रियाँ दुष्ट और चरित्रहीन हो जाती है तथा चोर और लुटेरों की संख्या बढ जाती है। वेदों की परिभाषा गलत ढंग से की जाती है। शासन में रहने वाले लोग प्रजा की सारी कमाई हडपकर उनका शोषण करते है। ब्राह्मण भी पथभ्रष्ट होकर जीविका उपार्जन और भौतिक सुखों में लग जातें है। भागवताचार्य का यह द्रष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है कि जब व्यक्ति धर्म की मर्यादा का परित्याग कर देगा और राजनीति का समाज पर कोई नियंत्रण न रह जायेगा। उस समय वर्ण व्यवस्था पूरी तरह दिग्भ्रमित होकर नष्ट हो जायेगी।

'यदा मायानृतं तंद्रा निद्रा हिंसा विषाद नाम् ।

शोकोमोहो भयं दैन्य स कलिस्नामसः स्मृतः।।

यस्मात् क्षुद्रदृशोमर्त्याः क्षुद्रभाग्यामहासनाः।

कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः।।

दस्यूत्कृष्टा जनपदाः वेदाः पाखण्ड दूषिताः।

राजानश्च प्रजामक्षाःशिश्नोदर परा द्विजाः ।।'

वर्ण व्यवस्था राजनीति के नियन्त्रण में न रहने के कारण छिन्न भिन्न हो जाती है ओर व्यक्ति मानव धर्म को भी भूल जाते हैं वे सम्पत्ति के लिये अपने सगे सम्बन्धियों की हत्या कर देते है। और स्वतः भी अपनी हत्या कर लेते है। ये लोग केवल आपनी उदर पूर्ति के साधन ढूँढते है इनकी निगाह में काम वासना की पूर्ति प्रधान रहती है। पुत्र अपने बूढे माँ बाप को घर से निकाल देते है। पिता भी पुत्रों के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह नहीं कर सकता।

'कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विग्रह्य व्यक्तसोह्वादाः।

व्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान्हनिष्न्ति स्वकानपि।।

न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि।

पुत्रान् सर्वार्थकुशलान् क्षुद्राः शिश्नोदरम्भराः।।'[07]

भागवत का रचनाकार यह भी स्वीकार करता है कि कलियुग में शिक्षा का अभाव बढता है। अशिक्षा का विकास होता है पाखण्डियों के प्रभाव में आकर व्यक्ति आपने वास्तविक लक्ष्य को भूल जाता है। अनेक वर्ग ऐसे उत्पन्न होते हैं जो परमात्मा पर आस्था नहीं रखते ।

'कलौ न राजञ्जगतां परं कुरूं।

त्रिलोकनाथानत पादपंकजम्।

प्रायेण मर्त्या भगवन्त मुच्युतं।

यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्न चेतसः'[08]

भागवत का रचनाकार जिस युग में मै पैदा हुआ, उपरोक्त विवरण उस युग की

यथार्थ स्थिति का चित्रण करता है। 650 ई0 पू0 से लेकर ईसा की छठवीं शताब्दी तक भारत की राजनीतिक व्यवस्था में अनेक उत्थान पतन हुये परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में राजनीति का नियन्त्रण न रह गया। इससे लोग पथभ्रष्ट हुये वर्णाश्रम धर्म का अनुपालन ठीक ढंग से नही हुआ पाखण्डवाद की वृद्धि हुई और लोगों को अनेक प्रकार से ठगा जाने लगा। भागवत के रचनाकर का यह मानना है कि राजनीति का सामाजिक व्यवस्था पर नियन्त्रण बहुत आवश्यक है।

5— वर्ण एवं जाति व्यवस्था को प्रभावित करने वाले धार्मिक कारण—

धर्म का निर्माण और उसकी उत्पत्ति कब हुई और क्यों हुई इसके सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते सिर्फ इतना ही सत्य है कि जनसंख्या के विकास के साथ साथ बौद्धिक क्षमता और समाज की आवश्यकतानुसार व्यक्तियों को उनके कर्तव्यों का बोध कराना अत्यन्त आवश्यक सा हो गया था। इसलिये इस सिद्धान्त का सृजन किया गया कि समस्त सृष्टि परिकल्पित परमात्मा की कृति है। परमात्मा के रूप, गुण, निवास, स्थान, और कार्य क्षमता के संदर्भ में कुछ भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया। एक विराट स्वरूप की परिकल्पना की गयी जिसमें समस्त नक्षत्रों और पृथ्वी का निर्माण किया और उसी ने अपनी महाशक्ति से विविध गुणों से युक्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उत्पन्न किया तथा उसी विराट पुरुष ने समाज के चारों वर्णों का भी निर्माण किया। समस्त संसार उसी विराट पुरूष का एक अंग है अर्थात हम सब प्राणी ईश्वर के ही अंश है।

'पुरूषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः।

उर्धो वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत् ।।'

महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसतलम्।

पातालं पादतलत इत लोकमयः पुमान् ।।[209]

परमात्मा के इसी विराट स्वरूप ने मुख से वाणी, अग्नि तथा सात प्रकार के

छन्द, सात प्रकार की धातुओं से निकाले हैं। उसी ने पितरों और देवताओं के भोजन करने योग्य अमृतमय अन्न, अनेक प्रकार के रस तथा जिभ्या (जीभ) उत्पन्न किये है। उसी परमात्मा ने पाँच प्रकार प्राण, इन्द्रियाँ औषधियाँ और सुगन्धित पदार्थ उत्पन्न किये।

'वाचां वहर्न्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः।

हव्यकव्या मृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च।।

सर्वासूनां च वायोश्च तन्ना से परमायने।

अश्विनो रोषधीनां च घ्राणों मोदप्रमोदयोः।।'[10]

कुल मिलाकर भारतीय धर्म में एक ईश्वर की परिकल्पना की गई है तथा यह माना गया है कि यह परमात्मा विशिष्ट शक्ति के रूप मे अवतार धारण करता है। विष्णु पुराण में इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

'तस्य तच्चेत सो देवः स्तुति मित्थं प्रकुर्वतः।

आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः ।।'[11]

इस सन्दर्भ में एक द्वितीय मत उपलब्ध होता है कि परमात्मा स्वतः अवतार नहीं लेता अपितु उसका अंश ही अवतार धारण करता है—

'यदा—यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजाः।

धर्मश्च ह्वासमभ्येति तदा देवो जनार्दनः।।

अवतारं करोत्यत्र द्विधाकृत्वाऽऽत्मन स्तनुम्।

सर्वदैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः।

स्वल्पांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरूते स्थितम्।।'[12]

अवतारवाद का तृतीय सिद्धान्त यह है कि परमात्मा अपने पूर्ण स्वरूप के साथ अवतार धारण नहीं करता बल्कि उसका अंश ही अवतार धारण करता है। परमात्मा के इन दोनों स्वंरूपों को संकर्षण और वासुदेव के नाम से पुकारा गया।

'लस्येका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तम।

नित्यं दिविष्ठा या राजन् तपश्चरति दुश्चरम्।।

द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपापयौ।

प्रजा संहार सगर्थि किमध्यात्म विचिन्तकम्।।

सुप्त्वा युग सहस्त्रं स प्रादुर्भवति कार्यतः।

पूर्णे युगसहस्त्रे तु देवदेवो जगद्पतिः।।'[13]

अवतारवाद की पुष्टि के लिये एक और सिद्धान्त उपलब्ध होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार परमात्मा के चार भाग है ये चार भाग निर्गुण, वासुदेव, संकर्षण, और अनुरूद्ध हैं इनको क्रमशः पुरूष, जीव, मन, और अंधकार के नाम से पुकारा गया है। संसार में केवल परमात्मा मूर्त अवतार धारण करता है, जिसका उद्देश्य संसार की रक्षा करना है। परमात्मा का स्वरूप जहाँ अवतार धारण करता है वहाँ वह अपना विशिष्ट स्वरूप धारण कर लेता है तथा अवतरति होकर राक्षसों का विनाश करता है और धर्म की स्थापना करता है।

'देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थता।

गृह्माति तत् स्वभावं च वासुदेवेच्छया सदा।।

ददात्यभिमतान् कामान् पूजिता साद्विजोत्तमाः।।'[14]

अवतारवाद की यह परिकल्पना करीब करीब सभी पुराणों में उपलब्ध होती है यथा–

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमऽधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्हम्।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।'[15]

' नृणां निः श्रेयसार्थाय व्यक्ति र्भगवतो नृपः।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।।'[16]

तैर्दर्शनीयावय वैरूदार–विलासहासेक्षितवाम सूक्तैः।

हृतप्राणँश्च भक्तिरनिच्छतो में गतिमण्वीं प्रयुंक्ते।।[217]

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन् मुमुक्षूणां दुराशयात्।

प्रसंख्यानाय तत्वानां सम्मतायात्मदर्शने।।[218]

'जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्यज्ञे च शिथिलः प्रभुः।

कुर्त धर्मव्यवस्थनाम् अधर्मस्य च नाशनम्।।[219]

वह्नीः संसारमाणो वैयोनोर्वर्तामि सन्तम।

धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।।[220]

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान बिभर्म्यहम्।।[221]

अवतारवाद की परिकल्पना केवल पुराणों की ही देन नहीं है बल्कि वेदों में भी अवतारवाद की परिकल्पना परिलक्षित होती है।

(क) *रूपं रूपं मधवा बोभवीति*

माया कृण्वान नस्तन्वं परिस्वाम्।

त्रिपद दिवः परिमुहूर्तमागात्

स्वैर्मन्त्रैरनृतुया ऋतावा।[222(क)]

(ख) *रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव*

तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय।

इन्द्रो मायाभिः पुरू रूप ईयते।

युक्ता हास्य हरयः शता दश।[222(ख)]

ऋग्वेद संहिता में दिये गये बीज शतपथ ब्राह्मण में भी उपलब्ध होते है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने ही मत्स्य, कूर्म तथा वाराह अवतार धारण किये।[223] शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त तैत्तरीय ब्राह्मण में भी अवतारवाद सिद्धान्त की पुष्टि होती है।[224] कुल मिलाकर साराशं यह निकलता है कि पुराणों में वर्णित अवतारवाद वेदो से ग्रहण किया गया है तथा जिसका अनुसरण समस्त पुराणों के

अतिरिक्त भागवत पुराण ने भी किया है।

'जगृहे पौरूषं रूपं भगवान महदादिभिः।

संभूतं षोडशकलमादै लोकसिसृक्षया।।

एतन्नानावताराणां निधनं बीजमव्ययम्।।

यसयांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ.नरादयः।।'[25]

भागवत महापुराण को देखने से यह प्रतीत होता है कि इस महाग्रन्थ में भी अवतार वाद के सिद्धान्त को अन्य ग्रन्थों से ग्रहण कियाहै। धार्मिक ग्रन्थों और पुराणों में 24 अवतारों की परिकल्पना की गयी है । इनमें से निम्न अवतार अब तक हो चुके है–

(1) कौमार संग (सनक, सनन्दन, सनातन तथ सनत्कुमार), (2) वाराह, (3) नारद (4) नर–नारायण, (5) कपिल, (6) दत्तात्रेय, (7) यज्ञ, (8) ऋषभदेव, (9) पृथु, (10) मत्स्य, (11) कच्छप, (12) धन्वन्तरि, (13) मोहिनी, (14) नरसिंह, (15) वामन, (16) परशुराम, (17) वेद व्यास, (18) रामचन्द्र, (19) बलराम, (20) कृष्ण, (21) बुद्ध,

परमात्मा के तीन अवतार इसमें शामिल नहीं है भागवत पुराण में अवतारों के सन्दर्भ में यह श्लोक उपलब्ध होते हैं।

'अवतारा ह्यंसख्येया हरेः सत्वनिधेद्विजाः।

यथाऽविदासिंनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्त्रशः।।

ऋषयों मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसाः।

कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापत पस्तथा।।'[26]

चौबास अवतारों की परिकल्पना के साथ साथ श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रत्येक जीव को ही ईश्वर का अंश मान लिया गया है। इसलिये ईश्वर स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही रूप धारण करता है। भागवत पुराण के प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में भगवान के अवतारों के सन्दर्भ में सविस्तार वर्णन उपलब्ध होता है।

प्रत्येक पुराण में अनेक देवताओं की परिकल्पना की गयी है। पुराणों के

मतानुसार परिकल्पित देवता किसी एक उददेश्य की पूर्ति करता है यह देव जीवों को आश्रय प्रदान करते है इन देवों का कभी विनाश नही होता।[225] पुराणों के अनुसार उन्हे विश्वेश, प्रभु और कर्ता की उपाधि दी गयी है।[229]

पुराणों में जो देवता अपनाये गये है। वे देवता वेदों के ही देवता हैं। इन देवताओं में इन्द्र, सूर्य, विष्णु, अग्नि, वरूण, पूषा, मरूत, साध्व, विश्वदेवत, रूद्र, आदि शामिल है पुराणों में रूद्र का एकीकरण हुआ है।

विष्णु वायु और ब्राह्मण्ड पुराणों के अनुसार त्रिलोक के राजाओं के रूप में इन्द्र को स्वीकार किया गया हैं यह धारण ऋग्वेद में भी उपलब्ध होती है।

द्वेइदस्य क्रमणे स्वर्दृशोअभिख्याय मर्त्यो भ्रुरण्यति।

तृतीयमस्य न किरा.................................... ।[230]

कालान्तर में भगवान विष्णु के नाम पर वैष्णव धर्म का प्रतिपादन हुआ। उन्हें परमात्मा के रूप में स्वीकार किया गया तथा सामान्य जन को यह निर्देश दिया गया कि वह विष्णु को परमात्मा के रूप में स्वीकार करे। उसके अनेक अवतारों की परिकल्पना की गयी, विष्णु के साथ सदैव लक्ष्मी भी अवतार धारण करती थी।

विष्णु को जहाँ परमात्मा को अवतार स्वीकार किया गया है। वहीं शिव को भी आदि देव के रूप में स्वीकारा गया है शिव का महत्त्व वायु पुराण मे अनेक स्थलों में उपलब्ध है। वायु पुराण में उन्हें महादेव के रूप में स्वीकार किया गया है।[231] वायु पुराण के अतिरिक्त अन्य सभी पुराणों में भी शिव महिमा का उल्लेख मिल जाता है। शिव को अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। उन्हे तथा उनके विचित्र स्वरूप को पुराणों में प्रस्तुत किया गया है। उनका पशुओं से सम्बन्ध है इसलिये उनका नाम पशुपतिनाथ है। रूद्र, शिव, शूलपाणि, त्रिशुलधारी, पिनाकी, नीलतोहित, नीलग्रीव, शितिकण्ठ आदि नामो से भी पुकारा गया है। भगवान शिव का वाहन वृषभ है इसीलिये उन्हें वृषभध्वज के नाम से भी पुकारा गया है। भगवान शिव चर्मधारी है वे अत्यन्त क्रोधी, पर्वतो पर निवास करने वाले हजार नेत्र वाले तथा रूद्र रूप धारण

करने वाले हैं भगवान शिव की पूजा लिंग रूप में होती है। भगवान शिव का पुत्र स्कन्द उनकी पत्नी पार्वती तथा उनके एक पुत्र का गणेश है जो ब्राह्मण धर्म में भूत, प्रेत, पिशाच तथा राक्षसों आदि पर भी उनका नियन्त्रण माना गया है। इस तरह से भारतवर्ष के लोग विष्णु के अतिरिक्त शैव धर्म को मानते है।

शिव के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारतवर्ष में सूर्य की उपासना आदित्य और अग्नि के रूप में होती है तथा सविता और मार्तण्ड के रूप में भी सूर्य उपासना की जाती है। सूर्य शौर्य रथ में विचरण करता है। सम्पूर्ण प्राणी मात्र को जीवन प्रदान करता है। इसलिये इसकी उपासना होती है।

सूर्य के बाद शक्ति उपासना पर यहाँ के लोग ज्यादा विश्वास करते है। शक्ति के बारे में विवरण धर्मग्रन्थों मं सर्वत्र उपलब्ध होता है। शक्ति उपासना में लोग माँस मदिरा का प्रयोग करते है तथा यह विश्वास करते है कि यह शक्ति असुरों का विनाश करती है। शक्ति के अनेक नाम हैं । इसकी उत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक सिद्धान्त है। शक्ति का सम्बन्ध इन्द्र, विष्णु, रूद्र तथा ब्रह्मा आदि से जोड़ा गया है। शक्ति की अनेक अनुचारियाँ भी है शाक्य धर्म भारतवर्ष का तृतीय महत्वपूर्ण धर्म है।

इसके अतिरिक्त अन्य देवताओं में इन्द्र वज्रधर पुरन्दर सतक्रति सतीपति के रूप में इन्द्र की पूजा होती रही तथा इन्द्र को वैलोक्यपति भी मान गया । इन्द्र के पश्चात वरूण की उपासना जल के स्वामी के रूप में होती है तथा इसकी पूजा सूर्य के साथ भी होती है। इसके अतिरिक्त अन्य देवताओं में मित्र, परिजन्य, मारूति, आदि शामिल है इनके अलावा अग्नि, सोम, जल, पितर, ब्रह्मा, पृथ्वी, आदि को भी देवता माना गया है। गन्धर्व, अप्सराओं, यक्षों, नागों को भी देवता माना गया है।

देव उपासना के लिये यज्ञों पर सबसे अधिक महत्व दिया गया है। विष्णु पुराण, ब्रह्मण्ड पुराण आदि ग्रन्थों में यज्ञों के प्रकार यज्ञ विधि का विश्लेषण मिल जाता है। इसमें यज्ञशाला, यज्ञ के उददेश्य, यूप, बलि पशु, अग्नि, यज्ञपात्र, कुश, समिधा, हविष, पुरोडॉस, दक्षिणा और वैदिक मन्त्रों का पूर्ण उल्लेख होता है। यज्ञ

में प्रायश्चित, पुरोहितों की संख्या यज्ञ में शामिल होने वाले सदस्य आदि का वर्णन मिलता है। यज्ञों में राजसूय, बाजपेय, अग्निष्टोम, दशपूर्णमासा, अग्निहोत्र और नरमेध का उल्लेख है।

यज्ञों के पश्चात सम्पूर्ण भारतवर्ष में तीर्थों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। तथा तीर्थों को मोक्ष प्रदाता भी कहा गया है। इनमें प्रयाग तीर्थ का स्थान विशेष है। पुराणों मे यह वर्णन आया है कि जो व्यक्ति तीर्थ करते हैं उन्हें स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है तथा वे मोक्ष भी प्राप्त करते है। पुराणों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, सभी को तीर्थ जाने का अधिकार है तीर्थ वही व्यक्ति जा सकता है। जो सदाचारी हो तपस्वी हो श्राद्ध आदि कर्मों पर विश्वास रखता हो दान एवं यज्ञ की क्षमता रखता हो यदि व्यक्ति तीर्थ स्थान में अपने प्राण त्याग दे तो उसे परमगति की प्राप्ति होती है। मुंडन एवं कन्यादान अदि भी तीर्थ स्थलों की दिशा में बैठकर कराना चाहिये। परिव्राजक के रूप में तीर्थ यात्रा करनी चाहिये, यह यात्रा किसी से दान न लेते हुये करनी चाहिये। मुख्य रूप से प्रयाग, वाराणसी, गया, मथुरा, कुरूक्षेत्र, पुष्कर, द्वारका की यात्रा को शुभ माना गया है।

धार्मिक व्यवस्था का प्रभाव वर्णव्यवस्थापर सीधा सीधा पडता है। जिस प्रकार वर्ण की सदस्यता हमें जन्म से उपलब्ध होती है। उसी प्रकार धर्म की सदस्यता भी हमें जन्म से उपलब्ध होती है। अर्थात व्यक्ति जिस देश जाति में उत्पन्न होता है। वह उसी देश और जाति के धर्म का अनुसरण भी करता है। यदि किसी व्यक्ति के माता पिता वैष्णव व शैव अथवा शक्ति उपासक है तो उस कुल में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति भी उन्ही देवताओं की पूजा और उपासना करेगा, जिनकी उपासना उसके पूर्वज करते चले आये है। वह युगधर्म, देवधर्म, वर्णधर्म, का प्रशिक्षण अपने परिवार से ही ग्रहण करता है। तथा उसे परम्पराओं का अनुसरण करते हुये देव उपासना करनी पडती है। यह बहुत कम सम्भव है कि व्यक्ति कुल का परित्याग करके और परम्पराओं की अवहेलना करके किसी नये धर्म का अनुसरण करें। कभी कभी यह

देखा गया है कि विवेकशील और विचारशील व्यक्ति जब किसी धर्म विशेष को तर्क की कसौटी में नहीं कस पाते तो वे किसी दूसरे धर्म को ग्रहण करते है। अतः स्वतः कोई नया धर्म चला देते है।

समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था भी धर्म का ही एक अंग है तथा सम्पूर्ण समाज को चार भागों में विभक्त कर वर्णों की स्थापना की गयी। ये वर्ण वंश, परम्परा,गोत्र, व्यवसाय तथा जातियों के आधार पर निर्मित हुये तथा धर्मशास्त्रों में अपने अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन प्रत्येक वर्ण को करना पड़ता था। प्रत्येक वर्ण के कर्तव्य वर्ण धर्म के हि नाम से जाने जातेथे। ब्राह्मणों के लिये वेदाध्ययन, अध्यापन, ब्राह्मणवृत्ति आदि कर्तव्य निर्दिष्ट हैं। क्षत्रियों के लिये राष्ट्र रक्षा, प्रजा पालन, आदि कर्तव्य निर्धारित है । इन कर्तव्यों को वर्ण धर्म भी कहा गया है। शूद्रों का धर्म उपरोक्त तीन वर्णों की सेवा करना निर्धारित किया गया है। जो लोग अपने कर्तव्यों की अवहेलना करते है उनकी निन्दा भी की गयी है।

श्री मद्भागवत में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा यह शिक्षा दी जाती है कि यदि व्यक्ति भागवत धर्म को अपना ले और भगवान का कीर्तन हृदय से करे तो सारी आसक्तियाँ छूट जाती है, सतयुग में भगवान का ध्यान करने से जो फल मिलना था वह फल केवल भगवान नाम का कीर्तन करने से प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार भागवत धर्म के अनुसार भगवान के नाम का स्मरण करना ही चारों वर्ण के प्राणियों का कर्तव्य है।

'कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्योको महान् गुणः।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंग परं व्रजेत्।।

कृते यद्ध्यायतोविष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्वरिकीर्तनात्।।'[32]

5– धार्मिक भावना का शूद्रों पर प्रभाव और दबाव–

किसी भी इतिहासकार ने आज तक यह स्पष्ट नहीं किया कि भारतवर्ष

के मूल निवासी कौन थे? ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह विवरण उपलब्ध होता है कि आर्यों का आगमन किसी अन्य क्षेत्र से भारतवर्ष में हुआ एवम् उन्होने यहाँ के मूल निवासी अनार्यों को पराजित किया तथा उन्हे बेदखल किया और अपने आधीन कर लिया। जो व्यक्ति आर्यों से पराजित हुये वे उनके दास हो गये और शूद्र नाम से सम्बोधित किये जाने लगे। आर्य विजेता उन्हें अपनी सम्पत्ति मानने लगे, इन शूद्रो में अनेक जन जातीय लोग भी थे तथा इनके सम्बन्ध आर्यों से मित्रतापूर्ण व्यवहार के कारण अच्छे बने रहे। मौर्य काल के पहले लगभग छैः सौ ईसा पू0 से लेकर तीन सौ ईसा पूर्व तक भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। उस समय शूद्रो को राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। एक प्रकार से शूद्र और दास एक ही श्रेणी में रख दिये गये थे। सुप्रसिद्ध विद्वान हॉपकिन्स ने उन्हे दासों की श्रेणी का माना है।[233] यद्यपि यह सत्य नही है, शूद्रों की तुलना दासों से नहीं की जा सकती। वैदिक 'इण्डेक्स' नामक ग्रन्थ में दास को बंधुवा मजदूर माना जाता था, जिन्हे हस्तान्तरित किया जा सकता था।[234] इन कथनों से यह स्पष्ट होता है कि शूद्र शब्द उस मजदूर वर्ग के लिये प्रयुक्त होता था, जो दूसरों की मजदूरी करते थे । ये लोग गृह कार्य, दासों का कार्य, कृषि का कार्य और कारीगरी करते थे। शूद्रों की निन्दा करते हुये यह कहा गया है कि कोई भी रचनात्मक कार्य इनसे नहीं कराया जाता था।[235] ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य ये तीनों वर्ग शूद्रों से श्रमिक का कार्य लेते थे।

मौर्य काल में शूद्र कृषि मजदूर के रूप में कार्य करते थे, इस शासन का कोई नियन्त्रण मजदूरों पर नहीं था। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में शूद्रों को आर्य जाति का एक अंग माना है।[236] अशोक के शासन काल में भी शूद्र वर्ग के साथ न्याय करने का प्रयत्न किया गया किन्तु इससे ब्राह्मण वर्ग नाराज हो गया और शूद्रों को कोई लाभ नहीं पहुँचा।

मौर्यकाल के बाद दो सौ ई0 पू0 से लेकर एक सौ ईसा पू0 तक समाज में

अनेक परिवर्तन हुये। मनु को कट्टर शूद्र विरोधी माना गया है। इससे वर्ण संघर्ष उत्पन्न हो गया । इसमें विदेशियों ने भी सहयोग दिया तथा कालान्तर में कला कौशल के विकास के कारण गुप्त युग तक शूद्रों की स्थिति परिवर्तित हुई। इस युग में शूद्रों को कुछ धार्मिक और नागरिक अधिकार प्रदान किये गये तथा उन्हें वैश्यों की वराबरी का दर्जा दिया गया। अनेक धार्मिक ग्रन्थों में वैश्यों की स्थिति कम की गयी और शूद्रो का दर्जा बढाया गया। अनेक ब्राह्मणों को भूमिदान किया गया , जिसके कारण किसानों की स्थिति कमजोर हुयी।[237] ब्राह्मणों को भूमिदान के कारण ही कृषक शूद्रों की संख्या बढी किन्तु गुप्त काल में ये लोग कृषि व्यवसाय त्याग कर शिल्पकार और उत्पादक बन गये थे।

गुप्तकाल में शूद्रों की स्थिति बहुत अच्छी थी किन्तु इस युग में ये लोग ब्राह्मण विरोधी बन गये थे तथा इन्हें निम्न वर्ग तथा मध्य वर्ग का माना गया था । शूद्र तथा अन्य तीनों वर्णों में एक प्रकार का सतुंलन बना हुआ था। इस संतुलन का कार्य वैश्य करते थे। यदि शूद्रों को कभी ऋण दिया जाता था और वे अपने ऋण की अदायगी नही कर पाते थे तो उन्हे गुलाम बनाया जाता था। कालान्तर में ये शूद्र अनेक उपजातियों में विभाजित हो गये। अमरकोश में इनकी प्रमुख जातियाँ मालाकार, कुम्भकार, कारीगर, जुलाहा, रंगसाज, आदि मानी गयी है।[238] घरेलू नौकर, बटाई दार, चरवाहा अन्य शूद्रों की अपेक्षा ऊँचे माने जाते थे। शूद्र सवर्णों की बराबरी नहीं कर पाये किन्तु वे अपने को दूसरे अछूतों से श्रेष्ठ बतलाते रहे। गुप्त युग में यह आशंका थी कि शूद्र सवर्णों के विरोध में कहीं सशस्त्र क्रान्ति न कर दें। इसलिये वर्ण व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किया गया। वर्ण को ईश्वर द्वारा निर्मित बताया गया और कर्म के सिद्धान्त पर विश्वास दिलाया गया । लोगों से यह कहा गया कि यदि वे अपने वर्ण धर्म का अनुपालन नहीं करेगें तो उन्हें उसका कुपरिणाम भोगना होगा।[239] मजदूर वर्ग ब्राह्मणों से बहुत डरता था। इसी समय क्षत्रिय वंशावली का भी निर्माण हुआ परन्तु उससे शूद्रों को कोई लाभ नहीं हुआ,इसी समय कुछ दबंग शूद्रों ने

अपना संगठन बनाया और उन्होने कौटिल्य के कहने पर शूद्रकुल में उत्पन्न चन्द्रगुप्त मौर्य का समर्थन दिया। बौद्ध, जैन, शैव, और वैष्णव सुधारवादी आन्दोलनों ने कर्मकाल के आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठाई उन्हें केवल धार्मिक समानता का आश्वासन दिया गया तथा शूद्र भी अपने को समाज का अभिन्न अंग मानने लगे। यदि हम ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर भारतीय संस्कृति का विश्लेषण करते हुये वर्ण व्यवस्था पर विचार करे तो हमें लगता है कि यह व्यवस्था गुण कर्म और स्वभाव के आधार पर की गयी होगी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के सन्दर्भ में यह मन्त्र ऋग्वेद में उपलब्ध होता है—

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

उरूस्तदस्य यद्वैश्यः पद्‌भ्यां शूद्रोऽजायत्।।'[240]

शूद्र उस वर्ण के रूप में स्वीकार किया गया है जो सेवा कार्य से जीविका उपार्जित करता था। शूद्र का वैदिक अर्थ उन जातियो से है। जिनका ज़ीवन शोक से युक्त है। डा0 सूर्यकान्त ने शूद्र का अर्थ इस प्रकार लगाया है। ' मै शूद्र शब्द की व्याख्या करने का प्रयत्न करता हूँ जिसकाअर्थ होता है 'सुई + द्रा' दो शब्द मिलकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है एक व्यक्ति जो अपने जीवन के पीछे दोडता है, जिसका अर्थ होता है। एक मूर्ख प्राणी जो श्रम से अपनी जीविका उपार्जित करता है।''[241]

यदि हम शूद्रों की उत्पत्ति का धार्मिक आधार स्वीकार करें तो उनकी उत्पत्ति पैरों से मानी जाती है यदि इसका वास्वतिक विश्लेषण करें तो पैर शरीर का महत्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार शरीर का पूरा बोझ पैरों के ऊपर है उसी प्रकार समाज का पूरा बोझ शूद्रों पर है यदि पैर आगे नहीं बढोगे तो शरीर भी आगे नहीं बढ़ सकता , इस द्रष्टि से शूद्र यदि गतिशील न होगें तो समाज भी आगे नहीं बढ़ सकता, इस द्रष्टि से शूद्र समाज के महत्वपूर्ण अंग है। अनेक धर्मग्रन्थों में यह उल्लेख मिलता है कि गधे का सम्बन्ध वैश्य और शूद्र जाति से है अर्थात जिस प्रकार

गधा बोझ ढोता है उसी प्रकार शूद्र भी व्यवसाय के लिये वैश्य गा बोझ ढोता है। अर्थात गधा अैर शूद्र में कोई फर्क नहीं है शूद्र का कर्तव्य है कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य की सेवा करे उसका स्वामी इच्छाअनुसार उसका उपयोग करे तथा क्रोधित होने पर उसे पीटे भी। ताण्डव ब्राह्मण में उल्लेख प्राप्त होता है–

'तस्मात्पादावने ज्यन्नातिवर्द्धते, पत्तो हि सृष्टः।'[242]

यदि शूद्रों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाय तो वे व्यक्ति शूद्र कहलाते थे जो किसी देवी या देवता को नहीं मानते थे। जिनके कोई सामाजिक रीति–रिवाज नहीं थे। जो आर्य संस्कृति पर विश्वास नहीं रखते थे। आर्यों के ऐसे व्यक्तियों से संघर्ष होते रहते थे और आर्य इन्हें जीतकर अपना गुलाम बना लेते थे। आर्यों के समय में जो आदिवासी जातियाँ थी, उनसे आर्यों के संघर्ष हुए और आर्यों ने उन्हें जीता और बाद में ये शूद्र कहलाने लगे। कुल मिलाकर गुण और कर्म के आधार पर स्वभाव के अनुसार ही शूद्रों की उत्पत्ति हुई जो व्यक्ति बुद्धि से कमजोर साधन हीन होते थे वे दूसरों की सेवा करके ही जीविका उपार्जित कर पाते थे। इसलिए सेवा करने वाली जाति को ही शूद्र माना गया।

यदि दस्यु अथवा दास का विश्लेषण किया जाय और इन पर वैदिक मन्त्रों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि दस्यु और आर्यों के परस्पर संघर्ष होते रहते थे। ऋग्वेद में इसका उल्लेख मिलता है।

'विजानीह् यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्यते रन्धया शासद्व्रतान्।'[243]

दस्युओं को दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाला धर्म रहित, दुष्ट स्वभाव वाला मनुष्य कहा गया है। किन्हीं–किन्हीं स्थानों पर उन्हें असुर नाम से भी सम्बोधित किया है अनेक विद्वानों का यह भी मानना है कि 'दस्यु' शब्द दास शब्द का पर्याय है। जिसका अर्थ है आधीनता अथवा गुलामी स्वीकार करने वाला, जो दस्यु या दास आर्यों के आधीन होते थे वे कृषि का कार्य करते थे और सेवा कार्य भी करते थे। अनेक वेद मन्त्रों में दस्युओं के संहार के लिए प्रार्थना की गयी है। किन्हीं भी अर्थों

में दस्युओं अथवा दासों को शूद्र वर्ण में शामिल करने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि शूद्र आर्यों का ही चतुर्थ वर्ण था और दस्यु उन लोगों को कहा जाता था जो अनार्य थे और सदैव अपराधों में लगे रहते थे, इनकी तुलना डाकुओं से की जा सकती है। दस्यु शब्द को दास शब्द से भी जोड़ना उचित प्रतीत नहीं होता, क्यों कि दास जीविका उपार्जन के लिए दूसरों के आधीन रहकर अर्थ लाभ प्राप्त करता था। जब कि दस्यु अपराधों में लगा रहता था और स्वेच्छाचारिता का जीवन व्यतीत करता था। इसलिए दस्यु शब्द का अर्थ दास और शूद्रों से नहीं लगाया जा सकता। शूद्र न तो दास थे और न दस्यु वे केवल संसाधन हीन व्यक्ति थे। जो तीन वर्णों की सेवा करके अपनी जीविका चलाते थे।

ऋग्वेद में आर्यों को विद्वान आचरण शील और नित्य यज्ञ करने वाला कहा गया है।[244] जबकि शूद्रों को, अंग्रेज विद्वान ग्रिफिथ के अनुसार शूद्र आर्यों के वे व्यक्ति थे जो तीनों उच्चजातियों के लिए श्रम करते थे जिन्हें ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य कहा जाता था। इन जातियों का उल्लेख ऋग्वेद में है। इसी प्रकार का उल्लेख अथर्ववेद में भी है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि " हे मनुष्यों तुम्हें जिसने उत्पन्न किया है, जिसने शूद्र, आर्य, द्विज रचे हैं उनके अनुसार तुम सब का म करो तथा उसकी दस प्राण, पाँच महाभूत, मन, बुद्धि, चित व अहंकारों से स्तुति करो।"[245] उपरोक्त पद का वास्तविक अर्थ यह है कि समस्त वर्णों का निर्माण परमात्माकृत है। इसलिए सभी को परमात्मा की उपासना करनी चाहिये। अन्य धर्म ग्रन्थों में यह वर्णन उपलब्ध होता है कि शूद्र और आर्य, सेवक और स्वामी की भावना से उत्पन्न हुए। जिस प्रकार से दिवस, अंधकार और प्रकाश दो भागों में विभक्त रहता है, उसी प्रकार समाज में मूर्ख ओर ज्ञानवान दो प्रकार के प्राणी रहते हैं। ठीक इसी प्रकार आर्य ज्ञानवान और शूद्र ज्ञान रहित हैं, इसलिए उनके कर्म अलग–अलग हैं। इसलिए शूद्र को ज्ञान की न्युनता के कारण ज्ञानवान की सेवा करने का कार्य सौंपा गया है।

यदि वेदों का सूक्ष्म द्रष्टि से अध्ययन किया जाय तो वेदों ने शूद्रों के साथ कोई भेदभाव पूर्ण बर्ताव नहीं किया। वेदों ने वेद पढ़ने का अधिकार समस्त जातियों को प्रदान किया है। सुप्रिसद्ध विद्वान रवीन्द्रनाथ मुखर्जी ने यह स्वीकार किया है कि वेदों को पढ़ने का अधिकार शूद्रों को भी प्रदान किया गया था।[246] यर्जुर्वेद पर एक स्थान पर यह वर्णन मिलता है कि मैं परमेश्वर इस जगत के कल्याण एवं मुक्ति हेतु ऋग्वेद आदि चारों वेदों की वाणी का सब मनुष्यों अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र, स्त्री आदि सबके लिए उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो, इससे स्पष्ट होता कि जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, चन्द्र, सूर्य आदि सभी पदार्थ सब के लिए हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए बनें हैं।[247] वैदिक ऋषियों का जो उल्लेख हमें प्राप्त होता है उनमें तीन ऋषि शूद्र जाति के थे। इनमें वसिष्ठ, कवष ऐलूष और महीदास के नाम उपलब्ध होते हैं। एक ही परिवार में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति व्यवसाय और कर्म के आधार पर अलग–2 वर्ण को धारण करते थे। यह कहीं भी सिद्ध नहीं होता कि वैदिक युग में आर्यों और शूद्रों के बीच में भोजन और विवाह के लिए कोई प्रतिबंध था। केवल अपनी साधन हीनता और अयोग्यता के कारण ही व्यक्ति शूद्र वृत्ति को धारण करता था।

यदि शूद्रों की उत्पत्ति के बारे में अध्ययन किया जाय तो यह तथ्य उपलब्ध होता है कि प्राचीन काल में शुद्ध वर्ण और संकीर्ण वर्ण दो प्रकार के नागरिक थे। शुद्ध वर्ण में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातियाँ थी। संकीर्ण वर्ण में वे लोग शामिल थे जिन्हें अनुलोमज, और प्रतिलोमज कहा जाता था। जब एक वर्ण की माता ओर दूसरे वर्ण का पिता होता था तो उनके वर्णसंकर संताने उत्पन्न होती थी तथा इनसे अनेक उपजातियाँ उत्पन्न हुई। इन जातियों को ग्यारह भागों में विभक्त किया गया है तथा इन्हें शूद्र श्रेणियों में रखा गया है। विष्णु धर्मसूत्र आदि ग्रन्थों में कहा गया है कि ब्राह्मण वर्ण उन शूद्रो के यहाँ खा सकते हैं जो उनके यहाँ साझे में खेती करता हो, कुल का पुराना मित्र हो, गऊवें चराने वाला जो अपने ब्राह्मण

स्वामी की गायें चराता हो उनके यहाँ वह भोजन कर सकता है, दास या नौकर, नाई तथा भोजन के लिए निमन्त्रित करने वाले व्यक्ति के यहाँ भोजन किया जा सकता है।[248]

मनु स्मृति आदि ग्रन्थों में अनेक ऐसे शूद्रों का उल्लेख है जिनके यहाँ भोजन करने के लिए मना किया गया है। मुख्य रूप से वह क्षत्रिय जिसके शूद्र पत्नी हो शैलूष, तुन्नवाय, लोहार, निषाद, रंगवतरक, स्वर्णकार, वेण, वुरूड, शौण्डि (धोबी) के यहाँ भोजन करने के लिए मना किया गया है। यदि कोई इनका अन्न खाता है तो उसका शरीर, आयु, यश और प्रतिष्ठा कम होती है। चर्मकार के यहाँ भी भोजन करने के लिए मना किया गया है, ऐसी स्त्री जिसके सम्बन्ध दस्यु, वैदेह और निषाद से हों उसके यहाँ भोजन न करें तथा उससे उत्पन्न सन्तानों के यहाँ भोजन न करें। मुख्य रूप से स्वर्णकार, कुम्भकार, तन्तुवाय, रजक, धोबी, तेली, के यहाँ भोजन न करें। चिकित्सकों के यहाँ भोजन न करें। नाच–गाना करने वाला, शराब बेचने वाला, शूद्र को पढ़ाने वाला और उसके यहाँ यज्ञ कराने वाले के यहाँ भोजन करने से मना किया गया है।[249] शूद्रों के यहाँ भोजन करने के लिए केवल इसलिए मना किया गया था कि ये लोग अपने व्यावसायिक कर्म के कारण प्रायः अशुद्ध रहते हैं इसलिए इनके यहाँ ब्राह्मणों को भोजन न करने का निर्देश था। ब्राह्मण के यहाँ का भोजन अमृत, क्षत्रिय के यहाँ का भोजन दुग्ध, वैश्य के यहाँ का अन्न, और शूद्र के यहाँ का अन्न रूधिर माना गया है। किन्तु यदि शूद्र पवित्र होकर भोजन कराये तो उसके यहाँ भोजन करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

गौतम धर्मसूत्र में शूद्रों को जो संस्कार करने चाहिए उनका विवरण उपलब्ध होता है शूद्र निम्न संस्कारों को अपने यहाँ कर सकता है– निषेक, पुंसवन, सीमान्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन तथा चौल,परन्तु इनमें वह वैदिक मन्त्रों का उच्चारण न करें। इसी प्रकार विवाह में भी वैदिक मन्त्रों के उच्चारण का अधिकार उसको नहीं है। जब उसका नामकरण संस्कार हो उस

समय वह नाम के अन्त में दास व अन्य सेवावाची शब्द लगाये।

शूद्र भी पंचमहायज्ञों का आयोजन कर सकता है किन्तु यह यज्ञ सामान्य अग्नि में किए जा सकते हैं। वह मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का प्रयोग नहीं कर सकता। उसके स्थान पर वह नमः शब्द प्रयोग कर सकता है। गौतम धर्मसूत्र में उसके लिए निर्धारित मन्त्र इस प्रकार है—

'देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।

नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः।।[251]

शूद्र लोग सात प्रकार के पाक् यज्ञ करने के अधिकारी है— अष्टका, पार्वण, श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी।[252] इस प्रकार शूद्र प्रतिदिन अपने यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं। यज्ञ प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय किये जा सकते हैं। शूद्र को मृत्यु संस्कार करने का पूरा अधिकार है। शूद्र के यहाँ जन्म मरण होने पर यदि उसके सम्बन्धी वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण हैं तो वे भी अशौच माने जायेंगे तथा उनके यहाँ यह अशौच छः और तीन दिनों तक रहता है। यदि कोई शूद्र, ब्राह्मण का पुत्र है तो उसके यहाँ दस दिनों में शुद्धता होगी। यदि कोई दास अथवा दासी की मृत्यु हो जाती है तो उसका क्रिया कर्म उसके स्वामी के अनुसार होगा। शूद्र अपनी श्राद्ध बिना मन्त्रों के करे और उसे त्रयोदशी आदि कर्म पर ब्राह्मणों को निमन्त्रण नहीं करना चाहिए।

यदि शूद्र कोई पाप आदि कर्म करता है तो अन्य जातियों की भाँति वह भी प्रायश्चित कर सकता है। शूद्र को होम्, जप, तप, आदि का अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त वह यदि द्विजातियों की सेवा करे तो वह अपने आप पवित्र हो जाता है।[253] इसके अतिरिक्त मिथ्या बोलना, मद्यपान करना, माँस का सेवन करना, दूसरे की स्त्री धन का अपहरण करना शूद्र के लिए वर्जित है। ऐसा करने पर उसे प्रायश्चित करना होगा।

विभिन्न धर्मशास्त्रों में शूद्र का सामाजिक स्तर निम्न कोटि का माना गया है।

यदि कोई व्यक्ति शूद्र का वध कर देता है तो हत्यारे के लिए दण्ड का विधान अन्य जातियों जैसा नहीं है। हत्यारे को केवल एक वर्ष का ब्रह्मचर्य दस गायें ओर एक बैल देने का विधान है।[254] इसी दण्ड का समर्थन अन्य ग्रन्थों नें भी किया है। धर्मशास्त्रों ने शूद्रों का जीवन पशुओं के जीवन के समान माना है। इसलिए धर्मशास्त्र कहता है कि शूद्र का वध कौआ, उकलाश, छिपकली, मोर, चक्रवाक, हंस मेढ़क जैसा है। इसलिए उसका वध अन्य जीवों जैसा होता है, उसका प्रायश्चित भी उसी प्रकार होगा। मनुस्मृति में इसका विवरण उपलब्ध होता है।[255]

धर्मग्रन्थों में शूद्र और उनके अन्न की भी निन्दा की गई है। जो व्यक्ति शूद्र का अन्न खाता है वह शूद्र जैसा हो जाता है। वेदपाठी ब्राह्मण भी यदि शूद्र का अन्न खाता है तो उसे शूद्र की गति मिलती है।[256] यदि कोई व्यक्ति अछूतों को धोखे से छूले तो वह उसका प्रायश्चित कर सकता है तथा वह ब्राह्मणों को दान देकर शुद्ध हो जाता है। यदि शूद्र वैदिक मन्त्र का पाठ करता है होम और यज्ञ करता है वह भी प्रायश्चित कर सकता है। यदि आपत्ति काल में ब्राह्मण शूद्र वृत्ति को अपनाता है तो उसका भी वह प्रायश्चित कर सकता है। यद्यपि ब्राह्मण को यह निर्देशित किया गया है कि वह आपत्ति काल में भी शूद्र के साथ नहीं उठे बैठे, अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करे, उसके यहाँ खाना न खाय।[257] किन्तु यदि बहुत ही ज्यादा आपत्तिकाल आ जाय तो वह शूद्र वृत्ति अपना सकता है।[258]

शूद्रो को भी उपासना करने का अधिकार है, वे लोग रूद्र की उपासना कर सकते हैं। वसिष्ठ स्मृति में यह उल्लेख मिलता है–

'शूद्रादीनां तु रूद्राद्या अर्चनीयः प्रकीर्तिताः।

यत्तु रूद्राचनं प्रोक्तं पुराणेषु स्मृतिष्वपि।

तद्ब्राह्मण्यविषयमेवाह प्रजापतिः।'[259]

शूद्र लोग दुर्गा और भैरव की भी उपासना कर सकते हैं। ये नृत्य और गाना गाकर देवता की उपासना कर सकते हैं। विष्णु पुराण के अनुसार कर्तव्य परायण

शूद्र विष्णु और शिव की उपासना कर सकते हैं किन्तु वे शिव व विष्णु की मूर्ति नहीं छू सकते।

'विष्णु पुराणे– ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते।

स्वधर्म तत्परो विष्णुमाराधयति नान्य था।'[260]

वर्णों के निर्माण के समय से ही शूद्रों की सामाजिक स्थिति अत्यन्त खराब रही है। शूद्रों को शिक्षा ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं था। यह अधिकार ब्राह्मणों ने अपने पास रखा था, इसलिए शूद्रों का उपनयन संस्कार भी नहीं होता था। उसके लिए यह बाध्यता थी कि व्यापार कला और शिल्प से अपनी जीविका चलाये। यदि कोई शूद्र जान बूझ कर वेदों कंठस्थ करे या ध्यान पूर्वक सुने तो उसके कानों को पिघले हुए लाख तथा सीसे से भर देना चाहिए। यदि वह वेद का उच्चारण करता है तो उसकी जिभ्या काट डालनी चाहिए।[261] किन्तु मनु स्मृति में एक जगह यह वर्णन भी उपलब्ध होता है कि यदि स्त्री अथवा शूद्र कोई श्रेष्ठ कार्य करते हैं तो उनसे यह कार्य सीखा जा सकता है। द्विजातीय गण शूद्र से भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।[262]

शूद्रों का ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के साथ स्वामी और सेवक का व्यवहार था। उसे सारा कार्य स्वामी के निर्देशन में करना पड़ता था। शूद्रों को यह निर्देश था कि वो अपने स्वामी को किसी प्रकार की सलाह उस समय तक न दे जब तक स्वामी पूँछे नहीं यदि उच्च वर्ण का व्यक्ति रास्ते में जा रहा हो तो निम्न वर्ण के व्यक्ति को प्राथमिकता के आधार पर उसे मार्ग देना चाहिए। ब्राह्मण को यह निर्देश था कि वे शूद्र के यहाँ भोजन न करे किन्तु शूद्र के लिए यह प्रतिबन्ध नहीं था। शूद्र को यह निर्देश था कि वह उच्च वर्ण के किसी भी व्यक्ति के शरीर का स्पर्श न करे। यदि कोई व्यक्ति जो उच्चवर्ण का था, वह निम्न वर्ण की कन्या से विवाह कर लेता था तो वह धार्मिक कृत्यों में भाग नहीं ले सकता था। शूद्रों के प्रति घृणा का इतना अधिक प्रभाव बढ़ा कि उनको छूना भी अधर्म माना जाने लगा। वर्णव्यवस्था के

निर्माण का शुभारम्भ कर्म के आधार पर हुआ था किन्तु वह बाद में जन्म के सिद्धान्त में परिणित हो गया। अत्रि के अनुसार चाण्डाल, पतित, म्लेक्क्ष, सुरापात्र और रजस्वला स्त्री अछूत है इन्हें नहीं छूना चाहिये। आगे धर्मग्रन्थ में यह वर्णन मिलता है कि अछूत जातियाँ जानबूझकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को छूती हैं और जानबूझकर उनके कुओं में पानी भरती हैं तथा उनके बर्तनों को प्रयोग करते हैं ताकि सवर्ण भ्रष्ट हो जायें। शूद्र जाति की औरतें भी सवर्ण–मर्दो से सम्बन्ध स्थापित करती हैं ताकि वे बदनाम हो जायें। यदि पत्नी पुत्र, दास, सहोदर भाई ये अपराध करें तो इन्हें रस्सी अथवा डण्डे से पीटना चाहिये पर शिर पर चोट न पहुँचाना चाहिये। इसका साफ अर्थ है कि शूद्रों के प्रति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का व्यवहार न्यायोचित नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि शूद्र तथा अन्य जातियों में अन्तर बढ़ता चला गया। और सवर्ण शूद्रों के साथ अमानवीय व्यवहार करने लगे।

राजनीतिक दृष्टि से भी शूद्रों का कोई विशेष स्थान नहीं रहा अवन्ति, अंग, मग्ध, सुराष्ट्र, दक्षिणाथ, सिन्धु और सौवीर देश में शूद्रों की जनसंख्या सवर्णो से अधिक थी। नारद धर्मसूत्र में यह विवरण उपलब्ध होता है कि शूद्र लोग गुप्तचर का कार्य कर सकते हैं। इसी प्रकार जब किसी राजा का राज्याभिषेक होता था तो उसे अधिकार था कि वे जल से परिपूर्ण घड़ों से राजा को स्नान कराएँ। किसी भी शूद्र को सभासद अथवा राजदरबारी नियुक्त नहीं किया जा सकता था। शूद्रों को किसी प्रकार का कोई कर भी न देना पड़ता था। यदि शूद्र कोई गड़ा धन प्राप्त क़रता था तो वह उस धन के बारह भाग करता था, जिसमें से पाँच भाग राजा को, पाँच भाग ब्राह्मण को वह देता था तथा शेष दो भाग अपने पास रखता था।

शूद्र के लिए आय के पाँच स्रोत थे। ये पाँच स्रोत निम्न थे– (1) रिक्थ (2) क्रय (3) संविभाग (4) परिग्रह और (5) अधिगम। इसके अतिरिक्त वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से भी धन प्राप्त करता था। उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार था। धर्मग्रन्थों में यह उल्लेख मिलता है कि यदि किसी सवर्ण के दो स्त्रियाँ हैं, उनमें से

एक सवर्ण तथा दूसरी शूद्र जाति की है तो यदि उनका पति मर जाता है तब सम्पत्ति पर सवर्ण स्त्री का अधिकार होगा। उत्तराधिकार के नियम यह बताते हैं कि शूद्रों को अपनी सम्पत्ति पर अधिकार था।

श्री मद्भागवत महापुराण में भी शूद्रों का वर्णन मिलता है, यह वर्णन अन्य धर्म ग्रन्थों जैसा ही है। इस महापुराण के अनुसार उच्चवर्ण के सामने विनम्र रहना, पवित्रता, स्वामी की निष्कपट सेवा, वैदिक मन्त्रों से रहित यज्ञ, चोरी न करना, सत्य तथा गऊ व ब्राह्मणों की रक्षा करना ये शूद्र के कर्तव्य हैं।

'शूद्रस्य संनतिः शोचं सेवा स्वामिन्य मायया।

अमन्त्रयज्ञो ह्मस्त्येयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ।।262

ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धिजीवियों को यह भय था कि यदि चतुर्थ वर्ण को पढ़ने लिखने का अधिकार प्रदान कर दिया गया और उन्हें संस्कार युक्त बना दिया गया। उस स्थिति में समाज में अव्यवस्था फैल जायेगी और सेवा कार्य करने के लिए कोई भी व्यक्ति उपलब्ध न होगा। इसलिए उन्होंने वर्ण व्यवस्था और जाति बन्धनों को अति कठोर कर दिया तथा वेद पढ़ने, धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न कराने का एकाधिकार ब्राह्मणें को सौंप दिया। इस अधिकार के कारण ब्राह्मण वंश परम्परागत धार्मिक संस्कार कराते रहें। जो भी व्यक्ति ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ उसे जन्म से ही ब्राह्मण मान लिया गया। भले ही वेदपाठी हो अथवा न हो समाज की श्रद्धा उसके प्रति हो गयी। इसके विपरीत शूद्रों के प्रति एक नफरत की भावना उत्पन्न की गयी। मन्द बुद्धि तथा संसाधन हीन होने के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों ने उनके साथ असमानता का व्यवहार किया। यदि कोई भी सामाजिक व्यवस्था ईश्वर द्वारा निर्मित होती और परमात्मा समस्त वर्णो का सृजेता होता तो वह किसी के साथ पक्षपात न करता।

ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त धार्मिक नियम और सामाजिक व्यवस्था मानवकृत है, इसे किसी परमात्मा ने नहीं बनाया। इन नियमों के पालन हेतु परमात्मा

के भय का प्रयोग किया गया है, क्यों कि भारतवर्ष के सामान्य व्यक्ति की आस्था परमात्मा और देवताओं पर है। वह जीवन के कष्टों से अत्यधिक पीड़ित हो जाता है, इसलिए वह मृत्यु के पश्चात कल्पित नरक के कष्ट को भोगना नहीं चाहता। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर बुद्धिजीवियों द्वारा निर्मित और लिखित धर्म ग्रन्थ की वाणी को ईश्वरकृत मान लेता है। धर्मग्रन्थकारों ने समाज के निम्न वर्ग के साथ किसी प्रकार का न्याय नहीं किया और यह कारण भी स्पष्ट नहीं किया कि आखिर शूद्र को वेद पठन—पाठन का अधिकार क्यों नहीं है।

'ममैतद् दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम्।
विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः।।[263]

यदि वह योग्य है, कर्मठ है, वेद पढ़ने की जिज्ञासा उसके हृदय में है तो ये अधिकार उसे मिलने ही चाहिए थे। भागवत पुराण के रचनाकार ये भली प्रकार मानते थे कि कालान्तर में जब व्यक्ति यथार्थ का बोध कर लेगा तो वह धर्म ग्रन्थों में लिखित किसी भी बात को आसानी से नहीं मानेगा। भागवत् कार इसे मूर्ततः स्वीकार करता है और हृदय का भटकाव मात्र मानता है।

'कलौ न राजऽजगतां परं गुरूं
त्रिलोक नाथानतपाद पंकजम्।
प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं
यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्नचेतसः।।[264]

यथार्थ को समझ लेने के बाद व्यक्ति धर्म से अधिक भौतिक सुख प्राप्त करने के लिए धन की आवश्यकता पर बल देते हैं और जहाँ भी अन्याय होता है, उसके साथ वे संघर्ष करने लगते हैं चाहे वे परिवार के सदस्य ही क्यों न हो।

'कलौ काकिणि के अप्यर्थे विगृह्म व्यक्तसौहृदाः।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान हनिष्यन्ति स्वकानपि।।'265

स्पष्ट है कि जब धर्म अपनी मर्यादाओं का परित्याग करता है तो व्यक्ति भी

अपनी मर्यादाओं का परित्याग करता है। धर्म ने और मानवता ने अपनी पूर्व परिभाषाओं के अनुसार शूद्रों के साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं किया, जिसके कारण भारतीय समाज में विघटन की स्थिति पैदा हुई।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. लो, सिडनी, विजन आफॅ इण्डिया, संस्करण द्वितीय, 1907, पृष्ठ 262–263 ;
2. मेन, ऐश्येण्ट लॉ, 1930, पृष्ठ 17 ;
3. शेरिंग, ट्राइब्स एण्ड कॉस्टस, पृष्ठ–293 ;
4. योरोप एण्ड एशिया, 1901, पृष्ठ 72 ;
5. ऋग्वेद, 1–73–7, 2–3–5, 9–97–15, 9–104–4, 9–105–4, 10–124–7 ;
6. तैत्तरीय ब्राह्मण, 1–2–6 ;
7. पुरूष सूक्त, 10–90 ;
8. यास्क निरूक्त, 2–10 ;
9. महाभारत, शान्ति पर्व, 49 ; आदि पर्व, 175 ;
10. ऋग्वेद, 10–142–4 ;
11. वही, 1–61–4, 7–32–20, 9–112–1, 10–119–5 ;
12. वही, 9–112–3 ;
13. वही, 10–72–2, 9–112–2 ;
14. विष्णु पुराण, 1–12–63,64 ;
15. ब्रह्माण्ड पुराण, 1–5–108 ; वायु पुराण 9–113 ;
16. मत्स्य पुराण, 4–28 ;
17. विष्णु पुराण, 1–6–32 ;
18. मत्स्य पुराण, 142–42 ;
19. वायु पुराण, 57–59 ; ब्रह्माण्ड पुराण, 2–29–65 ;
20. वायु पुराण, 8–140–141 ; ब्रह्माण्ड पुराण, 2–7–133 ;
21. विष्णु पुराण, 3–8–32 ;
22. वायु पुराण, 78–36 ; ब्रह्माण्ड पुराण, 3–14–46 ;

23. विष्णु पुराण, 3–10–9 ;

24. वही, 2–3–9 ; वायु पुराण, 8–169–171 ; ब्रह्माण्ड पुराण, 2–7–161,163 ; मत्स्य पुराण, 114–12 ;

25. विष्णु पुराण, 4–19–60 ;

26. मत्स्य पुराण, 144–37 ;

27. वही, 48–86 ;

28. विष्णु पुराण, 4–1–17 ;

29. ब्रह्माण्ड पुराण, 3–61–2 ;

30. मत्स्य पुराण, 12–25 ;

31. भागवत पुराण, 7–11–13 ;

32. वही, 7–11–14 ;

33. वही, 7–11–14 ;

34. वही, 7–11–15 ;

35. वही, 7–11–18 ;

36. वही, 7–11–21 ;

37. वही, 7–11–22 ;

38. वही, 7–11–23 ;

39. वही, 7–11–24 ;

40. वही, 2–6–37 ;

41. वही, 2–6–37 ;

42. वही, 7–11–25 ;

43. वही, 7–11–30 ;

44. वही, 7–11–32 ;

45. वही, 7–11–45 ;

46. वही, 7–11–8 से 12 तक;

47. बौधायन धर्मसूत्र, 1–8–6, 1–9–3 ; अनुशासन पर्व, 48–4; कौटिल्य, 3–7;

48. मनुस्मृति, 10–6;

49. वही, 10–12,24 ;

50. मनुस्मृति, 10–24 ; महाभारत, अनुशासन पर्व, 48–1 ;
श्रीमद्भगवद्गीता, 1–41, 43 ;

51. गौतम धर्मसूत्र, 11–9, 19 ;

52. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 19–7,8 ; विष्णु धर्मसूत्र, 3–3 ; याज्ञवल्क्य स्मृति, 1–316;
मार्कण्डेय पुराण, 27 ; मत्स्य पुराण, 215–63 ;

53. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 30 ;

54. महाभारत, शल्य पर्व, 39–36, 37 ;

55. भागवत पुराण, 11–17–10, 11 ;

56. वही, 11–17–13 ;

57. वही, 11–17–16 ;

58. वही, 11–17–17 ;

59. वही, 11–17–18 ;

60. वही, 11–17–19 ;

61. वही, 11–17–20 ;

62. वही, 11–17–21 ;

63. मनु स्मृति, 10–23 ;

64. तैत्तरीय ब्राह्मण, 3–4–12 ; महाभारत,कर्णपर्व, 73–20 ;
महाभारत, आश्वमेधिक पर्व, 73–25 ;

65. बौधायन धर्मसूत्र, 1–8–8, 1–8–12 ;

66. मनु स्मृति, 3–174 ;

67. सूत संहिता,

68. पाणिनी क्रत कुलालादिगण, 4–3–118 ;

69. तैत्तरीय ब्राह्मण, 3–4–1 ;

70. शंख स्मृति ;

71. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 3–7 ;

72. गौतम धर्मसूत्र, 4–15 ;

73. मेधातिथि, मनुस्मृति टीका, 104 ;

74. बौधायन धर्मसूत्र, 1–9–7 ; कौटिल्य अर्थशास्त्र, 3–7 ; याज्ञवल्क्य स्मृति,1–94;

75. वैखानस स्मार्तसूत्र, 10–15 ;

76. मनुस्मृति, 10–22 ;

77. सूत संहिता,

78. औशनस स्मृति, 28–29 ;

79. वात्स्यायन, कामसूत्र, 1–5–37 ;

80. लघुशातातप स्मृति 105 ; मनुस्मृति, 3–174 ;

81. औशनसस्मृति, 22–23 ;

82. विष्णुधर्मसूत्र , 51–8 ; आपस्तम्बधर्मसूत्र, 9–32 ;

83. वैखानस स्मार्त सूत्र, 10–14 ;

84. तैत्तरीय ब्रह्माण, 3–4–14, 3–4–17 ; छान्दोग्योपनिषद्, 5–10–7 ; गौतम धर्मसूत्र, 4–15, 16 ; वशिष्ठ धर्मसूत्र, 18–1 ; महाभारत, अनुशासन पर्व, 48–11 ;

85. मनुस्मृति, 10–43,44 ; महाभारत, सभापर्व, 51–23, वनपर्व, 177–12, उद्योगपर्व, 19–15 ;

86. मनुस्मृति, 10–48 ;

87. वैखानस स्मार्तसूत्र, 10–13 ;

88. विष्णु धर्मसूत्र, 51–15 ; मनुस्मृति, 4–216 ;

89. हारीत स्मृति ;

90. मनुस्मृति, 10–22 ;

91. अमर कोश ;

92. तैत्तरीय ब्राह्मण, 3–41 ;

93. विष्णु धर्मसूत्र, 51–13 ;

94. वात्स्यायन, कामसूत्र, 1–5–37 ;

95. वैखानस स्मार्तसूत्र 10–15 ;

96. मनुस्मृति, 4–214 ;

97. विष्णु धर्मसूत्र,

98. मनुस्मृति, 10–44 ; महाभारत, उद्योगपर्व, 4–15 ;

99. वेदान्त सूत्र, 2–3–43 ;

100. मानवग्रहासूत्र, 2–14–11 ;

101. गौतम धर्मसूत्र, 4–14 ;

102. मनुस्मृति, 10–22 ;

103. वही, 10–15 ;

104. गौतम धर्मसूत्र, 4–17;

105. हारीत स्मृति,

106. वही,

107. औशनस स्मृति, 19 ;

108. शांखायन गृहसूत्र, 1–25 ; औशसनस स्मृति, 34 ;

109. मनुस्मृति, 10–22 ;

110. तैत्तरींय संहिता, 4–5–4–2 ; निरूक्त, 3–8 ;

111. मनुस्मृति, 10–43, 44 ;

112. वही, 10–37 ;

113. महाभारत, सभापर्व, 32–16, 51–12, 52–3 ; द्रोणपर्व, 93–42 ;

114. महभारत, आदि पर्व, 109–25 ;

115. सूतसंहिता,

116. महाभारत, द्रोणपर्व, 93–44 ; आश्वमेधिक पर्व, 29–15,16 ;

117. ऐतरेय ब्राह्मण, 33–6 ;

118. वृहदरण्यकोपनिषद भाष्य, 4–3–22 ;

119. व्यास स्मृति, 1–12 ;

120. मनुस्मृति, 10–21 ;

121. वही, 10–4 ;

122. महाभारत, वनपर्व, 254–17 ;

123. व्यास स्मृति, 1–12 ;

124. अत्रि संहिता, 199 ; यम स्मृति, 33 ;

125. औशनस स्मृति, 26 ;

126. कृत्य कल्पतरू, ;

127. मनु स्मृति, 10–21 ;

128. गौतम धर्मसूत्र, 4–17 ;

129. सूतसंहिता, ;

130. मनुस्मृति, 10–48 ;

131. औश्नस स्मृति, 39 ; 40 ;

132. वही, 44 ;

133. मनुस्मृति 10–22 ;

134. गौतमधर्मसूत्र, 4–15 ; महाभारत, अनुशासन पर्व 48–12 ;

135. सूत संहिता ;

136. यम स्मृति, 12 ;

137. मनुस्मृति, 10–34 ;

138. व्यास स्मृति, 1–10,11 ;

139. गौतम धर्मसूत्र, 4–17 ; याज्ञवल्क्य स्मृति, 9–12 ;

140. वही, 4–17 ; वही, 1–91 ;

141. पाणिनी, महाभाष्य, 2–4–10 ;

142. अत्रि संहिता, 199 ;

143. मनुस्मृति, 10–23 ;

144. वही, 10–23 ;

145. सूत संहिता ;

146. गौतम धर्मसूत्र, 4–17 ; मनु स्मृति, 10–43, 44 ;

147. मनुसमृति, 4–215 ; शंख स्मृति, 17–36 ; विष्णुधर्मसूत्र, 51–14 ;

148. वैखानस स्मार्तसूत्र, 10–15 ;

149. मनुस्मृति, 4–216 ; औशनस स्मृति 19 ;

150. तैत्तरीय ब्राह्मण, 3–4–1 ;

151. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 18–14 ;

152. तैत्तरीय ब्राह्मण, 2–43 ;

153. हारीत स्मृति,

154. व्यास स्मृति, 1–12, 13 ;

155. पाणिनि, महाभाष्य, 4–1–97 ;

156. मनुस्मृति, 10–21 ;

157. वही, 10–23 ;

158. मनुस्मृति, 10–19 ; बौधायन धर्मसूत्र, 1–9–13 ;

159. औशनस स्मृति, 4 ; वैखानस स्मार्तसूत्र, 10–15 ;

160. सूत संहिता,

161. बौधायन धर्मसूत्र, 1–9–8 ; कौटिल्य अर्थशासत्र, 3–7 ; मनुस्मृति 10–11,13,17; विष्णु स्मृति,16–6 ;

162. याज्ञवलक्य स्मृति, 2–'48 ;

163. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1–1, 1–22, ;

164. मनुस्मृति, 10–43,44 ; पाणिनी, महाभाष्य, 4–1–175 ;

165. महाभारत, अनुशासन पर्व, 35–17 ; शान्ति पर्व, 65–13 ;

166. औशनस स्मृति, 42 ;

167. मनुस्मृति, 10–21 ;

168. विष्णुधर्मसूत्र, 51–13 ; मनुस्मृति, 4–214 ;

169. विष्णु धर्मसूत्र, 51–15 ; मनुस्मृति, 4–216 ;

170. व्यास स्मृति, 1–12, 13 ;

171. मनुस्मृति, 10–23 ;

172. वही, 10–23 ;

173. औशनस स्मृति, 24–25 ;

174. वाजसनेयी संहिता, 30–7 ; तैत्तरीय ब्राह्मण, 3–4–14 ;

175. औशनस स्मृति 43 ;

176. वैखानस स्मार्तसूत्र, 10–15 ; औशनस स्मृति, 22 ;

177. तैत्तरीय ब्राह्मण, 3–4–1 ;

178. औशनस स्मृति, 14 ;

179. मनुस्मृति, 10–32 ;

180. वही, 10–38 ;

181. वात्स्यायन, कामसूत्र, 1–5–37 ;

182. भागवत पुराण, 10–71–29, 30 ;

183. वही, 12–2–36 ;

184. वहीं, 10–50–49 ;

185. मैक्समूलर, हिस्ट्री ऑफ ऐंशिएण्ट संस्कृत लिट्रेचर ; पृष्ठ 31 ;

186. घोषाल ; यू0, 'ए हिस्ट्री आर्फ हिन्दू पालिटिकल थ्योरीज ;

187. शुक्रनीतिसार ;

188. मनुस्मृति, 7–3 ;

189. महाभारत, शान्तिपर्व, 69–77 ;

190. मनुस्मृति, 9–294 ;

191. भागवत पुराण, 4–21–22 ;

192. वही, 4–21–24 ;

193. वही, 4–21–25 ;

194. वही, 4–21–36 ;

195. वही, 4–21–39 ;

196. वही, 4–22–54 से 56 तक ;

197. वही, 4–22–57 ;

198. वही, 4–22–58 ;

199. वही, 4–222–59 ;

200. वही, 4–22–60 ;

201. वही, 4–22–61, 62 ;

202. वही, 12–3–1, 2 ;

203. वही, 12–3–20 ;

204. वही, 12–3–22, 23 ;

205. वही, 12–3–24, 25 ;

206. वही, 12–3–30 से लेकर 32 तक ;

207. वही, 12–3–41, 42 ;

208. वही, 12–3–43 ;

209. वहीं, 2–5–41 ;

210. वही, 2–6–1, 2 ;

211. विष्णु पुराण, 1–20–14 ;

212. ब्रह्माण्ड पुराण, 73–2, 3, 9

213. हरिवंश पुराण, I, 41–18–20 ;

214. ब्रह्माण्ड पुराण, 71–41, 42 ;

215. भगवद्‌गीता, 4–3, 4 ;

216. भागवत पुराण, 10–29–14 ;

217. वही, 3–25–36 ;

218. वही, 3–24–36 ;

219. वायु पुराण, 9–8–69 ;

220. महाभारत, आश्वमेधिक पर्व 54–13 ;

221. देवी भागवत पुराण, 7–39 ;

222. ऋग्वेद, (क) 3–53–8, (ख) 6–47–18 ;

223. शतपथ ब्राह्मण–मत्स्य, (1–8–1–1), कूर्म (7–5–1–5, 14––1–2–11), वराह,(14–1–2–11) ;

224. तैत्तरीय ब्राह्मण, 1–1–3–5 ;

225. भागवत पुराण, 1–3–1, 5 ;

226. वही, 1–3–26, 27

227; वही, 1–3–1 से 29 तक ;

228. विष्णु पुराण, 1–9–57 ;

229. वायु पुराण, 51–18 ; ब्रह्माण्ड पुराण,. 2–22–18, 19 ;

230. ऋग्वेद, 1–155–5 ;

231. वायु पुराण, 5–41 ;

232. भागवत पुराण, 12–3–51, 52 ;

233. 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफॅ इण्डिया I, पृष्ठ 268 ;

234. वैदिक इण्डेक्स II, पृष्ठ 289 ;

235. वल्लकर, हिन्दु सोशल इंस्टीटयूशंस, पृष्ठ 327–328 ;

236. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 3–13 ;

237. सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस I पृष्ठ 188 ;

238. कोसंबी, जर्नल आफॅ ओरिएंटल रिसर्च, मद्रास ;

239. याावलक्य स्मृति, 1–166 ;

240. ऋग्वेद, 10–90–12 ;

241. वेवल्कर, एस0के0, को मेमोरेश्न वाल्यूम, पृष्ठ 44 ;

242. ताण्डव ब्राह्मण, 6–1–11 ;

243. ऋग्वेद, 1–51–8 ;

244. वही, 1–51–8 ;

245. शुक्ल यर्जुवेद, 14–30 ;

246. एंशिएण्ट इण्डियन एजूकेशन, पृष्ठ 53 ;

247. विद्यामार्तण्ड, पं0 धर्मदेव, वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृष्ठ 49–50

248. अशुश्रूषाभ्यूपेत्य, 26–28 ;

249. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1–163 ;

250. गौतम धर्मसूत्र, 10–51 ;

251. वही, 10–56 ;

252. वही, 8–19 ;

253. मदन पारिजात, पृष्ठ 769 ;

254. गौतम धर्मसूत्र, 22–16 ;

255. मनु समृति, 11–130 ;

256. व्यास, पराशर माधवीय, पृष्ठ 303 ;

257. मिताक्षरा, याज्ञवल्कय 3–55 ;

258. गौतम धर्मसूत्र 10–62 ;

259. वसिष्ठ स्मृति, 1–17 ;

260. निर्णयसिन्धु, पृष्ठ 742 ;

261. गौतम धर्मसूत्र, 12–4 ;

262. मनुस्मृति, 2–223 ;

263. भागवत पुराण, 7–11–24 ;

264. वही, 12–3–43 ;

265. वही, 12–3–41 ;

तृतीय अध्याय

"आश्रम एवं पुरूषार्थ"

1 ~~अ~~- व्यक्तिगत जीवन से धर्म का सम्बन्ध।

2 ~~ब~~- पारलौकिकता तथा मोक्ष की अवधारणा।

3 ~~स~~- पुरोहित वर्ग का राजनीतिक प्रभाव से लाभ।

4 ~~द~~- भागवत पुराण में वर्णित आश्रम व्यवस्था एवं उसका पुरूषार्थ से सम्बन्ध।

अध्याय–तृतीय

'' आश्रम एवं पुरूषार्थ''

1– व्यक्तिगत जीवन से धर्म का सम्बन्ध–

पृथ्वी में जीव उत्पत्ति के संदर्भ में कोई विशिष्ट सर्वसम्मत धारणा नहीं थी, जीव–जगत की उत्पत्ति अठारहवीं शताब्दी के पहले परमात्मा के द्वारा मानी जाती थी। इसाइयों के धर्म ग्रन्थ बाइबिल के अनुसार ब्रह्मण्ड का निर्माण परमात्मा ने छः दिन के अन्दर किया। जिसमें परमात्मा ने प्रथम दिन पृथ्वी और स्वर्ग का निर्माण किया, दूसरे दिन आकाश का निर्माण किया, तीसरे दिन उसने भूमि और पेड़ पौधों का निर्माण किया, चौथे दिन उसने सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहों का निर्माण किया, पाँचवें तथा छठवे दिन उसने मछलियों व पक्षियों का निर्माण किया। इस प्रकार कुल मिलाकर छः दिन में सृष्टि का निर्माण हुआ। बाइबिल के इस कथन को किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया जा सकता है। सर्वप्रथम यह देखना होगा कि जिस परमात्मा ने इस सृष्टि का सृजन किया उसका स्वरूप क्या था और वह कहाँ रहता था तथा उस परमात्मा का निर्माण कैसे हुआ। बाइबिल का यह सिद्धान्त वैज्ञानिक तथ्य पर आधारित नहीं है केवल इस तर्क को स्वीकार किया जा सकता है कि परमाणु संयोजन से पृथ्वी का निर्माण हुआ तथा उन पंचमहाभूतों का निर्माण हुआ जो पृथ्वी के विकास में सहयोगी हुए। इसके पश्चात पेड़ पौधे निर्मित हुए तथा पृथ्वी के विकास में सूर्य चन्द्रमा जैसे ग्रहों का सहयोग उपलब्ध हुआ। इसके पश्चात जलजीवों और आकाश में उड़ने वाले जीवों का निर्माण हुआ।

उपलब्ध हिन्दू पुराणों और धर्म ग्रन्थों में ब्रह्मा को सृष्टि का निर्माता माना गया है। उस ब्रह्मा ने देवता, मनुष्य, राक्षस आदि पैदा किए, सिर से पक्षी, छाती से बकरियाँ, मुख से पेड़ पौधे तथा शरीर पर उगे बालों से बाजों (चील) का निर्माण किया, इस तरह पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। श्रीमद्भागवत पुराण में सृष्टि की उत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक जानकारियाँ उपलब्ध होती हैं। भागवत के अनुसार यह विश्व परमात्मा की

कृति है। सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र, तारे परमात्मा के ही प्रकाश से प्रकाश फैलाते हैं और सृष्टि सृजेता ब्रह्मा का निर्माता भी यही परमात्मा ही है।

'येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम्।

यथाकोऽग्निनर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः।।'[1]

भागवत पुराण में परमात्मा को परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार परामात्मा दृष्टा होने पर भी ईश्वर है और निर्विकार होने पर भी ईश्वर है। उसी ने ब्रह्मा का निर्माण किया है तथा उसी की प्रेरणा से ब्रह्मा सृष्टि करता है।

'तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कुटस्थस्याखिलात्मनः।

सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः।'[2]

इसी महापुराण में आगे कहा गया है कि परमात्मा ने रजोगुण, सतोगुण तथा तमोगुण का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त इन गुणों को सुदृढ़ करने के लिए गुण, द्रव्य, ज्ञान तथा क्रिया का आश्रय ग्रहण किया है, व इसी माया के आवरण में परमात्मा ने खुद को ढ़क लिया है।

'संत्तवं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः।

स्थिति सर्ग निरोधेषु गृहीता मायया विभोः।।

कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञान क्रियाश्रयाः।

बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरूषं गुणाः।।

स एष भगवाँल्लिंगैस्त्रिभिरोभिरधोक्षणः।

स्वलक्षित गतिर्ब्रह्मन् सर्वेषां मम चेश्वरः।।'[3]

इससे यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान और गुण तथा स्वरूप के कारण व्यक्ति की पहचान तो हुई किन्तु परमात्मा की पहचान नहीं हो सकी तथा इस संसार में कर्म की महानता प्रधान हो गयी। कर्म के कारण ही व्यक्ति रजोगुणी, सतोगुणी और तमोगुणी बना, जब वह ज्ञानी हो गया तो उसे भौतिक तत्वों का बोध हुआ। वायु ने

उसके शरीर में स्फूर्ति जीवन की शक्ति और ओज पैदा किए, वायु ने ही अपनी पहचान गुण शब्द और स्पर्शशीलता के रूप में कराई तथा इसी ने अन्य तत्वों को पैदा किया।

'वायोरपि विकुर्वाणात् कालकर्मस्वभावतः।

उदपद्यत तेजो वै रूपवत् स्पर्शशब्दवत्।।

तेजसस्तु विकुर्वाणा दासीदम्भों रसात्मकम्।

रूपवत् स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात्।।[4]

इसके पश्चात जीवों के हृदय में बुद्धि अथवा मन की उत्पत्ति हुई। मनु ने सर्वप्रथम इन्द्रियों के बारे में जानकारी प्राप्त की तथा इन्द्रियों के माध्यम से ही दिशा, वायु, सूर्य, वरूण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति आदि देवों का बोध हुआ अर्थात ज्ञान के उदय होने के पश्चात देव, उपयोगी वस्तुएँ प्रदान करने के कारण पहचाने गये। इन्होंने ही तेज, अंहकार, विकार, स्त्रोत्र, त्वचा, नेत्र जिभ्या और प्राण आदि ज्ञानेन्द्रियों का बोध कराया। इसके पश्चात ज्ञान से ही पाँच कर्मेन्द्रियाँ वाणी, हाथ, पैर, गुदा जननेन्द्रिय का बोध हुआ तथा जो भी सृष्टि अस्तित्वमें आई वह क्रिया शक्ति और तेज से उत्पन्न हुई।

'वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश।

दिग्वातार्क प्रचेतोअश्ववहीन्द्रो पेन्द्रमित्रकाः।।

तैजसात् तु विकुर्वाणदिन्द्रियाणि दशाभवन्।

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणश्च तैजसौ।।

श्रोत्रं त्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेढ़ाङ्घ्रिपापवः।।[5]

सृष्टि के सिद्धान्त में एक बात और उभरकर सामने आयी। जब तक पंच महाभूत संघठित नहीं थे, उस समय तक सृष्टि नहीं हो सकी। परमात्मा की प्रेरणा से ये पंचतत्व अपने गुरूत्वाकर्षण की शक्ति से जब पिण्ड के रूप में पर्णित हुए तभी सृष्टि की रचना हुई।

'यदैतेऽसंङगला भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः।

यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मविन्तमम्।।

तदा संहव्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः।

सदसन्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्मदः।।[6]

पंचमहाभूतों के संयोग से जिस पिण्ड का निर्माण हुआ, उस पिण्ड ने विराट पुरूष को उत्पन्न किया। अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद पंचमहाभूत के संयोग से जो प्रथम पुरूष अपने आप उत्पन्न हुआ उसी से सृष्टि का विस्तार हुआ। बीज और भूमि तथा पर्यावरण सृष्टि सृजन के तीन मौलिक तत्व हैं तथा इन्हीं से संसार सृजित है। यह आज तक निश्चित नहीं हो पाया कि पृथ्वी का प्रथम मानव किस प्रकार से संसार में उत्पन्न हुआ। यह विराट पुरूष चरण, भुजाओं, नेत्र और मुख तथा सम्पूर्ण शरीर से सहस्त्रों आकृति धारण करने वाला है।

'वर्षपूगसहस्त्रान्ते तदण्डमुदकेशयम्।

कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत्।।

स एव पुरूषरत स्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतुः।

सहस्त्रो र्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्त्राननशीर्षवान्।।[7]

जब ज्ञान का उदय हुआ तब लोगों को यह बोध हुआ कि जो हमारे शरीर के नीचे वाला भाग है जिसे हम पृथ्वी का तल बोलते है, उसे पाताल के नाम से सम्बोधित किया गया तथा इनकी संख्या सात कही गयी। हमारे सिर के ऊपर जो भाग है उसे स्वर्ग लोक माना गया। ये भी सात प्रकार के है तथा जिस स्थान पर हम खेड़े है। उसे पृथ्वी माना गया।

'यस्येहावयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः।

कटयादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः।।[8]

जब जनसंख्या सर्वाधिक बढ़ गयी, उस समय सम्पूर्ण समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ओर शूद्र के रूप में आवश्यकता अनुसार विभाजित कर दिया गया।[9]

भागवत् में ही इस बात का उल्लेख मिलता है कि विराट पुरूष भी मानव समाज की ही एक परिकल्पना है। इस विराट पुरूष की कमर में अतल, जाँघों में वितल, घुटनों में पवित्र सुतललोक तथा जंघाओं में तलातल की कल्पना की गयी है। एड़ी में ऊपर की गाँठों में महातल पंजे और एड़ियो में रसातल व उसके तलुओं में पाताल है, इस प्रकार वह विराट पुरूष सर्वलोकों का स्वामी है। उसके अंगो में सभी लोकों की कल्पना की गयी है, चरणों में पृथ्वी लोक है और नाभि में भूलोक है तथा सिर में स्वर्गलोक है। इस प्रकार संसार में जो भी है वह सब परमात्मामय है। परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, इसलिए उसे कर्ता, धर्ता, सृजक, पालक और विनाशक भी माना गया है।

'तत्कटयां चातलं कल्प्तमूरूभ्यां वितलं विभोः।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघभ्यां तु तलातलम्।।
महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम्।
पातालं पादतलत इतिलोकमयः पुमान्।।
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकऽस्य नाभितः।
स्वर्लोकः कल्पितो मूर्न्धा इति वा लोक कल्पना।।'[10]

भागवत् महापुराण के अनुसार यह सम्पूर्ण विस्तृत संसार परमात्मा का विराट स्वरूप ही है। यहाँ जो भी है, सब परमात्मा का अंश है तथा चर्तुदिक उसी की माया का विस्तार है।

वैज्ञानिक आधार पर ब्रह्माण्ड या विश्व पदार्थ ऊर्जा का स्रोत स्वीकार किया गया है। इसकी आयु सात अरब से लेकर दस अरब वर्ष पुरानी हैं। वैज्ञानिकों ने इसकी उम्र बीस अरब वर्ष तक पुरानी मानी है तथा इसकी संरचना पदार्थ के कणों की संयोजन प्रक्रिया से हुई है ऐसा स्वीकार किया है। परमाणु संयोजन से ही ग्रहों और उपग्रहों का निर्माण भी हुआ तथा पृथ्वी में जीवन इस प्रक्रिया के बाद हुआ। 624 ई0 पू0 के वैज्ञानिकों का यह मत था कि वातावरणीय दशाओं में जीव निर्जीव

पदार्थ के संयोजन से विश्व निर्मित है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन थल्स, एनेक्सीमैन्डर, क्जोनोफेनीस, ऐम्पीडोक्लीज, प्लेटो, अरस्तू ने किया। उनका मानना था कि गोबर, विष्ठा, ओस की बूँदों से कीड़े मकोडे की उत्पत्ति स्वयं हो जाती है। सन् 1942 में सुप्रसिद्ध विद्वान हेलीमेन्ट ने यह दावा किया था कि गेंहू मे पसीने की गन्दी कमीज निचोड़ने से इक्कीस दिन के अन्दर चूहों की उत्पत्ति हो गयी थी। इनका मानना है कि पसीने से चीलर, बालों की गन्दगी से जुएँ, गोबर और विष्टा से मख्खियाँ, गधे के मूत्र से विच्छू पैदा हो जाते हैं। उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार जीव की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों के प्रयोग से होती है। किन्तु जो विद्वान सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में पैदा हुये उनका यह मानना है कि जीव की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों से कभी नहीं हो सकती, उसकी उत्पत्ति जीवाणुओं से ही होती है। फ्रांसेस्को रेडी नामक विद्वान 1668 में हुआ, उसने यह देखा कि जार में रखे मांस में मक्खियों ने अंडे दिये तथा उन्ही अंडों से मक्खियों की उत्पत्ति हुई सुप्रसिद्ध विद्वान न्यूटन, पादरी नीधम तथा बूफों ने यह सिद्धान्त माना कि कुछ सूक्ष्म जीव गन्दी जगह में अपने आप उत्पन्न हो जाते है। सुप्रद्धि विद्वान पाश्चर ने इस बात को स्वीक़ार किया कि जीवाणु स्वतः न उत्पन्न होकर वहाँ उत्पन्न होता है, जहाँ उनके अणु पहले से उत्पन्न होते है।

वर्तमान युग में जीव की उत्पत्ति के लिये प्रकृतिवाद के सिद्धान्त को स्वीकारा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार निर्जीव पदार्थों से ही जीव की उत्पत्ति हुई, परन्तु यह तभी हो सकता है जब भौतिक और रासायनिक प्रक्रियायें सहयोग प्रदान करती है। इस रासायनिक उद्‌विकास से जीव पदार्थ की उत्पत्ति हुई। इसमें एक सिद्धान्त ए० आई० ओपेरिन का भी है, इस सिद्धान्त को भौतिक पदार्थवाद के नाम से पुकारा जाता है। इसके पहले चरण में परमाणु प्रावस्था, द्वितीय चरण में परमाणुओं का एक दूसरे से जुड़ना तथा तीसरे चरण में कार्बनिक यौगिकों के सहयोग से जीवो की उत्पत्ति होना माना गया है। इसके चौथे चरण में जीव की उत्पत्ति और उसका

विकास शामिल है। इसके पाँचवे चरण में जीव के ही अन्दर उत्प्रेरक तंत्र जीन्स, वायरस जीव विकास के छठवें चरण में कोशिकारूपी जीवों का विकास होता है। जीव के सातवें विकास के चरण में यह देखा जाता है कि समस्त जीव अपना पालन पोषण स्वतः कर लेते है। यह प्राकृतिक पर्यावरण पंचतत्व के सहयोग से आकृति आदि धारण करते हैं।

सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम कीड़े मकोडे, केचुये, पक्षी, ढोर, साँप, मक्खी, छिपकली, तितली, कुत्ते, बिल्ली, चीलर आदि जन्तुओं की उत्पत्ति हुई तथा इनके साथ साथ पेड़ पौधे भी उत्पन्न हुये। विशालतम जीव से लेकर जटिलतम मानव जीव तक पृथ्वी में उपलब्ध जीवों की संख्या दस लाख से अधिक है तथा उपलब्ध पादपों एवं वृक्षों की संख्या पाँच लाख से अधिक है। जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित नहीं था, उस समय सृष्टि को परमेश्वर की कृति माना जाता था। यह स्वीकार किया गया कि जीव की उत्पत्ति विभिन्न समय–अवधि में किसी अजीब पदार्थ से हुई है। यह दृष्टि निर्जीव और सजीव पदार्थों से ही निर्मित है तथा हर जीव में आत्मा होती है और प्रत्येक जीव में विभिन्न प्रकार के अंग होते है। इस जीव के विकास में उपलब्ध पदार्थ अन्तरिक्ष की मिश्रित क्रिया का विशेष योग दान है छोटे से जीव से लेकर बड़े जीव की उत्पत्ति अपनी–अपनी पृथक रासायनिक क्रिया से हुई । इसी प्रकार मानव जाति की भी उत्पत्ति हुई । मनुष्यों में होमो सैपियन्स, होमो प्राइमेटस, मैमोलिया, कशेरूकी, कॉर्ड्रेटा आदि श्रेणियोंमें जीव का विकास हुआ। इसमें होमोसैपियन्स श्रेणी को जीव मानव संसारका सबसे विकसित दिमाग वाला द्विपायी जानवर है।

यदि जीव जगत की उत्पत्ति के संदर्भ में धार्मिक आधार और वैज्ञानिक आधार दोनों को ध्यान में रखकर निर्जीव द्रष्टिकोण का अध्ययन किया जाये तो दोनों द्रष्टिकोण इस बात की पुष्टि करते है कि पंचमहाभूतों के परमाणुओं से जीव जगत की उत्पत्ति प्रारम्भ में स्वतः हुई । उसके पश्चात विशेष प्रकार के जीवाणुओं

से यह सृस्टि विशिष्ट नैसर्गिक आकर्षण नर मादा के लैगिंक एवं स्वरूप आकर्षण के कारण यह अपना विकास आज तक कर रही है। यह बीजारोपण, अकुंरण, पल्लवन विकास, पूर्णविकास, स्थिरता, विकास पतन, विनाश तथा अस्तित्व हीनता से सृजित और नष्ट होती रहती है। पृथ्वी पर उपलब्ध हर जीव एक निश्चित अवधि तक इस संसार में रहता है। उसके पश्चात जब उसके जीव परमाणु पृथक हो जाते है। तब वह मृत्यु को प्राप्त होता है और अस्तित्वविहीन हो जाता है तथा उनके स्थान पर नव सृजित जीव स्थान ग्रहण करते है। उत्थान पतन तो जीवन में आते रहते है किन्तु सृष्टि बीज शाश्वत है और वह कभी भी नष्ट नहीं होता है।

मानव के प्राकृतिक कर्तव्य–

जब मानव समाज पूर्ण विकसित नहीं था उस समय उसके सम्पूर्ण कर्तव्य प्राकृतिक कर्तव्य थे एवं उसकी स्थिति अन्य पशुओं की भातिं थी। वह अन्य पशुओं की भाँति ही आचरण करता था तथा प्रातः काल से लेकर रात्रि तक का सम्पूर्ण दैनिक जीवन नैसर्गिक कार्यों में ही व्यतीत होता था। ये नैसर्गिक कार्य सभी मनुष्यों के लिये सामान्य थे तथा ये निम्न भागों में विभाजित थे–

आहार–

जीवन को बनाये रखने व्यक्ति अपनी जंगली अवस्था में ही भोजन की खोज करता था। जो भी वस्तु वह खोजता था और उसे भोजन के योग्य समझता था, उस समय वह उसे भोजन के रूप में ग्रहण कर लेता था। इस तरह उसका प्रातः काल से लेकर रात्रि तक का समय केवल भोजन की खोज में ही व्यतीत होता था। क्योंकि बिना भोजन और जल के उसका जीवन व्यतीत ही नहीं हो सकता था। इसलिए भोजन की खोज और भोजन करना यह उसका प्राकृतिक धर्म था।

निद्रा–

जब व्यक्ति कार्य करते–करते थक जाता है, उस समय वह विश्राम करना चाहता है, इसलिए उसे निद्रा आती है। सामान्य प्राणियों की यह प्रकृति है कि वे

मुख्य रूप से रात्रि के समय शयन करते हैं। प्रातःकाल जब वे अपनी थकावट दूर कर लेते हैं उस समय वे पुनः जग जाते हैं तथा जगने के उपरान्त नैमित्तिक कर्म करते हैं। नैमित्तिक कर्म दो भागों में विभाजित हैं— प्रथम शौच क्रिया व्यक्ति प्रातःकाल उठकर शौच क्रिया, के लिए जाता है, इसके अर्न्तगत वह मल मूत्र त्याग करता है तथा अपने उदर सम्बन्धी विकारों को दूर करता है। द्वितीय—शरीर की पवित्रता—वह किसी भी जलाशय में जाकर स्नान करता है। वह स्नान के माध्यम से शरीर के ताप को दूर करता है तथा शरीर में गंदगी आदि को साफ करता है। इस तरह से श्रीर को पवित्र बनाये रखना उसकी प्राकृतिक आदत है।

भय—

संसार का प्रत्येक प्राणी मृत्यु को डरता है, यद्यपि यह सत्य है कि विशिष्ट समय के अर्न्तगत उसे मरना ही पड़ता है। संसार उसके लिए शाश्वत नहीं है फिर भी वह मौत से भयभीत रहता है। उसे अपने से अधिक शक्तिशाली जानवरों से भय लगता है तथा उनसे अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए वह समूह में रहता है। जीवन को सुरक्षित रखने कि लिए वह अनेक संसाधन भी अपने पास रखता है। उसके हृदय में एक विशेष प्रकार का भय व्याप्त रहता है जिसके कारण वह जंगली जानवरों, जहरीले जानवरों और विषाणुओं से अपनी रक्षा करता है। यदि उसे मृत्यु का भय न होता तो वह ऐसा कैसे कर सकता था।

मैथुन—

समस्त जीव जगत की उत्पत्ति के लिए विशिष्ट जैविक सिद्धान्तों का निर्माण हुआ है। यह विश्व कितना पुराना है और जीव इस विश्व में कहाँ से आया, आज तक यह एक अबूझ—पहेली मात्र है किन्तु इस पहेली को वात्स्यायन जैसे महाविद्वान ने सुलझाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने कामसूत्र जैसे महाग्रन्थ की रचना करके जीव उत्पत्ति के रहस्य को सुलझा लिया है तथा यह सिद्ध किया है कि समस्त विश्व का प्राणी मैथुन प्रक्रिया से ही पैदा हुआ है। यदि वह किसी महिला अथवा मादा तत्व

से संयोग नहीं करता तो मानव जैसा प्राणी भी संसार में उत्पन्न ही नहीं हो सकता था। संभोग प्रक्रिया से नारी अपने गर्भ में पुरूष वीर्य के शुक्राणुओ को धारण करती है। नव अथवा दस माह की अवधि में यह पुरूष वीर्य शुक्राणु स्त्री वीर्य कणों से मिलकर आकृति धारण करते हैं और वे पुरुष अथवा स्त्री रूप में दस माह के अन्दर गर्भ से बाहर निकलकर विश्व के खुले वातावरण में आ जाते हैं। जीवन की यह प्रक्रिया सृष्टि में आदि काल से प्रारम्भ हुई है और जीवन का विकास का क्रम आज भी इसी प्रक्रिया से चल रहा है। प्रत्येक प्राणी एक निश्चित अवधि तक इस संसार में शिशु, बालक, किशोर, युवा, प्रौढ़, वृद्ध आदि अवस्थाओं को पार करता हुआ अन्त में मृत्यु को वरण करता है। किशोर और युवावस्था में उसके हृदय में नारी के प्रति एक विशिष्ट आकर्षण से वासनात्मक वृत्तियाँ जन्म लेती हैं। और जब वह नारी से यौन सम्बन्ध स्थापित करता है तभी वह नवीन प्राणियों को जन्म दे पाता है। पहले नवजात शिशुओं को पालन करने का दायित्व केवल नारियों पर था किन्तु ज्ञान के उदय के पश्चात यौन सम्बन्ध स्थापित करने वाले नर अैर नारी संयुक्त रूप से इसका दायित्व उठाने लगे तथा इस तरह से परिवारों का भी जन्म हुआ।

ज्ञान का उदय–

मानव अन्य प्राणियों से बहुत चतुर हैं, उसका बौद्धिक स्तर भी अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत अधिक है। जब उसने संसार में जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया तो उसे तीन प्रकार की अनुभूतियाँ हुई। ये अनुभूतियाँ सामान्य अनुभूति, वेदना अनुभूति और आनन्द की अनुभूति के रूप में जानी गई। वह इन अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से प्रकट न करके आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से प्रकट करता है तथा दूसरा देखने वाला प्राणी उसके हाव–भाव को समझ लेता है। इस प्रकार सर्वप्रथम स्वअनुभूति का उदय हुआ। इस ज्ञान को प्रकट करने के लिए भाषा के अभाव में आंगिक चेष्टायें मात्र थीं तथा दर्शक उसके हाव–भाव देखकर उसके सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध करता था।

भाषा का उदय–

समाज को विकसित होता देखकर इस बात का अनुभव किया गया कि वह जिन वस्तुओं का प्रयोग करता है तथा जीवन यापन में जिन प्रक्रियाओं का सहारा लेता है। उसकी अभिव्यक्ति वह शब्दों और क्रियाओं का कुछ नाम देकर भाषा के रूप में करे, इस तरह सर्वप्रथम वस्तु और क्रियाओं को नाम देकर मौखिक भाषा का उदय हुआ। मौखिक भाषा के उदय के पश्चात व्यक्ति के हृदय में उत्कंठाये उत्पन्न हुई कि उनके हृदय की भावनाएँ चिरकालिक बनें तथा वे व्यक्ति भी उसकी भावनाओं को समझें जो उसके सम्मुख वर्तमान समय में नहीं हैं। उसकी मृत्यु के पश्चात भी समाज के लिए उपयोगी अभिव्यक्ति विशिष्ट संकलन के रूप में बनी रहें, इसको व्यक्त करने के लिए भाषा की लिपि खोजी गई तथा वह सामग्री खोजी जिस पर यह भाषा लिखी जाए। इस प्रकार से प्राचीन काल के मानवों ने ज्ञान की खोज की। वर्तमान काल में जो भी पुरा सामग्री ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध होती है वह उसी युग की देन है तथ इसे परानुभूति ज्ञान के रूप में जाना जाता है।

धर्म का उदय–

धर्म शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम श्रौत अैर स्मार्त ग्रन्थों में उपलब्ध होता है तथा इसे शिष्ट लोगों के व्यवहार के रूप में जाना गया है।

'वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।

शिष्टाचीर्णः परः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः।।'[11]

'उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्।.................स्मार्तोद्वितीयः। तृतीयः शिष्टागमः'[12]

धर्मशास्त्रकारों ने कुछ नियम सामन्य रूप से उन लोगों के लिए बनाए हैं, जो सभी वर्णों से सम्बन्धित हैं। ऋग्वेद के अनुसार सत्यवचन ही धर्म है क्यों कि धर्म सत्य की रक्षा करता है और असत्य का हनन करता है।

'सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।

तयोर्पत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्य सत्।'[13]

इसलिए प्रथम धर्म के रूप में तैत्तरीय उपनिषद् में वर्णित सत्यमवद् धर्मचर को ही अपनाना चाहिए।[14] इसके पश्चात एक देवस्तुति में यह कहा गया है– असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योर्तिगमय' का उल्लेख हुआ है। जिसका अर्थ है असत्य से सत्य की ओर ले चलो अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो।

'तदेतानि जपेद सतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योर्तिगमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।'[15]

तात्पर्य यह कि प्रत्येक व्यक्ति का यह धार्मिक कर्तव्य है कि वह सत्य बोले, ज्ञानवान बने और ऐसे कार्य करे जो उसे स्थाायी यश प्रदान करें। धर्मशास्त्रों में दान एवं दया को व्यक्ति का सबसे बडा धर्म माना गया है।

'तस्मादेतन्त्रयं शिक्षेद् दमं दानं दयामिति।'[16]

धर्म के अर्न्तगत व्यक्ति को पाँच कर्म करने से रोका गया है– सोने की चोरी करना, सुरापान करना, ब्रह्म हत्या करना, गुरू की शैय्या को अपवित्र करना, इन सभी के साथ संबध स्थापित करना। कठोपनिषद में भी दुराचरण त्यागने मन में शान्ति धारण करने को व्यक्ति का धर्म बतलाया गया है।[17] महाभारत में व्यक्ति के सामान्य धर्मों में मन, वचन, और कर्म को एक रखकर अहिंसा ओर दान की भावना को शाश्वत् धर्म माना गया है।[18] गौतम धर्म सूत्र में दया, शान्ति, अनुसूया, शौच, अनायास, मंगल, अक्रपण, अस्पृहा इन आठ गुणों को व्यक्तिगत धर्म माना गया है। योगवशिष्ठ में कुछ कर्मों की निन्दा की गयी है, इन कर्मों में चुगुलखोरी करना, ईर्षारखना, घमंड करना, अंहकार रखना, अविश्वास रखना, कपट रखना, आत्म प्रशंसा करना, दूसरों को गाली देना, प्रवंचना, लोभ, अपबोध क्रोध तथा प्रतिस्पर्धा को अधर्मी का धर्म कहा है।[19] व्यक्ति को यह सलाह दी गयी है कि किसी व्यक्ति का साथ उसके माता पिता, पत्नी तथा लड़के नहीं देते, केवल सदाचार ही उसका साथ देता है तथा केवल देवता और अर्न्तपुरूष उसके कर्तव्य को देखते हैं।[20] इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति का सबसे बड़ा धर्म पुरूषार्थ है, इसलिए व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के लिए प्रयत्न करना चाहिए, यही उसका धर्म है।

श्रीमद्भागवत् महापुराण में भी व्यक्तिगत धर्म को भी मानव धर्म के नाम से पुकारा गया है तथ ायह धर्म सभी व्यक्तियों के लिए एक सा है। इन्हें सत्य, दया, तपस्या, शौच. तितिक्षा, उचित–अनुचित का विचार , मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी, महात्माओं की सेवा, सांसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, इष्टदेव का आराधन, सन्तों को आश्रय प्रदान करना, भगवान की पूजा करना, उनके गुणों का गायन करना, उनके प्रति दास सखा का भाव रखना, उनके लिए अपने आपको समर्पित रखना ये तीस गुण मनुष्य के व्यक्तिगत धर्म हैं।[21]

भागवत पुराण में यह भी वर्णन मिलता है कि व्यक्तिगत धर्म के नियमों का निर्माण जन्म और कर्म दोनों को ध्यान में रखकर किया गया है।

'संस्कारा यदविच्छिन्नाः स द्विजोअजो जगदयम्।

इज्याध्ययन दानानि विहितानि द्विजन्मनाम।

जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः।[22]

स्त्रियों के व्यक्तिगत धर्म पुरूषों से कुछ भिन्न हैं, उनके व्यक्तिगत धर्म में पति की सेवा करना (केवल विवाहित औरतों के लिए), उसके अनुकूल रहना, पति के सम्बन्धियों को प्रसन्न रखना तथा सर्वदा पति के नियमों की रक्षा करना व पति को ईश्वर मानना।

'स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता।

तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्।।[23]

जो स्त्री साध्वी है उसका कर्तव्य है कि वह घर को साफ सुथरा रखे, लीपे पोते और धार्मिक कार्यों में चौक पूरे तथा सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से अपने को सुसज्जित रखे।

'संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः।

स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्ट परिच्छा।।[24]

उसका यह कर्तवय है कि वह पतिदेव की छोटी छोटी इच्छाओं की पूर्ति करे, विनम्र रहे, इन्द्रियों पर संयम बनाये रखे। प्रिय वचनों से पति की सेवा करे।

'कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।

वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम् ।।'[25]

भागवत के रचनाकार के अनुसार स्त्री का यह व्यक्तिगत कर्तव्य है कि जो संसाध ान परिवार में उपलब्ध हो उन्ही से सन्तुष्ट रहे। वह किसी कार्य में लालच न करे और गृहस्थी के कार्यों में कुशल चतुर व धर्मज्ञ हो। वह सत्य और प्रिय बोलेअपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहे तथा पतिव्रता रहे व हृदय में प्रेम बनाये रखे जब तक उसका पति पतित न हो उस समय तक उसके निर्देशों का पालन करे।

'संतुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक्।

अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत्।।'[26]

समाज में जिन व्यक्तियों को शूद्र अथवा दास कहा गया था उनके भी कर्तव्यो अथवा धर्म का वर्णन भी धर्मग्रन्थों में उपलब्ध होता है। बौधागत धर्मसूत्र में शूद्रों के सन्दर्भ में यह कहा गया है कि जैसे पशुओं में घोड़ होता है। वैसे ही मनुष्यों में शूद्र होता है। तैत्तरीय संहिता में भी इसका उल्लेख मिलता है।

'शूद्रो मनुष्याणामश्वः पशुनां तस्मात्तौ भूतसंकामिणावश्वश्च शूद्रश्च तस्माच्छद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः।'[27]

वैदिक युग में शूद्र यज्ञ आदि पवित्र कर्म नही कर सकते थे, वो केवल पालकी ढोते थे तथा ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करते थे। शूद्र चाहे कितना ही धनी हो उसका कोई देवता नहीं था वह केवल ब्राह्मणों की सेवा करता था। तैत्तरीय ब्राह्मण में उल्लेख है कि उसे पीटा भी जा सकता था।

'(शूद्रोः) अन्यस्य प्रेष्यः कामोत्थाप्यः यथाकामवध्यः।'[28]

श्रीमद्भागवत पुराण में शूद्रो के व्यक्तिगत धर्मो का उल्लेख किया गया है। ग्रन्थकार के अनुसार शूद्रों को यह निर्देश दिया गया है कि वह सवर्णो के सामने

विनम्र रहे, पवित्र रहे, निष्कपट भाव से स्वामी की सेवा करे तथा यज्ञ करे जिनका सम्बन्ध वैदिक यज्ञ से न हो। चोरी न करे, सत्य बोले, गऊ और ब्राह्मणो की रक्षा करे।

'शूद्रस्य संनति शौचं सेवा स्वामिन्यमायया।

अमन्त्रयज्ञों हस्त्येयं सत्यं गोविप्ररक्षणम्।।[29]

भागवत पुराण में शूद्र दो प्रकार के माने गये है, प्रथम ऐसे शूद्र जो दुष्कर्म करते हैं तथा द्वितीय शूद्र जो बुरे कर्म करतेहै। इसके अतिरिक्त वर्णसंकर जातियां भी उपलब्ध होती है, इन सबके अपने अपने व्यक्तिगत कर्म है।

'वृत्तिः संकर जातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत्।

अचौराणभयायानामन्त्यजान्तेअव साषिनाम् ।।

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे–युगे।

वेदद्द्ग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत।।[30]

मनुष्य के व्यक्तिगत धर्म को शास्त्रीय आधार पर निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।–

दिवस विभाजन–

धर्मशास्त्रों के अनुसार सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के समय को दिन और सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक रात्रि माना गया है। इसे दो भागों में विभाजित किया गया है– सूर्योदय से लेकर दोपहर तक के समय को पूर्वान्ह तथा दोपहर के बाद के समय को अपरान्ह माना गया है।[31] दिन और रात के समय को बारह–बारह घंटो मे बाँटा गया है, प्रातःकाल को उदय, संगत, मध्यदिन, मध्यान्ह, अपरान्ह, सायान्ह या अस्तंगमन या सायं कहा गया है। इनमें प्रत्येक काल तीन मुहुर्तों में विभाजित होता है व्यक्ति के समस्त कार्यक्रम समय सीमा से बँधे होते हैं, इसलिये सबसे प्रथम कर्तव्य समय अनुपाल ही माना जाता है।

प्रातःकाल उठना–

प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह सूर्योदय के पहले उठे और भगवान का स्मरण करे। कुछ मन्त्रों की रचना की गयी है जिनका पाठ वह प्रातःकाल उठकर करे–

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।

गुरूश्च शुक्रः शनि राहु केतवः कुर्वन्तु सर्वे मम् सुप्रभातम्।[32]

मल मूत्र त्याग–

प्रत्येक व्यक्ति का यह नैतिक धर्म है कि वह स्वास्थ्य की रक्षा के लिये स्वच्छता के नियमों का अनुपालन करे। इस सन्दर्भ में अथर्ववेद में एक उदाहरण उपलब्ध होता है– मैं तुम्हारी जड़ को, यदि तुम गाय को पैर मारते हे, सूर्य की ओर मूत्र त्याग करते हो, काट देता हूँ तब तुम इसके आगे छाया न दोगे।[33] इसी प्रकार अथर्ववेद में खडे होकर पेशाब करने को प्रतिबन्धित किया गया है।[34]

धर्मशास्त्रों के अनुसर मार्ग, राख, गोबर, जोते बोएखेत, वृक्ष की छाया, जल, घास, सुन्दर स्थानों, ईंटो, पर्वत शिखरों देव स्थानों, गोशालाओं, चीटियों के स्थल, कब्रों के छिद्र, तथा बालू प्राप्त करने वाले स्थलों में मल–मूत्र नहीं करना चाहिये। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, ब्राह्मण के मकान, जलाशय किसी देवमूर्ति गाय की ओर, वायु की ओर तथा खुली जगह पर मल मूत्र नहीं करना चहिये। खड़े होकर या चलते चलते मल नही करना चाहिये। जिस जगह मल मूत्र करें उसे मिट्‌टी से ढ़क दे या पानी डाल दें तथा शौच क्रिया के बाद हाथ मिटटी अथवा राख से धोना चाहिये। जनेऊधारी को दाहिने कान में जनेऊ धारण करना चाहिये।

देह की स्वच्छता एवं शुद्धि के नियम का अनुपालन–

प्रत्येक व्यक्ति को चार प्रकार की सफाई पर जोर देना चाहिये, कुल की पवित्रता, उपलब्ध पदार्थों की पवित्रता, शरीर की पवित्रता, मन की स्वच्छता अर्थात नेत्रों की स्वच्छता, वाणी की स्वच्छता तथा जिह्वा की स्वच्छता पर बल दिया गया

है। व्यक्ति समय समय पर रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, नासामल, खूँट, खखार, आँसू, नेत्रमल, और पसीने के साफ करे। इसके बाद मुख धोनें के लिये आचमन करे व मुख के बाहरी भाग को धोये, अन्दर भी गरारा आदि करे। इसके बाद वह दाँत साफ करे वह दाँत को दातून के माध्यम से साफ कर सकता हैं। स्नान दोप्रकार के बतलाये गये है, इनमें मुख्य स्नान जो जल से होता है तथा गौण स्नान जो बिना जल के होता है। शरीरिक शुद्धता के लिए स्नान बहुत जरूरी है क्योकि बिना स्नान के कोई भी धार्मिक कृत्य पूजा पाठ नहीं हो सकते। मनु स्मृति में नैमित्तिक स्नान पर जोर दिया गया है। इसे छः कोटियों में बाँटा गया है। नित्य नैमित्तिक, काम्य, क्रियांग, मालायकर्षण क्रिया स्नान और नित्य स्नान में विभाजित किया गया है।[35]

वस्त्र धारण–

स्नानादि करने के पश्चात व्यक्ति वस्त्र धारण करे, वस्त्रों के सन्दर्भ में ऋग्वेद में पर्याप्त विवण उपलब्ध होता है।[36]

धर्मचिन्ह धारण करना–

प्रत्येक व्यक्ति का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपनी जाति व सम्प्रदाय के अनुसार मस्तक में धर्म चिन्ह धारण करे।

होम–

प्रत्येक व्यक्ति का यह धार्मिक कर्तव्य है कि अपने वर्ण के अनुसार होम आदि कार्य करे। यह कृत्य सूर्योदय के पश्चात तथा सन्ध्या के समय होते है। इनका विशिष्ट वणन विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में मिलता है।[37]

जप तर्पण–

व्यक्ति अपने आराध्य देव के प्रसन्न करने के लिये जाप किया करता है। इसमें वह निर्दिष्ट मन्त्रों का उच्चारण करता है। यह जप तीन प्रकार का होता है। वाचिक, उपांग, और मानस इनके अर्न्तगत अलग–अलग ढ़ंग से जाप करने का नियम बना हुआ है। जप करने के पश्चात मंगलमय वस्तुओं का दर्शन करना अनिवार्य है। इसके

पश्चात अपने पूर्वजों के लिये श्रद्धा रखते हुये उनको तर्पण आदि प्रदान करे। तर्पण क्रिया पूर्वजों की मृत्यु उपरान्त की जाती है। तथा पितर पक्ष में इसका महत्व अत्यधिक है गोभित्व स्मृति में इसका वर्णन विस्तार से आया है।[38]

पंचमहायज्ञों का आयोजन–

प्रत्येक व्यक्ति का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, और ब्रह्म यज्ञ का आयोजन करे। इन आयोजनों से देवता प्रसन्न होते हैं तथा व्यक्ति को स्थाई यश की उपलब्धि होती है और उसके हृदय में परोपकार की भावना प्रबल होती है एवं उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है।[39]

देव प्रतिमा का पूजन–

प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी देवता पर आस्था रखता है। वह अपने इष्ट देवता की पूजा घर में मूर्ति स्थापित करके या देवालयें में जाकर करता हैं। घर में वह धातु मूर्तियों तथा देवालयें में प्रस्तर मूर्तियों की पूजा करता है। वह देवदर्शन देवस्नान, देवताओं को वस्त्र पहनाना, चन्दन लगाना, धूप, नेवैद्य, पुष्प आदि से भगवान का स्वागत करना, प्रसाद चढ़ाना भगवान की आरती उतारना, प्रदक्षिणा करना तथा भजन कीर्तन आदि के माध्यम से पूजा अर्चना करता है। मूर्ति पूजा का विशद वर्णन पूजा प्रकाश में उपलब्ध होता है।[40]

तीर्थाटन–

प्रत्येक व्यक्ति का यह नैमित्तिक धार्मिक कर्तव्य बताया गया है। कि वह अपने जीवन काल में उन पवित्र स्थलों की यात्रा अवश्य करे जिनका धार्मिक दृष्टि से विशेष महत्व है। मुख्य रूप से प्रयागराज, पुष्कर जी, वाराणसी, मथुरा, अयोध्या, नासिक, गंगासागर, हरिद्वार आदि की यात्रा निश्चित करे। इस यात्रा से देशाटन का लाभ, ज्ञान वृद्धि तथा अन्य संस्कृतियों से हमारा परिचय भी होता है।

भोजन विधि—

हमारे व्यक्तिगत धर्म में जो भोजन विधियों का उल्लेख किया गया है। इसमें यह नियम है कि भोजन करने के लिये शिष्टाचार का परिचय दे, पंक्ति बनाकर भोजन करने बैठें, पवित्र होकर भोजन करें व परोंसे, अखाद्य वस्तुओं का सेवन न करें, बासी वस्तुओं का भोजन न करें, मांसाहार बहुत कम करें तथा अनेक अवसरों के अनुसार भोजन करें। बेईमान अवैध कमाई करने वाला तथा वेश्या आदि के घरों में भोजन करने के लिये मना किया गयाहै। आपस्तम्ब धर्म—सूत्र में इसका वर्णन मिलता है।[41]

श्रीमद्भागवत महापुराण में व्यक्ति के व्यक्तिगत धर्म पर बहुत जोर दिया गया है और यह कहा गया है कि भागवतमहापुराण जैसे सद्ग्रन्थों का पाठ ही व्यक्ति में नैतिक गुण पैदा कर सकता है। इसका पाठ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरिद्वार, कुरूक्षेत्र, श्रीरंग तथा सेतुबन्ध की यात्रा से भी श्रेष्ठ है। कलियुग में जो अधर्म फैला है वह तीर्थयात्रा से दूर नही हो सकता, उसको दूर करने के लिये भागवत जैसे महाग्रन्थ का पाठ आवश्यक है।

'अहं तु पृथ्वीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति।

पुष्करं च प्रयागं च काशी गोदावरी तथा।।

हरिक्षेत्रं कुरूक्षेत्रं श्रीरंग सेतुबन्धनम्।।

एवमादिषु तीर्थेषुभ्रममाण इतस्ततः।।

नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनस्संतोषकारकम्।

कलिनाधर्म मित्रेण धरेयं बाधिताधुना।।[42]

जब भारतवर्ष में नैतिक मूल्यों का पतन हुआ तो लोग केवल अपना पेट पालने में लग गये, असत्यभाषी हो गये, आलसी हो गये, मन्द बुद्धि के हो गये अैर उपद्रव से त्रस्त रहने लगे। साधु सन्त पाखण्डी हो गये वे देखने में तो सन्यासी किन्तु औरतों से संसर्ग रखने वाले हो गये। घर में पुरूष औरतों का गुलाम हो गया धन

के लोभ में लोग कन्यायें बेचने लगे, तीर्थ स्थलों महात्माओं के आश्रमों और नदियोंमें विधर्मियों का राज्य हो गया। दुष्टों ने देवालयों को नष्ट कर दिया तथा न कोई योगी रह गया न सिद्ध और न कोई ज्ञानवानहै। ब्राह्मण पैसा लेकर ज्ञान देने लगे है। इस तरह से धर्म नष्ट हो गया है तथा भक्ति भावना समाप्त हो चुकी है, तीर्थों में वे व्यक्ति रहने लगे है जो नाना प्रकार के दुष्कर्म करते है। जिनका चित्त निंरन्तर काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा आदि से तपता रहता है वही तपस्वी बन गये हैं। अब कोई सच्चा भक्त और वैष्णव भी नहीं रह गया भागवत पुराण में यह उस समय के समाज की स्थिति दर्शायी गयी है।

'येषां चित्ते वसेद्भक्ति सर्वदा प्रेम रूपिणी।

न ते पश्यन्ति की नाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः।।

न प्रेतो न पिशाचों वा राक्षसो बासुरोऽपिवा।

भक्ति युक्त मनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ।।

न तपो भिर्न वेदैश्च न ज्ञाने नापि कर्मणा।

हरिर्हि साध्यते भक्तया प्रमाणं तत्र गोपिकाः।।'[43]

जब व्यक्ति भक्ति भाव से प्रेरित हो जाता है। तो उस समय ज्ञान और वैराग्य का महत्व नहीं रह जाता। महाभारत के अनुसार द्रव्य, यज्ञ, तप, योग, स्वाध्याय और ज्ञान को धर्म का अंग माना गया है। इस पुराण में ऐसा सब कुछ है जो व्यक्ति के समस्त अज्ञान को मिटा देता है। और व्यक्ति भागवत के माध्यम से अपने व्यक्तिगत धर्म और जीवन में सुधार लायगा।

'प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्री मद्भागवतध्वनेः।

कलेर्दोषा इमें सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव।।

ज्ञान वैराग्यसंयुक्ता भक्ति प्रेमरसाव हा।।

प्रतिगेहंप्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति।।'[44]

भागवत पुराण के श्रवण मात्र से अपवित्र व्यक्ति भी पवित्र हो जाते है। जो

व्यक्ति मदिरापान करता है। ब्रह्म हत्या करता है, सुवर्ण की चोरी करता है, गुरू स्त्री से अवैध सम्बन्ध बनाता है,कपटी है, दुष्ट है, पिशाच के समान निर्दयी है, ब्राह्मण के धन से जीवनचलाने वाला है। ये व्यक्ति भी भागवत महापुराण श्रवण कर पवित्र हो सकते है।

'पचोग्रपापश्छलछदम् कारिणः।

क्रूराः पिशाचा इवं निर्दयाश्च ये।

ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः

सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते।

कायेन वाचा मनसापि पातकं।

नित्यंप्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये।

परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः।

सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्तिते।'[45]

जब कोई व्यक्ति दुगुर्णों को अपना ले, बुरी वस्तूओं का संग्रह करे अखाद्य वस्तुओं को भी खा जाये। व्यर्थ में किसी की हिसां करे,अन्धे और गरीबों को तंग करे, हमेशा शिकार की टोह में घूमता रहे पिता की गाढी कमाई को गवां दे तथा माता पिता को मारपीट कर बर्तन भाँडे उठाकर बेच डाले आदि। इस स्थिति में कोई भी व्यक्ति उसे सुधार नहीं सकता, जब वह स्वतः भक्ति भावना से प्रेरित होगा और भागवत की शिक्षा ग्रहण करेगा। तभी उसका नैतिक सुधार हो सकता है और व्यक्तिगत धर्म की रक्षा कर सकता है। इसलिये सद्ग्रन्थ भागवत पुराण ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत धर्म को सुदृढ़ करता है। और उसे नीति की ओर प्रेरित करता है।

2— पारलौकिकता तथा मोक्ष की अवधारणा—

यह संसार नश्वर है कोई भी चीज यहाँ स्थिर नहीं रह सकती फिर भी हम इस लोक को स्थाई समझने लगते हैं और यहाँ उपलब्ध सुख भोगों को स्थाई समझ कर

उन्हें सब कुछ समझने लगते हैं। भागवत् महापुराण में प्राणी की उस लालसा का चित्रण किया गया है जिसमें वह दूसरों के टुकड़े तोड़कर भी जीने की इच्छा रखता है।

'अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान्।

भीमायवर्जितं पिण्डमादते गृहपालवत्।।'[46]

व्यक्ति को यह समझना चाहिये कि जीवन नश्वर है और संसार में जब कोई विशेष स्वार्थ की सिद्धि न हो उस समय अपने माया मोह बंधनों को तोड़ देना चाहिए। संसार को दुःख का कारण मानकर उसे छोड़ दे तथा सभी लोगों से नाता तोड़कर परमात्मा से नाता जोड़कर ममता मोह के बन्धनों का परित्याग कर दे, वही व्यक्ति सर्वोत्तम माना जाता है।

'गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः।

अविज्ञातगतिर्जह्मत् स वै धीर उदाहृतः।।

यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान्।

हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रवृजेत्स नरोत्तमः।।'[47]

यह संसार ईश्वर के वश में है सारे लोक और परलोक विवश होकर ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं। वही एक दूसरे को मिलाता है और वहीं एक दूसरे को अलग करता है।

'मा कंचन शुचो राजन् यदीश्वर वंश जगत्।

लोकाः सपालां यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः।

स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च।'[48]

परमात्मा एक खिलाडी है और समस्त जीव उसके लिए खिलौने हैं, इसलिए मिलना और बिछुडना परमात्मा की इच्छा पर निर्भर करता है। किसी भी जीव के प्रति कोई मोह की भावना न रखना चाहिए सब परमात्मा के अधीन हैं तथा यह पंचभौतिक शरीर कर्म और गुणों के वश में है। जब यह स्वतः दूसरों के वश में है तो

वह दूसरों की रक्षा क्या करेगा। सब जीव एक दूसरे का भक्षण करते हैं हाथवाले, बिना हाथ वाले चार पैरवाले सब जीवों के आहार हैं। इस लिए हर जीव एक दूसरे के जीवन का कारण हो रहा है।

'तस्माजह्मंग वैल्कव्यमज्ञानकृतमात्मनः।

कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंते च मां विना।।

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाचभौतिकः।

कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम्।।

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम्।'

फल्गूनि तत्र महतांजीवो जीवस्य जीवनम्।।[49]

इस कलियुग में व्यक्ति अल्पायु में ही मृत्यु को प्राप्त होते है इसलिए मोक्ष की कामना वह परमात्मा से करते हैं किन्कतकु मोक्ष उनके उस समय तक नहीं मिल पाता जब तक वह परमात्मा का ध्यान नहीं करता।

'क्षुद्रायुषां नृणामंग मर्त्यानामृतमिच्छताम्।

इहोपहूतो भगवान् मृत्युः शामित्रकर्मणि।।[50]

भागवत् महापुराण के अनुसार धर्म का स्वरूप बैल का है और पृथ्वी का स्वरूप गाय का है, जब पृथ्वी का दोहन अनीति से होता है तो पृथ्वी और धर्म दोनों की स्थिति कमजोर होती है। जब जनता खान–पान, वस्त्र–स्नान, स्त्री–सहवास आदि में शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं करती तभी पृथ्वी दुःखी होती है। जब लोग भगवान पर विश्वास करते थे और धर्म के चारों चरणों का अनुपालन होता था। पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, सम, दम, तप, समता, तितिक्षा, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कौशल, क्रान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनयशील, साहस, उत्साह, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, अस्तिकता, कीर्ति, गौरव और निरहंकारिता ये धर्म के उन्तालीस गुण हैं। जो व्यक्ति इनका अनुसरण करता है भगवान की क्षत्र छाया उसके ऊपर रहती है।[51] जब व्यक्तियों में पुरूषार्थ की कमी आती है तभी धर्म

अपंग होता है।

वर्ततमान समय में लोग भगवान की भक्ति ओर देवताओं की उपासना कामनाओं से किया करते हैं। ब्रह्मतेज प्राप्त करने के लिए व्यक्ति वृहस्पति की उपासना करता है। इन्द्रियों की विशेष शक्ति के लिए इन्द्र की उपासना करता है, सन्तान प्राप्ति की लालसा से वह प्रजापतियों की उपासना करता है इन्द्रियों की विशेष शक्ति के लिए इन्द्र की उपासना करता है, सन्तान प्राप्ति की लालसा से वह प्रजापतियों की उपासना करता है, धन की लालसा से वह ल़क्ष्मी की उपासना करता है, तेज के लिए वह अग्नि की उपासना करता है तथा वीरता की प्राप्ति के लिए वह रूद्र की उपासना करता है। बहुत अन्न प्राप्त करने के लिए वह अदिति की उपासना करता है, स्वर्ग प्राप्ति के लिए वह अदिति के पुत्र देवताओं की उपासना करता है तथा राज्य की अभिलाषा से वह विश्वदेवों की उपासना करता है। प्रजा को अनुकूल बनाये रखने के लिए वह साध्य देवताओं की आराधना करता है, पुष्टि की प्राप्ति के लिए वह पृथ्वी की आराधना करता है तथा प्रतिष्ठा की चाह के लिए वहा लोक माता पृथ्वी और आकाश की आराधना करता है। सौन्दर्य की चाह के लिए वह गन्धर्वों की उपासना करता है, पत्नी की प्राप्ति के लिए वह अप्सरा की उपासना करता है, तथा सबका स्वामी बनने के लिए वह ब्रह्मा की उपासना करता है। यश की इच्छा के लिए यज्ञ पुरूष की उपासना की जाती है, खजाना के लिए वरूण की, विद्या प्राप्त करने के लिए शंकर की तथा पति—पत्नी में प्रेम बनाए रखने के लिए पार्वतीजी की उपासना करनी चाहिए। धर्म की रक्षा के लिए विष्णु की उपासना करनी चाहिए, परिवार की रक्षा के लिए पितरों तथा बधाओं से बचने के लिए यक्षों की उपासना करना चाहिए। बलवान बनने के लिए मारूति की उपासना करनी चाहिए, राज्य के लिए मन्वन्तरों की तथा अधिपति देवों की अभिचाल के लिए निरूक्त की उपासना करनी चाहिए। भोगों की प्राप्ति के लिए चन्द्रमा की उपासना करना चाहिए और निष्काम भाव प्राप्त करने के लिए परम पुरूष नारायण की उपासना करना चाहिए।

यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करता है किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भगवान का भजन करना चाहता है। सर्वश्रेष्ठ भक्ति निष्काम भाव है इसलिए निष्काम भक्ति को ही अपनाना चाहिए। जो व्यक्ति बुद्धिमान है और निष्काम है अथवा समस्त कामनाओं से मुक्त है और वह मोक्ष की इच्छा रखता है तो उसे पुरूषोत्तम भगवान की उपासना करना चाहिए।

'राज्यकामो मनून् देवान् निर्ऋतिं त्वभिचरन् यजेत।

कामकामो यजेत् सोममकामः पुरूषं परम्।।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरूषं परम्।।[52]

इस युग में भगवान के प्रेमी भक्तों का सत्संग करे जिससे संसार में व्याप्त सत् रज, तम गुणों के थपेडे शांत हो जाते हैं। हृदय शुद्ध होकर आनंद का अनुभव करने लगता है। इन्द्रियों के विषय में आसक्ति नहीं रहती, कैवल्य मोक्ष का सर्वसम्मत मार्ग प्राप्त हो जाता है, इसलिए सतसंग ही मोक्ष का मार्ग है।

'ज्ञानं प्रदाप्रति निवृत्तगुणोर्मिचक्र

मात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसंगः।

कैवल्य सम्मतपथस्त्वथ भक्तियोगः

को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात।।[53]

पारलौकिकता की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को अपने कर्तव्यों में परिवर्तन करना चाहिए। यदि व्यक्ति परमात्मा के चरणों पर विश्वास करे तो व्यक्ति पारलौकिकता को प्राप्त कर सकता है। बहुत से लोग अपने आप को कमजोर समझकर कुछ करना ही नहीं चाहते इसलिए उनको प्रतिफल भी कुछ नहीं मिलता।

मनुष्य का यह शरीर आत्मा के बिना कोई महत्व नहीं रखता, आत्मा के कारण वह विविध रूप वाला और गुण वाला होता है तथा बाद में सांसारिक माया उसके शरीर को घेरती है। मोह से प्रभावित होकर वह संसार में रमण करता है और यह

मेरा है यह पराया ऐसा सोचने लगता है।

'बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया।

रममाणों गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते।।[64]

यदि वह माया का परित्याग कर दे तो वह उदासीन भाव का हो जाता है। जिस दिव्य लोक की परिकल्पना भागवत पुराण में की गयी है वह सर्वश्रेष्ठ परलोक है उसके अलावा कोई दूसरा लोक है ही नहीं उस लोक में किसी प्रकार का क्लेश मोह और भय नहीं है। जो उस लोक को एक बार देख चुका है वह बार–बार उसके प्राप्त करने की कामना करते हैं। वहाँ माया और काल दोनों की दाल नहीं गलती इस लोक में भगवान के पार्षद निवास करते हैं, जिनकी पूजा दैत्य और देवता दोनों करते हैं।

'तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः

सन्दर्श यामास परं न यत्परम्।

व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं

स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैर भिष्टुतम्।

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः

सत्वं च मिश्रं न च काल विक्रमः।

न यत्र माया किमुतापरे हरे

रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः।[65]

वैकुण्ठ लोक अथवा परलोक जिसकी प्राप्ति की लोग कामना करते हैं वह परमात्मा का निवास स्थान है। परमात्मा के प्रत्येक अंग से सौन्दर्य झलकता है उनके कानो में कुण्डल, मष्तक में मुकुट और कण्ठ में मालाएँ हैं। यह लोक महात्माओं के दिव्य तेजोमय विमानों से स्थान–2 पर सुशोभित होता है। इस वैकुण्ठ लोक में लक्ष्मी समस्त विभूतियों सहित भगवान की सेवा करती है और सौन्दर्य से उन्मत्त होकर भौंरे स्वयं लक्ष्मी का गुणगान करने लगते हैं।

'श्यामावदाताः शतयत्रलोचनाः

पिशंगवस्त्राः सुरूचः सुपेशसः ।

सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणि

प्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ।

प्रवालवैदूर्य मृणालवर्चसः

परिस्फुरत्कुण्डल मौलिमालिनः ।

भाजिष्णुभिर्यः परितो विराजते

लसद्विमाना वलिभिर्गहात्मनाम् ।

विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः

सविद्युदभावलिभिर्यथा नभः ।[56]

स्वर्ग में भगवान के सिर पर मुकुट कानों में कुण्डल कन्धे पर पीताम्बर तथा उनके चार भुजाएँ हैं तथा लक्ष्मी जी उनके बगल में विराजमान हैं। इस स्थान पर पुरूष प्रकृति महतत्व, अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ, पंचतन्मात्राएँ, पंचभूत, पचीस शक्तियाँ, समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान, वैराग्य, छः सिद्धियाँ वह सब के सब परमात्मा के आधीन रहते हैं।

'अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं

वृतं चतुः षोडशपचशक्तिभिः ।

युक्तं भगैः स्वैरित रत्र चाध्रुवैः

स्व एव धामन रममाणमीश्वरम् ।

तद्दर्शनाहादपरिप्लुतान्तरो

हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ।

न नाम पादाम्बुजमस्य विश्वसृग्

यत् पारमहंस्येन पथाधिगम्यते ।[57]

कहने का तात्पर्य है कि इस संसार में व्यक्ति जब जीवन धारण करता है तो

उसे अच्छे कर्म के प्रति प्रेरित किया जाता है ताकि वह अपने वर्ण धर्म, आश्रम धर्म और मानव धर्म का अनुपालन ठीक से करे। उसे यह प्रेरणा प्रदान की गयी है कि वह ऐसे कर्म करे जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हो तथा उसके कर्म को उसकी क्षमता अनुसार मूल्यांकित भी किया जाता है। उसकी सम्पूर्ण कर्म प्रक्रिया को हम निम्न भागों में विभाजित करते हैं।

पुण्य के कार्य—

पुण्य के कार्य व्यक्ति के वे कार्य हैं जो व्यक्ति अपने लिये न करके अन्य व्यक्तियों के लिए करता है अर्थात वह जन कल्याण या पुरूषार्थ को ही अपना धर्म समझता है। वह सोचता है कि जिस प्रकार वृक्ष स्वतः अपना फल नहीं भक्षण करते, सरिताएँ स्वतः अपना जल नहीं पीती उसी प्रकार से महापुरूष जन कल्याण अपने लिए नहीं करते हैं। उनकी यह निः स्वार्थ सेवा बिना किसी कामना के ही की जाती है तथा वह इस सेवा के बदले कुछ भी प्राप्त नहीं करना चाहता तथा ऐसे कृत्यों को पुण्य कृत्य कहा जाता है।

पाप के कार्य—

जब व्यक्ति धर्म विरूद्ध आचरण करता है तो उस आचरण को हम पाप से पूर्ण कार्य मानते हैं। वे कार्य भी पाप पूर्ण होते हैं जो समाज में अव्यवस्था फैलाते हैं तथा अपराधों को जन्म देते हैं तथा वे कार्य भी पापमय होते हैं जो अहं अथवा तमोगुण से युक्त होते हैं। ऐसे कार्यों की प्रशंसा किसी भी धर्मग्रन्थ में नहीं की गयी तथा यह स्वीकार किया गया कि पापकर्म करने वाला व्यक्ति इस लोक और परलोक दोनों में ही निन्दा का कारण बनता है। इसीलिए धर्मग्रन्थों ने पापकर्मों की सदैव निन्दा की है।

स्वर्ग—

समस्त भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में यह उल्लेख आता है कि जो व्यक्ति अच्छे कार्य करता है तथा जिसके कार्यों की निन्दा समाज का कोई भी व्यक्ति नहीं करता,

वह व्यक्ति इस लोक में प्रशंसा का पात्र बनता है। उसकी मृत्युलोक में भी उत्तम गति होती हैं अर्थात उसे स्वर्ग की प्राप्ति व भगवान की समीपता उपलब्ध होती है।

नरक–

जो व्यक्ति पाप करता है उस व्यक्ति के लिये कर्म के अनुसार प्रतिफल घोषित कर दिया जाता है तथा बुरा कार्य करने वाले को नरक गामी माना जाता है। यदि सच पूँछा जाये तो स्वर्ग और नरक कुछ भी नहीं है केवल कर्मों का प्रतिफल भर है किन्तु इसके पीछे एक काल्पनिक लोक की परिकल्पना की गई है इसलिये मृत्यु के पश्चात स्वर्ग और नरक का निर्धारण कर दिया जाता हैं। विविध पुराणों में स्वर्ग और नरकों का विवरण मिलता है भागवत पुराण में इक्कीस तथा सात नरकों को मिलाकर अट्ठाइस नरक बताये गये हैं।

'तत्र हैके नकानेकविंशतिं गणयन्ति।

सूचीमुखमित्यष्टााविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः।[58]

मोक्ष–

जब जीव अपने अन्यथा रूप को छोडकर आत्म स्वरूप में अवस्थित हो जाता है तब उसे मुक्ति कहते है। सांसारिक दशा में जीव अपने को देह तथा इन्द्रियों के साथ अभ्यस्त कर अपने को देह व इन्द्रियाँ से ही मान बैठता है और उन्हीं के अनुसार आचरण करता है। जब उसके अर्न्तमन में ज्ञान का उदय होता है तब उसे मुक्ति प्राप्त होती है। जब जीव मिथ्या ज्ञान व समस्त भ्रमों से उन्मुक्त होकर उपने यथार्थ सच्चिदानन्द स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाता है इसी को मुक्ति कहते है।[59]

मोक्ष एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ केवल जीवन के सम्पूर्ण कष्टों से छुटकारा प्राप्त करना होता है इसे धर्म का अंग माना गया है। व्यक्तियों का मानना है कि मनोरथ की कामना के लिये व्यक्ति अर्थ उपार्जित करता है और धन से व्यक्ति अपनी इन्द्रियां को सन्तुष्टि प्रदान करता है व इनसे भौतिक सुख मिलता हैं। व्यक्ति इन्द्रियों से दुःख भी प्राप्त करता है जब कोई व्यक्ति अपने जीवन से निराश हो

जाता है। और संसारको दुःख का कारण मानने लगता है तब वह दुःखों से छुटकारा पाने के लिये अध्यात्म ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तथा वह अपनी आत्मा को पवित्र करने, मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार मोक्ष सांसारिक और पारलौकिक जीवन का समन्वय है। मोक्ष की यह धारणा बड़ी से बडी विपत्ति में भी व्यक्तियों को कर्तव्य की ओर प्रेरित करती हौ इसके कारण व्यक्ति में मानवीय गुणों का विकास होता है और वह जीवन की वास्तविकता को समझ लेता है। मोक्ष पुरूषार्थ अथवा धर्म का ही एक अंग है।मनुस्मृति के अनुसार कुछ व्यक्ति धर्म और कुछ अर्थ को श्रेष्ठ समझते हैं, कुछ व्यक्ति काम को मानते हैं परन्तु वास्तव में तीनो ही धर्म, अर्थ, काम श्रेष्ठ है—

'धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थो धर्म एव च।

अर्थ एवेह वा श्रेयः त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ।।'[60]

इसलिये पुरूषार्थ ही समाज में जीवन के उच्च आदर्श प्रस्तुत करता है। समाज मे ऐसी कोई दूसरी व्यवस्था नहीं है जिसमें सामाजिक और पारलौकिक जीवन के बीच इतना सुन्दर तथा व्यावहारिक समन्वय बनाया हो, व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य मृत्यु उपरान्त मोक्ष प्राप्त करना ही हैं लोगों का यह विश्वास है कि मोक्ष प्राप्त होने पर जीव को पुर्नजन्म नहीं धारण करना पडता और वह ईश्वरत्व में लीन हो जाता है।

भागवत पुराण के अनुसार विश्व में सर्वप्रथम एक ही आत्मा थी उसे परमात्मा कहा जा सकता था। इस संसार में द्रष्टा और द्रश्य दोनों नहीं थे, इसलिये यह पहचान नहीं हो पाती थी कि सत्य और असत्य क्या है ? इसलिये सर्वप्रथम द्रश्यशक्तिमाया उत्पन्न हुई, भगवान ने माया से ही इस विश्व का निर्माण किया है।

'स वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका।

माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममें विभुः ।।'[61]

परमात्मा ने अपनी काल शक्ति से सतोगुणी, तमोगुणी और रजोगुणी सृष्टि

उत्पन्न की तत् पश्चात ज्ञान और विज्ञान प्रकट किये। उसके बाद कार्य कारण और कर्ता के सिद्धान्तो का निर्माण हुआ फिर इन्द्रियों को नियन्त्रित करने वाले देवताओं का निर्माण हुआ। शब्द से भाषा और ज्ञान की उत्पत्ति हुई उसके पश्चात आकाश और वायु का निर्माण हुआ। उसके बाद प्रकाश अैर तेज का निर्माण हुआ फिर माया, आत्मा और गंध से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई तथा यह नियम बना कि पंचमहाभूतों के समन्वय से जीवों की उत्पति और उनके अलगाव से मृत्यु होगीं। जो व्यक्ति जीवन के यथार्थ को नहीं जानते वे लोग भटका करते है और जो लोग ज्ञान का सहारा लेकर माया को जीत लेते है वे आपको प्राप्त कर लेते हैं या भगवान को प्राप्त कर लेते है।

'तथापरे चात्मसमाधियोग

बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठ्म।

त्वमेव धीराः पुरूषं विशन्ति

तेषां श्रमः स्यान्त तु सेवया ते।।[62]

मोक्ष प्रदाता परमात्मा जन्म रहित है उसने जीव जगत की उत्पत्ति करके कर्म और क्षमता के अनुसार व्यक्ति को भोग के साधन उपलब्ध कराये है। व्यक्ति कर्म के अनुसार उन्हें खोज लेता है।

जिस विराट पुरूष की हम कल्पना करतें हैं वह अदृश्य को जागृत करने वाला क्रिया शक्ति मिश्रित करने वाला तथा तेईस तत्वों को धारण करने वाला है। विश्व रचना करने वाला यह परमात्मा महत्वपूर्ण शक्तियों का मिश्रित करने के बाद ही उत्पन्न हुआ है। और वह सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान है। उसे ह्रदय रूप, प्राण रूप, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तत्व के रूप में देखा जा सकता है, यही समस्त जीवों की आत्मा, परमात्मा का अंश और समस्त भूतों का स्वामी है।

'स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान्।

विवभाजात्मनाऽत्मान मेकधा दशधा त्रिद्या।

एष ह्याशेष सत्त्वा नामात्माशः परमात्मनः ।

आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ।।[63]

इस विराट पुरूष से पहले एक मुख प्रकट हुआ, उस मुख में लोकपाल, अग्नि, वाग्इन्द्रियाँ समा गयीं और वह जीव में परिणित हो गया। मुख के माध्यम से वह रस ग्रहण करने लगा फिर नासिका नेत्र आदि निर्मित हुये तथा ज्ञान का उदय हुआ। फिर उस शरीर में प्राण के रूपों में वायु समाया तत्पश्चात औषधियाँ उत्पन्न हुई तथा अन्य अंगों के निर्माण के साथ हृदय का निर्माण हुआ। प्राणी पैदा होने के साथ यह विराट पुरूष अर्थत सम्पूर्ण जीव जगत् काल कर्म और स्वभाव से युक्त हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि विद्वान व्यक्ति अपने ज्ञान और वाणी से पहचान जाता है इसलिये इस सृष्टि में विद्वान ब्रह्मणों को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

व्यक्ति इस संसार में जीवन ग्रहण करने के पश्चात अपने आप को सब कुछ समझ लेता है। वह अंहकार और माया में जकड़कर संसार के सुख को ही सब कुछ मानने लगता है। और अपने आपको कर्ता समझने लगता है। वह व्यक्ति अभिमान के वशीभूत होकर कार्यों के दोष के कारण पाप पुण्य का विचार नहीं कर पाता, इसलिये वह उत्तम मध्यम और नीच योनियों मे जन्म लेकर भ्रमण करता रहता है।

'स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ।

अहं क्रियाविमूढात्मा कर्तास्मीत्यभिमन्यते ।।

तेन संसार पदवीमवशोऽभ्येत्यनिर्वृतः ।

प्रासगिंकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ।।[64]

यदि व्यक्ति ज्ञानवान बन जाये सत् असत्, न्याय और अन्याय, का विवेक पैदा कर ले तथा इन्द्रियों को अपने वश में कर ले तो वह दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। यदि व्यक्ति एकाग्र चिन्तन करें, समस्त प्राणियों में समभाव रखे, किसी से बैर न रखे, विषयों में आसक्ति न रखे जो मिल जाये उसी में सन्तुष्ट रहे, सीमित भोजन करे, सब का मित्र बना रहे, दयालू और धैर्यवान हो, तत्वज्ञानी हो, मै और मेरे

पर का अनुभव न करे, आत्मदर्शी हो, अपने अन्तःकरण को शुद्ध रखे तो वह मोक्ष अथवा ब्रह्मपद को प्राप्त हो जाता है।

'सानुबन्धे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्न सदाग्रहम्।

ज्ञानेन दृष्टतत्वेन प्रकृते पुरूषस्य च।।

निवृत्त बुद्धयवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः।

उपलभ्यात्मनऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक।।

मुक्तलिंग सदामासमसति प्रतिपद्यते।

सतो बन्धुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्धयम् ।।[65]

व्यक्ति अविद्या से मोह को प्राप्त होता है किन्तु जब वह आत्मज्ञानी बन जाता है तो वह आत्मचिन्तन के बल पर श्रेष्ठ व्यक्ति बन जाता है। प्रकृति उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती, किसी भी भोग के प्रति उसकी आसक्ति नहीं रह जाती। इसलिये धैय को धारण करता हुआ तत्व ज्ञानीव्यक्ति आत्म अनुभव के द्वारा सारे संशयों से मुक्त हो जाता है और शरीर त्यागने के पश्चात कैवल्य और मंगलमय पद को आसानी से प्राप्त कर लेता है तथा फिर वह पृथ्वी में दुबारा जन्म नहीं लेता । योग के अतिरिक्त दूसरा कोई साधन नही है जिससे मोक्ष प्राप्त किया जा सके।

'मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा।

निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम्।।

प्राप्नोती हाज्जसा धीरः स्वद्दशाच्छिन्न संशय।

य०त्वा न निर्क्तेत योगीलिंगाद्विनिर्गमे।।

यदा न योगोपचितासु चे तो।

मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽंग।।

अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्याद्।

आत्यन्ति की यत्र न मृत्युहासः।।[66]

यदि व्यक्ति निष्काम भावना से अपने वर्णआश्रम और कुल की मर्यादा के

अनुसार कार्य करता है। तो वह प्राणी शब्द, स्पर्श, तथा रूप की वास्तविकता को समझकर ऐसे आचरण करने लगेगा जिससे उसकी आसक्ति भौतिक सुखों की ओर नहीं रह जायेगी। प्रत्येक व्यक्ति को जो पारलौकिक सुख चाहता है। वह निष्काम भाव से अपने नित्यकर्म करे, जब आत्मज्ञान उदय हो जाये तो वह शौच तथा अन्य नियमों का पालन निष्ठा से करे तथा किसी से ईर्ष्या न रखे। वह किसी का बुरा न सोचे, किसी से ममता न रखे, अपने कर्तव्यों का पालन सावधानी से करे, तथा किसी की बुराई भलाई न करे। वह स्थूल शरीर मन, बुद्धि और सूक्ष्म शरीर दोनों का अध्ययन करे तथा आत्मा के बारे में समझने का प्रयत्न करे। आत्मा और शरीर दोनों पृथक वस्तुयें है पंचतत्व से शरीर का निर्माण होता है। आत्मा का नहीं इसलिये अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़कर समस्त पदार्थों का बोध करें। यह बोध करें की जीव सदैव जन्मता और मरता रहता है। वही कर्मानुसार सुख दुख को भोगता भी है। इसलिये उसे स्वार्थ का परित्याग करके परमार्थ का पालन करना चाहिये। बहुत से व्यक्ति अपनी बुद्धि पर बहुत घमंड करते है परन्तु जब मृत्यु उसके सिर पर नाच रही होती है तो क्या फूल चन्दन आदि उसे सुख पहुँचा सकते है अर्थात नहीं जीव का वास्तविक सुख पुरूषार्थ से मिलता है।

व्यक्ति लौकिक सुखों के अतिरिक्त पारलौकिक सुखों की कामना करता है। कभी–कभी ऐसा होता है कि कर्म की त्रुटियों का भोग उसे भोगना पडता है। जिस प्रकार से अति वृष्टि और अनावृष्टि से खेती को नुकसान पहुँचता है, इसी तरह से कर्म की त्रुटियाँ परलोक जाने से रोकती हैं। यज्ञ करने वाला यज्ञों के माध्यम से देवताओं की उपासना करने वाला स्वर्ग जाता है। वहाँ अपने पुण्य कर्मों के द्वारा उपार्जित दिव्य भोगों को देवताओं के समान भोगता है।

'इष्टदेवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः।

भुं०जीत देववत्तत्र भोगान् दिव्यान निजार्जितान्।।[67]

धर्मशास्त्रों की यह परिकल्पना है कि स्वर्ग लोक सभी सुखों का आधार है

किन्तु जब व्यक्ति के पुण्य समाप्त हो जाते है तो वह पुनः मृत्युलोक में आ जाता है। इस तरह वह आवागमन के चक्कर में फँसा रहता है।

'तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते।

क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कालचालितः।[68]

जब व्यक्ति कर्मशून्य हो जाता है तथा दुष्टों की संगति में पड़ जाता है तब वह अधर्म में लिप्त हो जाता है कृपण हो जाता है। दूसरों को सताने लगता है, पशुओं की बलि देने लगता है और भूत–प्रेतों की उपासना करने लगता है वह व्यक्ति अज्ञानी और अधर्मी हो जाता है तथा वह अन्य पशुओं की तरह बार–बार जन्म लेता है और बार–बार मरता है वह व्यक्ति मोह से ग्रसित होता है तथा सत्य रहित होता है और ऐसा व्यक्ति नरकगामी होता है।

'यद्यधर्मरतः सगांदसतां वाजितेन्द्रियः।

कामात्मा कृषणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः।।

पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन्।

नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्वणं तमः।।[69]

कुल मिलाकर कर्म ही मनुष्य के जीवन का मूल्यांकन करता है तथा परिस्थितियों के अनुसार इसे पाप और पुण्य के रूप में विभाजित किया जाता है। स्वर्ग और नरक की प्राप्ति इन कर्मों का परिकल्पित प्रतिफल है। अच्छे कर्म करने वाला व्यक्ति अपने जीवन काल में और मृत्यु के उपरान्त सुगति प्राप्त करता है। बुरा कर्म करने वाला व्यक्ति इस जावन में और मृत्यु के बाद दुर्गति को प्राप्त होता है अर्थात वह नरकगामी होता है।

इतिहास, वैज्ञानिक सत्य पर आधारित है, परिकल्पना के आधार पर वह किसी साक्ष्य को स्वीकार नहीं करता। जिन व्यक्तियों ने संसार में अच्छे कर्म किये हैं वे अपने कर्म गति के कारण ही चिर स्थायी इतिहास पुरूष बन गये हैं। जिन व्यक्तियों ने बुरे कर्म किये हैं वे अपने जीवन काल में निन्दा के पात्र थे और मृत्यु उपरान्त भी

वे निन्दा के पात्र रहे। कुल मिलाकर इतिहास आध्यात्म के सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करता तथा वह स्वर्ग और नरक की उपलब्धि को भी इतिहास से नहीं जोड़ता, क्योंकि स्वर्ग, नरक और पुण्य व पाप केवल परिकल्पना मात्र हैं यथार्थ नहीं है।

3— पुरोहित वर्ग का राजनीतिक प्रभाव से लाभ—

भारतवर्ष की विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था के कारण वर्ण का उदय हुआ। वर्ण का निर्धारण जाति के उद्गम सिद्धान्त कुल या वर्ग सिद्धान्त तथा व्यवसाय के सिद्धान्त पर निर्मित हुए हैं। समाजशास्त्री सामाजिक विकास को ध्यान में रखते हुए इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। कुछ ग्रन्थों ने वर्ण व्यवस्था की बड़ी तारीफ की है।[70] तथा कुछ ग्रन्थों ने इसकी निन्दा भी की है।[71]

इस वर्ण व्यवस्था की सबसे बडी विशेषता यह है कि भारतवर्ष का हर व्यक्ति वंश परम्परा अथवा जाति के सिद्धान्त का अनुपालन करता है। वह अपने सम्पूर्ण संस्कार जाति और गोत्र के अनुरूप अपनी ही जाति में सम्पन्न करता है। वह भोजन सम्बन्धी परम्परागत सिद्धान्तों का अनुपालन करता है तथा वह अपनी जाति के अनुसार व्यवसाय का चयन करता है। समाज में उसकी उच्चता निम्नता जातीय आधार पर ही निश्चित होती है। वर्ण व्यवस्था के सन्दर्भ में वेदों स्मृति ग्रन्थों, श्रौत ग्रन्थों तथा संहिता ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होता है। कुल मिलाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों की व्यवस्था की गयी है। ऐतरेय ब्राह्मण में यह उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण गायत्री मन्त्र के साथ उत्पन्न हुए हैं, उसके पश्चात क्षत्रिय और वैश्यों की उत्पत्ति हुई। शूद्रों के सन्दर्भ में वैदिक ग्रन्थों में कोई सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होता केवल ब्राह्मणों को ही श्रेष्ठ माना गाया हैं।[72]

ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करते हुए ब्राह्मणों को यह निर्देश दिया गया है कि वे वेदाध्ययन करें, यज्ञ करें और दान ग्रहण करें य ब्राह्मणों के कर्तव्य बताये गये हैं। ब्राह्मण को यंह निर्देशित किया गया है कि वह वेदाध्ययन करके अपनी जीविका उपार्जित करे तथा वह इन कार्यो को निम्न बिन्दुओं के आधार पर सम्पादित करे।

वेदाध्ययन–

वैदिक काल में ब्राह्मण का विद्या से घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसलिए ब्राह्मणों को ब्रह्म विद्या की उपाधि प्राप्त थी, किन्तु इस युग में कुछ राजा लोग भी ब्रह्मविद्या के ज्ञानी हुए जिनसे ब्रह्म विद्या ब्राह्मणो ने सीखी उदाहरणार्थ याज्ञवल्क्य ने राजा जनक से ब्रह्म विद्या सीखी थी।[73] अनेक उपनिषदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के उपरान्त ब्रह्मविद्या के स्वरूप में परिवर्तन आया। निरूक्त में यह वर्णन मिलता है कि विद्या की रक्षा के लिये ब्राह्मणो से प्रार्थना की गयी, जिसे करना उन्होने स्वीकार कर लिया।[74] इस प्राकर हम देखते है कि ब्राह्मणो ने वेदाध्ययन तथा अन्य विद्याओं का ज्ञान उन विद्याओं को सुरक्षित बनाये रखने की दृष्टि से किया। इस प्रकार ज्ञान अर्जित करना ब्राह्मण का प्रमुख कर्तव्य हो गया वह यह ज्ञान स्वानुभूतियों और परानुभूतियों दोनों प्रकार से करता था।

वेद अध्यापन–

सभ्यता के प्रारम्भिक युग में पुत्र अपने पिता से शिक्षा ग्रहण किया करता था। श्वेतकेतु आरूणेय की गाथा से यह पता लगता है कि श्वेतकेतु ने अपने पिता से वेदों की शिक्षा ग्रहण की थी।[75] बाद में ब्राह्मणो को यह अधिकार मिल गया कि वे ही वेद अध्यापन कार्य करे। इसलिये समस्त धार्मिक कृत्य और वेद अध्यापन ब्राह्मण ही करा सकता था। प्राचीनकाल में यह आवश्यक नही था कि सभी ब्राह्मण पुरोहित हों और धामिक कार्य करायें क्योंकि प्रचीन काल में पुरोहिती कार्य ब्राह्मण के लिये निम्न कोटि का कार्य माना जाता था। वे वेद अध्यापन के अलावा दान भी ग्रहण करते थे। यह दान उन्हे तीनों वर्णों से उपलब्ध होता था। दान लेने और देने के सन्दर्भ में अनेक नियमों का निर्माण हो चुका था। बृहदारण्यकोपनिषद् में इस तरह के नियमों का उल्लेख उपलब्ध होता है।[76]

ब्राह्मण वृत्ति–

ब्राह्मणों ने प्रारम्भ से ही अपने जीवन के आदर्श स्वीकार किये थे। इनमें

निर्धनता, सादाजीवन, उच्च विचार, धनसंचय की भावना से दूर रहना, संस्कृति की रक्षा करना और उसका विकास करना था। उतना धन प्राप्त करने का प्रयास करना जिससे पारिवारिक जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो जाये। मनुस्मृति में इसका विवरण उपलब्ध होता है।[77] ब्राह्मणो के लिये यह भी व्यवस्था दी गयी है कि यदि वे अपनी जीविका न चला सकें तो खेत में पडी बालियों को बीन लाये और अनाज निकाल लें यह कार्य दान लेने से अच्छा है। महाभारत में भी ब्राह्मण के सादे जीवन व पर बल दिया गया है तथा उन्हे धन संग्रह से अलग रहने की सलाह दी गयी है।[78]

पुरोहित वर्ग का राजनीतिक प्रभाव–

गौतम सूत्र, याज्ञवल्क्य स्मृति, विष्णु धर्मसूत्र तथा लधु व्यास आदि ग्रन्थों के अनुसार यदि ब्राह्मण कभी कठिनाई में पड़ जाये, उसके सामने जीविका और जीवन रक्षा की समस्यायें उत्पन्न हो जाये तो उसे राजा या धनिक के पास जाना चाहिये।[79] भूख से पीडित होने के कारण वह अपने शिष्य या सुपात्र या राजा से धन की याचना कर सकता है तथा यदि कोई योग्य पात्र न मिले तो वहअन्य जातियों से भी दान ले सकता है किन्तु वह यज्ञ आदि के लिये शूद्रों से दान नही ले सकता । स्मृतियों मे यह वर्णन उपलब्ध होता है कि राजा का यह कर्तव्य था कि वह वेद ज्ञाता ब्राह्मणो की जीविका का प्रयत्न करे।[80] अनेके अभिलेख इस बात के लिये उपलब्ध होते है कि ऋषभदत्त ने एक तीर्थ स्थान पर गोदान किया था एवं पंचमहायज्ञों का आयोजन किया था और ब्राह्मण कन्याओं का विवाह किया था।[81] ब्राह्मण को यह निर्देश था कि वह अयोग्य व्यक्ति से दान न ले और अयोग्य व्यक्तियों को दान देना वर्जित था। यह निर्देश था कि नौ प्रकार के स्नातकों को भोजन और शुल्क की व्यवस्था की जाये। यदि कोई बिना मांगे दान दे तो उसे स्वीकार कर लें, कोई भी ब्राह्मण, दुराचारिणी स्त्री, नपुंसक पुरूष और पतित लोगों से दान न ग्रहण करे। जो ब्राह्मण गरीब है, सत्यभाषी है इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला है उसे दान दें। यदि ब्राह्मण लोभी है, दान पाने के लिये भटकता रहता है उसे दान न देकर उस ब्राह्मण

को दान दें जो धन के प्रति लोभ नहीं करता।

निःसन्देह दान ग्रहण करना ब्राह्मणों का विशेषाधिकार था किन्तु दान अन्य जातियों को भी दिया जा सकता था। धर्मग्रन्थों के अनुसार जो व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण हो अथवा जिसने वेदों का अध्ययन करके ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया हो अथवा वह ब्राह्मण जो गुरू को दक्षिणा देने के लिये, विवाह के लिये, औषधि के लिये, अध्यापन के लिये और यात्रा के लिये दान माँगता है उस ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार दान देना चाहिये।

कालान्तर में ब्राह्मणो की संख्या में वृद्धि हुई तथा पुरोहिती के कार्य में कमी आई, इसलिये दान सम्बन्धी नियमों में ढील दी गई। उस समय वेदाध्ययन के लिये कोई राजकीय संस्थायें नही थी और पुस्तकों पर भी किसी को विशेष अधिकार नही था तथा बहुत अधिक ब्राह्मण को निमन्त्रित भी नहीं किया जा सकता था। इसलिये ब्राह्मणो को यह निर्देश दिया गया था कि यदि कोई ब्राहम्ण अपनी वृत्ति से जीविका नही चला सकता तो वह क्षत्रिय वृत्ति अपना सकता है, यदि क्षत्रिय वृत्ति भी उपलब्ध न हो तो वह वैश्य वृत्ति अपना सककता है। आपत्तिकाल के हट जाने पर ये लोग अपनी वृत्तियों को पुनः अपना सकते थे किन्तु ऐसा राजनीतिक दबाव था कि निम्न वर्ण का व्यक्ति उच्चवर्ग की वृत्ति धारण नहीं कर सकता था।[83] यदि कोई छोटी जाति का व्यक्ति ब्राह्मण जाति के कार्य करने का प्रयास करता था तो उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी और उसे प्राण दण्ड दिया जा सकता था। वह केवल द्विजातियों की सेवा कर सकता था, उसे ब्राह्मण की बराबरी करने का अधिकार नहीं था।

जब ब्राह्मण क्षत्रियों के व्यवसाय को अपनाता था तो वह युद्ध करना तथा शस्त्र चलाना सीखता था और यहाँ तक विवरण उपलब्ध होता कि शत्रु ब्राह्मणों के पैरों पर गिरकर उन्हें अपनी ओर मिला सकता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख उपलब्ध होता है।[84] बौधायन ने अपने धर्मसूत्र में कहा है कि ब्राह्मणों ओर

गोवों की रक्षा के लिए और वर्णसंकरता रोकने के लिए ब्राह्मण और वैश्य भी हथियार धारण कर सकते थे। युद्ध काल में, आपत्ति काल में, गाय, नारियों और ब्राह्मण की रक्षा के लिए ब्राह्मणों को भी शस्त्र धारण करना चाहिए। महाभारत के अनुसार द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, ब्राह्मण होते हुए भी शस्त्र धारक थे।[85] महाभारत में ही एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि समाज के विधान टूट जायें, चोर–डाकू आदि बढ़ जायें तो सभी वर्णों को आयुध ग्रहण करना चाहिए।[86] ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार 184 ई0 पू0 में मौर्य सम्राट बृहद्रथ से उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने राज्य छीन लिया था। इस तरह से शुंग वंश की स्थापना हुई। इसी प्रकार कण्ववंश की स्थापना वासदेव नामक ब्राह्मण ने की थी तथा कदम्ब वंश का संस्थापक भी ब्राह्मण था। इस प्रकार ब्राह्मणों ने समय के अनुसार क्षात्रधर्म भी ग्रहण किया।

यदि ब्राह्मण के ऊपर आपत्तिकाल आ जाए तो वह वैश्य का कार्य भी कर सकता था किन्तु कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, ब्याज पर धन आदि देने के कई नियन्त्रण भी उनके ऊपर थे। ब्राह्मण अपने परिवार की रक्षा के लिए कय–विक्रय, लेन देन का कार्य कर सकता था, किन्तु यह कार्य वह स्वतः न करे दूसरे से कराये क्यों कि धन पर ब्याज लेना ब्रह्म हत्या के समान माना गया है। ब्राह्मण तथा क्षत्रियों को ब्याज लेने से मना किया गया है। यदि कोई ब्राह्मण ऐसा करे तो उसका वह प्रायश्चित भी करे। उनके जीवन को महत्वपूर्ण और उपयोगी बनाये रखने के लिए ये नियम् बनाए गये थे।

ब्राह्मण और कृषि–

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या ब्राह्मण खेती कर सकता है? धर्मशास्त्रों में इस सन्दर्भ में वैचारिक समानता नहीं है, वैदिक साहित्य में जरूर ब्राह्मण को कृषि करने की छूट दी गयी है। एक स्थान पर यह विवरण मिलता है कि जुआँ मत खेलो, कृषि में लगो मेरे वचनों पर ध्यान देकर धन का आनन्द लो कृषि में गऊवें हैं। भूमि, हल, साझा, और भूमिकर्षण के पर्याप्त संकेत ऋग्वेद, तैत्तरीय संहिता और वाजसनेही

संहिता में उपलब्ध होते हैं।[87]

बौधायन धर्मसूत्र का कथन है कि यदि वेदाध्ययन करने के पश्चात व्यक्ति कृषि करता है तो इससे वेद का ज्ञान समाप्त हो जाता है। यदि कृषि त्यागता है तो उसका विनाश होता है, यदि ब्राह्मण दोनों कर सकता हो तो करे और न कर सकता हो तो कृषि का त्याग करे। बौधयन में एक स्थान पर पुनः कहा गया है कि यदि बैल बधिया न किए गये हों तो उन्हें हल में नहीं जोतना चाहिए और न उन्हें मारना चाहिए।[88] अन्य धर्म ग्रन्थ भी इसका समर्थन करते हैं कि ब्राह्मण को यदि जीविका उपार्जन के लिए कृषि अथवा व्यवसाय में से किसी एक को चुनना हो तो उसे व्यवसाय को प्राथमिकता देना चाहिए। कृषि कार्य में अनेक जीवों की हत्या हल चलाते समय होती है, इसलिए ब्राह्मण को जीव हत्या से बचना चाहिए।

ब्राह्मण के लिए व्यवसाय—

ब्राह्मण को वाणिज्य करने का अधिकार शास्त्रों ने दिया है किन्तु उसके लिए भी व्यवसाय में अनेक नियन्त्रण थे। गौतम ऋषि ने अपने धर्मसूत्र में ब्राह्मण को सुगन्धित वस्तुएँ तेल, घी पका भोजन, तिल, पटसन, सन के बने हुए वस्त्र, मृगचर्म, रंगा हुआ स्वच्छ वस्त्र, दूध से निर्मित वस्तुएँ, कन्दमूलफल, जड़, बूटी, मधु, माँस, विषैली वस्तुएँ, पशु, मनुष्य, बाँझ गायें, बछड़ा, बछिया और मरकही गायों को बेचने से मना किया है। उन्होंने यह भी निर्देश दिया है कि ब्राह्मण भूमि, चावल, जौ, बकरियाँ, भेड, घोडे, बैल, तुरतब्यायी गायें और गाडी में जोतने वाले बैल न बेंचे। इसी प्रकार से सड़ी वस्तुओं को बेचने से भी रोका गया है। पितरों को श्राद्ध देने वाली वस्तुएँ भी ब्राह्मण नहीं बेच सकता। ब्राह्मणों को पत्थर, नमक, रेशम, लोहा, टीन, सीसा, सभी प्रकार के वन्य पशु तथा पालतू पशु बेचने से मना किया गया है।[89] ब्राह्मण के लिए जिन वस्तुओं को बेचने से मना किया गया है उनका वह विनिमय भी न करे किन्तु उसे छूट है कि वह भोजन से भोजन का, दासों का दासों से, सुगन्धित वस्तुओं का वस्तुओं से, ज्ञान का ज्ञान से विनिमय कर सकता है।

आपत्तिकाल में ब्राह्मण अपनी जीविका उर्पाजन के लिए विद्या, कला, शिल्प, मजदूरी, पशुपालन, वस्तु विक्रय, कृषि, भिक्षा एवं व्याज पर लेन देन कर सकता है।[90] जब अकाल पड़े उस समय अपनी जीविका उपार्जन के लिए गाड़ी हाँकना, तरकारी बेचना, वृक्षदार झाँखर बेचना, गाये बेचना, मछली पकड़ना, मजदूरी करना, जल से भरा घड़ा बेचना और पर्वतीय वस्तुओं को बेचकर अपनी जीविका उपार्जित करे। वह चाहे तो पैतृक धन, मित्र से दान लेकर, पुरोहित का कार्य करके विद्यार्थियों से शुल्क लेकर अपनी जीविका चला सकता है। यदि क्षत्रिय उसे किसी देश की विजय के उपरान्त लूट की सम्पत्ति दान में देना चाहे तो वह भी वह स्वीकार कर सकता है।

ब्राह्मणों के प्रकार—

ब्राह्मणों की वृत्तियों के अनुसार ब्राह्मणों का विभाजन किया गया है। अत्रिधर्म सूत्र में दस प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है—

1— देव ब्राह्मण— जो प्रतिदिन स्नान, संध्या, जप, होम, देव पूजन, अतिथि सत्कार और वैश्व देव की उपासना करता है वह देव ब्राह्मण है।

2— मुनि ब्राह्मण— जो वन में रहता हो कन्द मूल फल खाकर जीवित रहता हो तथा प्रतिदिन श्राद्ध करता हो उसे मुनि ब्राह्मण कहते हैं।

3— द्विज ब्राह्मण— जो वेदान्त पढता है, सभी प्रकार के अनुरागों और आशक्तियों को त्याग चुका है और सांख्य योग के नियमों को भली प्रकार जानता है वह द्विज ब्राह्मण है।

4— क्षत्र ब्राह्मण— जो ब्राह्मण शस्त्र चलाना सिखाता हो अथवा सेना में भर्ती होकर युद्ध करता हो वह क्षत्र ब्राह्मण है।

5— वैश्य ब्राह्मण— जो ब्राह्मण कृषि और पशुपालन तथा व्यापार का कार्य करता है वह वैश्य ब्राह्मण है।

6— शूद्र ब्राह्मण— जो ब्राह्मण लाख, नमक, रंग, दूध, घी, शहद, और मांस बेचता हो वह शूद्र ब्राह्मण है।

7– निषाद ब्राह्मण– जो ब्राह्मण चोरी करता हो, डाका डालता हो, चुगली करता हो, मछली और मांस खाता हो वह निषाद ब्राह्मण कहलाता है।

8– म्लेच्छ ब्राह्मण– जो ब्राह्मण कुओं, तालाबों, आदि को पाटता है तथा वाटिकाओं को नष्ट करता है वह म्लेच्छ ब्राह्मण है।

9– पशु ब्राह्मण– जो ब्राह्मण वेद का ज्ञाता नहीं है और यज्ञोपवीत या जनेऊ धारण करता है तथा अंहकारी है वह पशु ब्राह्मण है।

10– चाण्डाल ब्राह्मण– जो ब्राह्मण पढ़ा लिखा नहीं है, संस्कारों को नही जानता, धर्म को नहीं समझता, स्वभाव का दुष्ट है, वह चाण्डाल ब्राह्मण है। अत्रि ऋषि ने भी यह कहा है कि वेद विहीन लोग शास्त्र पढ़ते है शास्त्र हीन लोग पुराणों का अध्ययन करते हैं तथा पुराण हीन लोग कृषक होते है। और इनसे भी गये बीते शिव और भागवत के भक्त होते है।

'वेदै विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेणहीनाश्च पुराणपाठाः।

पुराणहीनाःकृषिणों भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति।' [91]

प्राचीन स्मृति ग्रन्थों में ब्राह्मणो तथा अन्य जातियों के अलग–अलग कर्म निर्धारित किये गये है। जो ब्राह्मण प्रातः और सन्ध्याकाल सन्ध्यायें नही करता उसके साथ शूद्रयोचित व्यवहार किया जाना चाहिये। जो ब्राह्मण वेद ज्ञानी नहीं है तथा वेदाध्ययन व यज्ञ नहीं करते वे भी शूद्र है।

'सांय प्रातः सदा सन्ध्या ये विप्रा नो उपासते।

कामं तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत्।' [92]

ब्राह्मण तथा भिक्षावृत्ति–

प्राचीन काल में केवल ब्रह्मचारियों और यतियों को भिक्षा माँगने का अधिकार था। पंचमहायज्ञो को करते समय प्रतिदिन भोजन दान करने की व्यवस्था थी। भिक्षा केवल आचार्यके लिये, अपने प्रथम विवाह के लिये यज्ञ के लिये और माता पिता की रक्षा के लिये माँगी जाती थी। व्यक्ति ऐसे अवसरों में भिक्षा प्रदान करता था। अपने

सुख के लिये भिक्षा माँगना वर्जित था किन्तु जब कोई भूँख से तड़पता हो तो वह भिक्षा माँग सकता था। भिक्षा माँगना किसी भी शास्त्र में ब्राह्मणो के लिये उचित नही ठहराया गया।[93]

ब्राह्मण जाति कासमाज में महत्व–

सम्पूर्ण भारतवर्ष में ब्राह्मणों का बहुत अधिक महत्व था, उन्हें जन्म से देवस्वरूप माना जाता था। वे समाज के सभी वर्णों में सबसे ऊँचे थे, इसका उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।[94] सभी धर्मग्रन्थ ब्राह्मणों के गुणों का उल्लेख करते हैं। शास्त्रों का कथन है कि देवता तो परोक्ष देवता है किन्तु ब्राह्मणों तो प्रत्यक्ष देवता है। विश्व का सम्पूर्ण भार ब्राह्मणों पर है, देवता तो स्वर्ग में हैं परन्तु ब्राह्मण पृथ्वी में है और वे कभी झूठ नहीं बोलते।

'देवाः परोक्ष देवाः प्रत्यक्ष देवा ब्राह्मणाः।

ब्राह्मणैर्लोका धार्यन्ते।

ब्राह्मणानां प्रसादेन दिवि तिष्ठन्ति देवताः।

ब्राह्मणाभिहितं वाक्यं न मिथ्या जायते क्वचित्।[95]

मनु स्मृति में यह माना गया है कि ब्राह्मण जन्म से ही पवित्र है। पराशर स्मृति के अनुसार ब्राह्मण के वचन देवता के वचन है, ब्राह्मणों को नाराज करने से समाज का पतन होता है। ब्राह्मणों की ही वजह से आज धर्मशास्त्र तथा सभ्यता सुरक्षित है। ब्राह्मण ही आर्य साहित्य के सृजेता तथा अनेक धर्मग्रन्थो के रचयिता है। इसलिये ब्राह्मणो को सर्वोच्च स्थान समाज में मिला हुआ है।

राजाओं द्वारा प्रदत्त ब्राह्मणों के विशेषाधिकार–

भारतवर्ष के समस्त राजाओं ने ब्राह्मण को शिक्षण कार्य करने वाला, यज्ञ कराने वाला और दान देने वाला स्वीकार कियाहे इसलिये उन्हें कुछ विशेषअधिकार भी दिये गये थें–

ब्राह्मण को समाज के गुरू के रूप में मान्यता–

राजाओं के द्वारा ब्राह्मण को समाज का गुरू स्वीकार किया गया है। धर्मग्रन्थों में यह उल्लेख मिलता है कि दस वर्ष का ब्राह्मण सौ वर्ष के क्षत्रिय से ज्यादा सम्मान रखता है।

'दशवर्षश्च ब्राह्मणः शतवर्षश्च क्षत्रियः।

पितापुत्रौ स्मतौ विद्धि तपोस्तु ब्राह्मणः पिता।[96]

धार्मिक कृत्य कराने का विशेषाधिकार–

ब्राह्मणो को भारतीय समाज के संविधान का निर्माता माना जाता है। ये प्रत्येक वर्ण के कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं तथा राजा इनके विधान के अनुसार शासन करते है इसका वर्णन अनेक धर्मग्रन्थों मे मिलता है।

ब्राह्मण, राजाओं के नियन्त्रण से दूर–

ब्राह्मण को यह विशेष अधिकार प्रदान किया गयाह है कि कोई भी राजा उनके ऊपर शासन नहीं कर सकता । इसका वास्तविक अर्थ यह है कि राजा ब्राह्मणो का सर्वाधिक सम्मान करे, किन्तु यदि कोई ब्राह्मण अपराध करता है तो उसे दण्डित भी किया जा सकता था। सोम रसपान करने का अधिकार ब्राह्मणो को था। क्षत्रिय सोम रस पान नहीं कर सकते थे।

ब्राह्मणो को दण्ड से विशेष छूट–

अनेक ग्रन्थो मे यह उल्लेख मिलता है कि यदि ब्राह्मण कोई अपराध करता है तो उसे पीटा न जाये उसे हथकडी न लगायी जाये, उसे धन का दण्ड न दिया जाये तथा उसे देश निकाला न दिया जाये। ब्राह्मण की निन्दा न की जाये और उसे त्यागा न जाये।[98] मनु स्मृति में यह उल्लेख आया है। कि ब्राह्मण को किसी भी दशा में प्राणदण्ड नहीं देना चाहिये। बल्कि उसकी सारी सम्पत्ति छीनकर उसे देश से निकाल देना चाहिये। चोरी करने पर ब्राह्मण के माथे को टाँक देना चाहिये। यदि ब्राह्मण झूठी गवाही देता है बलात्कार करता है और व्याभिचार करता है तो उसे

अर्थदण्ड दिया जा सकता है । इस स्थिति में ब्राह्मण का सिर मुंडवाकर, माथे पर काला टीका लगाकर, गधे पर चढाकर, बस्ती में चारों तरफ घुमाकर अनादर पूर्वक बाहर निकाल देना चाहिये।[99] कौटिल्य के अनुसार यदि कोई ब्राह्मण भ्रूण हत्या करे, चोरी करे, ब्राह्मण नारी को शस्त्र से घायल करे अथवा मार डाले तो उस ब्राह्मण को प्राण दण्ड दिया जा सकता है।

ब्राह्मणों को करों से छूट–

धर्मशास्त्र ग्रन्थो के अनुसार वेदज्ञानी ब्राह्मणों को करों से छूट दी गयी है। अर्थात ब्राह्मण कर मुक्त थे।[100] बल्कि यह निर्देशित किया गया है कि राजा योग्य, यज्ञ आदि कराने वाले ब्राह्मण को उपजाऊ भूमि दान में दे और उस पर कर न लगाये, किन्तु जो ब्राह्मण कृषि का व्यवसाय करते थे उन्हें कर देना पडता था।

अन्य वर्णो की अपेक्षा ब्राह्मणों को अधिक छूट–

ब्राह्मणों को अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक छूट दी गयी थी, यदि कोई ब्राह्मण गड़ा हुआ धन प्राप्त करता था तो वह उस धन को अपने पास रख सकता था। यदि कोई अन्य वर्ण का व्यक्ति इस प्रकार धन प्राप्त करता था तो राजा उसे हड़प लेता था। यदि राजा गुप्त धन प्राप्त करता था तो उस धन का आधा वह ब्राह्मणों को बाँट देता था।

उत्तराधिकार में विशेष छूट–

जब कोई ब्राह्मण बिना किसी उत्तराधिकारी के मर जाता तो उसका धन ब्राह्मणों में ही बाँट दिया जाता था।[101]

ब्राह्मणों को अवरूद्ध मार्गो में प्राथमिकता–

यदि राजा कोई मार्ग किसी कारण से अवरूद्ध करता था तो उसमें जाने की अनुमति वृद्ध, रोगी, नारी तथा स्नातक को प्राथमिकता दी जाती थी। यदि वहाँ कोई ब्राह्मण आ जाये तो वहाँ से जाने की अनुमति सर्वप्रथम ब्रह्मण को दी जाती थी और राजा का स्थान स्नातक के बाद था। मनु स्मृति में इसका उल्लेख उपलब्ध होता

है।[102]

ब्राह्मणों की समाज में परमपवित्र रूप की स्वीकृति–

ब्राह्मणों को समाज में परमपवित्र माना गया है, इसलिये उनके प्रति किये गये अपराध को जघन्य माना गया है। ब्रह्महत्याको निन्दनीय माना गया है। यदि ब्राह्मण योग्यतथा यज्ञ कराने वाला है परन्तु वह धोखे से किसी की हत्या कर देता है। तब भी उसे इस अपराध से छुटकारा मिल सकता है। ब्राह्मण यदि चरित्रहीन है हिंसक है, भयानक है, तो क्या तब भी उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता है ? इस सन्दर्भ में शास्त्रों में एक मत नहीं है ग्रन्थों में मात्र यही आता है कि माता–पिता, श्रद्धा करने योग्य व्यक्ति, तपस्वी और ब्राह्मणों की हत्या नहीं करना चाहिये । स्मृति इस बात की भी स्वीकृति देती है कि घर जला देने वाला, विष देने वाला, शस्त्र से प्रहार करने वाला, लुटेरा , भूमि छीनने वाला, दूसरे की स्त्री छीनने वाला दण्ड का पात्र है यदि कोई ब्राह्मण युद्ध करने के लिये रण में जाता है तो उस पर वार किया जा सकता है। यदि कोई ब्राह्मण आत्मरक्षा में बाधक बन रहा हो तो उसे मारा जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति भागकर प्राण नहीं बचा सकता तो वह आक्रमण कारी गुरू का संघार कर सकता है फिर भी ब्राह्मण को डाटनां फटकारना, मारना पीटना, उसके शरीर को चोट पहुँचाना निन्दनीय माना गया है।

ब्राह्मणों के साथ विनम्र भाव दर्शाना–

यदि कोई अपराध ब्राह्मण के अपमान के लिये किया जाता है और यह अपराध कोई वैश्य करता है तो उसे एक सौ पचास मुद्राओं का जुर्माना देना होगा। जब कोई ब्राह्मण वैश्य का अपमान करे तो उसे पचास या पचीस मुद्राओं का दण्ड देना होगा। ब्राह्मणों को किसी गवाही के लिये नहीं बुलाया जाता था। उस समय यह नियम था कि जो लोग तप, वेद पाठ आदि करते थे उन्हें गवाही के लिये नहीं बुलाया जा सकता था।

धर्मसंस्कार में ब्राह्मणों का विशेषाधिकार—

समाज में श्राद्ध, देव क्रिया संस्कार कराने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को था इन संस्कारों में उन्हें निमन्त्रित भी किया जाता था। कुछ यज्ञ केवल ब्राह्मण ही करते थे तथा राजसूय केवल क्षत्रिय द्वारा सम्पादित होता था।

परिवार के सदस्य की मृम्यु के पश्चात ब्राह्मण दस दिन में शुद्ध माना जाता था, क्षत्रिय ग्यारह दिन में, वैश्य बारह दिन में और शूद्र तीस दिन में शुद्ध होता था। यदि राजा को कहीं ब्राह्मण मिल जाये तो राजा का कर्तव्यथा कि वह ब्राह्मण को नमस्कार करे तथा उसे सर्वप्रथम आगे निकलने का मार्ग दें ब्राह्मण भिक्षा माँग सकते थे तथा दूसरों की स्त्रियों से बात भी कर सकते थे। यदि ब्राह्मण थक गया है और भूँखा और प्यासा है तो वह बिना पूँछे किसी के वृक्ष से फल तोड़ सकता था और खेत से गन्ना आदि उखाडकर खा सकता था।

भागवत पुराण में ब्राह्मणों (पुरोहितों) के कर्तव्यों का उल्लेख—

भागवत महापुराण मे ब्राह्मणों का जन्म से और कर्म से शुद्ध माना गया है। उन्हें यज्ञ, अध्ययन, दान, और ब्रह्मचर्य का निर्देश दिया गया है। इस महापुराण के अनुसार अध्ययन, अध्यापन, दान देना, यज्ञ करना, ये छः कर्म ब्राह्मण के है।

'संस्कारा यद्विच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगादयम्।

इज्जाध्ययन दानानि विहितानि द्विजन्मनाम्।।

जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः।

विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः।।

राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वा करादिभिः।।'[103]

ब्राह्मण के निर्वाह के लिये चार प्रकार के जीविका के साधन बताये गये हैं। शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता,, ज्ञान , दया, अैर ,भगवान पर श्रद्धा ये ब्राह्मणों के लक्षण हैं। ब्राह्मणों को अपने लक्षणों के प्रति सचेत रहना चाहिये।

'शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम्।

ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम्।।'[104]

जिस धर्म व्यवस्था का निर्माण भारतीय समाज में हुआ था, उसका अधोपतन कालान्तर में हुआ। धर्म के चारों चरण तपस्या, सत्य, दया तथा दान क्षीण होने लगते हैं। ब्राह्मण लोग अपना वास्तविक धर्म छोड़कर पेट भरने और इन्द्रियों को तृप्त करने में लग जाते है।

'दस्यूत्कृष्टा जनपदावेदाः पाखण्डदूषिताः।

राजानश्च प्रजामक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः।।'[105]

वर्तमान युग में धर्म के नाम पर पाखण्ड अपना स्थान बना लेता है। व्यक्ति अपने कर्मों को भूल जाते है। इस पाखण्ड का नेतृत्व भी ब्राह्मण के द्वारा होता है।

'कलौ न राज०जगतां परं गुरूं,

त्रिलोकनाथानतपादपंकजम्।

प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं

यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्नचेतसः।।'[106]

कहने का तात्पर्य है कि समाज का जो व्यक्ति बुद्धि का धनी था, उसने ऐसी पुस्तकों का सृजन किया जिससे उनका वर्ग सदैव सुरक्षित और सम्मानित रहे। उन्होंने ही सामाजिक और राजनीतिक नियमावलियाँ पुस्तक के रूप में तैयार की, उनमें भी अपने लिये ऐसे नियमों का निर्माण किया कि शासक वर्ग अथवा राजा उनको अपने से श्रेष्ठ माने। राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर उनकी नियुक्तियाँ करे उन्होंने अपने आपको इतना सुरक्षित और सम्मानित बना लिया कि राजा उनको दण्ड देने का साहस न कर सके। अपने लिये उन्होने दान की सम्पूर्ण सुविधाये प्राप्त कर ली तथा अपने धन की बचत के लिये सम्पूर्ण करों से छुटकारा भी प्राप्त कर लिया। ब्राह्मणों को जो भूमि दान में दी जाती थी उसमें किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जा सकता था, किन्तु यदि कोई दूसरा व्यक्ति ब्राह्मणों के प्रति

अपराध करता था तो उसे दण्ड देने का विधान था।

यह अत्यन्त निन्दनीय है कि समाज के एक वर्ग विशेष को इतनी अधिक छूट राजनीति अथवा शासन वर्ग द्वारा दी जाये कि वह स्वतः अपने आप को पृथ्वी का देवता, सम्मानित व्यक्ति और निरंकुश समझने लगे तथा दूसरा वर्ग उसे अपने नियन्त्रण में न रख सके तथा सदैव उससे भयभीत रहे। यह न्यायोचित नही था । सभी वर्गों के प्रति भेदभाव पूर्ण नीति के कारण जो भारतीय समाज पहले गरिमा मण्डित था वह अधोपतित हो गया। ब्राह्मण वर्ग जिसे ज्ञानी, कर्मकाण्डी और चरित्रवान माना जाता था वह राजनीतिक संरक्षण के कारण ईर्ष्या और घृणा का पात्र बना।

ब्राह्मणों ने निजी स्वार्थ के लिये कूटनीति का सहारा लिया और अपने निजी लाभ के लिये राजाओं से सुरक्षा प्राप्त करके नियम विधानों की रचना की तथा समाज को अपने आधीन बनाये रखा। मुख्य रूप से चतुर्थ वर्ग का शोषण बहुत अधिक हुआ और उन्हें इतना अधिक दबाया गया कि उनका विकास ही अवरूद्ध हो गया। इस पक्षपात पूर्ण व्यवस्था को धर्म का नाम दिया गया तथा ब्राह्मणों को कुछ भी करने की छूट प्रदान की गयी । समाज का छोटा वर्ग कुछ भी कहने में असमर्थ बना रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि ई0 पू0 छठवीं शताब्दी में इस वयवस्था के विरोध में एक धार्मिक क्रान्ति का उदय हुआ। यह धार्मिक क्रान्ति दो भागों मे विभक्त होकर बौद्ध धर्म और जैन धर्म के नाम से जानी गई और ब्राह्मणो के लिये इतना आक्रोश बढा कि विवाह आदि संस्कारों में ब्राह्मणों का विरोध किया गया। जैनियों में यह कहावत बनी कि " बम्भन मार पटा में दाब कहो पंचो हो गओ हो गओ ब्याव"।

नवीं शताब्दी के आस पास भारतवर्ष में विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण तेज हुये । मुहम्मद गोरी, महमूद गजनवी, जैसे आक्रमणकारियों ने भारतवर्ष में अधिकार किया तो उन्होने पश्चात पूर्ण हिन्दू धर्म व्यवस्था का पूरा पूरा लाभ

उठाया। उन्होंने छुआ–छूत और घृणा से ग्रसित व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित किया और उन्हें मुसलमान बनाकर बराबरी का दर्जा दिया। उनसे भाई चारा स्थापित किया। स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के पाखण्डवाद के कारण ही बौद्ध, जैन, इस्लाम, आदि धर्म प्रचारित प्रसारित हुये। यदि ब्राह्मणों का व्यवहार पक्षपात पूर्ण न रहा होता और निर्बल वर्ग से नफरत करने के बजाये प्रेम किया गया होता तो भारतवर्ष में हिन्दू धर्म के अलावा दूसरा धर्म ही न होता।

4– भागवतपुराण में वर्णित आश्रम व्यवस्था एवं उसका पुरूषार्थ से सम्बन्ध–

भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था अत्यन्त प्राचीन है। 'वर्ण' का शाब्दिक अर्थ होता है वरण करना या चुनना । ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन है। सम्पूर्ण भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र चार प्रमुख भागों में विभाजित है। इस व्यवस्था के अनुसार अलग अलग जातियों के लिये आश्रम व्यवस्था का भी विधान बना। सम्पूर्ण मानव जीवन को सौ वर्ष का माना गया है। प्रत्येक पच्चीस वर्ष को एक आश्रम से जोड़ा गया है। ये आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास नामक भागों में विभक्त है। विद्वान इतिहासकार डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार आश्रम व्यवस्था संस्कारो के निर्माण एवं व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्रियाओं के नियोजन का भी प्रयत्न है। वर्ण का महत्व पूर्व जन्म के संस्कारों या कर्मों को इस जन्म के कर्मों से संयुक्त करने का है। यही कारण है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण के व्यक्तियों के लिये अलग अलग ढंग से आश्रमों में प्रवेश, जीवन विधि तथा कर्तव्य आदि का विधान किया गया। आश्रम व्यवस्था प्राचीन भारतीय चिन्तन के अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा की भी प्रतीक है।[107] आश्रम व्यवस्था का यह विभाजन ज्ञान कर्तव्य और अध्यात्म के आधार पर किया गया है। इसी को ध्यान मे रखकर सम्पर्ण मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों में विभाजित किया गया है।

पुराणों में आश्रम व्यवस्था को देवताओं द्वारा उत्पन्न माना गया है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणा मे आश्रम व्यवस्था को विष्णु के स्थान पर जोड़ा गया है।[108] कई स्थानों में आश्रम व्यवस्था को शिव से भी जोड़ा गया है।[109] पुराणों में यह कहा गया है कि आश्रम व्यवस्था का पालन करने वाले को विशिष्ट लोकों की सुलभता प्राप्त होती है।[110] ब्राह्मण्ड पुराण में यह वर्णन आया है कि आश्रम व्यवस्था का पालन करना भारतीय धर्म का उद्देश्य है।[111]

आश्रम व्यवस्था का निर्माण वेदों, धर्मसूत्रों तथा स्मृति ग्रन्थों के अनुसार किया गया है। किन्तु अलग–अलग ग्रन्थों में इनके क्रमों में अन्तर है आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार ग्रहस्थ, गुरूगेह, वानप्रस्थ, आदि आश्रमों को वर्णन मिलता है।[112] गौतम धर्म सूत्र में भी चार आश्रमों के नाम मिलतें तथा इन्हें ब्रह्मचर्य ग्रहस्थ, भिक्षु, और वैखानस नाम से उद्बोधित किया गया है।[113] वशिष्ठ धर्मसूत्र में भी आश्रम व्यवस्था का वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ तथा परिव्राजक आदि नाम दिये है मनुस्मृति में भी आश्रम व्यवस्था का वर्णन विस्तार से उपलब्ध होता है तथा ये आश्रम ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, और वानप्रस्थ है–

'ब्रह्मचारी गृहस्थाश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।

एते गृहस्थ प्रभावाश्चत्वारः पृथगाश्रमः।।

सर्वेअपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः।

यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम्।।'[114]

आश्रम व्यवस्था की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है–

1– ब्रह्मचर्य–

ब्रह्मचर्य भारतीय आश्रम व्यवस्था का प्रथम आश्रम है ब्रह्म का तात्पर्य महान और चर्य का तात्पर्य है विचरण करना अर्थात महान मार्ग में विचरण करने का तात्पर्य ब्रह्मचर्य हुआ। यह महान मार्ग वेद मार्ग है। अर्थात इस आश्रम के माध्यम से व्यक्ति ब्रह्मा को जानने का प्रयत्न करता है। इस आयुमें व्यक्ति गुरूग्रह जाने के बाद

अपराविद्या ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षाकल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द तथा ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त करता है।[115] ब्रह्मचर्य आश्रम में यह निर्देश दिया जाता है कि व्यक्ति मिथ्या भाषण न करे, आठ प्रकार के मैथुनों से बचे, भूमि में शयन करे, कम भोजन करे, अति निद्रा, अति स्नान, अति भोजन और अति जागरण का परित्याग करे, ब्रह्म मुहूर्त में जागकर वह नित्यकर्म करे तथा वह अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, नियम शौच संतोष तप स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, इन्द्रियनिग्रह और विनय की शिक्षाओं का अनुपालन ब्रह्मचर्य आश्रम में करे। ब्रह्मचर्य में शूद्रों कों कोई अधिकर नही था। किन्तु स्त्रियों को वैदिक युग में ब्रह्मचर्य रहने का निर्देश था। भागवतपुराण के मतानुसार ब्रह्मचारी गुरूकुल में निवास करे अपनी इन्द्रियो को पश में रखे, अपने को छोटा माने, प्रातःकाल गुरू, अग्नि, सूर्य तथा श्रेष्ठ देवताओं की उपासना करे तथा मौन होकर एकाग्रता से दोनो समय संध्या करे।

'ब्रह्मचारी गुरूकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् ।
आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढ सौहृदः ।।
सायं प्रातरूपत्सीत गुर्वग्न्यर्कसुरोन्तमान् ।
उभे सन्ध्ये च यतवग् जपन्ब्रह्म समाहितः ।।' [116]

ब्रह्मचारी को चाहिये कि वह गुरू के अनुशाशन में रहकर वेदों का अध्ययन करे, मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डल, यज्ञोपवीत और हाथ में कुश धारण करे।

'छन्दास्यथ्वीयीत गुरोराहूतश्चेत सुयन्त्रितः ।
उपक्रमे अवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ।।
मेखला जिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून ।
विभृया दुपवीतं च दर्भयाणिर्यथोदितम् ।।' [117]

2— ग्रहस्थाश्रम—

धर्मशास्त्र के अनुसार ग्रहस्थ आश्रम व्यक्ति का दूसरा आश्रम है। यह पचीस

वर्ष से लेकर पचास वर्ष की आयु तक रहता है। इस आश्रम में व्यक्ति पारलौकिक सुख प्राप्त करने के लिये विवाह करता है ओर ईश्वर उपासना करता हुआ परोपकार करता है। तन, मन, धन तथा धर्म के अनुसार संतानो की उत्पत्ति करता है।[118] प्राचीनकाल में ग्रहस्थ आश्रम को सर्वाधिक महत्व था ऋग्वेद के अनुसार जो व्यक्ति शरीर से शक्तिशाली, विशाल हृदय वाला, गुणशाली, विद्वान, तथा हमेशा प्रसन्न रहने वाला हो उसी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिये।[119]

भागवत पुराण में ग्रहस्थ आश्रम को योग के समान फलदायी कहा गया है, तथा धर्म, अर्थ, और काम के सेवन के लिये महत्व प्रदान किया गया है।

'अपि वाकुशलं किञ्चिद् गृहेषु गृहमेधिनि।

धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम्।।'[120]

भागवत पुराण में एक स्थान पर ग्रहस्थ आश्रम तथा उसमें रहने वाले गृहस्थाश्रमी को तीनो आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, तथा सन्यास) का पोषक कहा गया है।

'सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान्।

व्यसनार्णवत्येति जलयानैर्यथार्णवम्।।'[121]

इस पुराण में गृहस्थाश्रम को चारों पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति का साधन माना गया है। वैदिक धर्म के अनुसार जिन चार ऋणो की पूर्ति व्यक्ति को करनी होती है अर्थात पितर ऋण, देव ऋण, ऋषि ऋण तथा मनुष्य ऋण इन सब की पूर्ति ग्रहस्थाश्रम में होती है।

'धर्मो ह्यत्रार्थ कामौ च प्रजानन्दो[illegible]

लोका विशोका विरजा यान् न केवलिनो विदुः।।

पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह।

क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवेअस्मिन् यद् गृहाश्रमः।'[122]

इस ग्रन्थ के अनुसार व्यक्ति गृहस्थ आश्रम का अनुपालन करता हुआ सन्तों की सेवा भी करे।

'गृहेस्ववस्थितो राजन्क्रियाः कुर्वन्गृहोचिताः।

वासु देवार्पणं साक्षादुषासी महामुनीन्।।'[123]

यदि पुरूष धन अर्जित करता है तो उसे उतना ही धन कमाना चाहिये जितने की उसे आवश्यकता हो, उससे अधिक धन कमाना अपराध है। यदि वह किसी प्राकर के जीव–जन्तुों का पालन करता है तो उन्हें भी पुत्रवत माने तथा बहुत ज्यादा धन कमाने के लिये कष्ट न उठायें जो मिल जाये उसी में सन्तोष करें।

'यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हिदेहिनाम्।

अधिकं योऽभिमन्येत् सस्तेनो दण्डमर्हति।।

मृगोष्ट्र खर मर्का खुसरी सृप्खग मक्षिकाः।

आत्मनः पुत्रवत् पश्येत्तैरेषा मन्तरं क्रियत्।।

त्रिवर्ग नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यापि।

यथादेश यथाकालं भावद्देवोययादितम्।।'[124]

3– वानप्रस्थ–

वानप्रस्थ आश्रम हिन्दू धर्मव्यवस्था का तीसरा आश्रम है। इसका प्रारम्भ पचास वर्ष की अवस्था से होता है। प्रारम्भ में वानप्रस्थ व्यवस्था केवल ब्राह्मणो के लिये ही थी। मनुस्मृति के अनुसार 'गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमड़ा ढ़ीला और श्वेत केश होते हुये देखें तथा पुत्र का भी पुत्र हो जाये तब वन का आश्रय ले।''

'एवं गृहाश्रमें स्थित्वाविधिवत्स्नातको द्विजः।

वने वसेत्तुनियतो मथावद्विजितेन्द्रियः।।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलित मात्मनः।

अपत्यस्यैव चावत्यं तदारण्यं समाश्रयेन्।।'[125]

गृहस्थ आश्रम त्याग कर वान प्रस्थ में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को अपनी समस्त चल ओर अचल सम्पत्ति अपने पुत्रों को सौप देना चाहिये व वन में अपना निवास स्थान बनाना चाहिये। उसे नित्य वेद पाठ जप और तप का सहारा लेना

चाहिये। शीत और ग्रीष्म सहन करने की क्षमता पैदा करना चाहिये। किसी से कुछ न लेते हुये प्राणियों पर दया करना चाहिये और यथा सम्भव पंचमहायज्ञों का आयोजन करना चाहिये। उसे खुले मैदान में रहना चाहिये और तपस्या करना चाहिये।

भागवत पुराण में भी वानप्रस्थ आश्रम के लिये कुछ नियमों का उल्लेख किया गया है। वानप्रस्थियों को यह निर्देश दिया गया है कि वानप्रस्थ में रहने वाला व्यक्ति भूमि में उत्पन्न होने वाला अन्न चावल, गेंहू, आदि न, खायें, आग से पका हुआ भोजन न करे, जो जंगल में अपने आप पैदा हो उसी को ग्रहण करे, रहने के लिये पर्णकुटी अथवा गुफा का आश्रय ले, सिर पर जटा धारण कर केश, रोम, नख, दाढी, मूँछ न कटवाये। कमण्डल, मृगचर्म, दण्ड, वल्कस वस्त्र तथा अग्निहोत्र की सामग्रियों को अपने पास रखे।

'न कृष्ट पच्यमश्नीयादकृष्ट चाप्यकलतः।
अग्निपक्मधामं वा अर्कपक्मुता हरेत्।।
वन्यैश्चरूपुरोडोशान् निर्वपेत् कालचोदितान्।
लब्धेनवे नवे अन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत्।।
अग्नयर्थमेव शरणमुटजं वाद्रिकन्दराम्।
श्रयेत हिमवाप्वग्निवर्षा का तपषाट् स्वयम्।।
केशरोम नखश्म श्रुमलानि जटिलोदधत्।
कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान्।।'[126]

4— सन्याश्रम—

भारतीय दर्शन के अनुसार व्यक्ति के जीवन का अन्तिम आश्रम सन्यास आश्रम होता है। इसमें जीवन का चतुर्थ भाग शेष रह जाता है। वेदों में सन्यास आश्रम की कोई विषद व्याख्या उपलब्ध नही होती किन्तु स्मृति ग्रन्थों में इसका विशेष उल्लेख है। मुख्य रूप से मनु स्मृति में सन्यास आश्रम के सन्दर्भ में विस्तृत विवरण

उपलब्ध होता है। समस्त प्राणियों को अभय दान देने के पश्चात व्यक्ति सन्यास आश्रम में प्रवेश करता है तथा वह इन्द्रिय निग्रह, त्याग और तप का सहारा लेता हुआ मोक्ष को प्राप्त करता है। अन्त में ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है।

'यो दत्तवा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।

तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः।।

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम्।

तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चरन्।।' [127]

भागवत पुराण में सन्यास आश्रम के सन्दर्भ में अनेक निर्देश उपलब्ध होते है। यथा सन्यासी व्यक्ति को चाहिये कि वह सभी प्रकार की आसक्तियों से दूर रहे, एकान्त में रहे, भिक्षावृत्ति से शरीर का निर्वाह करे, जमीन में शयन करे और जब तक संकल्प विकल्पों को न छोड दे तब तक नासिका के अग्रभाग पर द्रष्टि जमाकर कुम्भक तथा रेचक द्वारा अपान गति को रोके।

'यश्चिन्तविजये यत्तः स्यान्निः संग्डोंअपरिग्रहः।

एको विविक्तशरणों भिक्षुर्भिक्षामिता शनः।।

देशे शुचो समे राजन्मंस्थाप्यासनमात्मनः।

स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वडं ओमिति।।

प्राणापानौ सन्निरून्ध्यात् पूरकम्भकरे चकैः।

यावन्मस्त्यजेत् कामान् स्वनासाग्र निरीक्षणः।।' [128]

आश्रम व्यवस्था का पुरूषार्थ से सम्बन्ध–

पुरूषार्थ से तात्पर्य मानव जीवन के लक्ष्यों से होता है व्यक्ति जहाँ मानवीय स्वभाव के अर्न्तगत भौतिक सुखों की कामना करता है वहीं धर्म और दर्शन का अनुसरण इनकी सार्थकता को जानने के लिये करता है इसी को पुरूषार्थ कहते हैं पुरूषार्थ के निम्न लिखित चार आधार है–

1– धर्म– धर्म का अर्थ धारण करना होता है अर्थात धर्म प्रजा को धारण करे

अथवा प्रजा धर्म को धारण करे उसी भावना को धर्म कहते है।

'धारणाद्धर्म मित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।

यत्स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चयः।।' [129]

धर्म के अर्न्तगत वयक्ति अपने कर्तव्यों और सत्कर्मों तथा गुणों से विविध रूचियों, इच्छाओं को पूरा करने का कार्य करता है। वह ऐसे कार्य करता है कि उसे इस लोक और परलोक दोनों जगह शान्ति प्राप्त हो । गीता के अनुसार सर्वभूतों की कामना के लिये धर्म की स्थापना हुई। प्रभवार्थ च भूतानां धर्मप्रवचनम् कृतम्। [130] मनुस्मृति के अनुसार जो व्यक्ति धर्म का सम्मान करता है धर्म उसका सम्मान करता है 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।' [131] धर्म का वास्तविक सम्बन्ध मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य आश्रम से था। ब्रह्मचर्य में धर्म प्रमुख पुरूषार्थ था। इसी आश्रम में रहकर व्यक्ति को धर्म के सभी पक्षों को सीखना और अभ्यास करना होता था।

2— अर्थ—

अर्थ का क्षेत्र धर्म से भी व्यापक है। आत्मा की मुक्ति अर्थात मोक्ष के लिये विशिष्ट कार्मों की आवश्यकता होती है। इसलिये अर्थ को धर्म का मूल माना गया है। जब व्यक्ति के पास धन होगा तब वह उस धन का प्रयोग पुरूषार्थ के लिये करेगा। और जब उसके पास कुछ होगा तभी वह त्याग भी करेगा। अर्थ का सम्बन्ध ग्रहस्थ आश्रम से जुडा हुआ है। बृहस्पति के अनुसार अर्थ सम्पन्न व्यक्ति के पास क्या नहीं होता ? मित्र, धर्म, विद्या, गुण, आदि। दूसरी ओर अर्थ हीन व्यक्ति मृतक या चाण्डाल के समान है इस प्रकार अर्थ ही जगत का मूल है। [132] गृहस्थाश्रम में रहकर व्यक्ति धन अर्जित करता था एवम अपना तथा अपने आश्रितो को पोषण करता था तथा कर्तव्यों का निर्वाह करते हुये ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करता था।

3— काम—

भारतीय धर्म दर्शन के अनुसार काम का उददेश्य सन्तानोत्पत्ति तथा वंश वृद्धि

करना है। इस भावना से पति—पत्नी में प्रेम उत्पन्न होता है तथा परोपकार ओर सहयोग की भावना जागती है। काम से कला और विलासिता के प्रति अभिरूचि जागती है किन्तु यहीं पर यह भी सलाह दी जाती है कि काम के वशीभूत होकर धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि तीनों का मूल ओर संकल्प एक ही हैं [133] भागवत गीता में यह उल्लेख मिलता है । कामी व्यक्ति में बुद्धि नहीं होती जबकि पुरूषार्थ के लिये इन्द्रियों का वश में होना जरूरी है। काम का सम्बन्ध गृहस्थ आश्रम से है, परन्तु इसका सम्बन्ध अपरोक्ष रूप से वानप्रस्थ आश्रम से जुडा हुआ है क्योंकि वानप्रस्थाश्रम में धर्म तथा मोक्ष के पुरूषार्थ करने होते है। महाभारत में जैसे कहा गया है कि धर्म अर्थ की प्राप्ति का कारण है औरकाम अर्थ का फल है। [134] मोक्ष से धर्म का प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी है। यह भी सत्य है कि धर्म सीधा व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाता है किन्तु अर्थ और काम का पालन उस मार्ग में बाधा डाल सकता है। इसी लिये धर्मपूर्ण अर्थ काम का पालन करने की आज्ञा दी गई है— 'धर्मानुकूलो अर्थकामौसेवेत'। [135] इस प्रकार काम पुरूषार्थ का सम्बन्ध वानप्रसथ आश्रम से था क्योकि बिना काम के सेवन के वानप्रस्थ आश्रम को प्राप्त कर लेना अथवा उसे सुरूचि पूर्ण ढ़ंग से पार कर लेना साधारण जन के लिये असम्भव था।

4— मोक्ष

मोक्ष पुरूषार्थ का चतुर्थ स्तम्भ है, जिसका अर्थ मनुस्मृति के अनुसार देव—ऋण, ऋषि—ऋण और पितृ—ऋण से छुटकारा पाना है। इन तीनो ऋणों से छुटकारा पाये बिना किसी भी व्यक्ति को मोक्ष उपलब्ध नही हो सकता।

'ऋणानि त्रीण्ययाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।

अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यथाः।।' [136]

मोक्ष का सम्बन्ध सन्यास आश्रम से था। इस सम्बन्ध में विष्णु पुराण में एक जगह यह उल्लेख आया है कि जो व्यक्ति इन्द्रिय नियन्त्रण, आसक्ति हीन तथा शत्रु—मित्र मे समान भाव रखता है किसी के प्रति द्रोह नहीं रखता, लोभ, मोह, काम,

क्रोध का परित्याग कर देता है उसी को मोक्ष प्राप्त होता है। [137] मोक्ष पुरूषार्थ का अन्तिम स्तम्भ है। संन्यासाश्रम में मोक्ष सबसे बडा पुरूषार्थ था।

भागवतपुराण जो कि व्यक्ति के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष पर बल देता है तथा त्रिविध पुरूषार्थों को त्रिविध आश्रमों के माध्यम से अन्तिम आश्रम, सन्याश्रम के माध्यम, से मोक्ष प्राप्तकरने का निर्देश देता है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है इस पुराण में एक स्थानपर भीष्म पितामह को वर्ण और आश्रम के साथ चारों पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करने हेतू अनेक उपाख्यान सुनाते हुये कहा गया है–

'पुरूष स्वभाव विहितान् यथावर्ण यथाश्रमम्।
वैरागयरागो पाधिम्यामाम्ना तोभयलक्षणान्।।
धर्मार्थिकाममोक्षाश्च सहोपायान् यथा मुने।
नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्ववित्।।' [138]

इसी पुराण मे गृहस्थाश्रम को अन्य तीनो आश्रमो का आश्रयदाता कहा गया है। गृहस्थाश्रम में पुरूष को त्रिविध पुरूषार्थों की कामना वाला बताया गया है।

'सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान्।
व्यसनार्णव मत्येति जलयानैर्य थार्णवम्।।
यामाहुरान्मनो ह्यर्ध श्रेयस्कामस्य मानिनि।
यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति बिज्वरः।' [139]

इस प्राकर भागवत पुराण में त्रिविधपुरूषार्थो को सम्पादित करते हुये चौथे पुरूषार्थ मोक्ष को प्राप्त करने के लिये कहा गया है व इसे आश्रमधर्म का पालन करते हुये सम्पादित करने को निर्देशित किया गया है।

इस प्रकार हम देखते है कि पुरूषार्थ के सम्पूर्ण सतम्भ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा चारों पुरूषार्थों व चारों आश्रमो से धर्म की प्रवृत्ति को ही प्रोत्साहन मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को ध्यान में रखते हुये पुरूषार्थ करना है तथा यही पुरूषार्थ आश्रम व्यवस्था से भी जुडा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भागवत पुराण, 2–5–11 ;
2. वही, 2–5–17 ;
3. वही, 2–5–18, 19 ;
4. वही, 2–5–27, 28 ;
5. वही, 2–5–30, 31 ;
6. वही, 2–5–32, 33 ;
7. वही, 2–5–34, 35 ;
8. वही, 2–5–36 ;
9. वही, 2–5–37 ;
10. वही, 2–5–40 से 42 तक ;
11. महाभारत, अनुशासन पर्व, 141–65 ; वनपर्व, 207–83 ;
12. वौधायन धर्मसूत्र, 1–1–1, 4 ;
13. ऋग्वेद, 7–104–12 ;
14. तैत्तरीय उपनिषद, 1–11–1 ;
15. बृहदारण्यक उपनिषद, 1–3–2 ;
16. वही, 5–2–3 ;
17. कठोपनिषद, 1–2–23 ;
18. महाभारत, शान्तिपर्व 162–21 ;
19. योग वशिष्ठ, 30–1 ;
20. महाभारत वनपर्व, 207–54 ; मनुस्मृति, 8–85 ;
21. भागवत पुराण, 7–11–8 से 12 तक ;
22. वही, 7–11–13 ;

23. वही, 7–11–25 ;

24. वही 7–11–26 ;

25. वही, 7–11–27 ;

26. वही, 7–11–28 ;

27. तैत्तरीय संहिता, 7–1–1–6 ;

28. ऐतरेय ब्राह्मण, 35–3 ;

29. भागवत पुराण, 7–11–24 ;

30. वही, 7–11–30, 31 ;

31. ऋग्वेद, 10–24–11 ; मनुस्मृति, 3–278 ;

32. वामन पुराण, 14–23 ;

33. अथर्ववेद, 13–1–56 ;

34. वही, 107–1 ;

35. शंखस्मृति, 8–1–11 ;

36. ऋग्वेद, 1–115–4, 2–3–6, 5–29–5, 10–106–1, ;

37. स्मृति चन्द्रिका, पृष्ठ 163 ; संस्कार प्रकाश, पृष्ठ 890 ;

38. गोभिल स्मृति, 2–22–23 ;

39. शतपथ ब्राह्मण, 11–5–6–1 ;

40. पूजा प्रकाश, पृष्ठ 166 से 163 तक ;

41. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2–4–9–13 ;

42. भागवत महात्म्य, 1–28 से 30 तक ;

43. वही, 2–16 से 18 तक ;

44. वही, 2–62, 63 ;

45. वही, 4–13, 14 ;

46. भागवत पुराण, 1–13–22, ;

47. वही, 1–13–25, 26 ;

48. वही, 1–13–40 ;

49. वही, 1–13–44 से 46 तक

50. वही, 1–16–7 ;

51. वही, 1–16–25 से 30 तक ;

52. वही, 2–3–9, 10 ;

53. वही 2–3–12 ;

54. वही, 2–9–2 ;

55. वही, 2–9–9, 10 ;

56. वही, 2–9–11, 12 ;

57. वही, 2–9–16, 17 ;

58. वही, 5–26–7 ;

59. उपाध्याय, बल्देव, पुराण विमर्श, पृष्ठ 36 ;

60. मनुस्मृति, 2–224 ;

61. भागवत पुराण, 3–5–25 ;

62. वही, 3–6–46 ;

63. वही, 3–6–7, 8 ;

64. वही, 3–27–2, 3 ;

65. वही, 3–27–9 से 11 तक ;

66. वही, 3–27–28 से 30 तक ;

67. वही, 11–10–23 ;

68. वही, 11–10–26 ;

69. वही, 11–11–27, 28 ;

70. लो. सिडनी, विजन आफ इण्डिया, संस्करण द्वितीय 1907, पृष्ठ 262, 263 ;

71. मेन, एंश्येण्ट लॉ, 1930, पृष्ठ 17 ;

72. ऐतरेय ब्राह्मण, 1–26 ;

73. शतपथ ब्राह्मण, 6–21–5 ;

74. वासिष्ठ धर्मसूत्र, 2–8–11 ;

75. छान्दोग्य उपनिषद, 5–3–1, 6–1–1,2 ; ब्रहदारण्यक उपनिषद 6–2–1 ;

76. बृहदारण्यकोपनिषद्, 4–1–37, 5–14–5, 6 ;

77. मनुस्मृति, 4–7, 8 ; 4–2, 3 ;

78. महाभारत, अनुशासनपर्व, 61–19 ;

79. गौतम धर्मसूत्र, 9–13 ; याज्ञवल्क्य स्मृति, 1–100 ; विष्णुधर्मसूत्र, 61–1 ; लघुव्यास स्मृति, 2–8 ;

80. गौतम धर्मसूत्र, 10–9, 10 ; मनुस्मृति, 1–134 ;

81. कार्ले अभिलेख, क्रमाकं 13 ; नासिक गुफा अभिलेख, क्रमांक 12 ;

82. मनुस्मृति, 11–1, 3 ;

83. वाल्मीक, रामायण, 73–76 ;

84. कौटल्य, अर्थशास्त्र, 9–2 ;

85. महाभारत, शल्य पर्व, 65–42 ;

86. महाभारत शान्ति पर्व 78–18 ;

87. ऋग्वेद, 10–101–3 ; तैत्तरीय संहिता, 2–5–5 ; वाजसनेयी संहिता, 12–67;

88. बौधायन, धर्मसूत्र

89. गौतम धर्मसूत्र, 7–8–14, 15 ; बौधायन धर्मसूत्र, 2–11–77, 78 ; वसिष्ठ धर्मसूत्र 2–24, 29 ;

90. मनुस्मृति, 10–116 ;

91. अत्रि स्मृति, 384 ;

92. बौधायन धर्मसूत्र, 2–4–20 ;

93. मनुस्मृति, 11–16, 17 ; गौतम धर्मसूत्र 18–28–30 ; याज्ञवल्क्य स्मृति, 3–42;

94. तैत्तरीय ब्राह्मण, 3–7–3 ; शान्ति पर्व, 343–13, 14 ; मनुस्मृति 4–117 ;

95. विष्णु धर्मसूत्र, 19–20,22 ; तैत्तरीय संहिता, 1–7–3–1 ;

तैत्तरीय आरण्यक, 2715 ; शतपथ ब्राह्मण, 12–4–4–6 ;

ताण्ड्यमहाब्राह्मण, 6–1–5 ; उत्तर रामचरित, 5;

96. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1–4–14–23 ;

97. मनुस्मृति, 7–37, 10–2 ;

98. गौतम धर्मसूत्र, 8–12, 13 ; मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य, 2–4 ;

बाधायन धर्मसूत्र, 1–10–18, 19 ;

99. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य 2–302 ;

100. शतपथ ब्राह्मण, 13–6–2–18 ; आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2–10–26–10 ;

101. गौतम धर्मसूत्र, 28–39, 40 ; वसिष्ठ धर्मसूत्र, 17–84,87 ;

बाधायन धर्मसूत्र, 1–5–118, 122 ; विष्णु धर्मसूत्र, 17–13, 14 ;

102. मनुस्मृति, 2–138, 139 ;

103. भागवत पुराण, 7–11–13, 14 ;

104. वही, 7–11–21 ;

105. वही, 12–3–32 ;

106. वही, 12–3–43 ;

107. प्रसाद, ईश्वरी, प्रचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म और दर्शन, 1984

शर्मा, शैलेन्द्र, पृष्ठ 257 ;

108. वायु पुराण, 67–37 ; ब्रह्माण्ड पुराण, 3–72–36 ;

109. मत्स्य पुराण, 47–139 ;

110. विष्णु पुराण, 1–6–33 ;

111. ब्रह्माण्ड पुराण, 2–32–26 ;

112. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2–9–21–1 ;

113. गौतम धर्मसूत्र, 3–2 ;

114. मनु स्मृति, 6–87, 88 ;

115. मुण्डकोपनिषद, 1–5 ;

116. भागवत पुराण,7–12–1, 2 ;

117. वही, 7–12–3, 4 ;

118. सरस्वती, स्वामी दयानन्द, संस्कार विधि ;

119. ऋग्वेद, 10–85–44 ;

120. भागवत पुराण, 8–16–5 ;

121. वही, 3–14–17 ;

122. वही, 4–25–39, 440 ;

123. वही, 7–14–2 ;

124. वही, 7–14–8 से 10 तक ;

125. मनु स्मृति, 6–1, 2 ;

126. भागवत पुराण, 7–12–18 से 21 तक

127. मनुस्मृति 6–39, 40 ;

128. भागवत पुराण, 7–15–30 से 32 तक ;

129. महाभारत कर्णपर्व, 109–58 ;

130. भगवद्गीता,

131. मनुस्मृति, 8–15 ;

132. बृहस्पति सूत्र, 6–7–12 ;

133. भगवद्गीता, 2–44, 2–61, 2–68

134. महाभंरत, शान्तिपर्व, 123–4 ;

135. वात्स्यायन, कामशस्त्र, ;

136. मनुस्मृति, 6–35 ;

137. विष्णु पुराण, 3–6–26 से 30 तक ;

138. भागवत पुराण, 1–9–26,28

139. वही, 3–14–17, 18 ;

चतुर्थ अध्याय

"भक्ति परम्परा के मूल बीज"

1 अ- भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताएँ।

2 ब- धर्मशास्त्रों के अनुसार धर्म की परिभाषा।

3 स- भागवत पुराण में वर्णित भक्ति परम्परा का विकास एवं समाज में प्रभाव।

4 द- कृष्ण भक्ति का स्वरूप।

5 य- कृष्ण की भगवान के अवतार के रूप में मान्यता और समाज में उसकी स्वीकृति।

6 र- भागवत पुराण में वर्णित कृष्ण जन्म एवं उनकी लीलाओं का धार्मिक स्वरूप तथा समाज में उनका अनुकरण।

अध्याय चतुर्थ
'भक्ति परम्परा के मूल बीज'

1—भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताएं—

भारत की प्राचीनतम भाषा संस्कृत में श्लोक है कि हमारी मात्र भूमि जिसमें हमने जन्म लिया है वह स्वर्ग से भी महान है।''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी''। इस महान देश के पूर्व में ब्रह्मा और बाँग्ला देश है, जो कभी भारत के ही अंग थे। पश्चिम में पाकिस्तान है जो 1947 के पहले भारतवर्ष का ही एक अंग था। उत्तर दिशा में अफगानिस्तान, नेपाल, और चीन जैसे देश हैं तथा दक्षिण दिशा में पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी, दक्षिण मध्य में श्रीलंका और हिन्दमहासागर व दक्षिण—पश्चिम में अरब सागर जैसे महासमुद्र है। वर्तमान में यह देश असम, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा,अरूणाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, जम्मूकाश्मीर, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्रा और उड़ीसा जैसे प्रदेशों में विभाजित है। वर्तमान समय में इस देश की आबादी सौ करोड़ से अधिक है तथा इस देश में बीस से अधिक भाषाएँ बोली जाती है। वर्तमान समय में यहाँ हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान, सिख, इसाई पारसी और यहूदी धर्मावलम्बी निवास करते हैं। इस देश में आर्य और अनार्य दो प्रमुख जाति विशेष के लोग निवास कर रहे हैं। आर्य लोग चार वर्णों में विभाजित है और अनार्य लोग अनेक उपजातियों में विभाजित है, मुख्य रूप से ये लोग द्रविड़, कन्नड़, मुडिया, माडिया, गौड, बैगा, कोल, भील, खैरवाार आदि जातियों विभाजित है। इन लोगों के पहनावे और लोक संस्कृतियाँ अलग—2 हैं। इनकी भोजन पद्धति, सामाजिक संस्कार और आचरण का मानदण्ड भी अलग—2 है।

यहाँ की प्रकृति ने यहाँ की संस्कृति का निर्माण किया है। उत्तर में हिमालय पर्वत है जो विश्व का सबसे ऊँचा पर्वत है, इस पर्वत से गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र जैसी नदियाँ निकली हैं। भारतवर्ष के मध्य और उत्तर भाग में विंध्याचल की पर्वत श्रेणियाँ

हैं, जो भारतवर्ष को दो भागों में विभक्त करती है। भारतवर्ष के दक्षिण और पश्चिम में नीलगिरि और अरावली पहाडियाँ है। उत्तर में गंगा, यमुना नदी के किनारे तथा दक्षिण में कृष्णा, गोदावरी तथा कावेरी नदी के किनारे उपजाऊ भूमि है, जहाँ अनेक प्रकार के अनाज उत्पन्न होते हैं। उत्तर और दक्षिण के पठारी भागों में अनेक प्रकार की खनिज सम्पदा उपलब्ध होती है। यहाँ नाना प्रकार के वन है जो हमें वन सम्सपदा प्रदान करते हैं। विषम प्राकृतिक बनावट होने के कारण यहाँ आवागमन के साधनों का अभाव रहा, इसलिए अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग सभ्यता और संस्कृति विकसित हुई यहाँ के व्यक्तियों ने उपलब्ध संसाधनों के अनुसार ही अपनी संस्कृति का विकास किया।

किसी भी देश की संस्कृति को वहाँ की जलवायु अथवा पर्यावरण भी प्रभावित करता है। भारतवर्ष समशीतोष्ण कटिबन्ध वाला प्रदेश है अर्थात यहाँ ग्रीष्म ऋतु में बहुत अधिक गर्मी पड़ती है तथा कुछ स्थानों का तापमान। 48^0 सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, तथा राजस्थान में गर्मी के दिनों में भीषण लू चलती है। बरसात के दिनों में यहाँ पर्याप्त वर्षा होती है जो कृषि के लिए अत्यन्त सहायक होती है। जाड़े की ऋतु में यहाँ नवम्बर और दिसम्बर अर्थात क्वाँर, कार्तिक, पूष और माघ में बहुत अधिक जाड़ा पड़ता है। इससे उत्तरी भारत का तापमान बहुत अधिक गिर जाता है। प्राचीनकाल में यहाँ के लोग कमर के निचले भाग में धोती या अंगोछा धारण करते थे तथा सिर के ऊपर पगड़ी या साफा बाँधते थे। स्त्रियाँ भी विशेष प्रकार के वस्त्र तथा यहाँ उपलब्ध धातुओं के आभूषण धारण करती थीं। ये वस्त्र तथा आभूषण तापमान तथा ऋतुओं के अनुकूल होते थे।

भारतीय संस्कृति का निर्माण यहाँ के मूल निवासियों भर ने नहीं किया, अपितु इस संस्कृति के निर्माण में उन विदेशी आक्रमणकारियों का भी योगदान था जो बहुत पहले से भारतवर्ष में लूटपाट करने और साम्राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से आये

थे। इन विदेशी आक्रमण कारियों में यवन, म्लेक्क्ष, वैक्ट्रियन, शुक्र, हूण, कुषाण आदि जातियों के लोग थे। इन्होंनेने भी भारतीय संस्कृति में अपना प्रभाव छोड़ा है। इनमें से कुछ जातियाँ जो 712 ई0पूर्व से लेकर ईसा की चौथी शताब्दी तक आयीं, उनका विलय भारतीय संस्कृति के महासमुद्र में हो गया और वे पूर्ण रूप से भारतीय हो गये। इस्लाम धर्म के अनुयायियों को भारतीय संस्कृति की धारा में इसलिए नहीं समाहित किया जा सका, क्योंकि इन्होंने भारतीय धर्मस्थलों का विनाश किया और यहाँ की धार्मिक भावनाओं को नष्ट करने का प्रयत्न किया, फिर भी इस्लाम के अनुयायियों ने भाषा, धर्माचरण और पहनावे को प्रभावित किया तथा इन्हीं की वजह से खड़ी बोली और उर्दू का भी उदय हुआ। इस तरह हम देखते हैं कि विदेशी आक्रमण कारियों ने भी यहाँ की संस्कृति के निर्माण में सहयोग प्रदान किया।

भारतवर्ष के मूल निवासी–

आज तक ऐसा कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो सका जो यह बतला सके कि भारत वर्ष के मूल निवासी कौन थे। जिन विदेशी इतिहासकारों ने भारतवर्ष का इतिहास लिखा है, उन्होंने सिन्धुघाटी की सभ्यता को आर्यों की सभ्यता से प्राचीन माना है तथा यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि सभ्यता से जुडे हुए व्यक्ति द्रविड़ जाति के थे और उनका रंग काला था। कतिपय इतिहास कार इन्हें भी विदेशी मानते हैं और इन्हें कोलारियन मूल का कहते हैं। आज से लगभग 5000 वर्ष पहले आर्यों का आगमन भारतवर्ष में विदेशों से हुआ था। उन्होंने यहाँ की अनार्य जातियों को परास्त किया था और सम्पूर्ण भारत में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। इनसे भयभीत होकर अनार्य या द्रविड लोग भारतवर्ष के दक्षिण की ओर पलायन कर गये तथा आन्ध्र,तमिलनाडु, केरल, उडीसा और बंगाल में बस गये। आर्यों ने जिन अनार्य जातियों को विभाजित किया उन्हें अपने चतुर्थवर्ण शूद्र में सम्मिलित किया और उनमें से कुछ को अपना दास अथवा सेवक बना लिया। रामशरण शर्मा के अनुसार "ऐसा जान पड़ता है कि आर्यों और अनार्यों के पराजित

और बेदखल कर दिए वर्ग शूद्र बना दिए गए और विजेता उसे अपनी सामूहिक सम्पत्ति मानने लगे।"[1]

यदि हम पुराणों पर दृष्टिपात करें तो हमें एक महत्वपूर्ण कथानक उपलब्ध होता है– प्राचीन काल में राजा दक्ष के तीन कन्याएँ थीं जिनमें से एक कन्या सती भगवान शंकर को ब्याही थी तथा शेष दो कन्याएँ कश्यप ऋषि को ब्याही थी उनके नाम दिति और अदिति थे। दिति से दैत्य अथवा अनार्य उत्पन्न हुए तथा अदिति से देवता अथवा आर्य उत्पन्न हुए। भागवत् पुराण में इस सम्बन्ध में श्लोक है जिसके अनुसार कश्यप नन्दन भगवान वामन ने अदिति के गर्भ से जन्म लिया था तथा दिति के गर्भ से दैत्य और दानवों के वन्दनीय दो ही पुत्र हुए– हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष।

'तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः।
पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथा वावततार ह।।
दितेर्द्वाविव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ।
हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याश्च कीर्तितौ।।[2]

इस पौराणिक कथानक के अनुसार आर्य और अनार्य दोनों ही भारत के मूल निवासी हैं, जो पढ़ लिख गये और सुसंस्कृत हो गये या सभ्य हो गये वे आर्य कहलाये और जो नहीं पढ़ लिख सके वे अनार्य, राक्षस, दैत्य, पिशाच, द्रविड़, आदि कहलाये थे। इसलिए आर्य और अनार्य किसी अन्य क्षेत्र से नहीं आये बल्कि इन्हीं दोनों से अलग–2 संस्कृतियों का विकास हुआ। दोनों में ही कभी मधुर सम्बन्ध स्थापित हुए तथा दोनों में ही कभी संघर्ष भी होता रहा। इन्द्र की पत्नी शची दानव कन्या थी, उसका सम्बन्ध देवताओं से हुआ। इसी प्रकार से शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का सम्बन्ध राजा ययाति से तथा मेनका का सम्बन्ध विश्वामित्र से और अप्सरा (उर्वशी) का सम्बन्ध पुरूरवा से हुआ था। कुल मिलाकर ये सभी मानव जातियाँ थीं। जो भारत वर्ष के विभिन्न अंचलों में निवास करती थी। इसलिए

इतिहासकारों का यह मत भ्रामक है कि यहाँ रहने वाली आर्य और अनार्य जातियाँ किसी अन्य क्षेत्र से भारत वर्ष में आयी थी। ये लोग यहाँ के मूल निवासी थे तथा इन्होंने अपने कर्म और आचरण के अनुसार अलग–2 सभ्यता और संस्कृति को जन्म दिया।

वर्तमान समय में जिस मातृभूमि में हम निवास करते हैं, वह अलग–2 नामों से विख्यात रही है। इसका अति प्राचीन नाम क्या था इस सन्दर्भ में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती ओर न इसके कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। प्रारम्भ में इस देश का नाम ब्रह्मावर्त था अर्थात ब्रह्मा ने ही इस देश को अपने सृष्टि विधान से उत्पन्न किया तथा प्रजा को सुव्यवस्थित करने के लिए चार वर्णों की उत्पत्ति की थी। ये वर्ण समाज की आवश्यकता के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के नाम से विख्यात हुए। इस वर्ण धर्म को बनाए रखने के लिए उन्होंने चारों वेदों की रचना की थी। ये वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद के नाम से विख्यात हुए। ऋग्वेद में देवताओं की स्तुति व उनके स्वरूप का वर्णन है, यजुर्वेद में विविध प्रकार के यज्ञों का वर्णन है, सामवेद में छन्द और संगीत के बारे में जानकारी उपलब्ध होती है तथा अथर्ववेद में शारीरिक स्वास्थ्य के लिए औषध आदि की जानकारी मिलती है। जिन व्यक्तियों ने वेदों का अनुसरण किया वे लोग आर्य कहलाये तथा इनके कारण भारत वर्ष का नाम आर्यावर्त पड़ा था। राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की सन्तान का नाम भरत था, यह बहुत ही साहसी बालक था। दुष्यन्त के कुरू राज्य का यह उत्तराधिकारी था तथा इसकी कीर्ति पूरे विश्व में फैल गयी थी। उसके नाम से यह देश भारतवर्ष के नाम से विख्यात हुआ तथा प्रत्येक धार्मिक कर्मकाण्ड में इस भूमि को जम्बूद्वीपे भारतखण्डे के नाम से पुकारा जाता है। ईसा की सातवीं शताब्दी के पश्चात अब अरबों के आक्रमण सिन्धू नदी के आस–पास प्रारम्भ हो गये उस समय अरब देश वासियों ने सिन्धु नदी के कारण इसे हिन्द नाम से पुकारा था। इस तरह नवीं शताब्दी से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी

के पश्चात जव भारतवर्ष में पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अँग्रेज आये उस समय इस देश को इण्डिया के नाम से पुकारा जाने लगा। इस तरह से से अनादिकाल से लेकर आज तक भारतवर्ष अनेक नामों से विख्यात है तथा यहाँ की संस्कृति पूर्ण मौलिक न होकर मिश्रित संस्कृति कहलायी।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ–

भारतीय संस्कृति विविधता वाली संस्कृति है उसने प्राचीन काल से अनेक युगों को भोगा है। विश्व की अनेक संस्कृतियाँ उत्पन्न हुयी और लुप्त हो गयी किन्तु भारतीय संस्कृति में ऐसी कोई विशेषता अवश्य है कि उसकी आत्मा के दीपक की लौ में तेजी से कंपन जरूर हुए लेकिन बुझी नहीं है। भारतवर्ष कभी भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहा है। इसलिए यहाँ की संस्कृति अपनी निजी मौलिक विशेषताएँ रखती हैं जो निम्न हैं–

1– प्राचीन संस्कृति–

भारतवर्ष की संस्कृति सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति है। जिस समय विश्व का अधिकांश भाग जंगली अवस्था में था उस समय भारत वर्ष में सांस्कृतिक चेतना विकसित हो रही थी। यहाँ पूर्व पाषाण काल के अनेक अवशेष उपलब्ध होते हैं, ये अवशेष पल्लावरम, सिंगल पेट, विल्लोर, तिन्नवल्ली दक्षिण भारत में, पश्चिम में सोहन नदी (सिन्धु नदी), उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर, मध्यप्रदेश में नर्वदा तट आदि स्थानों में उपलब्ध हुये हैं। इन सबको देखकर यह पता चलता है कि ईसा से पाँच हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष में एक अच्छी सभ्यता पल्लवित हो रही थी। इतनी प्राचीन संस्कृति विश्व में अन्य कोई नहीं थी।

2– आध्यात्मिक भावनाओं से परिपूर्ण संस्कृति–

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक भावनाओं से परिपूर्ण संस्कृति है। यहाँ मानव की तर्क शक्ति से उत्पन्न आध्यात्म को स्वीकार किया गया है। भारतीय वेदों में इस अध्यात्म का वर्णन विशेष रूप से देखने को मिलता है। मुख्य रूप से पुर्नजन्म और

मोक्ष के सिद्धान्त को भारतीय संस्कृति ने स्वीकार किया है। आध्यात्मिक प्रगति की पराकाष्ठा भारतीय संस्कृति में देखने को मिलती है अन्यत्र नहीं।

3– दार्शनिक भावनाओं की प्रमुखता–

भारतवर्ष की संस्कृति के विकास के साथ–2 यहाँ दार्शनिक भावनाओं का उदय हुआ क्योंकि सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय भी यहाँ दार्शनिक सिद्धान्त थे। दर्शन शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार हम जितना जानते हैं, हम में उससे अधिक जानने के लिए यहाँ बहुत कुछ है। षठ् दर्शनों का उदय भारतवर्ष में ही हुआ और यह यहीं विकसित भी हुआ।

4– धर्म की प्रधानता–

भारतीय जीवन का मूल आधार धर्म है और धर्म का सम्बन्ध मानव जीवन और उसके व्यवहार से है। भारतीय संस्कृति के समस्त अंग, उपांग, मन, शरीर, बुद्धि, खानपान, रहन–सहन, वस्त्र–आभूषण, दैनिकचर्या, कर्मविधान, व्यक्तित्व का विकास, कृषि, पशुपालन, उद्योग, व्यवसाय, व्यापार, शिल्पनिर्माण कला, संगीत, साहित्य, विज्ञान, अनुशासन, सामाजिक व्यवस्था, कर्तव्य, अधिकार, संस्कार, शिक्षा, धर्म आदि इसी की परिधि में आते हैं। यहाँ यह माना जाता है कि व्यक्ति के भौतिक विकास के साथ–2 उसका आध्यात्मिक विकास भी होना चाहिए। इसलिए यहाँ की संस्कृति धर्म प्रधान संस्कृति है। यहाँ चारों वेदों, अट्ठारह पुराणों, दो महाकाव्यों और छः शाास्त्रों में धर्म का विवेचन बहुत ही सुंदर ढंग से देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों में धार्मिक स्मारकों को देखा जा सकता है। यहाँ के व्यक्ति लोक और परलोक दोनों को अपने अपने कर्म के माध्यम से सुधारना चाहते हैं।

5– देवपरायणता–

यहाँ के लोग धर्म पर विश्वास करने के कारण विभिन्न देवताओं पर बड़ी श्रद्धा रखते है। भारतीय जन–जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व देवता ही करते हैं। उनका मत है कि देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए हर व्यक्ति को अच्छे कार्य

करना चाहिए, अशुभ कार्य करना पाप है उस से देवता नाराज हो सकते हैं। इसलिए यह माना जाता है कि अच्छे कार्य करो, दुष्कर्म न करो और अपने कर्मों को देवताओं को अर्पित कर दो। यहाँ के व्यक्ति प्राकृतिक प्रकोपों को देवताओं का कोप मानते हैं और अच्छे प्रतिफल को देवताओं का वरदान मानते हैं।

6– कर्म की प्रधानता–

भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के कर्म को धर्म से जोड़ा गया है। कर्म और धर्म एक दूसरे के पर्याय हैं। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ गीता में कर्म को प्रधानता प्रदान की गयी है–

" कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः।

मा कर्मफल हेतुभूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि" ।।

भारतीय धर्मों में कर्मफल को पाप और पुण्य में विभाजित किया गया है और इसी से स्वर्ग, नरक और मोक्ष की उपलब्धि कहा गया है।

7– धर्म का समन्वय–

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि वह अन्य संस्कृतियों के प्रति वैर भाव नहीं रखती, यदि बहुत से अच्छे गुण अन्य धर्म और संस्कृतियों से उपलब्ध होत हैं तो उन्हें ग्रहण कर लेती है। भारतीय संस्कृति विचार प्रधान, दार्शनिक तत्वों से पूर्ण, आध्यात्म को प्रमुखता देने वाली तथा आचरण और संस्कारों को सम्मान देने वाली है। इस संस्कृति के प्रचार– प्रसार के लिए कभी बल प्रयोग नहीं किया गया, स्वतः लोग इस संस्कृति की ओर आकर्षित हुए हैं और इसे अपनाया है।

8– सहनशीलता–

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि उसने अन्य संस्कृतियों के विकास में किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं डाली है। इस देश में अनेक धर्म मतमतान्तर आये और सभी को पल्लवित होने का अवसर यहाँ मिला है। हमने अपनी सहनशीलता से किसी का निरादर नहीं किया और स्वतः दूसरों का उत्पीड़न सहन करते रहे हैं। हमारे हृदय में सदैव दूसरों के प्रति दया की भावना रही है।

9— मानवीय गुणों की प्रधानता—

सत्य, अहिंसा, करूणा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये महान मानवीय गुण कहलाते हैं। यहाँ की संस्कृति ने इन गुणों को धारण किया है और इसी के कारण भारतीय संस्कृति के अनेक महापुरूष सदैव के लिए अमर हो गये। महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी तथा सम्राट अशोक ने इन मानवीय गुणों को प्रसारित किया।

10— वर्ण व्यवस्था पर आधारित संस्कृति—

भारतीय संस्कृति का उदय और विकास वर्ण व्यवस्था का परिणाम है। तद्युगीन समाज की सबसे बड़ी समस्या बुद्धि, समाज की सुरक्षा, जीविकोपार्जन, और समाज की सेवा थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का निर्माण किया गया तथा उनके लिए अलग—2 कर्मों का विभाजन किया गया। इससे बेरोजगारी की समस्या का समाधान अपने आप हो गया किसी भी वण के लिए जीविका उर्पाजन के लिए अलग से संसाधन खोजने की आवश्यकता नहीं थी। इससे सामाजिक असंतुलन उत्पन्न नहीं होता था। यद्यपि कभी—2 दुर्व्यवहार और घृणा के कारण कुछ वर्णों में असन्तोष पैदा होता था। जिसका लाभ दूसरे धर्म के लोग उठाते थे।

11— आश्रम व्यवस्था पर विश्वास—

भारतीय संस्कृति में सम्पूर्ण मानव जीवन को आयु के अनुसार चार भागों में विभक्त किया गया था। वह जन्म से लेकर पचीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करे, पचीस से लेकर पचास वर्ष की आयु तक ग्रहस्थ जीवन के दायित्व का निर्वाह करे, पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु तक वह वानप्रस्थ आश्रम धारण करे तथा पचहत्तर वर्ष से लेकर जीवन के अंत तक वह सन्यास आश्रम धारण करे। आश्रम व्यवस्था में आयु के अनुसार अलग—2 कर्म निर्धारित थे।

12— संस्कार व्यवस्था पर बल—

भारतीय संस्कृति ने मानव के सम्पूर्ण जीवन को अनेक संस्कारों में बाँधा है।

कुल सोलह संस्कार सर्वमान्य है। इसमें पुंसवन, गर्भाधान, जातकर्म, नामकरण, मुंडन, उपनयन, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार प्रमुख माने गये हैं। भारतीय संस्कृति की यह मान्यता है कि जिस व्यक्ति के संस्कार सम्पन्न नहीं होते वह श्रेष्ठ नहीं है। तथा उसका समाज में कोई सम्मानित स्थान प्राप्त नहीं होना चाहिये। ये संस्कार मानव जीवन को श्रेष्ठता और एक रूपता प्रदान करते है। संस्कारों से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और समाज के अन्य वर्गों से उसके मधुर सम्बन्ध स्थापित होते हैं।

7— पुरूषार्थ की अभिव्यक्ति—

भारतीय संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना सर्वत्र दिखलायी देती है। यहाँ पर पूजा पद्धति, और देवउपासना में सर्वत्र यहीं सुनाई देता है। कि धर्म की विजय हो विश्व का कल्याण हो, प्राणियों में सद्भाव हो तथा 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' अर्थात सब प्राणी सुखी रहें इसकी कामना की जाती है। यहाँ परहित ही को ही धर्म माना जाता है और परपीड़ा को पाप माना जाता है। अट्ठारहों पुराणों के रचनाकार कृष्णद्वैपायन व्यास इसी भावना को पुराणों में परिलक्षित करते हैं।

'अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।'

14— असाम्प्रदायिकता का बोध—

यहा के लोग दलगत भावना से दूर हैं वे किसी एक के बधुए नहीं हैं। वे यदि अपने धर्म से प्रेम करते हैं तो दूसरे धर्म से नफरत नहीं करते। भारतवर्ष में लगभग 3276 जातियाँ निवास करती हैं, जो सौ से अधिक मतों का अनुसरण करती हैं। इन सभी के बीच मेल—जोल और सहयोग की भावना है। यहाँ की संस्कृति किसी एक विचार धारा को प्रमुखता नहीं देती बल्कि बदलती हुई परिस्थितियों में संस्कृति में भी अपने आप परिवर्तन होता रहता है। इसलिए यहाँ की संस्कृति में दीपक की लौ की भाँति कंपन जरूर हुआ परन्तु वह बुझी नहीं है, अनेक परिवर्तनों के साथ भारतीय संस्कृति आज भी अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

2— धर्मशास्त्रों के अनुसार धर्म की परिभाषा—

आज तक भारतीय धर्म की उत्पत्ति और उसके मौलिक स्वरूप के सनदर्भ में ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि हिन्दू धर्म का निर्माता और संचालक अमुक व्यक्ति था। जबकि बौद्ध धर्म के निर्माता महात्मा बुद्ध, जैन धर्म के निर्माता महावीर स्वामी, इसाई धर्म के निर्माता ईसा मसीह और इस्लाम धर्म के निर्माता मोहम्मद साहब माने जाते हैं। हिन्दू धर्म का निर्माता ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसे इसका श्रेय मिल सके, हम भगवान राम और कृष्ण जैसे महापुरूषों को धर्म का रक्षक मानते हैं परन्तु उन्हें धर्म निर्माता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार हम वेदों को धर्म मूलक ग्रन्थ स्वीकार करते हैं किन्तु वेदों के रचनाकारों के सन्दर्भ में कोई निश्चित जानकारी हमें नहीं है। इसी प्रकार पुराणों की रचना के सन्दर्भ में भी हम कृष्णद्वैपायन वेदव्यास को उसका रचनाकार भले ही स्वीकार कर ले, परन्तु पुराण प्रसंगों के आधार पर तथा उनके कथानकों को देखते हुए वेदव्यास सको पुराणों का रचनाकार नहीं स्वीकार किया जा सकता है। हिन्दू धर्म कितना पुराना है कैसे इसका उदय हुआ, इसका वर्णन केवल अनुमान के आधार पर पुराण और शास्त्रों में किया गया है। इसके लिए वैज्ञानिक और ऐतिहासिक साक्ष्यों का सर्वथा अभाव प्रतीत होता है। इस धर्म में एक ईश्वर के अतिरिक्त अन्य देवताओं को भी स्वीकार किया जाता है। उसे निराकार और आकार दोनों ही रूपों में माना जाता है तथा शक्ति, शिव, सूर्य, विष्णु, गणेश, प्रकृति और ग्रामीण देवताओं की उपासना की जाती है, अतः इस स्थिति में यह ध ार्म केवल समन्वय वादी ही प्रतीत होता है।

भारतीय धर्म ईश्वर, आत्मा तथा श्रेष्ठ मानव जीवन को स्वीकार करता है इस धर्म के अनुसार ईश्वर एक अद्रश्य शक्ति है जो कभी कभी द्रश्य भी हो जाती है उसने सम्पूर्ण विश्व का निमाण किया है तथा अनेक जीव भी उत्पन्न किये है, इन जीवों में उसने एक आत्मा को स्थापित किया जो जन्म से मृत्यु तक शरीर में चेतना

बनाये रखती है। इस प्रकार ईश्वर ने ही इस सृष्टि का सृजन किया है। वह समस्त ग्रह नक्षत्रों के अतिरिक्त जीवों को उत्पन्न करता है, उनका विकास करता है और उनका संहार भी करता है। हिन्दू धर्म यह स्वीकार करता है कि मानव जीवन सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त है तथा पुरूषार्थ के माध्यम से जीवन के उच्च आदर्शों को प्राप्त करता है। इस विश्व की बाहरी और आन्तरिक शक्तियाँ शरीर और मन को प्रभावित करती है। इसके कारण व्यक्ति अपने आप को बन्धनों में जकड़ा पाता है और उनसे छुटकारा पाने की कोशिश करता है और छुटकारा प्राप्त करने के लिए वह परमपिता परमात्मा व अन्य देवों की उपासना भी करता है। हिन्दू धर्म का शरीर एक है और उसकी आत्मा भी एक है इसलिए यह धर्म आज तक जीवित है। इस धर्म की निम्न लिखित विशेषताएँ हैं–

1– भारत की राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति आदर का भाव–

भारतवर्ष का हिन्दू धर्मावलम्बी व्यक्ति अपनी संस्कृति के प्रति आदर का भाव रखता है और उसे विकसित करने की बात सोचता है। हिन्दू धर्म के लोग वेदों पर विश्वास रखते है और वेदों के आदेशों का अनुपालन करते हैं। भारत के प्राचीन ऋषियों ने अपनी बुद्धि, नीति, कला और आध्यात्म के सहायोग से ऐसे कार्य किए हैं जो आज तक दिखायी नहीं देते हैं। वेद उसी के प्रतीक हैं। वेदों के माध्यम से ही भारतीय धर्म, सुदृढ़ हुआ, इसके पश्चात रामायण, महाभारत, स्मृति ग्रन्थ, तन्त्र विज्ञान, पुराण और दार्शनिक ग्रन्थों की रचना हुई। इनसे धार्मिक कला और साहित्य, विज्ञान और दर्शन, धर्मशास्त्र और कर्मकाण्ड तथा पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का उदय हुआ। हिन्दू लोग धर्मशास्त्रों पर भी श्रद्धा रखते हैं और तदानुसार आचरण भी करते हैं।

2– सन्त महात्माओं और वीरों के प्रति श्रद्धा–

हिन्दू धर्म के लोग सन्त महात्माओं और वीरों पर श्रद्धा रखते हैं। ये लोग ऐसे व्यक्तियों के प्रति जिन्होंने अपने कर्म से अपना इतिहास सृजित किया है उनके प्रति

श्रद्धा रखते हैं। मुख्य रूप से वशिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, नारद, कपिल, पराशर और व्यास आदि त्रिृषियों के प्रति उनकी श्रद्धा है। इसी प्रकार वे बुद्ध, शंकराचार्य, पारसनाथ, चैतन्य, गुरूनानक, रामानुज, रामानन्द, कबीर, तुलसीदास जैसे महासन्तों पर भी श्रद्धा रखते हैं। तथा उनकी श्रृद्धा भगवती सीता, सावित्री, सती, उमा और मैत्रेयी पर भी है। यहाँ के लोग पौराणिक आख्यानों, धार्मिक अनुष्ठानों, ऐतिहासिक घटनाओं, यात्राओं, धार्मिक अभिनय तथा खेल तमाशों पर भी श्रृद्धा रखते हैं तथा उन्हें धर्म का अंग मानते हैं।

3— तीथ स्थानों का आदर—

हिन्दू लोग राष्ट्रीय महत्व के स्थानों को आदर के साथ देखते हैं, ये स्थल नगरों, वनों, सरोवरों तथा पर्वतों में उपलब्ध होते हैं। यहाँ का व्यक्ति बड़ी आस्था के साथ इन स्थलों की यात्रा करता है। ये स्थल शैव, शक्ति, तथा वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं इन्हें तीर्थ कहा जाता है। मुख्य रूप से अयोध्या, मथुरा, काशी, द्वारिकापुरी और उज्जैन ऐसे तीर्थ स्थल है जिन्हें हर कोई देखना चाहता है। इसी प्रकार गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कवेरी नदियाँ पवित्र मानी जाती है इनमें व्यक्ति स्नान करने की इच्छा रखता है। इसी प्रकार वृन्दावन, दण्डाकारण्य, नैमिषारण्य आदि ऐसे स्थल हैं। जहाँ व्यक्ति जाना चाहता है तथा द्वैपायन, पुष्कर, मानस, चम्पा, नारायण आदि पवित्र सरोवर है, जिनमें व्यक्ति स्नान करना चाहता है।

4— हिन्दू धर्म के लोग धर्म के रूप में निम्न विशेषताएँ रखते हैं—

1— जीव जगत के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि—

उनका यह विश्वास है कि सम्पूर्ण विश्व और मानव जीवन आध्यात्मिक भावनाओं से परिपूर्ण है। मनुष्य के शरीर में आत्मा ही एक चेतन वस्तु है इसलिए उसके शरीर को आधिभौतिक, मनोमय और बौद्धिक माना जाता है। इस सम्पूर्ण

शरीर की स्वामी आत्मा होती है। यही शरीर को संचलित करती है। यह शरीर तीन प्रकार का है स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और अति सूक्ष्म शरीर परमात्मा का होता है जो सूक्ष्मशरीर को नियन्त्रित रखता है तथा सूक्ष्म शरीर आत्मा होती है जो स्थूल शरीर को नियन्त्रित रखती है वह आत्मा के ही माध्यमसे आनन्द और कष्ट का अनुभव करता है तथा अनेक प्रकार के ज्ञान ग्रहण करता है। बिना आत्मा के यह शरीर जड़ है इसलिए आत्मा राजनैतिक और धार्मिक सत्ता को स्वीकार करती है। आत्मा ही परमात्मा की अनुभूति भी करती है तथा आत्मा ही अन्य जीवों की आत्माओं के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करती है। इसलिए आत्मा ही मानव शरीर की प्रमुख स्वामी है तथा वह मानव शरीर नष्ट हो जाने के पश्चात भी अपने अस्तित्व को बनाये रखती है।

2– नैतिक सत्ता पर विश्वास–

हिन्दू धर्न के अर्न्तगत नैसर्गिक सत्ता को स्वीकार किया जाता है। इस पृथ्वी में जीव जगत, सुख दुःख, सम्पत्ति और दरिद्रता, बल और निर्बलता, विवेक और मूढ़ता, उच्च आकांक्षायें और नीचता सब कुछ है। व्यक्ति अपने कर्मो से इन्हें प्राप्त करता है और भोगता है। यहाँ लोग शुभ और अशुभ कर्मो पर विचार करते हैं। प्रत्येक कार्य में अनुकूल अवसर की तलाश की जाती है। उन्हे ऐसा लगता है कि यदि मैं कोई गलत काम करूँगा, तो मुझे अगले जन्म में उसका फल भोगना पड़ेगा और जो मैं वर्तमान समय में भोग रहा हूँ वह पूर्व जन्म का ही फल है, इसलिए वह विपत्तियों को भी पूर्व जन्म का फल मानकर सहन कर लेता है। वह सोचता है कि सम्पूर्ण संसार का स्वामी परमात्मा है उसकी इच्छा के विरूद्ध हम कुछ नहीं कर सकते हैं। हानि–लाभ, जीना–मरना, यश–अपयश, सुख और दुःख, सब कुछ परमात्मा के हाथ में है। प्राकृतिक आपदाओं को भी व्यक्ति परमात्मा का कोप समझकर सहन करता है।

3— मुक्ति का सिद्धान्त—

हिन्दू धर्म में आत्मा की चरम आकांक्षा मुक्ति प्राप्त करना है। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है कि उसे कर्म बन्धन से छुटकारा मिले तथा वह सुख दुःख के माया जाल से अलग हो जाय और अन्त में ईश्वर में लीन हो जाये। इसलिए वह अज्ञान और अन्धकार का परित्याग करके सांसारिक प्रतिष्ठा को छोड़कर पवित्रकर्मों के माध्यम से परमात्मा की समीपता अर्थात मोक्ष पाना चाहता है। इसलिए वह धार्मिक कर्म करता है।

4— परमात्मा के अस्तित्व की स्वीकति —

भारतवर्ष में हर व्यक्ति जो धर्म पर आस्था रखता है वह ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है। व्यक्तियों की ऐसी मान्यता है कि जब व्यक्ति को मोक्ष मिलता है तो उसकी आत्मा ईश्वर में लीन हो जातीहै। अर्थात उसमें और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। वह परमात्मा के जिस स्वरूप की उपासना करता है उसी में लीन होता है। इस विश्व में परमात्मा केवल एक है उसका कोई दूसरा स्वरूप नहीं है। परमात्मा सत्य है, निर्गुण है, युगों—युगों से उसके और हमारे सम्बन्ध है भले ही वह विभिन्न नामों से जाना जाता हो। परमात्मा अन्य देवताओं का निर्माता भी है, वह विभिन्न प्रकार के देवताओं का निर्माण भी करता है जो विभिन्न उद्देश्यों के लिए भिन्न—2 होते हैं ईश्वर ही सर्वशक्तिमान, निराकार, साकार तथा भिन्न—2 समयों में अवतार धारण करने वाला है। धर्म ईश्वर के लिए है और ईश्वर का अस्तित्व धर्म स्थापना के लिए है तथा मनुष्य का जीवन धर्म का अनुसरण करने के लिए है।

5— धर्म ग्रन्थों में धर्म का स्वरूप—

हिन्दू धर्म ग्रन्थों, मुख्य रूप से वेदों पुराणों, महाकाव्यों तथा कर्मकाण्ड के ग्रन्थों में धर्म के स्वरूप का जो वर्णन मिलता है वह निम्न लिखित है—

महाभारत में धर्म का स्वरूप—

महाभारत भारतवर्ष का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी रचना महर्षि कृष्णद्वैपायन

वेदव्यास ने की थी। इस महाकाव्य और पौराणिक ग्रन्थ में अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र तथा मोक्षशास्त्र का विस्तृत वर्णन है। ये सभी धर्म के अंग है, इनका वर्णन महाभारत में है।

'अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।

कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामित बुद्धिना।।[3]

महाभारत में धर्म की बडी व्यापक और विषद् कल्पना की गयी है। युधिष्ठिर के धर्म विषय कृष्ण और उत्तर में भीष्म पितामह का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है कि किसी भी व्यक्ति की धार्मिक क्रिया विफल नहीं होती है।

'सर्वत्र विहितो धर्मः सत्यप्रेत्य तपः फलम्।

बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया।।[4]

जब लोमश ऋिषि से युधिष्ठिर प्रश्न करते हैं कि मैं धर्मज्ञ होकर कष्ट भोग रहा हूँ, इसका क्या कारण है ? इसका लोमस ऋषि इस प्रकार देते है–

'वर्धत्यधर्मेण नरस्ततो भद्राणि पश्यति।

ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति।।[5]

इसका आशय यह है कि अधर्म का आचरण करने वाले की बुद्धि स्थिर नहीं रहती है। यदि वह अधर्म से शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करता है तो अंत में समूल नष्ट हो जाता है। इसलिए व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह धर्म का आचरण करे, धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त करता है। इसलिए मेधावी व्यक्ति धर्म विहीन कर्म कभी न करें।

'धर्मादपेतं यत् कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम्।

न तत् सेवेत मेधावी न तद्धितमिहोच्ये।।[6]

धर्म का सीधा सम्बन्ध न्याय से है, जब द्रोपदी का चीर हरण हो रहा था उस समय भगवान कृष्ण ने कौरव सभा में यह वचन कहे थे, जो बहुत मार्मिक है। उनका कहना है कि– यदि कोई गरीब व्यक्ति सभा में न्याय मांगने आये और

'द्रोपदी प्रश्न मुक्त्वैवं रोखीति त्वनाथवत्।

न च विब्रूत तं प्रश्नं सभ्या धर्माऽत्र पीडयते।।'[7]

न्याय मांगे, उस समय सभासदों का यह कर्तव्य है कि वे न्याय करें। यदि कोई व्यक्ति अन्याय करने वाले की निन्दा नहीं करता तो वह भी पाप का भागी है। अर्थात धर्म की रक्षा करना और धर्म का आचरण करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। महाभारत में धर्म के प्रसंग सभापर्व, उद्योग पर्व, विराट पर्व और शान्ति पर्व में आये हैं।

मनु स्मृति में– मनुस्मृति मे भी धर्म का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति कहती हैं कि वर्णाश्रम धर्म का पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए और हर कृत्य धर्मविधान के अनुसार होना चाहिये।

' अनधीत्य द्विजो वेदान अनुत्पाद्य सुतानपि।

अनिष्टवा शक्तितो यज्ञैर्मोक्षमिच्छन पतत्पधः।।'[8]

पराशर गीता में:– पराशर गीता में भी आत्मतत्व पर बल दिया गया है। उसमें कहा गया है कि वस्तुओं का कोई मूल्य नहीं है, आत्मतत्व की कसौटी पर कसने से उपदेश से बढ़कर कर्म करता है।

'परेषां यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नरः।

यो ह्मसूयुस्तथा युक्तः सोअवहासं नियच्छति।'[9]

पुराणों में जो धर्म ग्रहण किया गया है वह उसका मौलिक विचार नहीं है। अपितु यह विचार वेदों से पुराणों में आया है।

वेदों में धर्म की अभिव्यक्ति– वेद हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, हम उन्हें समस्त ज्ञान का स्रोत मानते हैं और उन्हीं से हमारा धर्म प्रेरित होता है। ऋग्वेद में अग्नि को मनुष्यों का पिता तथा माता माना गया है इसलिये माता–पिता की भक्ति हमारा प्राथमिक धर्म है।

'त्वां वर्धान्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।

त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मा नुषाणामम्' ।।[10]

ऋग्वेद में इन्द्र शत्रुओं को ध्वस्त करने वाला देवता माना गया है तथा उसे माता–पिता की संज्ञा दी गयी है।

'त्वं हिनः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ अधा ते सम्नमीमहे ।।'[11]

हमारे पितर जो आज जीवित नहीं हैं वे भी इन्द्र के समान हैं। इन्द्र के अतिरिक्त वेदों में वरूण को समुद्र और नावों का देवता माना गया है। वह अपराधियों को दण्ड देने वाला है और मंगल व्यवस्था का निर्माता भी है। इस प्रकार हम देखते है कि वेद धर्म के सन्दर्भ में प्राथमिक जानकारी देते हैं।

'य आपिर्नित्यं वरूण प्रियः सन्

त्वामागां सि कृणवत् सखा ते।

मान एन स्वन्तो यक्षिन् भुजेम

यन्धिष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम।'[12]

अन्य पुराणों में धर्म— अलग— अलग पुराणों में अलग–2 देवता को परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और उन्हीं से धर्म को जोड़ा गया है। मुख्य रूप से अनेक पुराणों में विष्णु को ईश्वर माना गया है और यह माना गया है कि विष्णु का कभी विनाश नहीं होता। यथा—

'सर्वेश सर्वभूतात्मन्सर्व सर्वाश्रयाच्युत, प्रसीद विष्णो.............. ।'[13]

ब्रह्माण्ड पुराण में भी उसे सृष्टि का कर्ता कहा गया है।

'विश्वेशो लोककृद्देव........................... प्रभुर्विष्णुर्दिवाकरः ।'[14]

विष्णु की महत्ता के आधार पर वैष्णव धर्म का उदय हुआ है। विष्णु पुराण में विष्णु के महत्व को उजागर करते हुए यह बात कही गयी है कि इन्द्र ने सौ यज्ञों के माध्यम से विष्णु को सन्तुष्टकर के स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया था।

'इष्टवा यभिन्द्रो यज्ञा नाम् शतेनामर राजताम् ।

अवाय तमनन्ता दिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ।।'[15]

सूर्य के सम्बन्ध में विष्णु पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि सूर्य भी वैष्णवी शक्ति से प्रकाशित होता है।

'सवितुर्मण्डले ब्रह्मन्विष्णु शक्त्युवृंहिताः ।'[16]

अग्नि, वरूण, पूषा, अश्वनी, मरूत, साध्य और विश्वदेवा, विष्णु से निम्न स्तर के हैं। विष्णु पुराण के वर्णन के अनुसार उपरोक्त देवता असुरों से परेशान होकर विष्णु की शरण में आते हैं।

'सर्वा दित्यैः समं पूषा पावकोऽयं सहाग्निभिः.............

.........शरणं त्वामनुप्राप्ताः समस्ता देवतागणाः ।'[17]

यदि विष्णु और रूद्र की तुलना की जाय तो वायु पुराण में शिव अथवा महेश्वर को परम् देवता माना गया है, और विष्णु को भी परम् देवत्व की प्रतिष्ठा उपलबध है किन्तु वे महेश्वर से छोटे हैं।[18] विष्णु पुराण मे रूद्र और विष्णु का एकीकरण किया गया है। इसमें कहा गया है कि वे ही रूद्र रूप धारण करके जगत का संहार करते हैं।

'सम्भक्ष्य सर्वभूतानि देवादीन्य विशेषतः ।

नृत्ययन्ते च यद्रूयं तस्मै रूद्रात्मने नमः ।।'[19]

अनेक पुराणों में विष्णु का पद सब से ऊपर माना गया है तथा इसे दार्शनिक दृष्टि से समझाने की चेष्टा की गयी है। वैष्णव मत के अनुसार भोक्ता और भोग्य, सृष्टि और सृजन, कर्ता और कर्म स्वतः भगवान विष्णु ही हैं। वे ही ज्ञान, अजर, अमर, अजन्मा, अक्षत, अव्यय और विश्व के स्वामी हैं। विष्णु ही नारायण विष्णु ही भक्तों के कष्ट निवारण के लिए राम और कृष्ण अवतार धारण करने वाले हैं और वे ही वासुदेव है।[20] पुराणों में विष्णु भक्ति पर महत्व दिया गया है उन्हें परमब्रह्म परमेश्वर माना गया है तथा उनके सूक्ष्म और स्थूल रूप की उपासना की सलाह दी

गयी है। विष्णु ही पथ भ्रष्टों को सद्गति और सम्मान प्रदान करते हैं। विष्णु ही अनेक रूपों में अवतार धारण करते हैं तथा उनके साथ अन्य देवता भी अवतार धारण करते हैं। लक्ष्मी विष्णु की पत्नी है तथा समस्त मंगल की दाता भी है। इसलिए वैष्णव धर्म के रूप में विष्णु को परमपिता परमेश्वर माना गया है।

पुराणों में शैवधर्म— अनेक पुराणों में शिव के महत्व पर जोर दिया गया है तथा उन्हें संसार का स्वामी कहा गया है और वे देवों में सबसे महान कहे गये हैं।[21]

ब्रह्मण्ड पुराण में शिव के अनेक नामों का उल्लेख मिलता है।[22] समुद्र मंथन के प्रसंग में चन्द्रमा को ग्रहण करने वाले शिव को महेश्वर की उपाधि दी गयी है। उन्होनें समुद्र से निकले काल कूट (विष) विष का पान किया था इसलिए उन्हें महादेव के नाम से पुकारा गया।[23] शिव हिन्दू धर्म के महत्वपूर्ण देवता हैं, उन्होंनें ऐश्वर्य से देवों को, बलि से असुरों को ज्ञान से ऋषियों को और योग से प्राणियों को पराजित किया था।[24] शिव के सम्बन्ध पशुओं से हैं इसलिए 'पशुपति' शिव का पाँचवा नाम है।[25]

भगवान शिव की उपासना में मूर्ति पूजा के स्थान पर लिंग उपासना को अधिक मान्यता दी जाती है, जब ब्रह्मा, शिव और विष्णु की श्रेष्ठता का निर्धारण कर रहे थे उस समय शिवलिंग से अग्नि निकल रही थी।[26] ऐसा प्रतीत होता है कि मैथुन सृस्टि के यथार्थ को समझकर समाज में शिवलिंग की उपासना का शुभारम्भ हुआ होगा। शिव के साथ स्कन्द अथवा स्वामी कार्तिकेय तथा शिव की पत्नी पार्वती और उनके पुत्र गणेश की भी पूजा होती है। भूत पिशाच और राक्षस उनके अनुचर हैं इसलिये उन्हे भूत पिशाचों का स्वामी कहा गया है

शैव धर्म सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक महत्वपूर्ण धर्म है। इस के अनुयायियों की संख्या वैष्णव धर्मावलम्बियों के समान है भगवान शिव का वर्णन वेदों से लेकर समस्त पुराणों में भी है मुख्य रूप से शिवपुराण, शिवलिंग पुराण में इनका वर्णन अधिक है। ऐसा लगता है कि आर्यो के भारत आगमन से पहले यहाँ के मूल निवासी

द्रविड़ जिन्हें राक्षस दैत्य तथा दानवों के नाम से पुकारा गया है। वे शिव की उपासना करते थे तथा कालान्तर में आर्यों ने भी शिव को अपना देवता स्वीकार कर लिया। जब धर्म समन्वय की भावना बढ़ी उस समय एक ही मन्दिर मे अनके देवी देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित होने लगी तथा शैव और वैष्णव धर्म को एक करने के प्रयत्न चलते रहे।

सूर्य उपासना— प्रारम्भ में मनुष्य प्रकृति का उपासक था सूर्य एक ऐसा ग्रह था जो प्रकृति का महत्वपूर्ण अंग था। विष्णु पुराणमें सूर्य को विष्णु का अंश माना गया है तथा विष्णु ने अपने विराट स्वरूप से सूर्य को उत्पन्न किया है। इसलिये देवगण सूर्य को वैष्णवी शक्ति मानते है—

'अंगमेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्युजः सामसंज्ञिता।

विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्ये करोति सा।। [28]

सूर्य उपासना में वैदिक परमपरा का प्रभाव जान पड़ता है, ऋग्वेद के विवरण में सूर्य को इन्द्र और विष्णु द्वारा उत्पन्न माना गया है।[29] यदि अग्नि और सूर्य की तुलना की जाये तो ऋषिगण सूर्य हौर अग्नि में कोई अन्तर नहीं मानते है।[30] सूर्य तथा आदित्य में भी कोई अन्तर नहीं माना गया। आदित्य और सूर्य में केवल नाम का अन्तर है। ''आदित्यः सविता भानुः जीवनो ब्रह्मसत्कतः।''[31] वेदों में सूर्य की उत्पत्ति अदिति से मानी गयी है।

' उदयप्तदसौ सूर्यः पुरुविश्वानि जूर्वन।

आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टोअदृष्टहा।। [32]

पुराणों में बारह आदित्यों का वर्णन मिलता है उनमें सूर्य को विस्वान के नाम से पुकारा गया है। सूर्य की अन्य नाम अर्यमन, भग, मार्तण्ड आदि है। सूर्य आकाश में अपने रथ में विचरण करते हैं। यह रथ ईषा, दण्ड, नेमि और चक्र से निर्मित है तथा इस रथ को सात घोडे खींचते है।

'योजनानां सहस्त्राणि भास्करस्य रथो नव।

ईषादण्डस्तथैनास्य द्विगुणो मुनिसत्तम।

हयाश्च सप्तच्छंदांसि तेषां नामानि में श्रुणू। [33]

सूर्य काल का निर्धारण करता है उससे रवि से लेकर शनि तक के दिन निर्धारित होते है और वही घटी, पल, मुहुर्त, पक्ष और मास का निर्धारक है, वही जीवन का संरक्षक भी है तथा वर्षा ओर कृषि का कारण भी है। उसी से व्यक्ति जीवन निर्वाह करते है। सूर्य के दर्शन मंगल सूचक है तथा दुःखों का विनाशक भी है। सूर्य चराचर नेत्र के समान है इसलिये सूर्य की उपासना का विधान है यज्ञ और श्राद्ध में सूयं का श्राद्ध देने की व्यवस्था है तथा धर्मग्रन्थों में सूर्य पूजा के विधान मिलतें है। शुक्लपक्ष की सप्तमी के रविवार को श्वेत वस्त्र पहनकर सूर्य की पूजा करने का विधान है। वैशाख शुक्लपक्ष की सप्तमी के रविवार को भी सूर्य की पूजा की जाती है सूर्य की पूजा मांदार के पुष्पों ओर पीले रंग के पुष्पों से की जाती है। तथा इनका आसन कमल है सूर्य के चरण नही है जितनी भी सूर्य की मूर्तियां उपलब्ध हैं उनमं किसी भी मूर्ति में सूर्य के चरण नहीं दर्शाये गये। भारतवर्ष में सूर्य की उपासना वैष्णव और शैव धर्म के बाद तीसरे नम्बर पर थी तथा इसका पृथक अस्तित्व था। मुल्तान, कलिगं, खजुराहो, रहली, कालिंजर तथा कालपी में सूर्य मन्दिर के पुरा अवशेष उपलब्ध हुये है जो इस बात का संकेत करते है कि सूर्य उपासना प्रकृति उपसना का एक अंग थी। वेदों में गायत्री मन्त्र के माध्यम से सूर्य की उपासना की जाती रही है।

शाक्त धर्म— भारतवर्ष के लोग जगत जननी शक्ति की उपसना अति प्राचीनकाल से कर रहे है, यह महाशक्ति पापों को विनाश करने वाली है इसकी उपसना करने वाले व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त करके शिव लोक को प्राप्त करते है। ''सर्वपाप विनिर्मुक्तः कल्यं शिवपुरे वसेत्' ।[34] जो व्यक्ति काली की उपसना करता है उसका पराभव कभी नही होता है यह शक्ति समस्त कामनाओं को पूरा करने वाली होती है।

नृणाम शेषकामांस्त्वं प्रसन्ना संप्रदास्यसि।[35]

पौराणिक द्रष्टिकोण के अनुसार शक्ति को रूद्राणी और भवानी नाम से जोड़ा गया है तथ उसका सम्बन्ध शिव से दर्शाया गया है।

शक्ति उपासना में यह साक्ष्य मिलता है कि शक्ति शुरा तथा माँस के उपहार से सन्तुष्ट होती है। यदि कोई शक्ति की अर्चना किये बिना मदिरा पान करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है।[36] कहने का तात्पर्य यह है कि शक्ति उपासक अनार्य थे और उनका यह मानना था कि मदिरा और माँस जिनका वह दैनिक जीवन में सेवन करते है उन्ही सेशक्ति प्रसन्न भी रहती है। ललिता की अनुचरी शक्तियों के सम्बन्ध में यह वर्णन उपलब्ध होता है कि वे मदिरा का प्यालाधारण किये रहती है ओर स्त्रोतों के माध्यम से उन्हें प्रसन्न किया जाता है। महाभारत के विराट पर्व में यह वर्णन मिलता है कि शक्ति मांस और मदिरा में अभिरूचि रखती है–

'कालकालि महाकालि सीधुमांस पशुप्रिये।[37]

ऐसा विश्वास किया जाता है कि शक्ति असुरों का विनाश करने वाली है उसने शुम्भ, निशुम्भ आदि दैत्यों का संहार किया है तथा वे भूंमडल में अनेक स्थानों में विराजमान है।

'त्वं शंभुनिशुंभदीन्हत्वा दैत्यान्सहस्तशः स्थानैरनेकैः पृथ्वीमशेषां मण्डयिष्यसि।[38]

विभिन्न उद्‌देश्यों के लिये शक्ति की उपासना की जाती है शुष्क रेवती नामक शक्ति विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुई और उसने असुरों का वध किया था। इसी प्रकार दुर्गा देवी ने कैटभ आदि दैतयों का विनाश किया थ। मिर्जापुरा में स्थापित देवी विंध्यवासिनी ने ब्रह्मा के आदेश से सिंह को अपना वाहन बनाया था, इसलिये उन्हें सिंहवाहिनी भी कहा जाता है।

'य एष सिंह....स तेऽस्तु वाहनं देवि.....।[39]

'अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी।[40]

अनेक क्षेत्रों में अनेक देवियों की उपासना होती है तथा इनके वाहन भी अलग

अलग है सरस्वती का वाहन हंस, लक्ष्मी का वाहन उलूक (उल्लू) तथा काली का वाहन सिंह है। ये शक्तियाँ सतोगुणी, रजोगुणी, अैर तमोगुणी हैं तथा ब्रह्म, विष्णु और शिव से जुड़ी हुई है।

शक्ति की वेशभूषा अलग–अलग है काली को मुण्डमाला से विभूषित बतलाया गया है। मुख्य रूप से चामुण्डा देवी कपालों की माला धारण करती है।

'कपालमालां विपुलां चामुण्डा मूर्ध्न्यवन्धयत्' ।[41]

पुराणों के अनुसार भण्डासुर से युद्ध करने के लिये दुर्गा प्रगट हुई। तथा देवताओं ने उस शक्ति को चक्र, शंख, धनुष बाण, बज्र, चषक, दण्ड, पाष, पुण्डिका, घंटा, खड़ग, ढ़ाल आदि अस्त्र प्रदान किया। पुराणो में का एक नाम शूलधरा आया है।

'बहिर्ध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी ।[42]

विष्णु पुराण में देवी के सन्दर्भ में एक कथा उपलब्ध होती है कि शक्ति ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया तथा जब कंस ने उसका बध करना चाहा तो वह आकश में उड़ गयी और देवी के रूप में प्रकट हुई।[43] पुराणों में यह भी उल्लेख मिलता है कि देवी का अवतार ब्रह्मा के आदेश से हुआ है तथा कुछ धर्मज्ञों का मानना है कि महाकाली पार्वती के शरीर से भूतों के साथ उत्पन्न हुयी और तथा पार्वती के ही क्रोध से भद्रकाली का जन्म हुआ। शक्ति का सम्बन्ध शिव ओर विष्णु दोनों से तथा ब्रह्मा से भी सम्बन्धित है। उसको विविध पुराणों मे विविध नामों से पुकारा गय। है उसे अशोका, अपराजिता, अम्बिका, अपर्णा, अमोघा, आर्या, ऊषा, उमा, हेमवती, उत्पला, अजीता, इन्द्रभगिनी, इन्द्र, दुहिता, एकवाससी, एकानंशा, एकादशा, कल्याणी, कान्ति, कालरात्रि, कात्यायनी, कामेश्वरी, कामश्री, काली, कृष्णा, कुमारी, कौशिकी, गणनायका, दया, दुर्गा, दैत्यहनी, ध्रिष्णया, पद्मेदरा, परब्रह्मचारिणी, पराशक्ति, पाटला, पार्वती, पिंगला, प्रकृति, प्रज्ञा, बहुभुजा, बुद्धि, भद्रा, भवमालिनी, भूतनायिका, भूति, भू, भद्रकाली, भाग्यदा, महेश्वरी, महादेवी, महामाया, माया, माहेन्द्री,

मंगलकारिणी, यादवी, रम्भा, रूद्राणी, रौद्री, ललिता, लज्जा, लक्ष्मी, वरदा, वासुदेवी, वागीश्वरी, विन्धनिलया, विक्रान्ता, बृषकन्या, वेदगर्भा, सन्नति, सरस्वती, सती, स्वध ा, शुष्करेवती, शूलधारा, शैवी, हरमुखश्री, क्षान्ति, क्षेमदा आदि उपरोक्त नाम विधि पुराणों मे उपलब्ध होते है। यदि शक्ति के सिद्धान्त को आध्यातमिक द्रष्टि से देखा जाये तो शक्ति अद्रश्य है और वह प्रतयेक के शरीर में समाहित है जब कोई व्यक्ति कर्म करता है तो वह शक्ति दिखायी देती है। व्यक्ति को सफलाता के लिये तीन प्रकार की शक्तियों का सहारा लेना पड़ता है प्रथम शक्ति बुद्धि की शक्ति है जिसे सरस्वती के नाम से पुकारा जाता है। दूसरी की शक्ति धन की शक्ति जो किसी भी कार्य के लिये संसाधन प्रदान करती है। तीसरी शक्ति शारीरिक शक्ति है अर्थात कार्य करने की क्षमता और संगठन की शक्ति है, व्यक्ति इस शक्ति से शत्रुओं को परास्त करके अपने उद्देश्य को प्राप्त करता है। शक्ति के साथ माँस, मदिरा को इसलिये जोड़ा जाता है कि ये वस्तुयें व्यक्ति में मैथुन करने की शक्ति पैदा करती है तथा शरीर मे बल की वृद्धि करती है जो सृष्टि सृजित करने में सहायक है। मातृशक्ति भूमि के समान है जो बीज प्राप्त करने के बाद ही फलदायिनी है क्योंकि व्यक्ति और समस्त सृष्टि बीज ग्रहण करने के बाद ही विकसित हुये है, यदि मातृशकित बीज धारण न करती तो सृष्टि सम्भावित न होती। मात्रशक्ति ने ही हमें आकृति प्रदान की है इसलिये शक्ति उपासना आध्यात्मिक आधार पर केन्द्रित है। शक्ति की कुछ अनुचरियाँ (नौकरानियाँ) भी है, ये अनुचारियाँ शक्ति के साथ सदैव जुडी रहती है। इनका उल्लेख ब्रह्माण्ड पुराण में है। ये निम्नलिखित है अनुमती, अमावस्यिका, उपरागा, कल्पा, कलि, कलिनी, काली, कामेश्वरी, कुहु, कौमारी, कौलिनी, दुर्गा, चामुण्डा, जयिनी, ज्योत्सनी, तामिस्त्रा, दिनमिस्त्रा, निशीथा, पक्षिणी, प्रदोषा, पहरा, पूर्णिमा, महाकाल्या, महासंध्या, महानिशा, भद्रा, महालक्ष्मी, महेन्द्री, मोदिनी, ब्राह्मी, वशिनी, वाराही, वैष्णवी, विमला, वाक्, राका तथा सिनीवाली।[44]

शक्ति मतावलम्बियों के अनुसार भारतवर्ष में यह धर्म सबसे प्राचीन है । पुराणों

में यह वर्णन उपलब्ध होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में एक अद्रश्य मातृशक्ति थी। उसी ने पहले ब्रह्मा फिर विष्णु और बाद में शिव को उत्पन्न किया। उसने ब्रह्मा से बीज का दान माँगा परन्तु ब्रह्मा ने ऐसा करने से इन्कार किया तब उसने ब्रह्मा को नष्ट कर दिया। इसके पश्चात उसने विष्णु से बीज का दान माँगा विष्णु ने ऐसा करने से मना कर दिया इसलिये उसने विष्णु को नष्ट कर दिया। शिव ने ऐसा करने की स्वीकृति दे दी किन्तु उसने इसके लिये शर्त रखी कि यदि वह शिव को अपना तीसरा नेत्र प्रदान कर दे तो वह ऐसा कर सकता है। कामान्ध शक्ति ने शिव को तीसरा नेत्र दान कर दिया । शिव ने उस तीसरे नेत्र से शक्ति को परास्त कर दिया और उसे अपने आधीन कर लिया तथा चन्द्रमा में उपलब्ध अमृत के माध्यम से ब्रह्मा और विष्णु को पुर्नजीवित कर दिया। इस तरह से मातृ शक्ति सृष्टि सृजन की दृष्टि से बीज अथवा पितृशक्ति के आधीन हो गयी। कुल मिलाकर योनि सम्बन्धो के लिये स्त्री तथा पुरूष को एक दूसरे से जोड़ दिया गया। योगमाया अथवा ब्रह्ममाया को ब्रह्मा, से लक्ष्मी अथवा माया को विष्णु से तथा पार्वती अथवा उमा अथवा दुर्गा को शिव से जोडा गया। इस तरह से सृष्टि सृजन, पल्लवन, विकास, पूर्णविकास, स्थिरता और विनाश को शक्ति के साथ जोडा गया।

ऐतिहासिक द्रष्टिकोण के अनुसार जब सभ्यता का विकास नहीं हुआ था उस समय किसी प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध नहीं होते थे सृष्टि सृजन में मानव का आचरण पशुवत था इसलिये उत्पन्न होने वाली सन्तानों में पिता की पहचान नहीं हो पाती थी । मातृ कुलों की ही प्रधानता सर्वत्र थी और मातृ देवी की ही उपासना हुआ करती थी। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अस्तित्व तक कोई पितृकुल परिवार उपलब्ध नहीं होते केवल शिव का ही पितृकुल परिवार उपलब्ध होता है इससे यह सिद्ध होता है कि शाक्त धर्म ही विश्व का पुरातन प्राकृतिक धर्म है और शक्ति ही सफलता का साधन भी, कोई भी व्यक्ति यदि शक्तिशाली नहीं है तो वह मृतक के समान है और क्रिया शून्य है।

भागवत महापुराण का धर्म–

भागवत महापुराण के माध्यम से धर्म का सरलीकरण किया गया है भारतवर्ष का पन्चानवे प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित है। वह धर्म की पेचीदिगियों को नही समझता और न विविध शास्त्रों के अध्ययन करने का समय उसके पास है वह योग पंथियों की भाँति गृहस्थ आश्रम का परित्याग करके चिता की भस्म लगाकर संसार से विरक्त नही हो सकता है इसलिये वह निर्गुण ज्ञान मार्ग को कठिन मार्ग समझकर परित्याग कर देता है। वह ऐसा कुछ चाहता है जिससे उसकी श्रृद्धा परमात्माा पर बनी रहे ओर परमात्मा की उपलब्धि के लिये कोई कठिन श्रम भी उसे न करना पडे। उनका मानना है कि परमात्मा निराकार होता हुआ भी साकार है ओर जब जब मनुष्यों पर कोई विपत्ति आती है। तो वह अवतार धारण करता है। भागवत पुराण में यह विवरण उपलब्ध होता है कि उन्होनें लोकों के निर्माण के लिये पुरूष रूप ग्रहजण किया। इसके लिये उन्होने दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत ये सोलह कलायँ ग्रहण की है।

'जगृहे पौरूषं रूपं भगवान्महदादिभिः।

सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया।।'[45]

भगवान का पहला अवतार विष्णु के रूप में हुआ तथा उन्होनें क्षीर सागर में शयन करके योग निद्रा का विस्तार करते हुये नाभि सरोवर से कमल पैदा किया जिससे ब्रह्मा जी पैदा हुये।

'यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः।

नाभिह्वदाम्बुजादीसद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः।।'[46]

भगवान ने अपना प्रथम अवतार सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार नामक चार ब्राह्मणों के रूप में धारण किया।

'स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः।

चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम्।।'[47]

भगवान का दूसरा अवतार वाराह अवतार है यह अवतार उन्होने पृथ्वी को रसातल से बाहर निकालने के लिये लिया है।

'द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम्।

उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः।।'[48]

इसके पश्चात परमात्मा ने तीसरा अवतार नारद के रूप में ग्रहण किया इस अवतार के माध्यम से उन्होंने कर्म बन्धन से छुटकारा दिलाने के लिये उपदेश दिये। उसके पश्चात भगवान को चौथा अवतार नर–नारायण के रूप में हुआ। इस अवतार में उन्होने घोर तपस्या की। भगवान का पाचवाँ अवतार सिद्धो के स्वामी कपिल के रूप में हुआ। इन्होने सांख्य शास्त्र का निर्माण किया तथा आसुरि नामक ब्राह्मण को उपदशे दिया अनुसुइया के पुत्र के रूप में उन्होने अपना छठवाँ अवतार दत्तात्रेय के रूप में लिया और अलर्क तथा प्रहलाद को ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया। भगवान का सातवाँ अवतार यज्ञ पुरूष के रूप में हुआ। और उन्होने अपने पुत्र यम आदि देवताओं के साथ स्वयंभू मन्वन्तर की रक्षा की। भगवान का आठवां अवतार ऋषभदेव के रूप में हुआ इस अवतार में उन्होने परमहंस को उपदेश आश्रम में रहने वाले व्यक्तियों को दिया। भगवान का नौवां अवतार राजा पृथु के रूप में हुआ। इस अवतार में उन्होने औषधियों के बारे में ज्ञान प्रदान किया था चाक्षुष मनवन्तर के अन्त में जब सम्पूर्ण पृथ्वी जल डूबने लगी उस समय उन्होनें दसवां अवतार मत्स्य के रूप में लिया और पृथ्वी रूपी नौका में बैठाकर मनवन्तर के अधिपति वैवश्वत मनु की रक्षा की थी। जब समुद्र मंथन हो रहा था उस समय भगवान ने कच्छप अवतार धारण किया ओर वे मांद्राचल पर्वत को अपने ऊपर उठाये रहे। भगवान का बारहँवा अवतार धन्वन्तरि के रूप में हुआ और तेरहवां अवतार विश्वमोहिनी के रूप में हुआ था। भगवान का चौदहवां अवतार नृसिंह के रूप में हुआ इसमें इन्होंने हिरण्यकश्यप का वध किया। भगवानका पन्द्रहवाँ अवतार वामन अवतार था इस अवतार में उन्होनें वामन का रूप धारण करके यज्ञ के अवसर पर तीन पग धरती दान में मांगी।

भगवान का सोलहँवा अवतार परशुराम का अवतार है इसमें उन्होने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दिया। कृष्णद्वैपायन व्यास भगवान के सत्रहवें अवतार थे, उन्होनें उपवेदों और पुराणों की रचना की। भगवान का अट्ठारहवां अवतार राम का हुआ, इसमें उन्होनें रावण का वध किया।[49] भगवान का उन्नीसवाँ अवतार बलराम और कृष्ण के रूप में हुआ इसमें उन्होने कंस का वध किया तथा द्वारका पुरी बसायी । इसमें बलराम उन्नीसवें तथा कृष्ण बीसवें अवतार हुये थे।

'एकोनविंशे विंशतिमे बृष्णिषु प्राप्य जन्मनी।

रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ।[50]

भागवत पुराण के अनुसार महात्मा बुद्ध का भी भगवान का अवतार माना गया है, यह अवतार मगध प्रान्त में दैत्यों को मोहित करने के लिये हुआ।

'ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।

बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकटेषु भविष्यति' ।[51]

भागवत धर्म का अनुकरण करने वाले व्यक्ति यह मानते हैं कि जिसे प्रकार व्यक्ति पुर्नजन्म धारण करता है उसी प्रकार परमात्मा भी मनुष्यों के कल्याण के लिये विविध अवतार धारण करते हैं। तात्पर्य यह निकलता है कि जो व्यक्ति विशिष्ट गुण धारण करता ह। अन्याय का विनाश करता है और न्याय की स्थापना करता है वही भगवान विष्णु का अवतारी है भगवान सदैव किसी न किसी रूपों में अवतार धारण करते रहते है। इस तरह उनके असंख्य अवतार है।

'अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।

यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्त्रशः ।[52]

भागवत धर्म का यह मानना है कि ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी महान शक्तिशाली है वे सब भगवान के अंश हैं।

'ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।

कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ।[53]

परमात्मा क्या है और कहाँ रहता है। यह केवल हमारी कल्पना है और हम केवल अपने अनुमान से उसके महत्व को समझते है। वह प्रकृति स्वरूप रहित है और संसार का जो स्वरूप हमें दिखलायी देता है उसे हम परमात्मा कृत ही मानते है।

'एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः।

मायागुणैर्विरचितं महदादि भिरात्मनि।'[54]

जैसे बादल वायु के सहारे रहते हैं। और धूसरपन पर धूल में होता है वैसे ही अविवेकी, अज्ञानी पुरूष स्थूल स्वरूप को सब कुछ मानते हैं वे सूक्ष्म शरीर अथवा आत्मा को नहीं मानते किन्तु यह सच है कि जब स्थूल शरीर में जीव प्रवेश करता है तभी तह बार–बार जन्म लेता है।

'यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले।

एवं द्रष्टरि द्रश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः।।

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढ़गुणव्यूहिताम्।

अद्रष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः।।[55]

जब व्यवित ज्ञानी हो जाता है तथा संसार के तत्व को समझ लेता है और आत्मा के वास्तविक स्वरूप के दर्शनकर लेता है उस समय वह ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है।

'यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा।

अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम्।'[56]

जब व्यक्ति तत्व ज्ञानी बन जाते है और बुद्धि द्वारा परमेश्वर की माया से अलग हो जाते हैं। उस समय उन्हें परमानन्द की प्राप्ति होती है उस समय उनको यह अनुभूति होती है कि परमात्मा कभी जन्म नहीं लेता ओर न उसका कोई कर्म ही है। भगवान क अप्राकृत जन्म और कर्मों का तत्वज्ञानी लोग वर्णन करते है जन्म और कर्म वेदों के अत्यन्त गोपनीय रहस्य है इनको समझ पाना मुश्किल है।

'एवं जन्मानि कर्माणि ह्याकर्तुरजनस्य च।

वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः।।'[57]

भागवत पुराण में वर्णित धर्म के सिद्धान्त अन्य पुराणों जैसे ही है यहाँ पर सद्कर्मों को ही धर्म माना गया है। निम्न कर्मों को भागवत पुराण में धर्म की संज्ञा दी गयी है सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित–अनुचित का विचार, मन का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय,सरलता, संतोष, समदर्शी, महात्माओं की सेवा धीरे धीरे सांसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, अभिमान न करना, आत्मचिंतन, प्राणियों को सहयोग, ईष्टदेव की आराधना, भगवान श्री कृष्ण के नाम गुण लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार तथा उनके प्रति दास और सखा का भाव रखना। ये तीस प्रकार के आचरण सभी मनुष्यों के परम धर्म है इनके पालन से सर्वथा भगवान प्रसन्न होते है।

'सत्यं दया तपः शौचं तिविक्षेक्षा शमो दमः।

अहिंसा ब्रह्मचर्य च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।

नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्।।।

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।

तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।।

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।

सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्म समपर्पणम्।।

नृणामयं परोधर्मः सर्वेषं समुदाहृतः।

त्रिंशल्लक्षणवान्राजन्सर्वात्म येन तुष्यति।।[58]

भागवत धर्म अवतारवाद, पुर्नजन्म, नवधा भक्ति, और कर्मके सिद्धान्त पर आधारित है इसमें निराकार ब्रह्म पर कोई आस्था नहीं की जाती क्योंकि परमात्मा हमारे लिये प्रेम स्वरूप है। इस भक्ति के लोग बडी आसनी से गृहस्थ आश्रम का भोग कर

सकते है। व्यक्ति के हदय में भगवान के प्रति आस्था, उनकी लीलाओं का श्रवण तथा उनके चरित्र का अनुकरण करके ही व्यक्ति परम पद प्राप्त कर सकता है। भागवत पुराण का रचनाकर यह मानता है कि कलियुग के आगमन पर व्यक्ति धर्म विरोधी हो जायेगें तथा चतुर व्यक्ति समय का लाभ उठायेगा और लोग अपने स्वार्थ के लिये कार्य करेंगे। इस स्थिति में दुष्टों की प्रबलता हो जायेगी और मनुष्यों का स्वभाव गधा जैसे हो जायेगा। जब कालि काल की स्थिति अत्यन्त खराब हो जायेगी उस समय भगवान कल्किअवतार धारण करेंगे।

'अथासो युग संध्यायां दस्यु प्रायेषु राजसु।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः।[9]

संसार मे इतने परोपकारी व्यक्ति आये उन्होने अनेक अच्छे कर्म किये, किन्तु वे सबके सब स्वर्गवासी हुये और जो लोग इस समय संसार में रह रहे हैं। उनका भी विनाश होगा। इसलिये परमार्थिक सुख को सब कुछ नहीं समझना चाहिये। भगवान श्रीकृष्ण का गुणानुवाद समस्त अंमगलो का नाश करने वाला है बडे–बडे महात्मा उसी का गान करते रहते हैं जो भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य प्रेममयी भक्ति रखता हो उस निरन्तर भगवान के दिव्य गुणनुवाद का ही गान करतेरहना चाहिये यही भागवत धम्र है।

'यस्तुन्तमश्लोक गुणानुवादः
संगीतमतेअभीख्णममडंलघ्र।
तमेव नित्यं श्रृणुपादभीक्ष्णं।
कृष्णेऽमलां भक्तिमभीटसमानः[10]

पौराणिक धर्म का मूल्यांकन–

धर्म का उदय हमारी सभ्यता के विकास के साथ हुआ। जब व्यक्ति के हदय में ज्ञान का उदय हुआ। उस समय विश्व की एक अलौकिक शक्ति परमात्मा के नाम से पहचानी गयीऔर उसे सृष्टि के कर्ता–धर्ता के रूप में स्वीकार किया गया। उसे

प्राप्त करने के लिये कुछ कर्मों का निर्धारण किया गया है उन्हें धारण करने वाला व्यक्ति कर्त्तव्यनिष्ठ अथवा धार्मिक कहलाया। धर्मशब्द का निर्माण संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'धृ' धातु शब्द से हुआ है। जिसका अर्थ धारण करना, अवलम्बन देना या पालन करना है। ऋग्वेद की ऋचाओं में इसका प्रयोग हुआ है।[61] उपनिषदों में धर्म को कर्म से जोडा गया है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार यज्ञ अध्ययन एवं दान, गृहस्थ धर्म, तपस्या या तापस धर्म, ब्रह्मचारित्व अर्थात आचार्य के गृह में अन्त तक रहने को धर्म माना गया है।[62] कुछ स्थानों पर सत्य को धर्म माना गया है मनु स्मृति में वर्ण धर्म, वर्णाश्रम धर्म, आश्रम धर्म, नैमित्तिक धर्म और गुणधर्म को धर्म माना गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी धर्म ग्रन्थ में अथवा पुराणो में धर्म की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है यदि वेदों को धर्म का आधार माने तो वेद प्रकृति उपासना पर आधारित है किन्तु उसमें देवों के स्वरूप की परिकल्पना की गयी हैं तथा उनका कोई ठोस स्वरूप नही है। वेदों को स्वतः परमात्माकृत माना गया है परन्तु वह परमात्मा क्या है ? कैसा है ? तथा गुण और रूप व कर्म के अनुसार उसकी कैसे पहचान की जा सकती है इस सन्दर्भ में कोई भी आध्यात्मिक ग्रन्थ अपनी परिभाषा ऐसी नही देता जिसे आसानी से स्वीकार किया जा सके।

हिन्दू धर्म में पुराणो की संख्या अट्ठारह है और लगभग उपपुराण भी इतने ही हैं किन्तु सभी पुराण अलग अलग देवताओं का गुणानुवाद गाते हैं। और प्रत्येक देवता को ही परमात्मा मानते है। यदि शिवपुराण तथा शिवलिंग पुराण का अध्ययन किया जाये तो उससे यह सिद्ध होता है कि शिव ही आदि देव हैं। और परमात्मा है यदि विष्णु पुराण, विष्णुधर्मेत्तर और भागवत महापुराण का अध्ययन किया जाय तो उसमें विराट स्वरूप धारी विष्णु ही परमब्रह्म परमेश्वर प्रतीत होता है। यदि हम देवी भागवत पुराण का अध्ययन करते है तो हमें देवी ही विश्व माता के रूप में मिलती है इसलिये अठठारह पुराण भी परमेश्वर के किसी निश्चित स्वरूप का निर्धारण नहीं कर पाते लेकिन इस अस्तित्व को जरूर स्वीकार करते हैं कि संसार

में परमेश्वर की सत्ता है तथा देवताओं का स्वरूप वेदों जैसा है उन्होनें परमात्मा और देवताओं को मूर्ति का आकार प्रदान किया है तथा मूर्तियों की स्थापना देवालयों में कराई और उनकी पूजा पद्धति का विधान निर्मित किया है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्ति पूजा का शुभारम्भ पुराणों से ही प्रारम्भ हुआ है इसके अतिरिक्त तीज–त्योहार धर्मोत्सव और तीर्थयात्रा को पुराणों की प्रेरणा से ही धार्मिक कृत्य माना जाने लगा ।

वास्तविक धर्म के रूप में जप, तप, यज्ञ, ज्ञान और दानको धर्म माना गया है, वेदों और पुराणों दानों में इसका वर्णन उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार, तथा सद्व्यवहार उत्तम कर्म के आधर पर धर्म के अंग मान गये है कुछ कर्मकाण्ड, पूजा–पद्धति और धार्मिक व्यवस्थाये पुराणों के आधार पर ही निर्मित हुई। वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था के आधार पर ही पुराणाे ने भारतीय धर्म और संस्कृति को स्थायित्व प्रदान किया है। महापुरूषों की गौरव गाथाओं को पुराणों ने ही अमर बनाये रखा है यदि ये पुराण न होते तो परमात्मा के विभिन्न अवतारों के सन्दर्भ में किसी को जानकारी भी उपलब्ध न हो पाती। भगवान राम और कृष्ण जिन्हें हम परमात्मा के रूप में स्वीकार करते है। वे पुराणों की देन है यदि पुराणों के रचनाकरो ने इनकी रचना न की होती तो हमारी संस्कृति विश्व की महानतम संस्कृति के रूप में मान्यता न प्राप्त कर पाती यदि इनमें कपोल कल्पना है तो जीवन का यथार्थ भी है। कर्तव्य को सर्वोच्च प्राथमिकता पुराणों के माध्यम से दी गई है ओर उसे ही धर्म माना गया है इनमें वर्णित प्रत्येक महापुरूष कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति था इसीलिये भगवान बना।

3– भागवत पुराण में वर्णित भक्ति परम्परा का विकास एवं समाज में प्रभाव–

भागवत पुराण मुख्य रूप से भगवान श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र पर आधारित है। इस महापुराण में भगवान श्री कृष्ण का परमात्मा के अवतार के रूप में स्वीकार किया

गया है उन्होंन इस पृथ्वी में जन्म लेकर मानवता के शत्रुओं को परास्त किया और धर्म की स्थापना की। निश्चित है कि जो व्यक्ति संसार का कल्याण करता है उसके प्रति श्रद्धा स्वतः पैदा हो जाती है तथा उसकी विलक्षण शक्ति व बुद्धि देखकर उसे परमात्मा या महान आत्मा के रूप में स्वीकार किया जाने लगता है उनके कृत्यों का गुणगान करने के लिये उनके जीवन के उपरान्त अथवा उनके जीवनकाल में ही अनेक महाग्रन्थों की रचना होने लगती है। जिनमें उनके कृत्यों का उल्लेख जीवन चरित्र तथा उन विलक्षण घटनाओं को शामिल किया जाता है जिसके कारण वे इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति बने। परोपकारियों के ऋण से समाज कभी उत्रऋण नही हो सकता है उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना उस व्यक्ति का कर्तव्य हो जाता है जिसका भला उस महान व्यक्तित्व ने किया है

व्यक्ति जब किसी महापुरूष में कुछ विशेषतायें देखता है, तो उसकी आस्था और विश्वास उस महान व्यक्ति से जुड जाता है और वह उस महान व्यक्ति के गुणों से प्रभावित होकर उनका अनुसरण भी करने लगता है उनकी आज्ञा का पालन करना वह कर्तवय समझता है। इस तरह उस महान व्यक्ति पर श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति उनका भक्त बन जाता है जब महान व्यक्ति का यशोगान विभिन्न पुस्तकों के माध्यम से चतुर्दिक फैलता है तो उस महान व्यक्ति पर श्रद्धा रखने वाले भक्तों की संख्या निरन्तर बढती जाती है। जब यह संख्या लाखों और करोड़ो में हो जाती है। उस समय वह महान व्यक्ति परमात्मा के पद पर प्रतिष्ठित होकर चिंरजीवी हो जाता है तथा उसके अनुसरण कर्ताओं और भक्तों के माध्यम से उसके नाम पर एक अलग धर्म चलने लगता है। उसके लिये अनेक धर्मस्थलों और मन्दिरों का निर्माण भी हो जाता है। जहाँ गृह में उसकी मूर्तियां स्थापित कर दी जाती है पुजारी तथा भक्तगण उनकी अर्चना और पूजा उन्हें परमात्मा समझकर करने लग जाते है। जिस स्थल में उस महापुरूष ने जन्म लिया है तथा वे स्थल जो उसके क्रीडा क्षेत्र कर्मक्षेत्र और सफलता के केन्द्र रहे है वे सबके सब तीर्थ स्थल के रूप में परिणित हो जाते

हैं। भगवान कृष्ण से सम्बन्धित वृन्दावन, मथुरा, गोकुल, वरसाना, द्वारकापुरी, हस्तिनापुर आदि महान स्थल बन गये तथा यमुना नदी पवित्र नदी बन गयी। आज जिनका दर्शन भक्तगण महान तीर्थ के रूप में करते है तथा उन ग्रन्थों का पाठ भी श्रद्धा से करते है जिनमें उनकी लीलाओं का वर्णन सविस्तार से किया गया है।

भागवत पुराण के अनुसार भक्ति परम्परा का जन्म सुदूर दक्षिण में हुआ। था तथा कर्नाटक आदि क्षेत्रों में इस परम्परा का पालन पोषण हुआ। भारतवर्ष के मध्यक्षेत्र तक इस परम्परा को सम्मान की द्रष्टि से देखा जाता था । किन्तु पश्चिमोत्तर भारत के गुजरात आदि क्षेत्रों में भक्ति परम्परा समाप्त प्राय से चली थी।

'उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।

क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।'[3]

इस पुराण की रचना के समय तक भक्ति परम्परा का अस्तित्व केवल वृन्दावन के आस पास तक सीमित रह गया था । इस परम्परा के उत्थान के लिये इसे कृष्ण से सम्वन्धित किया गया।

'वृन्दावनंपुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।

जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्।'[4]

त्वदन्विताश्च ये जीव भविष्यन्ति कलाविह।

पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्णमन्दिरम्।'[5]

ऐसा प्रतीत होता है कि जिस वैशणव मत का प्रचार प्रसार हिन्दू धर्मावलम्बियों ने समस्त भारत में कर रखा था, वह उत्तर भारत में विदेशी आकमणकारियों के प्रभाव से कमजोर पड गया तथा यह धार्मिक स्थानों अयोध्या वृन्दावन काशी आदि स्थानों पर सिमटकर रह गया था भक्ति परम्परा का जन्म दक्षिण में हुआ था तथा उत्तर भारत में इस परम्परा को विकसित करने के लिये पुराणों व अन्य धार्मिक ग्रन्थों की रचना का सहारा भी लिया गया जिनमें भागवत पुराण को कृष्ण भाक्ति से जोड़कर इसका प्रमुख आधार बनाया गया।

भगवान श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व–

जब पृथ्वी पर लाखों दैत्योंके दैत्यों के दलों ने घमण्डी राजाओं का रूप धारण कर लिया। उस समय पृथ्वी ब्रह्मा जी की शरण में दुष्ट व्यक्तियों से छुटकारा पाने के लिये गयी। पृथ्वी इस समय गाय का स्वरूप

'भूमिर्द्दप्तनृवत्या जदैत्यानीकशतायुतैः।

आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ। ['6]

धारण किये थी तथा उसका शरीर अत्यन्त दुबला था। उसने अपनी करूण कहानी ब्रह्माजी को सुनायी ब्रह्माजी उस गाय का लेकर और साथ में शिव को लेकर क्षीर सागर भगवान विष्णु के पास पहुंचे, भगवान पृथ्वी के कष्ट को पहले से ही जानते थे क्योंकि वे ईश्वर है। उन्होने कहा कि वे यदुकुल में जन्म लेगें और वे भी साथ में जन्म लेकर लीलाओं में सहयोग करें। भगवान ने उनको यह आश्वासनदिया कि वे वसुदेव जी

'पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो

भवद्भिरंशैर्य दुषूपजन्यताम्।

सयावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः

स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि'। ['7]

के घर में जन्म लेगें और उनकी प्रियतमा राधा के रूप में देवांगनाओं के साथ जन्म ग्रहण करेंगी।

'वसुदेवगृहे साक्षाद भगवान पुरूषः परः।

जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः'। ['8]

ईश्वर का कोई अन्त नही है वे अनन्त है और उनके कर्म भी अनन्त है। उनके हजारों मुख हैं, इसलिये वे अनन्त के अंश के रूप में अपने बडे भाई बलदाऊ के रूप में जन्म लेगें। भगवान के साथ उनकी योगमाया भी संसार को मोहित करने के लिये अवतार धारण करेगी।

'वसुदवेकलानन्तः सहस्त्रवदनः स्वराट्।

अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया।।'[69]

करने के लिये अवतार धारण करेगी।

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।

आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति।।'[70]

इतिहास पुर्नजन्म और अवतार की परम्परा को वैज्ञानिक सत्य के अनुसार कभी भी साक्ष्य के रूप में स्वीकार नही कर सकता किन्तु धार्मिक परम्पराओं के अनुसार रूप साम्य गुण साम्य तथा विलक्षण प्रतिभा के आधार पर उसका मूलयाकंन परमात्मा क गुणों से करता है और उसे परमात्मा के रूप में स्वीकार कर लेता है। उसके सन्दर्भ में जे ग्रन्थ रचे जाते है उनमें रचनाकार व्यक्ति के महत्व को बढाने के लिये ऐसी परिकल्पित कथायें जोड देता है किन्तु इतिहास बिना किसी होना आधार के परिकल्पित कथाओं को स्वीकार नही करता ।

भगवान श्रीकृष्ण ने रोहिणी नक्षत्र में भाद्रमास की अष्टमी के दिन देवकी के गर्भ से जन्म धारण किया तथा जन्म से पहले वसुदेव जी को भगवान का विलक्षण स्वरूप दिखलाई दिया था यथार्थ यह है कि भगवान श्रीकृष्ण अतिविशिष्ट प्रतिभा के साथ उत्पन्न

'तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं

चतुभुर्जं शंखगदार्युदायुधम्।

श्री वत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं।

पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्।

महार्हवैदूर्य किरीटकुण्डल

त्विषा परिष्वक्तसहस्त्रकुन्तलम्।

उद्दामक०च्यडंदकड.णादिभि

र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत।'[71]

हुए जिसके कारण वे महापुरूष बने, मथुरा का राजा कंस जो देवकी का भाई था तथा वह अत्याचारी था। उसे यह भय था कि वसुदेव का आठवां पुत्र उसका संहार करेगा और वसुदेव का यह भय था कि कंस कहीं उनके नवजात शिशु को कहीं मार न डाले । इसलिये उन्होने उस शिशु को यशोदा अैर नन्द के यहाँ भिजवा दिया जहाँ उनका जन्मोत्सव मनाया गया। उनके जन्मोत्सव पर गोपों को बहुत से वस्त्र आभूषण गउवें आदि दान में दी गयी तथा नवजात शिशु के लिये मंगल कामना की गयी। इस प्रकार भगवान ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देना जन्म से ही शुरू किया। उन्होने सर्वप्रथम पूतना का वध करके अपनी शक्ति का

'नन्दो महामनास्तेभ्यो वासाअलंकारगोधनम्।

सूतमग्रधवन्दिीभ्यो येअन्ये विद्योपाजीविनः।

तैसतेः कागैरदीनत्मा यथोचितमपूजयत्।।

विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च।।'[2]

परिचय दिया । पूतना एक राक्षसनी थी जो कंस की आज्ञा से नवजात शिशुओं का वध किया करती थीं उसने भगवन श्रीकृष्ण को भी मारने का प्रयत्न किया तब कृष्ण ने उसके स्तन का दूध पीकर उसका बध किया।

'निशाचरीत्यं व्यभितस्तना व्यसु

व्यादाय केशंश्चरणौ भुजावपि।

प्रसार्यगोष्ठे निजरूपमो स्तिवा

वज्राहतो वृत्र इवायतन्नृप।।'[3]

पूतनावध के पश्चात भगवान श्री कृष्ण की शक्ति के सन्दर्भ में अनेक चर्चायें गोकुल और वृन्दावन में होने लगी। बचपन में ही उन्होने सकटभज्जन और तृणावर्त का भी वध किया। बचपन में जब भगवान श्रीकृष्ण करवट बदलने लगे उस समय एक उत्सव यशोदा के घर में हुआ तब भगवान श्री कृष्ण डलिया में लेटे हुये थे उसी समय वृणावर्त नामका एक दैत्य बवंडर के रूप में आया तथा कृष्ण को उठाकर ले

गया। भगवान श्रीकृष्ण अत्यन्त भारी हो गये व उन्होने उसकी हत्या गला पकड कर दी और भगवान श्रीकृष्ण दैत्य सहित धरती पर गिर पड़े। एक दिन यशोदा जी जब भगवान श्री कृष्ण को गोद में लिये थी उस समय उन्होने भगवान

'गलग्रहण निश्चेष्टो दैत्यो निर्गत लोचनः।

अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे।।'[74]

श्री कृष्ण के परमात्मा स्वरूप का दर्शन किया। उन्होनें देखा कि उनके मुखमण्डल में आकाश, अन्तरिक्ष, सूर्यमण्डल, वायु, समुद्र, अग्नि, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, और समस्त चराचर दिखलाई दिये। उस समय उनको यह बोध हुआ कि कृष्ण कोई सामान्य प्राणी नही है अपितु वे ईश्वर है।

'खं रोदसी ज्योतिरनीकमशाः।

सूयेन्दुवन्हिश्वसनाम्बुधीश्च।

द्वीपान् नगांस्तहितृर्वनानि।

भूतानि यानि स्थिरजंडमानि।।'[75]

भगवान श्री कृष्ण ने बचपन में ही यमलार्जुन का वध किया। जब कुबेर के पुत्र मदिरपान करने लगे तो उनहें यह शाप दिया गया कि वे वृक्ष योनि में पर्णित हो जायें ये दोनों वृक्ष यमलार्जुन के नाम से जाने गये,। भगवान कृष्ण उखल को घसीटते हुये वृक्षों के बीच में घुस गये और ऊखल वृक्ष के बाहर अटक गया तब यमलार्जुन नामक वृक्ष पृथ्वी पर गिर पडे । उन वृक्षों से दो तेजस्वी पुरूष निकले उन्होंने भगवान के चरणों का स्मरण किया और उनकी स्तुति की इस प्रकार यमलार्जुन का उद्धार हुआ। इनके पूर्व के नाम नलकूबर और मणिग्रीव थे।

'तत्र श्रिया परमया कुकुभः स्फुरन्तौ

सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः।

कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिल लोकनाथं

बद्धा०जली विरजसाविदमूचतुः सम।।

तद्ध गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनाम्।

स०जातो मपि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ।।[76]

भगवान श्रीकृष्ण ने बचपन में ही वत्सासुर तथा बकासुर का उद्धार किया। एक दिन भगवान श्री कृष्ण बलराम जी के साथ यमुना नदी के तट पर गये, वृन्दावन के ग्वाले और बछड़े आगे आगे चल रहे थे तथा साथ में यशोदा और रोहिणी भी थी। उस समय एक दैत्य वहाँ आया जो बछड़े के रूप मे था, भगवान श्री कृष्ण ने उसे उठाकर पृथ्वी पर पटका तब वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी। इसके पश्चात भगवान श्री कृष्ण

'तं वस्तरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः।

दर्शयन् बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत।।

गृहीत्वा पर पादाभ्यां सहलाङ्गूलमच्युतः।

भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद् जीविनत।

स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह।।[77]

ने अघासुर का वध किया। एक दिन प्रातः काल जब भगवान श्री कृष्ण जलपान कर रहे थे और नाना प्रकार की क्रीडाएँ कर रहे थे उसी समय अघासुर नाम का दैत्य आ गया, यह पूतना ओर बकासुर का छोटा भाई था। उसे कंस ने भगवान श्रीकृष्ण के बध के लिए भेजा था, जब उसने अजगर का स्वरूप धारण किय तब ब्रज के ग्वालो ने उसे एक तमाशा समझा। वे सब ग्वाल अघासुर के अन्दर घुस गये और भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके शरीर में प्रवेश करके उसका वध किया। भगवान श्रीकृष्ण ने धेनु कासुर का वध किया, वे जब

'ततोअह्रष्टाः स्वकृतोअकृतार्हणं

पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः।

गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः

स्तवेश्च विप्र जयनिः स्वनैर्गणाः।।[78]

छः वर्ष के थे उस समय वे गाय चराने जाया करते थे, एक दिन वृन्दावन में उन्होंने प्रवेश किया और गाये चराने लगे। यहाँ पर एक दैत्य गधे के रूप में रहता था, उसके भय से पृथ्वी काँपती थी तथा वह दुलत्ती झाड़ा करता था। जब वह बलरामजी के पास पहुचाँ तब बलराम जी ने उसके दोनों पैर पकड कर जमीन पर पटक दिया जिससे वह मर गया। अपने भाई को मरा हुआ समझकर धेनुकासुर भगवान श्रीकृष्ण और बलरम

'सतं गृहीत्वा प्रपदोर्भमिपित्वैक पाणिना।
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रगणत्यक्तजीवितम्।।[79]

पर झपट पड़ा भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम ने उसे मार डाला।

'ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये।
क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः।।
तांस्तानापततः कृष्णो रामच नृप लीलया।
गृहीतपश्चरणान् प्राहिणोत्तृण राजसु।।[80]

इसके पश्चात भगवान श्रीकृष्ण यमुना नदी के तट पर गये, इस समय कालिया नाग ने यमुना जल को विषैला कर दिया था। भगवान श्रीकृष्ण ने विषैले पानी को पीने के पीने के कारण जो ग्वाल बेहोस हो गये थे उनको जीवित किया दिया। यमुना नदी में एक कालिया नाम कुण्ड था, उसमें जहरीला पानी खौलता रहता था। भगवान श्रीकृष्ण कालिया को पकड़ने के लिए यमुना नदी में कूद गये तथा उन्होंने उस कालिया के सिर को नाथ लिया और उसके फनों को रौंदा तब उसकी पत्नियों ने श्रीकृष्ण से बिनती की तो उन्होंने नाग को अपनी शरण में लेकर छोड़ दिया।

'तास्तं सुविग्नमन सेऽथ पुरस्कृतार्भाः
कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः।
साध्व्यः कृताजलिपुटाः शमलस्य भर्तु
र्मोक्षेप्सवः त्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः।।[81]

ब्रज में ही जब भगवान श्रीकृष्ण बिहार कर रहे थे और उनके साथ दूसरे ग्वाल–बाल थे, उसी समय ग्वाला के वेष में प्रलम्वासुर नाम का राक्षस वहाँ आया। उसने बलराम का अपहरण करने का प्रयत्न किया, जब वह बलराम को पीठ में ढोने का प्रयत्न कर रहा था उस समय दैत्यासुर ने अपना रूप प्रकट किया और वह आकाश मार्ग से बलराम को चुराकर ले जाने लगा। उसी समय उस पर क्रोध करके एक घूँसा बलराम जी ने जमाया जिससे वह प्राण विहीन होकर धरती पर गिर गया।

'दृष्ट्रा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना।

गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्विति वादिनः।।'[82]

एक बार जब भगवान कृष्ण और बलराम खेल रहे थे और समस्त ग्वाल–बाल प्यास से व्याकुल थे उसी समय जंगल में आग लग गयी और सब कुछ जलने लगा। भगवान कृष्ण ने ग्वालों को आदेश दिया कि वे अपने नेत्र बन्द कर लें तब उन्होंने समस्त दावानल को पी लिया और ग्वालों को संकट से छुडा लिया।

'तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्वणम्।

पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद योगाधीशो व्योमचयत्।।'[83]

भगवान श्रीकृष्ण समाज में एक विशिष्ट मर्यादा स्थापित करना चाहते थे। उनका यह विचार था कि सार्वजनिक जलाशयों में महिलायें नग्न होकर न नहायें, इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने गोपिकाओं का चीर हरण किया ताकि वे सामाजिक मर्यादा बनायें रखें। एक बार ब्रज की कन्याएँ कात्यायनी देवी की बालू की मूर्ति बनाकर पूजा कर रही थीं कि वे कृष्ण को उनका पति बना दें। उसी समय भगवान श्रीकृष्ण ने स्नान करते समय गोपिकाओं के वस्त्र चुरा लिए, जब गोपिकाओं ने अपने वस्त्र माँगे तो उन्होनें कहा कि सब गोपिकाएँ अलग–अलग आकर वस्त्र ले लो। इस पर गोपिकाएँ शर्मिन्दा हुई और उन्होंने स्वीकार किया कि वस्त्र हीन होकर जलाशय में स्नांन करना एक अपराध है जो दुबारा नहीं होगा।

'यूयं विवस्ता यदयो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ।

बद्ध्वाजलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेऽहसः

कृत्वा नमोअधो वसनं प्रगृह्यताम् ।।

इत्यच्युतेनाभिहिता व्रजाबला

मत्वा विवस्त्रापल्वनं व्रतच्युतिम् ।

तत्पूर्तिकामास्तदशेष कर्मणां

साक्षात्कृतं नेमुखद्यमृग यतः ।।[64]

एक बार इन्द्र को बहुत ज्यादा घमंड हो गया और उसने कृष्ण के प्रभुत्व को कम करने का प्रयत्न किया । उसने ब्रज में मूसलाधार वर्षा की तब भगवान श्रीकृष्ण ने योगमाया के बल से इन्द्र का घमण्ड चूर किया और गोवर्धन पर्वत उठा लिया।

'क्षुतऽव्यथां सुखापेक्षां हित्वातैर्व्रजवासिभिः ।

वीक्ष्यमाणों दधावद्रिं सत्ताहं नाचलत् पदात् ।।[65]

जब इन्द्र का घमण्ड चूर हो गया उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को पुनः उसी स्थान पर रख दिया। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों को अपनी शक्ति का परिचय दिया।

'भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ।

पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ।।[66]

कोई भी महान व्यक्ति अपनी प्रतिभा और शक्ति का परिचय जब देने लगता है तो उसका प्रभाव अपने आप बढ़ जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने सात वर्ष की अवस्था में ही अनेक ऐसे कार्य कर दिखाये जिससे उनका प्रभाव बढ़ गया तथा उन्हें परमात्मा का अंश माना जाश्ने लगा। एक बार नन्द जी कार्तिक मास की शुक्ल

'इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।

मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्ट कारिणम् ।।[67]

पक्ष की एकादशी के दिन यमुना नदी में गये, उस समय असुरों के स्नान करने

का समय था। जैसे ही नन्द ने स्नान करना प्रारम्भ किया, वरूण के सेवकों ने उसे पकड़ लिया। भगवान श्रीकृष्ण अपने पिता नन्द को छुड़ाने के लिए लोकपाल वरूण के पास गये, श्रीकृष्ण को परमात्मा के रूप में देखकर लोकपाल वरूण ने कहा कि मेरा यह सेवक मूर्ख है। आप मेरे और उसके अपराध को क्षमा करें आप ही परमात्मा है आप ही सब कुछ हैं। यह मूढ़ता वश आपको पहचान नहीं पाया। भगवान श्रीकृष्ण के विशिष्ट आकर्षण को देखकर

'अद्य में निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो।

त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः।।

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने।

न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टि विकल्पना।।

अजानता मामकेन मूढेनाकार्य वेदिना।

आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान क्षन्तुमर्हति।।'[88]

ब्रज की समस्त गोपिकायें उनकी ओर आकर्षित हुई,और उनके साथ रॉस लीलायें की। यह रॉस लीला उन्होंने पूर्णचष्द्र के दिन की, इस अवसर पर उन्होंने यह दर्शाया कि उनका अवतार लोक कल्याण के लिए हुआ है।

'नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

अव्ययस्या प्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।।'[89]

उन्होंने गोपिकाओं को यह उपदेश भी दिया कि गोपिकाएँ सतीत्व धर्म का पालन करें और अपने घर की देखभाल करें तथा भक्तिभाव से मुझसे प्रेम बनाएँ रखें।

'दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जड़ो रोग्यधनोऽपि वा।

पतिः स्त्रीभिर्न हातत्यो लोकेप्सुभिरपात की ।।'[90]

उन्होंने गोपिकाओं को यह अपने परिवार सहित शिवरात्रि के अवसर पर अम्बिका वन गये, वहाँ भगवान शिव का पूजन किया गया तथा ब्राह्मणों को अनेक वस्तुएँ दान में दी गयी। इसी अवसर पर एक अजगर ने नन्द जी को पकड़ लिया

तब भगवान श्रीकृष्ण उसी समय यहाँ आये और अपने चरणों से अजगर पर प्रहार किया। उसके पश्चात वह अपनी योनि विद्याधर के रूप में आ गया व अपना नाम सुदर्शन बतलाया। उसने कहा कि अङिंरा ऋषि के गोत्र में उत्पन्न अपंग ऋषि की मैने हँसी उड़ायी थी इसके कारण मुझे अजगर होने का शाप दिया गया, अब आपके चरण स्पर्श स्पर्श से मेरे समस्त पाप नष्ट हो गये।

'तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम्।

आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्यर्शादमीवहन्।।[91]

जिस समय भगवान श्रीकृष्ण एक आनन्ददोत्सव मे ब्रज में प्रवेश कर रहे थे, उसी समय अरिष्टासुर नाम का दैत्य बैल का रूप धारण करके वहाँ आया। वह जोर की गर्जना करता हुआ और खेतों की मेड़ तोड़ता हुआ आया, उसे देखकर ग्वाल बाल सब डर गये। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण से रक्षा करने की याचना की, श्रीकृष्ण ने उसके सींग पकड़कर उसे पटक कर मार डाला।

'असृग् वमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन

क्षिप्रंश्च पादान नवस्थितेक्षणः।

जगाम कृच्छ्ं निर्ऋतेरथ क्षयं

पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः।।[92]

मथुरा के राजा कंस ने भगवान श्रीकृष्ण का वध करने के लिए केशी नामक दैत्य को भेजा, वह घोड़े का रूप धारण कर ब्रज में आया और उसने यहाँ के लोगों को भयभीत किया। भगवान श्रीकृष्ण ने उसे उठाकर पटक दिया इस प्रकार उसके प्राण उड़ गये।

'समेधमानेन स कृष्ण बाहुना

निरुद्ध वायुश्चरणांश्च विक्षिपन्।

प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः

पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः।।[93]

जिस समय भगवान गउवें चरा रहे थे उस समय व्योमासुर नाम का राक्षस ग्वाले का वेश धारण कर वहाँ आ गया। वह मायासुर का पुत्र था, जब उसने अनेक ग्वालों का अपहरण किया तो श्रीकृष्ण ने उसको अपने शिकंजे में फँासा और उसका गला घोंटकर उसे मार डाला तथा उसके द्वारा पकड़े गये ग्वालों को छुडा लिया।

'तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्या पातयित्वा महीतले।

यश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत्।।[94]

भगवान श्रीकृष्ण और बलराम अक्रूर जी के अनुरोध पर कंस का वध करने के लिए मथुरा गये, यहाँ द्वार पर कुबलयापीड नामक हाथी खड़ा था। श्रीकृष्ण ने महावत् से कहा हमें निकलने का रास्ता प्रदान करो वरना परिणाम भोगो, महावत ने कुबलया पीड नाम के हाथी को कृष्ण की तरफ बढाया, थोड़ी ही देर में वह कृष्ण पर झपटा तब श्रीकृष्ण ने उसे खेल–खेल में पटक दिया और मार डाला तथा महावत को भी मार डाला तथा हाथी के दाँत उखाड लिये।

'पतितस्य यदाऽऽक्रम्य मृगेन्द्र इवलीलया।

दन्तमुत्पाटय तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः।।[95]

भगवान श्रीकृष्ण ने अखाडे में प्रवेश किया तथा चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानों से कृष्ण की कुश्ती हुई। इन्होंने कृष्ण से जीतने के लिए पहले स्वतः आपस में लडने का फैसला किया तथा बाद में इनकी कुश्ती भगवान कृष्ण से प्रारम्भ हुई। यद्यपि कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता था कि इनकी लडाई इन पहलवानों से हो परन्तु इन पहलवानों ने भगवान की छाती पर प्रहार किया तब भगवान ने चाणूर की दोनों भुजाएँ पकड़कर उसे जमीन पर पटक दिया। इसी समय मुष्टिक की लडाई बलराम से हुई, बलराम ने उसके एक जोरदार तमाचा मारा जिससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी समय तोशल, कूट और शल भी कृष्ण से कुश्ती लड़ रहे थे वे भी मारे गये।

'चाणूरे मुष्टि के कूटे शले तोशल के हते।

शेषाः प्रदुद्रुवर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः।।[96]

कंस, कृष्ण और बलराम की शक्ति देखकर चिढ़ गया, भगवान कृष्ण और बलराम उछलकर कंस के समीप पहुँच गये उस समय कंस तलवार लेकर सिंहासन से कृष्ण के वध के लिए उठ खडा हुआ। श्रीकृष्ण ने उसे जोर से पकड़ लिया और केश पकड़कर रंगभूमि में पटक दिया तथा स्वयं कृष्ण उसके ऊपर कूद पड़े और उन्होंने कंस को ऐसे घसीटा जैसे कोई सिंह हाथी को घसीटता है। इस प्रकार

'तं सम्परेतं विचकर्ष भूमौ

हरिर्यथेभं जगतोविपश्यतः।

हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाभू

दुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र।।[97]

कंस का वध करके भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रजववासियों का कष्ट दूर किया। कृष्ण की शिक्षा ब्रज में नहीं हो पायी थी इसलिए उनका यज्ञोपवीत संस्कार करने के पश्चात उन्हें गुरूकुल बलराम जी के साथ भेजा गया। इधर गोपिकाओं के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए उद्धव ब्रज में आते हैं, उद्धव ज्ञान मार्ग पर विश्वास करते थे वे कृष्ण के सखा और मन्त्री भी थे। भगवान कृष्ण ने कहा कि ब्रज जाकर गोपिकाओं और परिवार जनों से मिल आओ व यह समझा आओ कि वे मेरी चिन्ता न करें। जव उद्धव ब्रज पहुँचे तब ब्रज के लोगों ने कृष्ण के सन्दर्भ में समाचार जानने चाहे तथा यह जानना चाहा कि कृष्ण कभी ब्रजवासियों की याद करते है, तब उन्होंने कृष्ण के उपकारों का भी वर्णन किया जो व्रज में उन्होंने किये। इस पर उद्धव ने गापिकाओं को ज्ञान –दृष्टि देने का प्रयत्न किया, उन्होंने कहा भगवान अजन्मा है सत्व, रज और तम गुण उसमें नहीं है। वे संसार के सृजेता, पालन हार और संहारकर्ता हैं। वे सबके ह्रदय में विराजमान रहते हैं किन्तु जीव अहम् के कारण अपने आप को सब कुछ समझने लगता है। इसी समय गोपिकाएँ आकर एकत्र हुई

और उद्धव से अनेक प्रश्नों की बौछार करने लगीं।

उन्होंने उद्धव जी से कहा जो वस्तु दिखलाई नही देती उस पर हम कैसे विश्वास करें, हमनें श्रीकृष्ण को देखा है, उनके गुणों को परखा है। ऐसा लगता है कि तुम कृष्ण के दूत नहीं हो कोई छली और कपटी हो, अरे मूर्ख स्वर्ग में, पाताल में और पृथ्वी मं कोई ऐसी स्त्री नहीं है जो कृष्ण की प्रशंसा न करें उद्धव तुम्हारा उत्तम लोक झूठा है तेरी यहाँ कोई ज्ञान की चर्चा हमें प्रभावित नहीं कर सकती, जिसने कृष्ण की लीलाओं को देखा है वे उनके महत्व को जानते हैं। इस पर उद्धव ने अपनी पराजय स्वीकार की और उन्होंने भी अपने ह्रदय को कृष्ण में समर्पित कर दिया। उन्होंने काह कि व्यक्ति दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन तथा समाधि के माध्यम से भगवान को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन उन सबसे उत्तम प्रेम भक्ति है। उस आदर्श को तुमने स्थापित किया है जो बडे–बडे त्रिृषि, मुनियों, के लिए दुर्लभ है।

'अहो यूपं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ।

वासुदेवे भगवति यासा मित्यर्पितं मनः ।।

दानव्रततपोहोमजयस्वा ध्याय संयमैः ।

श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ।।

भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ।

भक्तिः प्रवर्तिता दिष्टया मुनीनामपि दुर्लभा ।।'[98]

जब उद्धव लौटकर मथुरा पहुँचे तो उन्होंने कृष्ण को ब्रज का समाचार बतलाया तब भगवान ने उद्धव का भ्रम दूर करते हुए कहा कि मैं सबकी आत्मा हूँ और सबमें विराजमान हूँ। समस्त जीवों का निर्माण मन, प्राण, पंचभूत और इन्द्रियों से होता है, मैं सब में हूँ और सब मुझमें हैं। आत्मा और माया के कार्य अलग–अलग हैं, मैं सब को पैदा करता हूँ और सबको समेट लेता हूँ। विशुद्ध ज्ञान स्वरूप जड़ प्रकृति अनेक जीव अलग–अलग हैं किन्तु कोई भी परमात्मा को स्पर्श नहीं कर पाते,

माया की तीन वृत्तियाँ है सुषुप्ति, स्वप्न और जागृत इसी से आत्मज्ञान और तेज दिखलाई देता है। यदि व्यक्ति इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर ले ओर विषयों का चिन्तन न करे तो वह परमेश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। जिस प्रकार से समस्त नदियाँ घूमफिर कर समुद्र में विलीन होती है उसी प्रकार मनस्वी पुरूषों का वेद अभ्यास, योगसाधन, आत्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रिय, संयम तथा समस्त धर्म मेरे लिए हैं तथा इनका अनुसरण करने करने से व्यक्ति मुझको प्राप्त होता है। जो गोपिकाएँ स्वजनों के रोकने के कारण रॉसलीला में भाग नहीं ले सकी,वे मेरी लीलाओं का स्मरण करने से ही मुझे प्राप्त हो गयीं।

'या मया क्रीडता रा यां वनेऽस्मिन् ब्रज आस्थिताः।

अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया।।[99]

गोपिकाओं ने भगवान श्रीकृष्ण को लक्ष्मी पति माना तथा वही समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। इसलिए उनके अतिरिक्त किसी अन्य की उपासना नहीं करना चाहिए।

'किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः।

श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः।।[100]

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कंस के वध के पश्चात सम्पूर्ण मथुरा साम्राज्य में भय और आतंक का वातावरण छा गया। भगवान श्रीकृष्ण ने जरासन्ध से युद्ध किया तथा उसका बध किया और मथुरा के स्थान पर द्वाराका पुरी का निर्माण कराया। जरासन्ध कंस की मृत्यु का समाचार सुनकर अपनी विशाल सेना के साथ मथुरा में आक्रमण करने आ गया, भगवानश्रीकृष्ण ने भी युद्ध करने का निश्चय किया तथा कृष्ण के साथ बलराम भी थे। उन्होंने युद्धभूमि में पहुँच कर पां०चजन्य शंख बजाया और अपनी थोडी सी सेना के साथ जरासन्ध से युद्ध किया, इस युद्ध में जरासन्ध परास्त हुआ और पकड़ा गया।

'जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम्।

हतानीकाव विशष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा।।'[101]

इस विजय से कृष्ण की महानता बढी किन्तु जरासन्ध का भय मथुरा वासियों को सदा व्याप्त रहता था, इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने अडतालीस कोशलम्बी चौडी द्वारका पुरी का निर्माण विश्वकर्मा से करवाया।

'इति सम्मन्‍ य भगवान् दुर्ग द्वादशयोजनम्।

अन्तः समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत्।।

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम्।

रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम्।।'[102]

श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के साथी कालयवन को भी भस्म किया । जब कालयवन श्री मथुरा में आक्रमण करने आया तो कालयवन को बहकाकर भगवनान कृष्ण एक गुफा में ले गये और उसे एक लात मारी, यहीं पर एक पुरूष सो रहा था। वह कालयवन की ठोकर लगने से रूष्ट हो गया और उसके शरीर से एक अग्नि पैदा हो गयी जिसमें कालयवन जल कर भस्म हो गया। जो साधु गुफा के अन्दर सो रहा था उसका नाम

'स तावत्तस्य रूष्टस्य दृष्टिपातेन भारत।

देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात्।।'[103]

मुचकुन्द था। भगवान ने अपना परिचय देकर उसका उद्धार किया तथा मुचकुकन्द ने अपना परिचय देते हुए कहा कि वे मान्धाता के पुत्र हैं और तपस्या के लिए इस गुफा में रह रहे थे। भगवान ने उन्हें आर्शीवाद दिया कि तुम अगले जन्म में ब्राह्मण बनकर परमात्मा को प्राप्त होओगे।

जब भगवान श्रीकृष्ण द्वारका नरेश हो गये, उस समय उन्होंने जरासन्ध का बध ा करने का निश्चय किया। इसी समय धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया, युधिष्ठिर ने यह विचार किया कि जब तक जरासन्ध को न जीता

जायेगा तब तक राजसूय यज्ञ पूरा नहीं हो सकता है। उसे जीतने के लिए भीमसेन, अर्जुन और कृष्ण ब्राह्मण का वेष धारण करके उसकी राजधानी गिरिव्रज गये। जरासन्ध उन्हें देखकर पहचान गया कि वे ब्राह्मण नहीं बल्कि क्षत्रिय है, कृष्ण आदि ने द्वन्द युद्ध का प्रस्ताव रखा तब कृष्ण को शत्रु समझकर वह हँसने लगा तथा उसने द्वन्द युद्ध करना स्वीकार कर लिया। भीम और जरासन्ध का द्वन्द युद्ध होने लगा, भीम ने यह बतलाया था कि वह जरासन्ध को जीत नहीं सकता, इसी समय युद्ध के बीच जरासन्ध के दो टुकडे हो गये और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

'हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे।

पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ।।'[104]

भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा अपने कल्याणकारी कर्मों के कारण काफी बढ़ गयी थी और लोगउन्हें परमात्मा मानने लगे थे। उन्होंने दीनों के उद्धार के लिए मनुष्य लीला की किन्तु वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर है।

'स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम्।

धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम्।।

न ह्येकस्सया द्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।

कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः।।'[105]

इस समय भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठर द्वारा आयोजित यज्ञ में भाग लेने के लिए आये थे। ब्राह्मणों ने सोचा कि यज्ञ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रदाता है, इसलिए कृष्ण की अग्रपूजा के साथ यज्ञ प्रारम्भ किया जाए और इसका समर्थन सबने किया। इस बात को सुनकर शिशुपाल अत्यन्त नाराज हुआ, उसने कहा कृष्ण अग्र पूजा के योग्य नहीं है। शिशुपाल के अपमान जनक वचनों को सुनकर पाण्डव, मत्स्य, केकैय आदि नरेशों ने उसे मारने का निश्चय किया। उस समय अन्य नरेशों को कृष्ण ने शान्त किया और व क्रोध करके झपटते हुए शिशुपाल का सिर छुरे के समान तीखी धार वाले चक्र से काट दिया।

'तावदुत्थाय भगवान् स्वान् निवार्य स्वयं रुषा।

शिरः क्षुरान्त चक्रेण जहारापततो रिपोः।।'[106]

शाल्व राज्य की सीमायें कुरू राज्य से मिलती थी, जब युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ सम्पन्न हो गया और भगवान कृष्ण द्वारका पुरी प्रस्थान करने लगे उस समय रास्ते में अपशकुन हुए। इस समय द्वारका की रक्षा की जिम्मेदारी बलराम पर थी। श्रीकृष्ण की सेना से शाल्व नरेश का युद्ध हुआ, युद्ध में शाल्व नरेश ने कृष्ण की तथा बाण छोडे और कहा कि तूने शिशुपाल की पत्नी रूक्मिणी का अपहरण कर लिया है और शिशुपाल का वध कर दिया है।वह माया का सहारा लेता हुआ कृष्ण से युद्ध करता रहा और यह अफवाह फैलाई कि तेरे माता पिता कष्ट में हैं। कृष्ण शाल्व की आसुरी माया को समझ गये, उन्होंने शाल्व के विमान को जर्जरकर दिया तब वह धरती पर आकर युद्ध करने लगा और श्री कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका वध कर दिया।

'जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं

किरीटयुक्तं पुरूमायिनो हरिः।

वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो

बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम्।।'[107]

उस समय उनका मित्र दन्तवक्त्र कृष्ण से युद्ध करने आया, वह घमण्डी था तथा अपने को शक्तिशाली समझता था। श्रीकृष्ण ने उसे गदा से चोट पहुँचाकर मार डाला।

'गदानिर्भिन्नह्रदय उद्धमन् रूधिरं मुखात्।

प्रसार्य केशबाहूङ्घ्रीन धरण्यां न्यपतद् व्यसुः।'[108]

दन्तवक्त्र के भाई का नाम विदूरथ था, वह भी कृष्ण से बदला लेने आया तब इसका भी वध कृष्ण ने कर दिया।

'तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना।

शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम्।।'[109]

भगवान श्रीकृष्ण गरीबों के प्रति पूर्ण हमदर्दी रखते थे, जब कृष्ण के मित्र सुदामा अपनी दीनता मिटाने के लिये द्वारका पुरी गये तब भगवान ने उनके साथ पूरी संवेदना प्रगट की थी। जब कि संसार का यह नियम है कि कोई व्यक्ति जब धनी बन जाता है तो उसकी हमदर्दी गरीबों के प्रति नहीं रह जाती हैं। सुदामा की पत्नी जब भूख और प्यास से व्याकुल हो गयी तब उसने अपने पति सुदामा से कहा कि वे द्वारका पुरी जायें और कृष्ण से मिलें। पत्नी का कहना मानकर अपने अँगोछे में चार मुट्ठी चिउडे (चावल) लेकर द्वारका के लिए प्रस्थान किया। जब सुदामा जी द्वारका पहुँचे और श्री कृष्ण से उनकी मुलाकात हुई तो श्रीकृष्ण ने सुदामा का स्वागत सत्कार किया और उनकी आरती उतारी, यह बात कृष्ण की पत्नियों को अच्छी नहीं लगी। कुछ दिन द्वारका में रहने तथा कृष्ण को उपहार सौंपने के पश्चात उन्होंने घर जाने की बात सोची लेकिन उनको यह चिन्ता थी कि वे अपने निवास स्थान को जा तो रहें हैं परन्तु कृष्ण ने कोई भी धन उन्हें हाथ में नहीं दिया।

'अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मांस्मरेत्।

इति कारूणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात्।।'[110]

भगवान श्रीकृष्ण ने उनके निवास स्थान का कायाकल्प कर दिया ओर बिना बताये ही इतनी सम्पत्ति प्रदान कर दी जो कोई नहीं कर सकता।

'ननं बतैतन्मम दुर्भगस्य

शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धि हेतुः।

महाविभूतेरव लोकतोऽन्यो

नैवोयपद्येत यदूत्तमस्य।।'[111]

कृष्ण ने मित्रता का आदर्श भी प्रस्तुत किया जो सबके लिए कर पाना मुश्किल है। जहाँ कृष्ण बलशाली, कर्मशली और लोक–कल्याण करने वाले थे, वहीं वह

ब्रह्मज्ञानी भी थे। इसलिए उनको अपने जीवनकाल में ईश्वर के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। उन्होंने अपने पिता वसुदेव जी को उपदेश दिया कि जो संसार दिखलायी देता है, जो जड़ और चेतन है, चल और अचल है, वही ब्रह्मरूप है।

'अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः।

सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम्।।'[112]

संसार गुणों के द्वारा अपनी सृष्टि स्वतः करता है, जब वह पंचमहाभूतों से युक्त होता है तब वह साकार होता है। ये पंचमहाभूत आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी दिखलायी प्रथक–प्रथक देते हैं, परन्तु वे सब एक ही हैं, लेकिन कृष्ण के आश्चर्य जनक कृत्यों को देखकर यह निश्चित अभास होता है कि कृष्ण एक विशेषज्ञ शक्ति के रूप में ही अवतरित हैं।

भगवान श्रीकृष्ण जिन उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए उत्पन्न हुए थे, वह कार्य उन्होंने सरलता पूर्वक पूरे कर दिये थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में दैत्यों का संहार किया, भरी सभा में द्रोपदी के केश खीचे जाने के कारण महाभारत युद्ध कराकर तथा ने दोनों पक्षों के राजाओं को मरवाकर पृथ्वी का बोझ हल्का किया। इस समय यदुवंश के लोग भी अपने आप को सर्वशक्तिमान समझने लगे थे, इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने आपस में विवाद कराकर उनका भी अन्त कराना चाहा। एक दिन यदुवंश के कुछ उद्‌दण्ड लोग पिण्डारक क्षेत्र में जहाँ त्रिृषियों का निवास स्थान था, वहाँ कृष्ण के पुत्र साम्ब को स्त्री के वेश में ले गये और त्रिृषियों से पूँछा कि ये स्त्री गर्भवती हैं। त्रिृषियों ने कहा कि इसके पेट से मूसल पैदा होगा जो तुम्हारे कुल का नाश करेगा। वास्तव में उसके पेट से मूसल निकला तब यादवों ने उसे चूर–चूर करके समुद्र में फेंक दिया। वह मूसल बाद में समुद्री घास के रूप में उत्पन्न हुआ तथा उसी घास से यदुवंशियों का विनाश हुआ। इस घास का नाम एरका था।

' शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु।

शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जहुरेरकाः।।'[113]

वास्तविक भक्त के लक्षण भागवत पुराण में बतलाये गये हैं। इस पुराण के अनुसार जो समस्त प्राणियों में और उनकी आत्मा में परमात्मा को देखता है, सम्पूर्ण विश्व में भगवान की ही सत्ता देखता है तथ यह मानता है कि संसार के समस्त पदार्थों में जिसकी सिद्ध दृष्टि है भगवान का सच्चा भक्त है और वह सर्वोत्तम भक्त है।

'सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ।।'[114]

जो व्यक्ति भगवान से प्रेम करता है, उनके भक्तों से मित्रता करता है, दुःखी और अज्ञानियों पर कृपा करता है तथा भगवान से द्वेष करने वालों की उपेक्षा करता है वह मध्यम श्रेणी का भक्त है। जो भक्त

'ईश्वरे तदधीनेषु वालिशेषु द्विषत्सु च ।

प्रेम मैत्री कृपोपेक्षाः यः करोति स मध्यमः ।।'[115]

भगवान की पूजा अर्चना श्रद्धा से करता है, किन्तु दूसरे भक्तों की सेवा नहीं करता वह साधारण श्रेणी का भक्त है। वह व्यक्ति जो कर्मेन्द्रियों और उससे उत्पन्न विषयों को ग्रहण करता है, किसी से द्वेष नहीं

'आचार्यमिव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ।

न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ।।'[116]

करता, हर्ष और विषाद नहीं करता तथा इस संसार की हर वस्तु को भगवान की माया समझता है वह उत्तम कोटि का भक्त है।

'गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति ।

विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ।।'[117]

प्राणी का जन्म लेना, मरना, भूँख, प्यास, भय, शारीरिक कष्ट आदि सब व्यक्तियों को भोगने पड़ते हैं। जो इन कष्टों से नहीं घबड़ाता और किसी भी चीज से मोहित नहीं होता वह उत्तम भक्त है। जो विषय भोग

'देहेन्द्रियप्राण मनोधियां यो

जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छैः ।

संसारधर्मैर विमुह्यमानः

स्मृत्या हरेर्भागवत प्रधानः ।।'[118]

में लिप्त नहीं होता और केवल परमात्मा का चिंतन करता है तथा जो शरीर, कुल, जन्म, कर्म और वर्ण के सन्दर्भ में अहं भाव नहीं रखता वह भगवान का सच्चा भक्त है। जो व्यक्ति अपना पराया का भेद नहीं रखता और किसी भी प्रकार से दुःखी नहीं होता, कहीं भी यात्रा करने के समय और वापस आते समय परमात्मा को नहीं भूलता तथा परमात्मा के बदले में यदि उसे त्रिभुवन की सम्पत्ति मिल जाय वह उसको भी ठुकरा देता है वह सर्वश्रेष्ठभक्त है।

'त्रिभुवनविभव हेतवेऽप्यकुण्ठ

स्मृति रजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।

न चलति भगवत्य दारविन्दा

ल्लवनि मिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्रयः ।।'[119]

जिसके हृदय में भगवान का नाम हमेशा रहता है और जिसने भगवान को प्रेम की रस्सी से अपने आप को बाँध रखा है वही भक्तों में प्रधान है।

'विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा–

द्वरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।

प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिद्यः

स भवति भागवतप्रधान उक्तः ।।'[120]

भगवान श्रीकृष्ण को सृष्टि का कर्ता–धर्ता मानना तथा उन्हें सृष्टि के उद्धार के लिए विष्णु के रूप में औतार धारण करने वाला मानना। सर्वशक्तिमान मानना, जन कल्याण के लिए दुष्टों का संहार करने वाला मानना, मन, बुद्धि तथा कर्म से उनके ऊपर श्रृद्धा रखना और उनकी उपासना परमेश्वर के रूप में करना। उनके

यश का गुणगान करना, सुख–दुख में एक भाव से रहना, दुर्गुणों एव माया में लिप्त न होना तथा साधु सन्तों और दूसरे वैष्णव भक्तों के साथ समभाव बनाये रखना ही भागवत भक्ति परम्परा है।

जीव जव संसार में पंचतत्व के सहारे आकृति धारण करता है उस समय वहा माया मोह के चक्कर में पड़ जाता है। आदि पुरूष परमात्मा जिस शक्ति से संसार का सृजन करते हैं तथा जिससे वह देवता मनुष्य आदि शरीरों का निर्माण करते हैं उसे माया कहते हैं। परमात्मा ने ही इस शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियों और

'सभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज।

ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये।।'[121]

पाँच कर्मेन्द्रियों का निर्माण किया है। दस कर्मेन्द्रियों में विभक्त यह शरीर आत्मा को भाग विलास में फँसा लेता है तथा कर्मेन्द्रियों के माध्यम से वह शुभ और अशुभ कर्म को हन्म देता है। वह बार–बार जनम लेता और बार–बार मृत्यु को प्राप्त करता है, यह सब भगवान की माया ही है।

'इत्थं कर्मगतीर्गच्छन् बह्वभद्रवहाः पुमान्।

आभूतसम्पल्वात् सर्गप्रलयावशनुतेऽवशः।।'[122]

जब सृष्टि का अन्तकाल आता है उस समय सौ वर्ष तक भयंकर सूखा पड़ता है, सूर्य पृथ्वी को तपाता है तथा वर्षा नहीं होती है। जब शेषनाग के मुख से आग की प्रचंड लपटें निकलती हैं तब उसके बाद भयंकर वर्षा होती है, जिसमें यह पृथ्वी डूब जाती है तथा ब्रह्मा अपने ब्रह्मण्ड शरीर का परित्याग करके सूक्ष्म तथा अव्यक्त शरीर में लीन हो जाता है और पृथ्वी जल, गंध, रस हीन हो जाती है। इसके पश्चात ईश्वर आकाश के गुणों को भी नष्ट कर देता है, इस तरह से यह त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण विश्व का नाश कर देती है।

'एषा माया भगवतः सर्गस्थित्पन्तकारिणी।

त्रिवर्णा वर्णितास्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।'[123]

जब तक जीव विषयों के चक्कर में पड़ा रहेगा तथा वह धन और सम्पत्ति को सुख का माध्यम समझता रहेगा उस समय तक वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए संसार की वास्तविकता को जानने के लिए तथा निज कल्याण के लिए संसार से ऊबे हुए व्यक्ति को गुरूदेव की शरण लेनी चाहिए। गुरूदेव ब्रह्म को जानने वाले, वेदों के ज्ञाता, शिष्य की शंका का समाधान करने वाले , शान्तिप्रिय और उदार व्यवहार वाले हों वही शिष्य को उचित ज्ञान दे सकते हैं।

'तस्माद् गुरूं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युषशमाश्रयम्।।'[124]

शिष्य का यह परम् कर्तव्य है कि वह निःस्वार्थ भाव से गुरू की सेवा करे तथा समस्त साधनों से क्रियात्मक शिक्षा गुरू से ग्रहण करे और सारे गुण गुरू को अपनी आत्मा दान कर सीखे। सबसे पहले उसे संसार से, शरीर से, सन्तानों से नाता स्नेह तोड़कर अनाशक्ति की भावना पैदा करनी होगी। उसके पश्चात वह भगवान के भक्तों से प्रेम करना सीखे, सभी प्राणियों के प्रति दया का भाव, विनय की भावना, तथा निष्कपट रहना सीखे। वह अपने वाह्य शरीर को पवित्र बनाये रहे तथा छल–कपट को त्याग से और अपवित्रता को धार्मिक अनुष्ठान से दूर करना सीखे। वह सहन शक्ति, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शीत, उष्ण, सुख–दुःख आदि द्वन्दों में हर्ष– विषाद से दूर रहना सीखे। वह आत्म नियन्त्रण, एकान्तसाधना और जो मिल जाय उसी में सन्तोष करना सीखे। वह शास्त्रों में श्रद्धा रखे, कार्यों में संयम रखे, सत्य बोले ओर मन की बात मन में ही रखे, भगवान की लालाओं में आस्था रखे, उनकी लीलाओं को सुने तथा श्रवण, कीर्तन और ध्यान पर विश्वास करे। वह यज्ञ, दान, तप, जप, और सदाचार का पालन करे तथा अपनी स्त्री, पुत्र,घर,अपना जीवन, प्राण और उसे जो भी प्रिय लगता हो वह सब कुछ भगवान के चरणों में सौंप दे। वह अपनी आत्मा से भगवान श्री कृष्ण का साक्षात्कार करे तथा स्थान पर और जंगम दोनों प्रकार के प्राणियों की सेवा करे। वह अन्य मनुष्यों के

साथ परोपकार करे तथा भागवद् प्रेमी संतो की भी सेवा करे। वह भगवान के चरित्र और उनके कर्मों की चर्चा एक दूसरे से करे तथा याद दिलाये कि भगवान कृष्ण सैकड़ों पापों को एक साथ भस्म कर देते हैं। इस प्रकार साधन भक्ति का अनुष्ठान करते—करते प्रेम भक्ति का उदय हो जाता है और वे प्रमोदक से पुलकित शरीर को धारण करते हैं।

'स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोअधौघहरं हरिम्।

भक्त्या स०जातया भक्त्या विश्रत्युत्पुलकां तनुम्।।'[125]

ऐसे भक्त जो जो भगवान् से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं तथा भगवान के सुख से सुख और भगवान के दुःख से दुःख का अनुभव करते हैं वही परमात्मा में लीन होते है। उनकी भगवान के चरणों में भक्ति हो जाती है, जो भक्त के दुर्गुणों को नष्ट कर देती है और भक्त का चित्त शुद्ध हो जाता है। उसका परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है और उसके नेत्र सूर्य के समान प्रकाश क्षरण करते हैं।

'यर्ह्मब्जनाभचरणैषण योरूभक्त्या

चेतोमलानि विधमेद् गुणकर्मजानि।

तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्वं

साक्षाद् यथामलद्दशोः सवितृप्रकाशः।।'[126]

वेद और शास्त्रों के अनुसार ईश्वर के स्वरूप की चर्चा नहीं की जा सकती, वह अव्यक्त है इसलिए उसे अपरिभाषित रखा गया है। व्यक्ति सत्कर्म करे इसलिए अज्ञानी व्यक्तियों को स्वर्ग का प्रलोभन देकर उन्हें अच्छे कर्म करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

'परोक्षवादो वेदोऽयं बलानामनुशासनम्।

कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा।।'[127]

इसलिए वह उत्तम फल की अभिलाषा से अच्छे कर्म करता है और उसे ज्ञान रूपी सिद्धि मिल जाती है। भक्त को चाहिये की वह गुरू से दीक्षा प्राप्त करे और

उनसे अनुष्ठान विधि सीखे फिर परमात्मा का जो स्वरूप उसे प्रिय हो, उस स्वरूप की पूजा अन्तःकरण से शुद्ध होकर करे तथा नाडी का सोधन करें यह क्रिया मूर्ति के सामने बैठकर करे फिर देवता आदि के न्यास से भगवान की पूजा करे। पूजा के लिये लगे पदार्थों को जल से धोये, पात्रों को धोये तथा चिंतन करते हुये भगवान का स्मरण करें और उनकी पूजा करें। उन्हे वस्त्र धारण कराये, आभूषण, मुकुट आदि धारण करायें फिर पुष्प, दधि, चावल, तिलक, माला, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से भगवान की पूजा करे तथा अनेक स्त्रोतों से भगवान का पाठ करे। जो पुरूष अग्नि सूर्य, जल और अपने ह्रदय में आत्मरूप हरि की पूजा करता है वह शीध्र मुक्त हो जाता है।[128]

भक्ति परम्परा का समाज में प्रभाव–

यदि हम भागवत पुराण में निश्चित काल गणना क्रम को ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार प्राप्त कर लेते तो इस महापुराण को ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वीकार करने में हमें कोई कठिनाई नहीं होती। यह ग्रन्थ श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके अन्तर ध्याान होने तक का ऐतिहासिक ग्रन्थ ही है। यदि इसमें से अतिशयोक्ति और धर्म से जुड़ी घटनाओं को निकाल दिया जाये तो इसे भगवान श्रीकृष्ण से सम्बन्धित ऐतिहासिक ग्रन्थ मान लिया जायेगा। यह तो निश्चित है कि इस ग्रन्थ का सृजन भगवान श्रीकृष्ण के जीवन की समाप्ति में के बहुत दिन बाद किया गया। यह ग्रन्थ स्पष्ट रूप से यह जानकारी देता है कि भगवान श्रीकृष्ण का जन्म कंस के कारागार में वसुदेव और देवकी के संयोग से हुआ था तथा उनका लालन–पालन व्रज में नन्द और यशोदा के यहाँ हुआ। कृष्ण बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे उन्होने ब्रज में अनेक दैत्यों का वध किया और संकट के समय में व्रज वासियों को सहयोग दिया। उन्होंने जन आन्दोलन चलाया कि वे चरित्रवान बने सामाजिक मर्यादाओं का पालन करे तथा सामन्तशाही के आगे घुटने न टेकें। उन्होन पद्मावती नगरी के नागों को परास्त किया तथा मगध नरेश जरासन्ध का वध किया और उसके साथी

कालयवन को भस्म किया था। उन्होंने द्वारका पुरी का निर्माण कराया तथा भरी सभा में अपमानित होने वाली द्रोपदी के रक्षार्थ महाभारत में कौरव और पाण्डव दोनों के घमण्ड को चूर किया था। उन्होने जब यह देखा कि उनके यादव वंश के लोग अनीति पर चलने लगे है तो उन्हे भी दण्डित किया था। इस प्रकार उनके कृतित्व और व्यक्तित्व से यह स्पष्ट रूप से झलकता है कि जो कुछ श्री कृष्ण ने किया उसके प्रभाव से वे देवता और ईश्वर के पद पर प्रतिष्ठित हुये । उनकी पूजा और आराधना सम्पूर्ण भारतवर्ष में सर्वत्र होने लगी, तथा यहाँ के अनेक धार्मिक स्थल उनकी स्मृति में बनाये गये।

समाज में प्रभाव—

ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त काल में ब्राह्मण धर्म का उद्धार हुआ, इसके पहले के धार्मिक इतिहास के सन्दर्भ में कोई विशेष साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते है पुण्य मित्र शुंग, कण्व तथा आन्ध्रवंशी और सातवाहन शासकों ने ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन दिया था। इसके अतिरिक्त अनेक नरेशों ने भी अश्वमेध यज्ञ करने के लिये ब्राह्मणों को अत्यधिक धन दान दिया था। इस समय वैष्णव धर्म ब्राह्मण धर्म के अलग नही था।[129]

ऐतिहासिक ग्रन्थ इस बात को स्वीकार करते है कि गुप्तयुग में वैष्णव धर्म, हिन्दुधर्म का ही एक अंग था क्यों कि अधिकांश गुप्तनरेश इस धर्म का अनुपालन करते थे । गुप्त मुद्राओं में मुख्य रूप से परम भागवत विरूद्व, लक्ष्मी, गरूड़ आदि अंकित है तथा जो स्मृति चिन्ह भीटा, नालन्दा तथा वैशाली में उपलब्ध मुद्राओं में अंकित है उनमें शंख, चक्र, गदा, त्रिशुल तथा नन्दी आदि के चित्र है। जो इस बात का संकेत देते है कि वैष्णव धर्म इस समय लोकप्रिय हो रहा था । स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ स्तम्भ लेख तथा बुद्ध गुप्त का एरण स्तम्भ लेख भगवान विष्णु की स्तुति से प्रारम्भ होते है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने विष्णुपद नाम के पर्वत के ऊपर विष्णु ध्वज की स्थापना की थी।[130] इस समय विष्णु का वाराह अवतार भी प्रचलित था,

दामोदर ताम्रपत्र में श्वेत वाराह स्वामिन के लिये दान का उल्लेख मिलता है।

संस्कृत साहित्य इतिहास के लेखकों ने भागवत पुराण का रचनाकाल चौथी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी तक माना हैं परन्तु वैष्णव धर्म का जो प्रचार प्रसार तथा राजकीय संरक्षण गुप्त युग में था उससे ऐसा नहीं लगता कि इस धर्म का उस समय पतन प्रारम्भ हो चुका था। भागवत पुराण के अनुसार महात्माओं के आश्रम, तीर्थ, और नदियों पर यवनों (विधर्मियों) के आक्रमण हुए तथा उन लोगों ने दुष्टतावश देवालय भी नष्ट कर दिये थे।

'आश्रमा यवनै रूद्वास्तीर्थनि सरितस्तथा।

देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः।'[131]

इस प्रकार बाहरी आक्रमणों से त्रसत भारतीय जनमानष था धार्मिक व्यवस्थाओं की पकड़ के छिन्न भिन्न हो गया था। यह काल तुर्कों के आक्रमणों के समय का ही ठीक प्रतीत होता है जो कि नवीं से वारहँवी शताब्दी तक माना जा सकता है। इस काल में ही भागवत पुराण की रचना हुई तथा धार्मिक रूप से अव्यवस्थित जनता को जो अशिक्षित भी थी तथा ज्ञान और वैराग्य मार्ग को साधरणतया नहीं अपना पा रही थीं उसके लिये मनीषियों ने ज्ञान और वैराग्य को छोटा करके भक्ति को ऊपर रखकर इस पुराण को रचा तथा इस भक्ति परम्परा को कृष्ण से जोड़ना उचित समझा। भागवत धर्म का व्यापक रूप से जन मानस के ऊपर पड़ा और कृष्ण भक्ति को सगुण प्रेम भक्ति के रूप में स्वीकारा गया।

4— कृष्ण भक्ति का स्वरूप—

किसी व्यक्ति विशेश के प्रति आस्था सामान्य भावना के आधार पर उत्पन्न नही होती, जब उस व्यक्ति में विशेष गुणों को देखा जाता है तब उसके प्रति स्वतः आस्था प्रकट हो जाती है भगवान श्री कृष्ण का अवतार आनन्द प्रधान अवतार है इनकी विशेषताएं अन्य अवतारों से पृथक हैं। इनके चरित्र में आनन्द की अभिव्यक्ति अधिक है सभी लोग इनकी लीलाओं से आकर्षित होकर प्रेम विभोर हो जाते हैं और

चाह लेते है कि जीवन में सदैव सुख मिले दुःख केदर्शन कभी न हों 'सुखं मे भूयाद् दुःखं में मॉ भूतो' । ऐसा मानना है कि आनन्द के प्रति सबका आकर्षण होता हैं। यदि व्यक्ति दुनिया को बखेडा समझकर परमात्मा से प्रेम करने लगे ते उसका कल्याण हो जाता है क्योकि ऐसा कहना है कि जिस ह्दय में प्रेम का वास होता है वहीं ब्रह्म का भी वास होता है 'ह्दि अयते इति ह्दयं ब्रह्म ।' परमात्मा का एक नाम हरि भी है अर्थात जो व्यक्ति पर पीड़ा का हरण करता है उसे हरि कहते है। भगवान की अन्तरात्मा में परमात्मा के दर्शन होते है। जब व्यक्ति निष्काम भक्ति करता है और वह कार्य के बदले कुद नहीं चाहता तभी परमेश्वर के प्रति निष्काम भक्ति करता है और वह कार्य के बदले कुछ नहीं चाहता है तभी परमेश्वर के प्रति निष्काम भक्ति का जन्म होता है। इस प्रेम रस भक्ति से काव्यमयी संगीत का अनुभव होता है और उसे ऐसा लगता ाहै कि परमात्मा ही सम्पूर्ण दुःखों की औषधि है जो व्यक्ति इन्द्रियों के सुख के लिये जीते है वे भी आनन्द की परिकल्पना करते है।

'पदन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भूविलासै

र्भजन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।

स्विद्यन्तुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो।

गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः।।'[133]

भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति ऐसे ही नहीं प्रकट होती अपितु जब व्यक्ति यह समझने लगते है कि कृष्ण सम्पूर्ण कलाओं के स्वामी है उस समय उनके प्रति श्रद्धा पैदा होती है। श्रीकृष्ण का मनुष्यों के अतिरिक्त पशुओं पर भी बहुत अधिक स्नेह था। महाभारत युद्ध के समय जब अर्जुन के घोडे थक जाते हैं या घायल हो जाते है उस समय कृष्ण घोडों की मालिश करते और उनकी मल्हम पटटी करते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि कृष्ण एक होशियार पशु चिकित्सक भी थे। सबसे बड़े आश्चर्य की बात है कि जब जरासन्ध ने सत्रह बार मथुरा पर चढ़ाई की उस समंय जरसन्ध की सेना का संहार हुआ, किन्तु मथुरा के किसी व्यक्ति की मृत्यु नहीं हुयी।

इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान श्रीकृष्ण आर्युवेद, धर्नुवेद, स्थापत्यवेद और शिल्पवेद के ज्ञाता थे। संगीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय कला में भी भगवान श्रीकृष्ण श्रेष्ठ थे, उनका बाँसुरी वादन इस बात का प्रतीक था। उन्होंने बाल्य अवस्था से ही अपने भक्तों को जीवन का अननद ग्रहण करने की प्रेरणा प्रदान की थी। परमब्रह्म परमेश्वर ने जिस सृष्ठि का सृजन किया है उसमें वृक्ष है, लता हैं, गायें है, अन्य पशु–पक्षी है, स्त्री है, पुरूष हैं, दैनिक जीवनकी क्रियायें हैं, भोजन है तथा दैनिक व्यवहार है। जिसका ध्यान किया जाता है वह परमात्मा जड़ नहीं अपितु चेतन है। उसी प्रकार यह शरीर बाहर से जड़ प्रतीत होता है, यह मिट्टी के घट के समान है, किन्तु अन्दर से वह चेतन है जो समस्त कार्यों को जनम देता है। यहाँ का व्यक्ति शरीर को ही सब कुछ मानता है परन्तु व ईश्वर को भी उसी रूप में मानता है, लेकिन जब जीव से जीव मिलता है तो वह निराकार हो जाता है और जब वह आत्म स्वरूप बनकर किसी शरीर में प्रवेश करता है तो वह शरीर धारी हो जाता है। इसलिए निरकार और साकार दोनों अलग–अलग प्रक्रियाएं है, जो देशकाल परिस्थिति के अनुसार घटती और बढ़ती रहती है।

जब आत्मा निराकार होता हुआ भी आकार धारण करता है तो परमात्मा निराकार होता हुआ आकार क्यों नहीं धारण कर सकता। भगवान श्रीकृष्ण का जन्म कंस के जेलखाने में हुआ था, इसका अर्थ है कि कृष्ण बन्धन में पैदा हुए और जब उनका लालन पालन यशोदा के यहाँ हुआ उस समय भी माता यशोदा ने उन्हें बन्धन में बाँधा। परमात्मा का यह गुण है कि वह जिस सृष्टि की रचना करते हैं उसकी रक्षा करते है और उसका विनाश भी करते हैं। वे जब अवतार धारण करते हैं तो वे संसार के स्वामी होते हुए भी भक्त के आधीन रहते हैं। उन्होंने कृष्ण जन्म में चोरी करके लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया तथा चीर हरण करके यथार्थ का दर्शन कराया और नाच–गा कर व्यक्तियों को अपना प्रेमी बनाया।

इस प्रकार से भगवान अनेक लीला करके उसको विविध उद्देश्यों से प्रस्तुत

करते हैं 'एक लीला भगवता बहूर्थानां तु साधिका'। भगवान की लीलाओं के विविध उद्देश्यों में यह स्पष्ट है कि भगवान अपनी विशिष्ट क्रियाओं से जनता को आकर्षित करते हैं और महाशक्ति का बोध कराते हैं। लीलाओं की दृष्टि में पूतना कोई राक्षसी नहीं थी, अपितु वह उस युग की अविद्या थी जिसका प्रसार सम्पूर्ण व्रज क्षेत्र में था। भगवान श्रीकृष्ण ने उसका बध करके यह संकेत दिया कि अविद्या का नाश होना चाहिए और ज्ञान का उदय होना चाहिये, जब कि भगवान के भक्त पूतना को कंस की भेजी हुई राक्षसनी मात्र मानते हैं। कृष्ण की दृष्टि केवल उसे माँ के रूप में देखने की है इसलिए वो दूध पीते हैं, लेकिन पूतना रूपी माँ की भावन कृष्ण के लिए पुत्रवत् नहीं है इसलिए उसका बध होता है। जो भगवान के साथ कल्याणकारी भावना रखता हुआ सम्बन्ध जोड़ता है वह भगवान के लिए पूज्य हो जाता है और भगवान उसके प्रेम बन्धनों में बँध जाते हैं।

जिन्होंने अपना सब कुछ भगवन के लिए अर्पित कर दिया है वही सच्चां भगवद् भक्त है। जब वह भगवान की लीलाओं का वर्णन करता है उस समय वह आनन्द विभोर हो जाता है। वात्सल्य भाव पैदा करने के लिए परमात्मा किसी को अपना पिता मानत है और किसी को अपनी माता मानता है और किसी को भाई तथा किसी को बहन मानता है यह वात्सल्य स्नेह बन्धन ही है जो रक्त को दूध में परिणत् कर देता है।

'सा तत्र ददृशो विश्वं जगत स्थास्नु च रवं दिशः।'[134]

परमात्मा ने ही इस पृथ्वी में जगत् के पोषण हेतु अन्न के दाने उत्पन्न किये हैं और वह प्रतिवर्ष ऐसा ही करता है। इसलिए पृथ्वी को भी हम माँ मानते हैं तथा भगवान ने भी पृथ्वी को माँ माना है। भगवान किसी के पुत्र नहीं हैं और न उनको कोई जन्म देने वाला है फिर भी उनहोंने नन्द यशोदा और वसुदेव देवकी को अपने माता पिता के रूप में स्वीकार कर लिया, यह नन्द और यशोदा के पूर्व जन्मों का वरदान ही था।

'ततोभक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने।'[135]

नन्द और यशोदा जिन्हें हम कृष्ण के माता पिता के नाम से सम्बोधित करते हैं वास्तव में वे भगवान के परम भक्त थे। यशोदा का नाम यशोदा इसलिए पडा क्यों कि उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को यश प्रदान किया और वे यशोदा को सन्तुष्ट करने के लिए ही यशोदा के प्रेम बन्धनों में बँध जाते हैं।

'दृष्ट्रा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने।'[136]

इस संसार में अनेक बन्धन हैं किन्तु संसार के बन्धनों को तोड़ा भी जा सकताहै जब कठफोड़ा जैसा कीट कठोर काठ पर छेद कर लेता है तो भक्त भी समस्त सांसारिक बंधनो को तोड़कर परमात्मा की समीपता प्राप्त कर लेता है। परमात्मा बंधन मुक्त है, उसको बाँध पाना अत्यन्त कठिन है वह पाप से छुटकारा दिलाने वाला है, जब भक्त की आत्म ज्योति परमात्मा की आत्म ज्योति से मिल जाती है तब मोक्ष की उपलब्धि होती है। विधि शब्द का अर्थ ब्रह्म और नियम दोनों होता है, जिन व्यक्तियों में तत्व दृष्टि नहीं है वह लोभ और मायाजाल में फँस जाते हैं। बाहरी चोला और आन्तरिक शरीर दोनों में अन्तर है, जब ईश्वर सृष्टि का सृजन करता है उस समय वह पंचमहाभूत से भौतिक शरीर बनाता है फिर आत्मा का प्रवेश कराकर उस शरीर में चेताना पैदा करता है। उसके पश्चात प्रत्येक प्राणी के शरीर में कर्म, वासना और ज्ञान का उदय होता है। इसलिए यह सम्पूर्ण नियम परमात्मा कृष्ण का ही है, जिनके माध्यम से ग्वाल–बाल, गाय और बछड़ों के हरण के कारण अत्यन्त चिन्तित हो जाते हैं।

'सर्व विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह।'[137]

हमें हर जीव अलग–अलग आकृतियों में दिखलायी देते हैं, इसी प्रकार रूप, गुण और कर्म के कारण हर देवता अलग दिखलायी देते है। जैसे एक व्यक्ति अलग–अलग कल पुर्जों को जोडकर एक मशीन का निर्माण करता है, उसी प्रकार यह जीव अलग–अलग दिखलाई देते हुए भी अन्तः करणऔर कर्म से एक है। हमें केवल आकृतियाँ मूर्तियों के रूप में दिखलायी देती हैं।

'यावद् वत्सपवत्स काल्पकव पुर्यावत् कराड्ध्यादिकं

यावद् यष्टिविषाणु वेणुदल शिग् यावद् विभूषाम्बरम्।।

यावच्छील गुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिकं।

सर्व विष्णुमयं गिरोअंगवदजः सर्वस्वरूपो बभौ।'[138]

. संसार अनेक रूपों में प्रकट जरूर होता है परन्तु परमात्मा के बन्धनों से बँधा हुआ यह संसार एक रूप ही है। भागवत् पुराण श्रीकृष्ण की लीलाओं के माध्यम से यह दर्शाना चाहता है कि भगवान बालक होते हुए भी ऐसे कृत्य कर सकते थे जो कोई और नहीं कर सकता।

'यः सत्त हायनो बालः करेणैकेन लीलया।'[139]

उंगली पर गोवर्द्धन पर्वत उठाना कोई मामूली कृत्य नहीं था किनतु इसकी यह वासतविकता थी कि रीकृष्ण कने गायों के संवर्द्धन के लिए जो श्वेत क्रान्ति की उससे दुग्ध उत्पादन बढ़ा ओर लोग जल के सथान पर दूध का प्रयोग करने लगे। इससे इन्द्र का घमंड चूर हुआ और ब्रज वासियों की आय बढ़ी व उनकी आर्थिक हालत में सुधार हुआ। इस श्वेत क्रान्ति के कारण इनद्र के स्थान पर कृष्ण की पूजा होने लगी। स्वतः कृष्ण ने नन्द बाला से पूँछा कि क्या तुमने इन्द्र को देखा है उनहोंने उत्तर दिया नहीं, इस पर कृष्ण ने कहा कि गोवर्द्धन पर्वत आपको अनेक पदार्थ उपलब्ध कराता है । जो आपको प्रत्यक्ष लाभ देता है उसकी पूजा करे, हमें सवर्ग को देखकर धरती का तिरस्कार नहीं करना चाहिये। इस लोक की पूजा सवर्ग से बढकर है।

'न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम्।

नित्यं वनौकसस्तात वन शैलनिवासिनः।।'[140]

भगवान के कष्ट को देखकर भक्तों का कष्टित होना स्वाभाविक है जब उन्होंने देखा कि भगवान श्रीकृष्ण एक ही उँगली से सात दिन तक बिना थके, बिना सोये, पर्वत धारण किए हुए हैं तो ब्रज वासियों ने उन्हें परामर्श दिया कि वे पर्वत दूसरी

अंगुली में थाम लें तथा कुछ सुस्ता लें।

जहाँ तक बाल लीला का प्रश्न है समस्त बालक अबोधता में अनेक प्रकार की लीलाएं करते हैं। भगवान कृष्ण ने भी ऐसी ही बाल लीलाएं की, इनमें उनकी अभिनय कला स्पष्ट रूप से झलकती है। यहाँ पर भक्त और भगवान के बीच में तादात्म्य स्थापित होता है तथा रसों के संयुक्त प्रदर्शन को रॉस से सम्बोधित किया जाता है।

' अंगनामंगनामन्त रेमाधवंमाधवं चान्तरेणंगना।

इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः संजगौ वेणुनादेवकीनन्दनः।।'[141]

भागवत् पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि रॉसलीला के पूर्व भगवान श्रीकृष्ण का गोपिकाओं के साथ शास्त्रार्थ होता था, किन्तु इस शास्त्रार्थ में श्री कृष्ण परास्त हो जाते हैं। इस तरह से ज्ञान पराजित होता है और प्रेम जीतता है। भगवान छोटे हो जाते है और भक्त बडा हो जाता है। भक्त की भावना के आगे भगवान को झुकना पडता है, इसलिए दोनों एक दूसरे के सहयोगी बन जाते है।

वियोग क्या है और भक्ति में इसका महत्व क्या है। जहाँ यह किसी व्यक्ति के आभाव में शरीर को कष्ट देता है वही यह प्रेमी के ह्रदय में प्रेम का मूल्यांकन भी प्रस्तुत करता है। जब भगवान श्रीकृष्ण गोपिकाओं को छोडकर मथुरा चले जाते हैं, उस समय उनके ह्रदय में प्रेम का उदय होता है और यह पता चलता है कि गोपिकाएँ कृष्ण को कितना प्यार करती थीं।

'रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि

र्यथार्भकः सवप्रति बिम्बतिश्रमः।'[142]

भगवानश्री कृष्ण अपने स्वरूप के बारे में स्वतः जानते थे और गोपिकाएं भी उनके वास्तविक स्वरूप से परिचित थी। इससे भगवान की लीला का श्रवण करने और गुणों का गुणानुवाद गाने से शरीर में छिपी वासनात्मक वृत्तियाँ अपने आप नष्ट हो जाती हैं।

'विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः

श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुपादथ वर्णयेद् यः।

भक्तिं परां भगवति प्रति लभ्य कामं

हृद्रोगमाश्व पहिनोत्य चिरेण धीरः।।'[143]

यह संसार नाट्य शाला ही है और यहाँ हर व्यक्ति अपना अभिनय करता ही रहता है। संसार में व्यक्ति नृत्य, गीत और संगीत से जीवन का अभिनय करते हैं, इस क्षेत्र में भगवान श्री कृष्ण का जीवन लौकिक और पारलौकिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। बारह वर्ष की अवस्था में कृष्ण वृन्दावन से मथुरा चले जाते हैं और दुबारा नहीं आते है।इसमें कृष्ण के अन्दर छिपा वैराग्य भाव है, जहाँ वे प्रेम भावनाओं को ठुकराकर कर्तव्यपथ को ग्रहण करते हैं। इसका उल्लेख विष्णु पुराण में भी है।

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।

ज्ञान वैराग्य योश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।।'[144]

श्रीकृष्ण विविध कर्मों के धनी थे, जहाँ उनके पास ऐश्वर्य था वहीं अनके पास धर्म के प्रकति कर्तव्य निष्ठता भी थी। इसलिए द्वारका जैसी नगरी में उनके पास ऐष्वर्य की कोई कमी नहीं थी। उनके पास उद्धव और अर्जुन का मोह भंग करने के लिए सांख्य दर्शन की ज्ञान दृष्टि भी थी, वैराग्य भी था। बहुत सी बातों को समय आने पर लोग भूल जाते हैं किन्तु कृष्ण में राग और वैराग्य दोनों ही थे, इसलिए उनकी भक्ति भावना को आसानी से भुलाया नहीं जा सकता था। जब व्यक्ति को भ्रम होता है तब वह वास्तविकता से हट जाता है तथा फिरकापरस्त हो जाता है और एक पन्थ की सीमा में बँध जाता है। वह परमार्थ और यथार्थ का दर्शन नहीं कर पाता, इसीलिए धर्म को कभी–कभी स्वार्थवश लोग तोडते मरोडते भी हैं। परमात्मा निर्विकार और हन्तःकरण का स्वामी है, वही सांसारिक विष को भस्म करने वाला है, सूर्य को शक्ति प्रदान करने वाला है, समुद्र को जल प्रदान करने वाला है, शक्ति को शक्ति प्रदान करने वाला है तथा चन्द्रमा अपनी सोलह कलाएँ उसी की शक्ति से

प्रकट करता है। इसलिए यह परमात्मा जो अरबों–खरबों जीव की आत्मा है वह एक भी है और अनेक भी है।

कृष्ण भक्ति के सन्दर्भ में हम यह कह सकते हैं कि कृष्ण का अवतार परमात्मा का आनन्द अवतार है। इसलिए अवतार धारण करने के पश्चात कृष्ण ने अपने जीवन के अन्त तक दुःखी भक्तों के दुःखों को दूरकर उन्हें आनन्द प्रदान करने का प्रयास किया है। उनकी भक्ति प्रेममयी भक्ति है, कृष्ण से भक्ति रखने वाला व्यक्ति कृष्ण को परमात्मा के रूप में स्वीकार करे, उन्हें संसार का कर्ता–धर्ता, पालक और संहार कर्ता स्वीकार करे। उसके पश्चात उनके द्वारा किये गये सम्पूर्ण कृत्यों पर आस्था रखता हुआ उनका गुणगान करे तथा अपना सम्पूर्ण जीवन कृष्ण को समर्पित कर दे। सांसारिक बन्धनों और जीवों के साथ ममता मोह का बन्धन तोडकर कृष्ण की आत्मा से तादात्म्य स्थापित करे तथ संसार के अन्य समस्त जीवों के साथ समभाव बनाये रखे तथा विविध विधि से कृष्ण की पूजा, उपासना करे यही कृष्ण भक्ति है।

इतिहास पुर्नजनम, परमात्मा और परमात्मा के अवतार पर बिना वास्तविक साक्ष्य के विश्वास नहीं करता है, वह व्यक्ति और उसके कृतित्व व व्यक्तित्व पर ही विश्वास करता है। भगवान श्रीकृष्ण द्वारा गीता के उपदेश पर इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वास किया जाता है, क्योंकि वह ग्रन्थीय साक्ष्य के रूप में उपलब्ध है। महाभारत युद्ध में अर्जुन को जो ज्ञान दृष्टि दी गयी है, उसी आधार पर महाभारत युद्ध जीता गया और कृष्ण उसी ज्ञान दृष्टि के कारण संसार के एक महानतम पुरूष माने गये। जिसका अनुसरण संसार के करोड़ो व्यक्तियों ने किया तथा वे ही कालान्तर में उनके भक्त कहलाये। कृष्ण की बाललीलायें तो बाद में प्रचारित प्रसारित हुयीं, यही वास्तविक कृष्ण भक्ति का वास्तविक ऐतिहासिक कारण था।

5— कृष्ण की भगवान के अवतार के रूप में मान्यता और समाज में उसकी स्वीकृति :—

अनादि काल से विश्व में यह विचार धारा प्रचलित होती रही है कि संसार का सृजेता कोई महाशक्तिशाली व्यक्तित्व है, जो किसी भी प्रकार दिखलायी नहीं देता है उसी ने अपनी शारीरिक और बौद्धिक शक्ति से इस संसार का सृजन किया है। उस परमात्मा ने अतिसूक्ष्म परमाणुओं का सृजन किया तथा उन परमाणुओं को पाँच तत्वों के रूप में विभाजित किया और इन्हीं पाँच तत्वों के संयोजन से समस्त सृष्टि का सृजन हुआ। इससे जड़–चेतन, चल और अचल जीवों का निर्माण हुआ तथा जीव से जीव की उत्पत्ति, बीज से फल की उत्पत्ति का सिद्धान्त सृजित हुआ। जो आज तक धार्मिकों और वैज्ञानिकों के बीच में मान्य है। संसार की विचित्रता को देखकर किसी अलौकिक शक्ति का बोध होना स्वाभाविक जान पड़ता है, किन्तु वह अलौकिक शक्ति क्या है, वह कहाँ रहती है तथा उस अलौकिक शक्ति का सृजन कैसे हुआ और कब उसका अन्त होगा आज तक यह ज्ञात नहीं हो सका। परमात्मा और परमात्म तत्व के सन्दर्भ में सैकडों दार्शनिक ग्रन्थों का सृजन हो चुका है किन्तु कोई भी ग्रन्थ र्निणायक सत्य की खोज नहीं कर सकते। दुनिया के सारे अविष्कार हुए और अनेक वस्तुओं का सृजन पाँच तत्वों के संयोग से हुआ किन्तु परमात्मा की खोज अभी तक अधूरी है और अधूरी ही बनी रहेगी। भले ही हम इसके लिए अपने ऊपर अज्ञानता का दोष मढ़ते रहें और एक अन्धे की भाँति हाथी के सम्पूर्ण शरीर का बोध न कर सकें, केवल अनुमान और परिकल्पना के आधार पर परमात्मा के रहस्य को सुलझाने का प्रयत्न करते रहें किन्तु इसका परिणाम कुछ भी निकलने वाला नहीं है।

मनुष्य इस संसार का सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी है, उसने अपने बुद्धि कौशल से इस वसुन्धरा में छिपी हुयी अनेक वस्तुओं की खोज की है। उसने भूमि के अन्दर छिपे हुए कीमती रत्नों की खोज़ की तथा सागर में छिपी हुई अनेक वस्तुओं का पता लगाया। उसने अपनी सुख सुविधा के लिए संसार में उपलब्ध वस्तुओं का अपनी सुविधा के अनुसार उपयोग किया। उसने अपनी रक्षा के लिए अनेक भोग्य पदार्थ

तथा वैज्ञानिक उपकरणों का निर्माण किया और अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र बनाए। राज्य व्यवस्था तथा शासन व्यवस्था लागू की, सोलह कलाएँ और विविध विद्याओं की खोज की व समाज तथा धर्म का भी निर्माण किया। उसने ही परमात्मा की खोज की और परमात्मा को मान्यता प्रदान की तथा उसी ने उस अलौकिक शक्ति के लिए विविध स्थानों में धार्मिक स्थलों का निर्माण किया और मनुष्य के स्वरूप में ही परमात्मा की भी परिकल्पना कर डाली। उसने संसार के महान शक्तिशाली व्यक्ति जो विलक्षण बुद्धि और शक्ति से सम्पन्न था, उसे या तो परमात्मा मान लिया या फिर परमात्मा का अवतार। उसी ने रूप, गुण, तथाा कर्म के आधार पर पुर्नजन्म और परमात्मा के अवतार की धारणा को जन्म दिया। निश्चित है कि व्यक्ति ने भगवान श्रीकृष्ण में कुछ विशिष्ट गुण देखे और उन्हें परमात्मा की मान्यता प्रदान की।

भागवत पुराण में एक विराट स्वरूप की परिकल्पना परमात्मा के रूप में की गयी है। उसके पैरों से लेकर कमर तक सातों पाताल और भूलोक है, नाभि में भुवलोक, हृदय में स्वर्लोक तथा वक्षस्थल में महर्लोक है। उनके गले में जनलोक, दोनों स्तनों में तपोलोक, मस्तक में ब्रह्मा का निवास स्थान सत्यलोक है। उस विराट पुरूष की कमर में अतल, जाँघों में वितल, घुटनों में पवित्र सुतललोक, जंघाओं में तलातल, ऐंडी के ऊपर गाँठों में महातल और ऐंडियों में रसातल व तलुओं में पाताल है। उनके चरणों में पृथ्वी, नाभि में भूवर्लोक और सिर में स्वर्ग है।[145] इस विराट स्वरूप के दर्शन से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण विश्व और उसमें रहने वाले प्राणी ईश्वर के शरीर के ही अंग है।

ब्रह्माण्ड की रचना के उद्‌देश्य से सर्वशक्तिमान परमात्मा ने जब यह देखा कि उनका महत्व संसार में कम हो रहा है, तो समय की शक्ति को पहचानते हुए अहंकार, पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रा और मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ तेइस तत्वों के समुदाय में शामिल हो गई है। परमात्मा ने अदृश्य होते हुए अपने विराट स्वरूप को उत्पन्न किया तथा यह जानकारी दी कि तेइस तत्वों का परिणाम ही विराट पुरूष

है जिसमें चराचर जगत विद्यमान है।

'परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृग्गणः।

चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोका श्चराचराः।'[146]

परमात्मा का यह विराट स्वरूप एक हजार दिव्य वर्षो तक रहा, उस समय उसने विश्व रचना का विधान, तत्वों का विश्लेषण तथा छुपे हुए ज्ञान को आत्म शक्ति से जाग्रत किया। उसके पश्चात एक हृदय, दस प्राण, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विज्ञान को जन्म दिया। समस्त जीवों में जो आत्मा विराजमान है वह परमात्मा का ही अंश है और उसकी अनुभूति शरीर को होती है, इसलिए वह परमात्माा का आदि अवतार है तथा सम्पूर्ण भूत समुदाय इसी से प्रकाशित होता है।

'एष ह्यशेषसत्तवानामात्मांशः परमात्मनः।

आद्योऽवतारो यत्रासो भूतग्रामो विभाव्यते।।'[147]

हमारे शरीर में जो परमात्मा, आत्मा के रूप में विराजमान है वह सुख दुख आदि धर्मो से लिप्त नहीं होता, क्योंकि वह स्वभाव से अकर्ता र्निविकार और र्निगुण है तथा वह केवल प्राकृतिक गुणों से सम्पन्न है

'प्रकृतिस्थोऽपि पुरूषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः।

अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुण त्वाज्ज लार्कवत्।।'[148]

अनेक भक्त गण भगवान श्रीकृष्ण को प्रकृति पुरूष के रूप में स्वीकार करते हैं और वे श्रीकृष्ण को सब कुछ मानते हुए सच्चे हृदय से परमात्मा पर विश्वास करते हैं। भगवान की लीलाओं का गुण गान करते हैं, समस्त प्राणियों में समभाव रखते हैं तथा किसी से वैर नहीं रखते और न किसी से आसक्ति रखते हैं। मौन व्रत रखते हैं तथा जो कुछ भी मिल जाय उसी से जीवन निर्वाह करते हैं। वे परमात्मा के अतिरिक्त किसी दूसरे पर विश्वास नहीं करते, किसी प्रकार का अहंकार नहीं करते तब उनका परमात्मा से साक्षात्कार होता है और वे कृष्ण की कृपा से ब्रह्म पद को

प्राप्त होते हैं।

इस संसार में अनेक प्रकार के भक्त पैदा होते हैं, व्यक्ति के स्वभाव के आधार पर कृष्ण के भक्त भी अलग–अलग हैं। जो व्यक्ति भेद भाव मानने वाला तथा हृदय में हिंसा धारण करने वाला घमण्डी मात्सर्य भाव रखकर कृष्ण से प्रेम करता है, वह उनका तामस भक्त है। जो पुरूष विषय, यश, ऐश्वर्य की कामनाा से प्रतिमा आदि में भेदभाव पूजन करता है वह कृष्ण का राजस् भक्त है। जो व्यक्ति पापों का क्षय करने के लिए तथा परमात्मा को अर्पण करने के लिए पूजन करना अपना कर्तव्य समझता है, वह श्री कृष्ण का सात्विक भक्त है। जो व्यक्ति भगवान के गुणों का श्रवण करता है और मन की गति को परमात्मा से मिला देता है तथा उसका अनन्य प्रेमी हो जाता है, यह लक्षण निर्गुण भक्ति योग का है। निष्काम भक्ति के अर्न्तगत केवल भवगान की सेवा करना भक्त का कर्तव्य हो जाता है, वह भगवान की भक्ति के पीछे मोक्ष तक की कामना नहीं करते। श्री कृष्ण को परमेश्वर समझने वाले व्यक्ति प्रतिदिन नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन करते हैं, हिंसा रहित क्रियाओं का अनुष्ठान करते हैं, उसका स्पर्श करते हैं, तथा पूजा, स्तुति एवं वंदना करते हैं और समस्त प्रणियों में परमात्मा का निवास समझकर दीनों पर दया करते हैं। सामान्य स्थिति वाले से मित्रता का व्यवहार करते हैं, यम–नियम का पालन करते हैं, आध्यात्म ग्रन्थों का श्रवण करते हैं तथा भगवान श्री कृष्ण के नाम का कीर्तन करते हैं और कृष्ण के गुणों का श्रवण व अनुपालन करते हैं वे कृष्ण को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़कर जाने वाला गंध वायु से उड़कर नासिका के माध्यम से अन्दर पहुँच जाता है, उसी प्रकार से भक्त योग में तत्पर व्यक्ति राग, द्वेष आदि विकारों से शून्य चित्त परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

परमात्मा सर्वव्यापी है और सब जीवों में निवास करता है, जो ऐसा नहीं मानते और केवल मूर्ति पूजा करते हैं वे केवल स्वाँग करते हैं। ईश्वर सब की आत्मा है और जो केवल मूर्ति की ही पूजा करता है वह मानों राख में हवन करता है। जो व्यक्ति

किसी दूसरे जीव का अपमान करता है और परमात्मा की मूर्ति का पूजन करता है परमात्मा उससे खुश नहीं होता है। जब तक व्यक्ति हर जीव में परमात्मा के दर्शन न करे और परमात्मा और आत्मा में भेद उत्पन्न करे तो मैं उसे मृत्यु का भय प्रदान करता हूँ। प्राणियों के रूप में मेरा दर्शन करके या परमात्मा का दर्शन करके यथा योग्य दान, मान, मित्रता, का व्यवहार करता है तथा सब जीवों में समदृष्टि रखता है और पाषाण की पूजा की अपेक्षा जीवित व्यक्ति की पूजा श्रेष्ठ समझता है वह मुझे प्राप्त करता है। जो व्यक्ति अपने शरीर को मुझ में अर्पण करके मेरी उपासना करते हैं वे श्रेष्ठ हैं। समस्त जीवों में परमात्मा का स्वरूप देखता हुआ यदि व्यक्ति ईश्वर को प्रणाम करता है तो ईश्वर उसे प्राप्त होता है।[149]

जो व्यक्ति ग्रहस्थ में रहता है और भगवान श्री कृष्ण की अनुकम्पा प्राप्त करना चाहता है, उसे चाहिए कि श्राद्ध, देवपूजा, हवन तथा दान आदि करे तथा योग्य प्रवचन कर्ता से वह धर्मोपदेश श्रवण करे। जब वह श्राद्ध आदि कार्य करें तो ब्राह्मणों का भोज करें और वह अपने सामर्थ्य के अनुसार दान करें, वह भोज में माँस का सेवन न करें, पशु हिंसा न करे, किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाये, सभी प्रकार के यज्ञों का आयोजन करे और नित्य नैमित्तिक कर्म करे, पाखण्ड और अधर्म का सहारा न लें तथा पाप के हवन से जीविका न चलाये और मन में सन्तोष धारण करे। वासनात्मक कृत्तियों से दूर रहे, लोभ न करे, संकल्प युक्त रहे, गुरू का आदर करे तथा वह परमात्मा जिनकी बड़े बड़े योगेश्वर आराधना करतें हैं और जो संसार के साक्षात गुरू हैं उन्हें माने। व्यक्ति संसार में सीमित भोजन करे अपने संकल्पों के अनुसार कार्य करे वही परमात्मा कृष्ण को प्राप्त हो सकता है।[150]

भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव को उपदेश देते हुए यह समझाने का प्रयत्न किया कि संसार में प्राणी मेरे द्वारा निर्मित माया के बंधनों में जकड़ा हुआ है, इस संसार में न कहीं मोक्ष है न बंधन। परमात्मा ने अपने

'बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः।

गुणस्य मायामूलत्वान्त मे मोक्षो न बन्धनम्।।'[151]

इन्द्रजाल में सब जीवों को फाँस रखा है, इसलिए माया के बन्धनों में जकड़े होने के कारण किसी भी जीव को वास्तविक ज्ञान नहीं होने पाता है। व्यक्ति आत्माविद्या के माध्यम से यथार्थ का बोध करता है। जब जीव को आत्मा का ज्ञान हो जाता है तो वह आत्मा और परमात्मा के भेद को समझ लेता है। वास्तव में जीव और ईश्वर एक ही है,वह शरीर में नियंता और नियन्त्रित के रूप में विद्यमान है। शरीर एक वृक्ष है और हृदय उसका घोसला है, उसमें जीव और ईश्वर नाम के दो पक्षी रहते हैं तथा दोनों एक दूसरे से नहीं विछुडते है। शरीर सुख–दुःख और कर्मफल को भोगता है तथा इसमें जो ईश्वर है वह वास्तविक जगत को जानता है ओर जब जीव इस वास्तविकता को जान जाता है तो वह सूक्ष्म शरीर में रहता हुआ भी अभिमान नहीं करता। जो व्यक्ति संशय को काटकूट कर फेंक देते हैं और आत्मा परमात्मा में भेद नहीं मानते वही ईश्वरत्व को प्राप्त करते हैं। सुख–दुख में समान रहने वाला व्यक्ति, जिसमें पाप और वासना नहीं रहती और जो सबका भला सोंचता है वह परमात्मा को प्राप्त होता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति ज्ञानवान नहीं है तथा सामान्य बुद्धिका ग्रहस्थ है, वह मेरी मूर्ति और मेरे भक्तजनों का दर्शन करे, मेरी स्तुति करे और मुझे प्रणाम करे तथा मेरे गुणों और कर्मों का कीर्तन करे। भगवान कृष्ण की कथा सुनने में भक्त श्रद्धा रखे तथा सदैव उनका ध्यान रखे और समस्त जीवन

'मल्लिङ्गमदभक्तजन दर्शनस्पर्शनार्चनम्।

परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम्।।'[152]

को भगवान के चरणों में अर्पित कर दे। श्रीकृष्ण के दिव्य जन्म और कर्मों की चर्चा करे जन्माष्टमी,रामनवमी आदि पर्वों को आनन्द से मनावें, संगीत, नृत्य और बाजे के साथ मन्दिरों में उत्सव करे तथा वार्षिक त्योहारों के दिन कृष्ण से सम्बन्धित स्थानों की यात्रा करें। विविध उपहारों से भगवान की पूजा करें, श्रीकृष्ण से सम्बन्धित व्रतों

को रखें, मन्दिरों में कृष्ण की मूर्ति स्थापित करें। यदि यह काम व्यक्ति अकेला न कर सके तो सामूहिक रूप से करें तथा सेवक की भाँति धार्मिक स्थलों को साफ सुथरा रखें। जो धन मेंरे ऊपर चढाया गया हो उसको व्यक्तिगत कार्य में न लगायें और दूसरे देवता पर चढाई हुई वस्तु कृष्ण मन्दिरों में न चढ़ायें।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गऊ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और समस्त प्राणी मेरी पूजा के स्थान हैं। व्यक्ति मेरी पूजा हवन करके, ब्राह्मणों को भोजन कराकर, गायों को घास खिलाकर तथा वैष्णव सन्तों का समादर करके कर सकते हैं और वायु में जल, पुष्प आदि अर्पित करके भी मेरी आराधना कर सकते हैं। भगवान के स्वरूप मे चर्तुभुजी रूप का स्मरण करके व्यक्ति मेरी पूजा कर सकते हैं तथा पूर्व, उत्तर दिशा में बावली बनवाकर व्यक्ति मेरी पूजा कर सकता है यदि व्यक्ति मुऐ प्राप्त करना चाहता है तो मैं सर्वदा उसके पास बना रहता हूँ।

'प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेंन विनोद्धव।

नोपायो विद्यते सध्यङ् प्रायणं हि सतामहम्।।'[153]

जब व्यक्ति किसी प्रकार की पूजा न कर सके तो उसे ज्ञान प्राप्त करने के लिए सत्संग करना चाहिए। जो व्यक्ति धर्म पालन नहीं कर सकता तथा स्वाध्याय नहीं कर सकता, तपस्या और दान नहीं कर सकता वह व्यक्ति सत्संग के माध्यम से मुझे प्राप्त कर सकता है। जिस व्यक्ति ने निस्पाप ह्रदय सोक मेरी भक्ति

'न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।

न स्वाध्याय स्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त न दक्षिणा।।'[154]

की अथवा सत्संग किया उसे मेरा स्नेह मिला, सत्संग के द्धारा ही दैत्य, राक्षस, पशु, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्रक और विद्याधरों को मेरी प्राप्ति हुई है। मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री, अन्त्यज, रजोगुणी तथा तमोगुणी स्वभाव के व्यक्ति भी मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

'सत्सङ्गेन हिदैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।

गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः।।

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः।

रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तमिन् युगेऽनद्य।।'[155]

श्रीकृष्ण की ईश्वर के रूप में मान्यता :—

भगवान अनन्त हैं और उनके गुण भी अनन्त हैं, उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए आनेक बार अवतार लिया। भगवान का उन्नीसवाँ अवतार युदवंश में पृथ्वी का भार उतारने के लिए हुआ। उन्होंने कृष्णावतार में जन कल्याण के अनेक कार्य किए, जिससे उनकी लोक प्रियता बढ़ी, उन्होंने अनेक दैत्यों का वध किया, इन्द्र के कोप से ब्रज वासियों की रक्षा की, कंस, जरासन्ध, कालयवन, शिशुपाल आदि दुष्ट राजाओं का वध किया। महाभारत में अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म की ओर प्रवृत्त किया तथा उन्हें सांख्य दर्शनका उपदेश किया। इससे उनकी लोकप्रियता संसार में बढी और वे परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हुए तथा ईश्वर के रूप में मानेजाने लगे।

'भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा

जातः करिष्यति सुरैरापि दुष्कराणि।

वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान्

शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते।।'[156]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान अपनी विलक्षण प्रतिभा और शक्ति से परामात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हुए। अवतारवाद की पुष्टि करने वाले विष्णु पुराण में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि भगवान विष्णु ने दुष्टों का हनन करने के उद्देश्य से कृष्ण अवतार धारण किया था। आगे विष्णु पुराण ही लिखताहै

'एतदर्थ तु लोकेअस्मिननवतारः कृतोमया।

यदेषामुत्यथस्थ्ज्ञानां कार्या शान्तिर्दुरात्मनाम्।।'[157]

कि पृथ्वी का भार उताराने के लिए उनका अवतार हुआ तथा अवतार लेकर उनका उद्देश्य पृथ्वी का भार दूर करना था।[158] ब्रह्मण्ड पुराण में भी यह वर्णन उपलब्ध होता है कि भगवान का अवतार असुरों के संहार के लिए होता है।[159] मत्स्य पुराण में भी परमात्मा के अवतार के इसी उद्देश्य की पुष्टि की गयी है।[160]

समाज में कृष्ण की मान्यता (ईश्वर के रूप में) :—

कोई भी व्यक्ति जो समान्य रूप से मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ है, उसे ईश्वर के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। समाज में व्यक्ति का आकर्षण शारीरिक सौन्दर्य, विशिष्ट चारित्रिक गुण और विलक्षण कर्मों के कारण पैदा होता है। यदि कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का अवलोकन किया जाय तो वे जन्म से ही एक लिक्षण व्यक्ति थे, उन्होंने बचपन में ही अनेक दैत्यों का वध करके अपनी शक्ति का परिचय ब्रजवासियों को दे दिया था। वे रॉस, नृत्य और संगीति के बल पर ही अति विशिष्ट व्यक्ति नहीं हुए अपितु उनके अतिविशिष्ट कर्मो ने ही उन्हे इतिहास पुरूष बना दिया। जो क्षमताएँ उनमें थी वे किसी सामान्य व्यक्ति में नहीं हो सकती, इसलिए उनकी लोक प्रियता की वृद्धि हुई और वे अपने जीवन काल में ही समाज में अत्यन्त लोक प्रिय व्यक्ति हो गये। तद्युगीन जनता उनके कुशल नेतृत्व में विश्वास करती थीं। उनके लिए मर मिटने को तैयार रहती थी तथा उनकी विलक्षण शक्ति और प्रतिभा को देखकर समाज उन्हें ईश्वर के रूप में मानने के लिए बाध्य था। कोई भी जन कल्याण करने वाला व्यक्ति कर्म के मूल्यांकन के आधार पर जननायक बन जाया करता है, कृष्ण की लोकप्रियता समाज में इतनी बढी कि वे इतिहास पुरूष बन गये। द्वारका पुरी का निर्माण, महाभारत संग्राम मे विशेष योगदान तथा गीता के उपदेश उन्हें इतिहास पुरूष और लोकप्रिय व्यक्ति बनाने में सहयोगी हुए। तद्युगीन व्यक्तियों की तुलना यदि कृष्ण से की जाय तो कृष्ण उन सबमें महान बैठते है जो उस युग में उत्पन्न हुए हैं। व्यक्ति के कर्म ही व्यक्ति को महान बनाते हैं, कृष्ण के कर्मों ने ही कृष्ण को महान बनाया। इसके परिणाम स्वरूप समाज के व्यक्तियों ने

उन्हें ईश्वर की मान्यता प्रदान कर दी। कृष्ण के युग से लेकर आज तक दूसरा कोई अन्य व्यक्ति अब तक उत्पन्न नहीं हुआ, जिसे समाज ईश्वर के रूप में स्वीकार कर ले।

कृष्ण के अस्तित्व के सैकड़ों वर्ष बाद जब बौद्धों का प्रभाव भारतवर्ष में कम हो गया, उस समय ब्राह्मण और हिन्दू धर्म के पुनरूत्थान के लिए अनेक, धर्मग्रन्थों, पुराणों आदि की रचनायें सम्राट आशोक के बाद की गयीं तथा ये रचनायें गुप्त युग और उसके काफी बाद तुर्कों के आगमन तक बराबर लिखी जाती रहीं। इनका पठन–पाठन, वाचन और श्रवण जनता के मध्य में लगातार पूरे भारतवर्ष में होता रहा। इससे वैष्णव सम्प्रदाय तथा नव वैष्णव सम्प्रदाय का उदय हुआ तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष में वैष्णव सम्प्रदाय के अनुकरण कर्ताओं की संख्या बढ़ती गयी और वह भारतवर्ष का लोक प्रिय मत हो गया। करोडों की संख्या में वैष्णव मत के अनुयायी सगुण भक्ति के अर्न्तगत राम और कृष्ण के उपासक बने तथा राम की भक्ति की अपेक्षा कृष्ण भक्ति को अधिक लोकप्रियता उपलब्ध हुई।

इसी समय भागवत पुराण की रचना हुई जिसमें कृष्ण भक्ति को सम्पूर्ण भारत वर्ष मे प्रचारित–प्रसारित किया गया तथा करोडो की संख्या में कृष्ण भक्त बन गये। अनेक स्थलों पर कृष्ण के भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ और कृष्ण की मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा भी हुई। कृष्ण भक्ति की सबसे बडी विशेषता थी कि यह सत्य, अंहिसा तथा प्रेम पर आधारित थी और इसकी पूजा पद्धति भी अन्य पूजा पद्धतियों से भिन्न थी। यह मत अत्यन्त सरल होने के कारण जनता के द्वारा स्वीकारा गया। इस धर्म के कारण जन्माष्टमी, राधाष्टमी तथा कार्तिक मास के स्नान का महत्व बढ़ा। यहाँ को निवासी कृष्ण को परमात्मा मानकर मथुरा, द्वारकापुरी व जगन्नाथपुरी की यात्रा तीर्थस्थल समझ कर करने लगे। भारतवर्ष के अनेक शहरों में कृष्ण मन्दिर निर्मित होने लगे तथा पूजा अर्चना की दृष्टि से प्रत्येक परिवार में भगवान कृष्ण और राधा की मूर्तियाँ नैमित्तिक पूजा का अंग बनी। वैष्णव धर्म चिन्ह तिलक, तुलसीमाला,

आदि व्यक्ति धारण करने लगे तथा भागवत पुराण और अन्य वैष्णव धार्मिक ग्रन्थों का पाठन और श्रवण अधिक तेजी से होने लगा। इस प्रकार से समाज में भगवान श्रीकृष्ण को ईश्वर की मान्यता मिली तथा कृष्ण से सम्बन्धित नाटकों का अभिनय भी रंगमंचों पर किया जाने लगा।

6– भागवत पुराण में वर्णित कृष्ण जन्म एवं उनकी लीलाओं का धार्मिक स्वरूप एवं समाज में उनका अनुकरण–

आध्यात्मिक सत्य यह है कि परमात्मा कभी जन्म नहीं लेता और न कभी उसकी मृत्यु होती है। इस सत्य को तो स्वीकार किया जाता है कि पंचमहाभूतों से निर्मित यह स्थूल शरीर सृजित होता है और इसका विनाश भी होता है। उस शरीर में केवल आत्मतत्व ऐसा है, जिनका सृजन और विनाश कभी होता ही नहीं है। यदि श्रीकृष्ण को परमात्मा के रूप में स्वीकार किया जाता है और उन्हें अविनाशी और अजन्मा कहा जाता है तो उन्होंने जन्म किस आधार पर लिया यह एक विचारणीय प्रश्न है। यदि कृष्ण को हम एक महापुरूष के रूप में स्वीकार करते हैं तो उनका जन्म लेना स्वाभाविक है। वे अतिविशिष्ट प्रतिभा और महत्वपूर्ण सामाजिक योगदान के लिए कर्म करने के कारण इतने बड़े महापुरूष बन गये कि उनके समान महापुरूष इस संसार में कोई उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपने रूप, गुण और कर्म से जो यश अर्जित किया वह सदैव के लिए हमर हो गया। भारतवर्ष और विश्व का इतिहास उन्हें महत्वपूर्ण अतिविशिष्ट ऐतिहासिक पुरूष के रूप में स्वीकार करता है तथा उनकी चिर स्मृतियों को जीवित रखने के लिए सदैव उनके जीवन से सम्बन्धित तीज–त्योहारों, जन्मोत्सवों आदि को मनाता रहता है। उनके कृतित्व और व्यक्तित्व ने ही उनकी लोकप्रियता बढ़ा दी व अब वे हमारे लिए परमपिता परमात्मा ही हैं।

भागवत महापुराण के अनुसार जब पृथ्वी दुष्टों के बोझ से बोझिल हो गयी, उस समय पृथ्वी गऊ का रूप धारण करके ब्रह्मा की शरण में गयी तब वह दुःख से रो रही थी। ब्रह्मा जी ने पृथ्वी की करूण कहानी सुनी तथा वे पृथ्वी को लेकर

क्षीरसागर के तट पर पहुँचे, उस समय ब्रह्माजी के साथ देवता भी थे। भगवान को पृथ्वी के कष्ट का पता था, इसलिए उन्होंने काल शक्ति के द्वारा पृथ्वी का भार दूर करने के लिए अवतार धारण करने का निश्चय किया तथा उनके साथ अन्य देवी देवता भी यदुवंश में जन्म ग्रहण करेंगे यह आश्वासन भगवान का हुआ। भगवान श्रीकृष्ण ने देवकी के गर्भ स्थल में प्रवेश किया, उनके जन्म लेने का उद्देश्य

'पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो

भवदिभ्रंशैर्यदुषूपजन्यताम्।

स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः

स्वकाल शक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि।।'[161]

मगध नरेश जरासन्ध, कंस, प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, भौमासुर आदि दैत्य राजाओं से साथ अन्य दुष्टों का विनाश करना था। जब भगवान ने देखा कि यदुवंशी कंस के द्वारा बहुत सताये जा रहे हैं तब उन्होंने कहा कि मैं समस्त ज्ञान, बल आदि अंशो के साथ देवकी का पुत्र बनूँगा और योग माया यशोदा के गर्भ से जन्म लेगी।

'अथाहमंशाभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।

प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि।।'[162]

देवकी के गर्भ में नौ माह तक रहने के पशचात भगवान ने अवतार धारण किया अर्थात वे प्रकट हुए। शुभ मुहूर्त में जब रोहणी नक्षत्र था और तारे सौम्य थे तथा सर्वत्र खुशी का वातावरण था, उस समय भगवान श्रीकृष्ण अपनी दिव्य शक्ति के साथ पैदा हुए। भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप को देखकर वासुदेव जी को

'अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः।

यह्मोविाजनजन्मर्क्ष शान्तर्क्षग्रहतारकम्।।

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।

आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः।।'[163]

यह आभास हो गया कि भगवान श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा है तथा वे ही जगत् की सृष्टि करने वाले हैं। जब संसार के तत्व पृथक–पृथक होते हैं तब वे भी पृथक–पृथक होते हैं। संसार की हर वस्तु में परमात्मा विद्यमान रहता है तथा वह आत्म स्वरूप है और परमार्थ सत्य है। जो व्यक्ति परमात्मा को पृथक समझता है वह अज्ञानी है, देवकी ने भी जब अपने पुत्र में भगवान के सभी लक्षण देखे तब वे परमात्मा कृष्ण की बंदना करने लगी। उन के विचित्र स्वरूप को देखकर देवकी ने कहा कि आप भक्तों का भय दूर करने वाले हैं और

"अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरूष्लक्षणम्।

देवकी तमुपाधावत् कंसाद् भीता शुचिस्मिता।।"[164]

हम लोग दुष्ट कंस से भयभीत है। अतः आप हमारी रक्षा कीजिये क्योंकि आपका यह चर्तुभुज दिव्य रूप ध्यान की वस्तु है इसे केवल माँस–मज्जा मय शरीर पर द्रष्टि रखने वाले देहअभिमानी पुरूषों के सामने प्रकट मत कीजिए।

'सत्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्न

स्त्राहि त्रस्तान् भृत्यावित्रासहासि।

रूपं चेदं पौरूषं ध्यानधिष्ण्यं

मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृपीष्ठाः।।'[165]

देवकी ने परमात्मा से यह भी कहा कि आप अपना यह दिव्य स्वरूप छिपा लीजिए और स्वाभाविक रूप धारण कर लीजिए, तब भगवान ने देवकी को याद दिलाया कि तुम्हारा प्राचीन काल में नाम पृश्नि और वसुदेव जी का नाम सुतपा था। तुम दोनों ने तपस्या करके मेरा जैसा पुत्र माँगा था, तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिए मैं तुम्हारे पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ तथा तुम्हें अपने दिव्य शरीर का दर्शन इसलिए कराया ताकि तुम मेरे अवतारों को पहचान सको। तुम मुझे अपना पुत्र मानो और सदैव वात्सल्य भाव बनाये रखो इसी से तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। देवकी ने कहा कि आप अपने दिव्य स्वरूप को छिपा लीजिए और

'यवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत।

चिनतयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मदगतिं पराम्।।'[166]

और बाल स्वरूप धारण कीजिए। आपने मेरे गर्भ से जन्म लिया यह भी आपकी एक लीला ही है। भगवान श्रीकृष्ण ने देवकी और वसुदेव को यह आभास दिलाया कि वे ही पूर्वजन्म के कश्यप और अदिति है, जिनसे

'विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते

यथावकाशं पुरूषः परो भवान्।

विभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू

दहो नृलोकस्य विडम्बनं हितत्।।'[167]

देवताओं का जन्म हुआ। इतना कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने बाल स्वरूप धारण कर लिया। उनके जन्म लेते ही वसुदेव और देवकी के बन्धन कट गये तथा जेल के ताले अपने आप खुल गये। वसुदेव जी उनको लेकर नन्द जी के यहाँ गये तथा याशोदा की शैय्या में सुला दिया और वे यशोदा की नवजात कन्या को लेकर पुनः बन्दीग्रह में आ गये, इस समय यशोदा यह नहीं जान सकीं कि उनके पुत्र हुआ है अथवा पुत्री।

आध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टि से भागवत पुराण में वर्णित कृष्ण जन्म धार्मिक व्यक्तियों को सही प्रतीत हो सकता है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि कोण से कृष्ण जन्म कथा को भागवत पुराण के रचनाकार का भावानात्मक वर्णन ही कहा जायेगा। कृष्ण का चर्तुभ्ज रूप मे अवतरण होना रचनाकार की परिकल्पना तो हो सकती है किन्तु यह ऐतिहासिक सत्य नहीं हो सकता। कृष्ण के व्यक्तित्व और कृतित्व के मूलयांकन के पश्चात उन्हें ईश्वर के रूप में स्वीकारा गया तथा उसके पश्चात उनके जन्म की परिकल्पना भी रचनाकारों ने कर डाली। रचनाकार किसी भी व्यक्तित्व के साथ ऐसी विचित्र घटनाएँ जोड़ देता है जो कभी भी समान्य व्यक्ति के साथ घटित नहीं होती है। हम पृथ्वी के लोग सैकड़ों व्यक्तियों को विशिष्ट महापुरूष मानकर उनके

जन्म दिन मनाते हैं और उनके जीवन के साथ कुछ विचित्र घटनाओं का समावेश भी कर देते हैं ताकि विश्व के लोग उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हों तथा उन्हें ईश्वर का विशेष अंश अथवा ईश्वर का अवतार मानने लगें। जैसा कि कृष्ण के साथ हुआ, भावना और धर्म में डूबा हुआ व्यक्ति उन्हें केवल महापुरूष, महान आत्मा ओर मर्यादा पुरूषोत्तम ही मान सकता है। इतिहास किसी भी व्यक्ति को परमात्मा के रूप में स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं है। एक ईश्वर वाद, बहुदेववाद, अवतारवाद, पुर्नजनम वाद ये सब भारतीय संस्कृति की मूल भावनाओं में शामिल हैं, जिन्हें इतिहास स्वीकार लेता है। परमात्मा, परमात्मतत्व, जीव और आत्मा ये मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र ओर आध्यात्म के विषय हैं परन्तु ये इतिहास के विषय नहीं है।

कृष्ण लीलाओं का धार्मिक स्वरूप :–

लीला क्या है और लीला को परिभाषित कैसे किया जाय यह भी एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। विश्व में जब कोई महापुरूष मनुष्य के रूप में जन्म लेता है तब वह देशकाल परिस्थिति के अनुसार नानाप्रकार की क्रियाऐं करता है। ये क्रियाएँ उसके कर्म के नाम से जानी जाती हैं तथा ये प्राकृतिक कर्म, पारिवारिक कर्म, ग्रहस्थ कर्म, सामाजिक कर्म, आर्थिक कर्म और धार्मिक कर्मों में विभाजित रहती है। इन कर्मों के व्यावहारिक स्वरूप को लीला कहा जाता है, ये लीलाएँ भी कई रूपो में विभाजित होती हैं। इनमें वचपन की लीलाएँ, युवावस्था की लीलाएँ तथा वृद्धावस्था की लीलाएँ शामिल होती है। किन्तु ये लीलाएँ जीवन की सामान्य लीलाएँ है जो सम्पूर्ण मनुष्य किया करते हैं। व्यक्ति की अन्तिम लीला उसकी मृत्यु होती है जो कई कारणों से होती है तथा व्यक्ति की प्राथमिक लीला जन्म लीला होती है, किन्तु इनके अतिरिक्त भी कुछ अति विशिष्ट लीलाएँ होती हैं। जिनका सम्बन्ध समाज कल्याण, जन कल्याण, शत्रु पराजय, किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति, किसी विशेष सिद्धि की उपलब्धि, प्रेम प्रसंग, सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन या निर्माण, सामाजिक व्यक्तियों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध और शत्रुता पूर्ण कार्य ये व्यक्ति की जीवन लीला

कहलाती है। इसी लीला के आधर पर उसके कृतित्व और व्यक्तित्व का मूल्यांकन होता है तथा उसे सामान्य विशिष्ट, अतिविशिष्ट, निष्कपट आदि रूपों में देखा जाता है। यही कृतित्व और व्यक्तित्व व्यक्ति को नायक, जननायक और खलनायक के भी रूप में प्रस्तुत करते हैं। राम और कृष्ण जैसे महान व्यक्तित्व अपने जीवन की व्यावहारिक क्रियाओं के कारण अर्थात अपनी जीवन लीलाओं से ही अपने कृतित्व और व्यक्तित्व का विकास कर सके। जब व्यक्ति नायक स्वतः उस लीला को प्रस्तुत करता है तो वह उसकी निजी जीवन लीला कहलाती है। उस जीवन लीला में वह स्वतः संसार के रंगमंच में नायक, खलनायक और सामान्य नायक के रूप अपनी भूमिका प्रस्तुत करता है। उसके जीवन मे नाना प्रकार के छोटे–मोटे पात्र भी जुडते है, किन्तु इस जीवन लीला का दर्शक कोई नहीं होता, जो व्यक्ति उसके प्रभाव में होते हैं वे ही उसकी जीवनलीला का अनुभव करते हैं। जब उसकी जीवन लीला सामाप्त हो जाती है। उस समय उसके सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति उसकी यशगाथा अथवा अपयश गाथा को प्रचारित–प्रसारित करते हैं, कृष्ण जैसे महापुरूष अपनी विचित्र लीलाओं के कारण आज भी चर्चा का विषय है।

प्रसिद्ध विद्धान श्री निगमानन्द जी सरस्वती, लीला को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि विषय और विषयी के बीच पारस्परिक सम्बन्ध युक्त वृत्तियों के स्फुरण को लीला कहते हैं।[168] कृष्ण का अवतार सम्पूर्ण मानव को प्रेम का आस्वादन कराने के लिए हुआ था, उन्होंने गुणों से आवृत्त गुणमय जीव को निर्गुण प्रेम के आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण ने अपने जीवन में ऐसी लीलाएँ की जो वृन्दावन की लीलाओं के नाम से विख्यात है। भगवान की लीलाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है, ये लीलायें

'अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।

भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।।'[169]

सृष्टिलीला, संसार लीला ओर नित्य लीला के नाम से प्रसिद्ध हैं। जब व्यक्ति नित्य

क्रियाएँ करता है तो उन्हें नित्य लीला कहते है। जब महापुरूष संसार सृजन की क्रिया करता है तब उसे सृष्टि लीला कहते हैं, जब वह जन्म–मृत्यु, मोछ आदि के लिए कार्य करता है उस लीला को संसार लीला कहते हैं। वह इन लीलाओं को माया शक्ति, स्वरूप शक्ति और अधिष्ठात्री शक्ति के नाम से करता है।

श्रीकृष्ण वृन्दावन में रहकर जो लीलाएँ करते थे, वे उनके स्वरूप शक्ति की लीलाएँ थी। उन्होंने माया का सहारा लेकर परमात्मा के रूप में प्रकट होकर अनेक सृष्टि सृजन की लीलाएँ की, वे जिन नित्यलीलाओं को करते रहे हैं उन सब लीलाओं का नाम रॉसलीला है। इसी माध्यम से भक्तगण और उनके सहायोगी प्रेम रस का आस्वादन करते रहे है। इस नित्य रॉस लीला के दो उद्देश्य है पहला उद्देश्य साधक जीव को अपनी ओर आकर्षित करना है तथा दूसरा उद्देश्य उन व्यक्तियों की वासनाओं की पूर्ति करना है जो उनसे जुडे हैं। इसमें भक्त साधक है और भगवान साध्य तथा भक्ति साधना है। भगवान भक्तों के ह्रदय में प्रेम भगवान पैदा करके उन्हें अपनी ओर आकर्षित करता है तथा बाद में भगवान भक्तों के मनोरथों को पूरा करते हैं। ब्रजभूमि में जो लीलाऐं भगवान ने की वह उनके स्वरूप का आनन्द था तथा भक्त उनके स्वरूप से आनन्दित हुए और बाद में ये लीलाएँ सारे संसार में अवतार लीला के नाम से जानी गयी।

शरद पूर्णिमा की रात में जब यमुना नदी के तट पर ब्रज का सम्पूर्ण वातावरण सुगन्ध युक्त था, उस समय रॉस लीला की साधना होती है तथा लीला में उपस्थित भक्त गोपिकाएँ प्रेम की अमृतधारा को ग्रहण करती है और इस मृत्युलोक में अपने प्राण में प्रवाहित लीला तत्व की साधना करती हैं। इस समय सारा वातावरण प्रेममय हो जाता है तथा जीव के ह्रदय में काम का उन्मेष होने पर उनमें आत्मेन्द्रिय प्रीति जाग्रत होती है जिससे जीव के ह्रदय में भगवान से मिलने की इच्छा पैदा होती है और लीला तत्व की साधना से काम पर विजय प्राप्त होती है।

भगवान लीला करने के लिए ब्रज में अपनी माया शक्ति राधा के साथ

अवतरित हुए थे, इसलिए वे राधा कृष्ण के नामसे विख्यात हुए। यह जीवात्मा संसार की कुटिलता से प्रभावित होता है तृणावर्त, अघासुर तथा बकासुर के विनाश के बिना भगवान की लीला अधूरी रह जाती है, इसलिए उन्होंनें इनका विनाश किय और ब्रज के लोगों को उससे छुटकारा दिलाया। राधा और कृष्ण का मिलन वास्तव में जीव और परमात्मा का मिलन है, जब दोनों एक स्वरूप हो जाते हैं उस समय सांसारिक बंधन अपने आप छूट जाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण गौएं चराते हैं तथा महाराज नन्द से उनका स्नेह पिता पुत्र के रूप में होता है यहाँ भगवान का वात्सल्य स्वरूप प्रकट होता है। यशोदा और नन्द के वात्सल्य प्रेम को आदर्श वात्सल्य प्रेम के रूप में बाँधा जा सकता है। ग्वाल —बाल उनके सखा हैं, जो साक्ष्य भाव से उनके साथ बंधे हुए हैं। ब्रज बालाएँ भी भगवान श्रीकृष्ण से स्नेह करती है किन्तु राधा और कृष्ण का प्रेम किसी भी स्थिति में पति और पत्नी का प्रेम नहीं है। राधा के हृदय में कृष्ण से मिलने की उत्कण्ठा बनी रहती है किन्तु राधा और कृष्ण का मिलन प्रेम की पराकाष्ठा है, इसे योग तत्व के माध्यम से समझा जा सकता है तथा इसे माया शक्ति और जीव का मिलन भी कहा जा सकता है। जब भगवान भक्त का आलिंगन करते हैं तो उन्हें अपार हर्ष प्रतीत होता है, गोपिकाएँ भगवान के हृदय से सदैव जुडी रहती हैं इसलिए उन्हें विशिष्ट आनन्द की अनुभूति होती है। रॉस लीला के माध्यम से भगवान गोपिकाओं को आनन्द रस से परितृप्त करते हैं। भगवान ने रॉस लीला के माध्यम से रस माधुर्य का प्रवाह किया और यह सिद्ध किया कि आनन्द के माध्यम से ही संसार से छुटकारा मिल सकता है। रॉस लीला के माध्यम से मिलन जन्य प्रेम रस की धारा प्रवाहित होती है तथा श्रीकृष्ण का अवतार आनन्द प्रदाने करने कि लिए ही हुआ था।

श्रीकृष्ण कीं लीला के कुछ आश्चर्य जनक पहलू भी हैं जैसे कृष्ण का कंस के कारागार में उत्पन्न होना, प्रहरियों का सो जाना, वासुदेव देवकी के बंधनों का खुल

जाना, तथा श्रीकृष्ण के अंग स्पर्श से यमुना नदी का जलस्तर घट जाना और उनके बाल कृत्य, तृणावर्त और पूतना राक्षसी को दण्ड देना, माखन चुराना, गाय चराना, कालिया नाग का विनाश, कंस मर्दन, रॉस लीला, गोपी प्रेम, राधा प्रेम, ग्वाल बालों की मैत्री, कालयवन तथा जरासन्ध का संहार और ब्राह्मणों का सम्मान। आगे राजदूत की भूमि, कुरूक्षेत्र की रणभूमि में महाभारत युद्ध का संचालन, कौरव संहार, द्वारका गमन प्रभास गमन, यदुकुल संहार और भगवान का स्वधाम गमन आदि विविध लीलाएँ हैं जो भक्त गणों को अपनी ओर आकर्षित करती है। इस प्रकार हम देखते है कि कृष्ण महान थे और कृष्ण की लीलाएँ महान थी।

कृष्ण लीला का समाज में अनुकरण–

जब महान व्यक्ति कोई अच्छे कार्यकरता है तो उसका अनुकरण होता है। श्रीकृष्ण की लीलाओं का अनुकरण भले ही व्यक्ति सामान्य जीवन में न करे किन्तु उनका अनुसरण रंगमंचों में रॉस लीला करने वाले वाले ओर नाटक कारों के द्वारा होता ही रहता है। भगवान श्रीकृष्ण अँगूठे में भरे हुए अमृत का पान करते है, उनकी यह लीला भक्तों के लिए विशिष्ट आकर्षण का केन्द्र है। स्वाभाविक रूप से भी बालकों की बाल लीलाओं के प्रति माता पिता का आकर्षण रहता हैं।

भगवत पुराण के रचनाकार भगवान की रॉस लीला का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण के उस आश्चर्य को व्यक्त करते हैं, जिनमें प्रत्येक दो गोपिकाओं के मध्य कृष्ण दिखलाई देते थे। यह उनका आश्चर्यकारी कृत्य था।

'रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डितः।

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।

प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।।'[170]

इन्हीं सब कृत्यों के कारण जनता के मध्य में कृष्ण की लोक प्रियता बढ़ी और उनका अनुकरण होने लगा, यही नहीं उनकी लीला कथा के श्रवण मात्र से जनता का उद्धार भी होने लगा।

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूप विड़म्बनानि।

कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्ति मिच्छन्।।

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथा श्रवणकीर्तनचिन्तयैति।

तद्वाम दुस्तरकृतान्तजवपर्ग ग्रामाद वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्थ दर्थाः।। 171

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, रामशरण, शूद्रो का प्राचीन इतिहास, संस्करण–प्रथम, दिल्ली, 1979, पृष्ठ 279;

2. भागवत पुराण, 6–18–9, 11 ;

3– महाभारत, आदिपर्व, 2–383 ;

4. महाभारत शन्ति पर्व, 174–2 ;

5. महाभारत, वनपर्व, 94–4 ;

6. महाभारत शान्तिपर्व, 293–8 ;

7. महाभारत सभापर्व, 68–59 ;

8. मनुस्मृति ;

9. पराशर गीता, अध्याय 290 ;

10. ऋग्वेद, 6–1–5 ;

11. वही, 8–98–11 ;

12. वही, 7–88–6 ;

13. विष्णु पुराण, 1–9–57 ;

14. ब्रह्माण्ड पुराण, 2–22–18, 19 ;

15. विष्णु पुराण, 5–17–7 ;

16. वही, 2–10–19 ;

17. वही, 1–9–65 ;

18. वायु पुराण, 5–20 ;

19. विष्णु पुराण, 3–17–26 ;

20. विष्णु पुराण, 1–2–7, 12 ;

21. वायु पुंराण, 5–41 ;

22. ब्रह्माण्ड पुराण, 2–10–17

23. मत्स्य पुराण, 250—55 ;

24. वायु पुराण, 10, 60, 62 ;

25. ब्रह्माण्ड पुराण, 2—10—8 ;

26. वायु पुराण, 55—2 ;

27. वायु पुराण, 69—236 ; ब्रह्माण्ड पुराण, 3—7—359 ;

28, विष्णु पुराण, 2—11—11 ;

29. ऋग्वेद, 7—99—4 ;

30. वायु पुराण, 31—29 ;

31. वही, 31—37 ;

32. ऋग्वेद, 1—191—9 ;

33. विष्णु पुराण, 2—8—2, 5 ;

34. मत्स्य पुराण, 13—56 ;

35. विष्णु पुराण, 5—1—86 ;

36. वही, 5—1—85 ; ब्रह्माण्ड पुराण, 4—7—76 ;

37. महाभारत, विराट पर्व, 6—17 ;

38. विष्णु पुराण, 5—1—81 ;

39. मत्स्य पुराण, 157—16, 17 ;

40. वायु पुराण 9—84.

41. मत्स्य पुराण, 154—436 ;

42. वायु पुराण, 9—83 ;

43. विष्णु पुराण, 5—1—70, 81 ;

44. ब्रह्माण्ड पुराण, 4—36—57, 58 ; 4—37—3, 7 ; 4—29—79,80 ; 4—32—9, 13; 4—32—8,20 ;

45. भागवत पुराण, 1—3—1 ;

46. वही, 1–3–2 ;

47. वही, 1–3–6 ;

48. वही, 1–3–7 ;

49. वही, 1–3–9 से 22 तक ;

50. वही, 1–3–23 ;

51. वही, 1–3–24 ;

52. वही, 1–3–26 ;

53. वही, 1–3–27 ;

54. वही, 1–3–30 ;

55. वही, 1–3–31, 32 ;

56, वही, 1–3–33 ;

57. भागवत पुराण, 1–3–35 ;

58. वही, 7–11–8 से 12 तक ;

59. वही. 1–3–25 ;

60. वही, 12–3–15 ;

61. ऋग्वेद, 1–187–1 ; 10–92–2 ; तथा 10–21–3 ;

62. छान्दोग्य उपनिषद, 2–23 ;

63. भागवत महात्म्य, 1–48 ;

64. वही, 1–50 ;

65. वही, 2–15 ;

66. भागवत पुराण, 10–1–17 ;

67. वही, 10–1–22 ;

68. वही, 10–1–23 ;

69. वही, 10–1–24 ;

70. वही, 10—1—25 ;

71. वही, 10—3—9, 10 ;

72. वही, 10—5—15, 16 ;

73. वही, 10—6—13 ;

74. वही, 10—7—28 ;

75. वही, 10—8—36 ;

76. वही, 10—10—28, 42 ;

77. वही, 10—11—43 ;

78. वही, 10—12—34 ;

79. वही, 10—15—32 ;

80. वही, 10—15—36, 37 ;

81. वही, 10—16—32 ;

82. वही, 10—19—30 ;

83. वही, 10—19—12 ;

84. वही, 10—22—19, 20 ;

85. वही, 10—26—23 ;

86. वही, 10—26—28 ;

87. वही, 10—27—23 ;

88. वही, 10—28—5, 6 ;

89. वही, 10—29—14 ;

90. वही, 10—29—25 ;

91. वही, 10—34—15 ;

92. वही, 10—36—14 ;

93. वही, 10—37—8 ;

94. वही, 10—38—33 ;

95. वही, 10—43—14 ;

96. वही, 10—44—28 ;

97. वही, 10—44—38 ;

98. वही, 10—47—23 से 25 तक

99. वही, 10—47—37 ;

100. वही, 10—47—46 ;

101. वही, 10—50—31 ;

102. वही, 10—50—51, 52 ;

103. वही, 10—51—12 ;

104. वही, 10—72—47 ;

105, वही, 10—74—3, 4 ;

106. वही, 10—74—43 ;

107. वही, 10—77—36 ;

108. वही, 10—78—9 ;

109. वही, 10—78—12 ;

110, वही, 10—81—20 ;

111. वही, 10—81—33 ;

112. वही, 10—85—23 ;

113. वही, 10—30—20 ;

114. वही, 11—2—45 ;

115. वही, 11—2—46 ;

116. वही, 11—2—47 ;

117. वही, 11—2—48 ;

118. वही, 11–2–49 ;

119. वही, 11–2–53 ;

120. वही, 11–2–55 ;

121. वही, 11–3–3 ;

122. वही, 11–3–7 ;

123. वही, 11–3–16 ;

124. वही, 11–3–21 ;

125. वही, 11–3–31,

126. वही, 11–3–40 ;

127. वही, 11–3–44 ;

128. वही, 11–3–52 से 55 तक

129. फ्लीट, 'कार्पस इंस्क्रिप्सनम इण्डिकेरम, वाल्यूम II, पृष्ठ–71, 115–116, 131–132, 199–200, ;

130. महरौली का लेख ;

131. भागवत महात्म्य, 1–34 ;

132. ऋग्वेद, 3–62–10 ;

133. भागवत पुराण, 10–33–8 ;

134. वही, 10–8–37 ;

135. वही, 10–8–51 ;

136. वही, 10–9–18 ;

137. वही, 10–13–17 ;

138. वही, 10–13–19 ;

139. वही, 10–26–3 ;

140. वही, 10–24–24 ;

141. श्रीकृष्णकर्णामृत, 2—35 ;

142. भागवत पुराण, 10—33—17 ;

143. वही, 10—33—40 ;

144. विष्णु पुराण, 6—5—74 ;

145. भागवत पुराण, 2—5—37 से 42 तक ;

146. वही, 3—6—5 ;

147. वही, 3—6—8 ;

148. वही, 3—27—1 ;

149. वही, 3—29—1 से 34 तक ;

150. वही, 7—15—1 से 35 तक ;

151. वही, 11—11—1 ;

152. वही, 11—11—34 ;

153. वही, 11—11—48 ;

154. वही, 11—12—1, 2 ;

155. वही, 11—12—3, 4 ;

156. वही, 11—4—22 ;

157. विष्णु पुराण, 5—7—9 ;

158. वही, 5—7—4, 13, 20 ;

159. ब्रह्माण्ड पुराण, 3—71—241 ;

160. मत्स्य पुराण, 47—12 ;

161. भागवत पुराण, 10—1—22 ;

162. वही, 10—2—9 ;

163. वही, 10—3—1 ; 10—3—8 ;

164. वही, 10—3—23 ;

165. वही, 10–3–28 ;

166. वही, 10–3–45 ;

167. वही, 10–3–31 ;

168. कल्याण, संस्करण 1998, पृष्ठ 62 ;

169. भागवत पुराण, 10–33–37 ;

170. वही, 10–33–3 ;

171. वही, 10–90–49, 50 ;

पंचम अध्याय

"व्रत, त्योहार एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठान"

1अ- सांस्कृतिक दृष्टि से तीज-त्योहारों की परिभाषा एवं उनका वर्गीकरण।

2ब- तीज-त्योहारों के अनुपालन के उद्‌देश्य एवं उनका स्वरूप।

3स- भागवत पुराण में वर्णित व्रत, तीज-त्योहार तथा वैष्णव अथवा कृष्ण भक्ति से सम्बन्ध।

4द- वैष्णव तीज-त्योहारों को मनाये जाने की विधि और उसका धर्म से सम्बन्ध।

5य- धार्मिक अनुष्ठानों की परिभाषा तथा उनका सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों से सम्बन्ध।

6र- पौराणिक दृष्टि से धाार्मिक स्थानों का महत्व और उसकी यात्रा का प्रभाव।

7ल- भागवत पुराण में अपशकुन और शकुन का विचार।

अध्याय—5

"व्रत, त्योहार एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठान"

भागवत पुराण में व्रत तथा त्योहारों क वर्णन अत्यन्त ही संक्षेप में उपलब्ध होता है, इस पुराण की रचना ऐसे समय में हुई जब कि उस समय को हम रजनैतिक, समाजिक तथा धार्मिक अव्यवस्थ का समय कह सकते है। यह पुराण भक्ति भावना पर अधिक बल देता है, इसलिए व्रत तथा त्योंहारों का स्थान इसमें गौण हो गया हे। यह पुराण जब से रचा गया तब से अब तक हिन्दू धर्म व्यवस्था का प्रमुख अंग बना हुआ है, अतः धर्म के प्रमुख अंग व्रत, उपवास तथा त्योहारों की विशद छानबीन आवश्यक है।

1— सांस्कृतिक द्रष्टि से तीज त्योहारों की परिभाषा एवं उनका वर्गीकरण—

व्यक्ति ज़िस जीवन को जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यतीत करता है, वह केवल कालक्रमसे ही विभाजित नहीं है अपितु उसका विभाजन उसके द्वारा सम्पादित होने वाले कार्यों से भी होता है। वह अपना जीवन केवल अपने लिये नहीं जाता अपितु वह अपने जीवन को परिवार, जाति, समाज, राष्ट्र आदि के लिये जीता है तथा उसके कर्म के सामान्य स्वरूप को लोक व्यंवहार के नाम से जाना जाता है। यह लेक व्यवहार उसकी और उसके परिवार की संस्कृति कहलाती है। वह वर्णाश्रम व्यवस्था को अपना कर अपना जीवन व्यतीत करता है तथा सामाजिक संस्कारों के माध्यम से अपने जीवन को पवित्र बनाता है और समाज में लोक प्रियता प्राप्त करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक वह कम से कम सोलह संस्कारों का अनुपालन करता है। इस तरह से वह अपना नैतिक जीवन संसार में व्यतीत करता है और लोक प्रिय बन जाता है।

समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी धर्म का सदस्य होता है। धर्म उसके जीवन का वह स्वरूप है जो पुरूषार्थ से सम्बन्धित है और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार

भागों में विभाजित है। धर्म के अर्न्तगत वह अपना सम्पूर्ण जीवन किसी लौकिक शक्ति को समर्पित कर देता है, यह लौकिक शक्ति परमात्मा का वह स्वरूप है जो आज तक परिभाषित नहीं हो सका। इस परमात्मा को साकार और निराकार दो रूपों में स्वीकार किया जाता है तथा इसके सन्दर्भ में चर्चा वेदान्त, मीमांसा, सांख्य, चारवाक, वैशेषिक, न्याय दर्शन आदि के माध्यमों से की जाती है। इसके अतिरिक्त मानवों का विश्वस कुछ परिकल्पित देवतओं पर भी है, जिन्हें ईश्वरीय शक्ति का सहयक तथा उनके गण के रूप में मान्यता मिली हुई है। ये देवता सूर्य, वरूण, कुबेर, अग्नि, मारूति, प्रजापति, इन्द्र, विष्णु, गणेश, आदि है। इसके अतिरिक्त अनेक देवियाँ भी है जो सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी, पार्वती, काली, योगमाया, कात्यायनी, चामुण्डा चण्डी आदि के नाम से विख्यात है। ये देवियाँ भी परम् तत्व ई श्वर की सहयोगिनी है। भारतवर्ष में ईश्वर को तीन रूपों में देखा जाता है परमात्मा का पहला स्वरूप सृष्टि का सृजन करने वाला स्वरूप है, उसका दूसरा स्वरूप सृष्टि का पालनकर्ता स्वरूप है तथा इसका तीसरा स्वरूप सृष्टि का संहारक स्वरूप है। सृष्टि सृजनकर्ता के रूप में उसे ब्रह्मा के नाम से जान जाता है तथा सृष्टिपालक के रूप में उसे विष्णु के नाम से जना जाता है, और सृष्टि संहारक के रूप में उन्हें शिव के नाम से जाना जाता है। इसप्रकार से सम्पूर्ण श्रृष्टि का भार ब्रह्म, विष्णु और महेश्वरा के ऊपर निर्भर करता है। इसी प्रकार सृष्टि की तीन महत्वपूर्ण देवियाँ है, इसमें प्रथम देवी के रूप में सरस्वती को मान्यता मिली हुई है। यह ज्ञान की देवी है और मानवों को बुद्धि प्रदान करती है तथा उस बुद्धि के माध्यम से उचित, अनुचित, का ज्ञान प्राप्त करता है और बुद्धि के ही माध्यम से वह विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करता है। भारतवर्ष में दूसरी देवी लक्ष्मी देवी के नाम से जानी जाती है, यह धर्म तथा संसाधन की देवी है। इस संसार में धन तथा संसाधन के बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता, व्यवसाय, उद्योग, राज्य संचालन तथा किसी भी प्रकार के धार्मिक कृत्य बिना लक्ष्मी के संभावित नहीं हैं इसलिए यह मनुष्यों की दूसरी महत्व

पूर्ण देवी है। तीसरी महत्व पूर्ण देवी गौरी अथवा पार्वती है जो विभिन्न नामों से जनी जाती हैं यह देवी शारीरिक शक्ति और संगठन की देवी है, कोई भी व्यक्ति शारीरिक शक्ति और संगठन के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता है। यह दुर्गा और काली के रूप में व्यक्ति की सहायता करती है, जिससे वह महाशक्तिशाली बनता है। यदि किसी व्यक्ति को ये तीनों देवियाँ सहयोग करती है, तो वह महान ऐश्वर्यशाली और भाग्यशाली कहलाता है। धर्मशास्त्रों ने योगमाया और सरस्वती का सम्बन्ध ब्रह्मा से लक्ष्मी का सम्बन्ध विष्णु से तथा गौरी, दुर्गा, और काली का सम्बन्ध शिव से जोडा है। धर्मानुसार स्त्री और पुरूष शक्ति संयोजित होकर सृष्टि का सृजन और विकास करते है तथा कालक्रम के अनुसार उनका विनाश भी होता है। संसार स्थायी नहीं है और न संसार की कोई वस्तु स्थाई है, जीवन के दो शाश्वत पहलू जन्म और मृत्यु है तथा संसार और जीवन के स्वामी देवी देवता ही हैं। मनुष्य तो कुछ क्षण के लिए यहाँ आता है और उसके पश्चात वह अपने जीवन का परित्याग करके पुनः परमात तत्व में लीन हो जाता है।

संसार का हर प्राणी परमात्मा का ही अंश है और उसके शरीर में व्याप्त चेतना आत्मा ही परमात्मा है। परमात्मा के दो स्वरूप धर्म में ही दिखलायी देते हैं, पहला स्वरूप और मत अद्वैत वादियों का है जो एक ही ब्रह्म पर विश्वास करते हैं। दूसरा मत द्वैतवासियों का है जो परमात्मा और आत्मा दोनों के प्रथक स्वरूप को स्वीकार करते हैं, किन्तु दोनों को एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं मानते हैं। इसी प्रकार धर्म पर आस्था रखने वाले व्यक्ति परमात्मा को साकार और निराकार दो रूपों में मानते हैं तथा यह विश्वास करते हैं कि उनका कर्म दो भागों में विभक्त है, जिन्हें पाप और पुण्य के नाम से जाना जाता है। पाप मानव के वे कर्म है जो सर्वत्र निन्दनीय है तथा जिनकी प्रशंसा आसुरी प्रवृत्ति के लोग ही करते है और पापकर्म करने वालों को दुष्कर्मी, दुष्टात्मा और विधर्मी भी कहते हैं। दूसरे प्रकार के कर्म पुण्यकर्म कहलाते है जिन कर्मों को करने से अपनी आत्मा प्रसन्न हो और सम्पूर्ण समाज में उसकी प्रशंसा

की जाय उसे पुण्य कर्म कहते है मानव जीवन का उद्देश्य दूसरों की भलाई अर्थात पुरूषार्थ करना ही है जो पुण्य कर्मों के माध्यम से सम्पन्न होते हैं। हम पाप और पुण्य के माध्यम से कर्मफल का मूल्यांकन सुगति और दुर्गति तथा स्वर्ग और नरक की उपलब्धि के रूप में करते है। पुण्य कर्म करने वाला व्यक्ति सुगति को प्राप्त करता है और परलोक जाने के पश्चात उसे स्वर्गलोक और देवलोक की उपलब्धि होती है तथा मोक्ष प्राप्त होता है इसी प्रकार दुष्कर्म या पापकर्म करने वाला व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त होता है और मृत्यु के उपरान्त वह नरकगामी होता है, इसलिए व्यक्ति पापकर्म करने से डरता है तथा जप, तप, ज्ञान और दान को ही धर्म का स्वरूप मानता है।

हर व्यक्ति अपने–अपने आराध्य देव की उपासना करता है और उसके लिए ही अपने जीवन को समर्पित करता है। वह अपने आराध्य देव से सम्बन्धित समस्त उपासना नियमों का अनुपालन करता है और देवता को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति दृढ़ता पूर्वक जिन नियमों क अनुपालन करता है उन्हें व्रत कहते हैं, व्रत का मुख्य अर्थ है प्रतिज्ञा, यह व्रत निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं–

1– मानव कल्याण के लिए

2– पुण्य की उपलब्धि के लिए

3– अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए

4– मानव जीवन को सफल बनाने के लिए

वेदोक्तेन प्रकारेण कृछचान्द्रायणादिभः।

शरीर शोषणं यत्तन्तप इत्युच्यते बुधै।।[1]

जिसका अर्थ है कि वेदों में जिस प्रकार कहा गया है व्रत और उपवास के नियम पालन से शरीर को तपाना ही तप है।

व्रत, तीज–त्योहारों का वर्गीकरण–

व्रत, तीज–त्योहारों का वर्गीकरण व्यक्ति की उपासना पद्धति के अनुसार

किया जाता हैं इन्हें कायिक, वाचिक, तथा मानसिक के रूप में प्रथम विभाजन के अर्न्तगत रखते हैं। द्वितीय विभाजन के अर्न्तगत, नित्य नैमित्तिक, काम्य एक भुक्त, अपाचित, मितभुक्त, चान्द्रायण और प्रजापत्य के रूप में विभाजित किया जा सकता है। व्रत और उपवास में कोई विशेष अन्तर नहीं है, अन्तर केवल यह है कि व्रत में व्यक्ति भोजन कर सकता है और उपवास में उसे भोजन का परित्याग करना पडता है। इनके तीन भेद हैं–

1– शस्त्राघात, मर्माघात और कार्यहानि आदि जनित हिंसा के त्याग से कायिक।

2– सत्य भाषण व प्राणीमात्र में निर्वैर रहने से वाचिक।

3– मन के शान्त रखने की दृढता से मानसिक व्रत होता है।

इनके अतिरिक्त पुण्य संचय के लिए और पाप के विनाश के लिए नित्य और चान्द्रायण व्रत किए जाते है। इसके अतिरिक्त सुख प्राप्त करने के लिए नैमित्तिक व्रत किए जाते हैं।

व्रत के प्रकार– धर्म शास्त्र में व्रत के निम्न प्रकार उपलब्ध होते हैं–

(1) एक भुक्त– इस व्रत के अर्न्तगत व्यक्ति एक बार ही भोजन ग्रहण करता है इसके तीन रूप हैं स्वतन्त्र, अन्यांग और प्रतिनिधि। जब व्यक्ति आधा दिन व्यतीत होने पर भोजन करता है तो उसे अन्यांग कहते है। जब व्यक्ति आगे–पीछे भोजन करता है तो उसे प्रतिनिधि कहते हैं।

(2) नक्त– यह व्रत रात में किया जाता है, सन्यासी और विधवा के लिए यह निर्देश हे कि वह इस व्रत का पालन सूर्योदय तक करे।

(3) अयाचित– अयाचित व्रत के अर्न्तगत व्यक्ति बिन कुछ माँगे जो मिल जाय उस पर गुजारा करे, वह भेजन किसी भी अवसर में कर सकता है। मितभुक्त के अर्न्तगत वह केवल भोजन के दस ग्रास ले।

(4) चान्द्रायण– यह व्रत पापों से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है, यह व्रत

चन्द्रकला की भाँति घटता–बढ़ता रहता है। यह व्रत शुक्ल पक्ष की परीवा(प्रतिपदा) को प्रारम्भ होता है और अमावश्या के दिन इसका अन्त होता है। इसमें प्रथम दिन एक ग्रास, इस प्रकार रोज एक–एक ग्रास भोजन बढ़ता है और धीरे–धीरे इसी क्रम से भोजन घटता भी है तथा अमावश्या के दिन वह निराहार व्रत करता है।

(5) प्राजापत्य व्रत– यह व्रत बारह दिन का होता है, जिसमें तीन दिन तक बाइस ग्रास भोजन करना पडता है और तीन दिन तक छब्बीस ग्रास भोजन करना पडता है व तीन दिन तक बिल्कुल निराहार रहना पडता है।

(6) मास व्रत– यह प्रत्येक मास में कुछ दिन, पक्ष, तिथि वार और नक्षत्र के अनुसार किए जाते हैं, इसमें शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनों के व्रत शामिल है। मुख्य रूप से चतुर्थी, एकादशी और आमवश्या व सूर्य, सोम, मंगल शुक्र तथा शनि के व्रत लोग रहते है। इसी प्रकार श्रवण, अनुराधा, रोहिणी, भद्रा आदि नक्षत्रों में भी लोग व्रत रहते है।

व्रत के अधिकारी–

जो व्यक्ति भारतीय संस्कृति में विश्वास करते हैं, वर्णाश्रम धर्म का पालन करते है, निष्कपट, निर्लोभ और सत्यवादी है। सम्पूर्ण प्राणियों का हित चाहते है, वेद अनुयायी हैं, निश्चय करके कर्म करने वाले हैं वे व्रत के अधिकारी है।

'निजवर्णाश्रमाचार निरतः शुद्ध मानसः।

अलुब्ध सत्यवादी च सर्व भूत हिते रतः।।[2]

ये व्रत चारो वर्ण के लोग कर सकते है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी को इनके पालन के निर्देश दिये गये है। स्त्रियों के लिए धर्मग्रन्थों में कोई भेद भावपूर्ण नीति नहीं है, उनके लिए यह कहा गया है कि वे केवल सच्चे ह्रदय से पति की सेवा करें यह उनके लिए यज्ञ, धर्म तथा उपासना है।

'नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञों न व्रतं नाप्युपोषणम्।

भर्तृशूश्रूषयैवैता लोकानिष्ठान् व्रजन्ति हि।।'

व्रत का शुभारम्भ–

धर्म शास्त्रों में यह उल्लेख मिलता है कि व्रत का शुभारम्भ श्रेष्ठ समय में किया जाना चाहिये। जब वृहस्पति और शुक्र ग्रहों का अस्त हो तथा अस्त होने के पहले तीन और उदय होने के बाद के तीन दिन को व्रत आरम्भ नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन दिनों में वृद्धत्व व बालत्व दोष होता है। यदि कोई व्रत कर रहा है तो उसका समापन भी इस समय न करे। व्रत के आरम्भ में यदि सोम, शुक्र, वृहस्पति और बुधवार है तो व्रत का प्रतिकल अच्छा होगा, इसी प्रकार अश्वनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, उत्तरा, अनुराधा, और रेवती नक्षत्रों में किये जाने वाले व्रत शुभ होते है।

व्रत प्रारम्भ किए जाने की विधि–

भारतीय धर्म में व्रत प्रारम्भ करने के पहले गणपति, मात्रका और पंचदेव के पूजन का विधान है। इसमें जिस देवता का व्रत किया जा रहा हो उसकी स्वर्ण अथवा मृतिका की मूर्ति बनवाकर पंचोपचार, दसोपचार, षोडसोपचार पूजन करे तथा मास, पक्ष, तिथि वार और नक्षत्र में जब इष्ट देव का वास हो उस समय उनका व्रत करें। व्रत की अवधि पूर्ण होने पर उसका उद्यापन करें, बिना उद्यापन के कोई व्रत फलीभूत नहीं होता है। व्रत रखने के समय व्यक्ति क्रोध, लोभ, मोह, तथा आलस्य न करें। यदि व्रत को अधूरा छोड दें तो तीन दिन तक अन्न का त्याग करके पुनः व्रत प्रारम्भ करें।

'क्रोधात् प्रमदाल्लोभाद् वा वृतभंगो भवेद् यदि।

दिनत्रयं न भु०जीत................. ।।[3]

'असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूल भक्षणात्।'

उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापच्च मैथुनात्।।[4]

व्रतों के सन्दर्भ में भविष्य पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि बिना दुर्गणों को त्यागे व्रत का कोई महत्त्व नहीं है। जो व्यक्ति व्रत करना चाहता है उसे चोरी आदि पापकर्म का परित्याग करना होगा, उसके स्थान पर क्षमा, दया, दान, पवित्रता,

इन्द्रिय निग्रह, देव पूजा, हवन आदि करने होंगे।

उसे जल, फल, फूल, दूध, हवन सामग्री, ब्राह्मण की इच्छा, औषधि, गुरूओं के वचन का पालन करना होगा इससे व्रत खण्डित नहीं होगा। खीर, अन्न, सत्तू, शाक, गौ दुग्ध, दही, घी, आम, मूल, नारंगी, और केले का फल व्रत में खाये जा सकते हैं व्रत में व्यक्ति शरीर और वस्त्र दोनों साफ रखे, यदि वह व्रत के समय कहीं घूमकर आया हो तो उसे दुबारा आचमन करना चाहिए। यदि आचमन के लिए जल का आभाव हो तो दाहिना कान पकडकर प्रायश्चित करें तथा यदि क्रोध आये, बिल्ली–चूहे का स्पर्श हो जाये अथवा किसी का मजाक उडाये और झूठ बोले तो वह जल का स्पर्श करे। उपवास के दिन या श्राद्ध के दिन दातून न करें, आम के पत्ते, व जल से दाँतों को साफ करें तथा व्रत के दिन बैल, ऊँट, गधे आदि की सवारी न करे। लम्बी अवधि तक चलने वाले व्रतों में जन्म मृत्यु का शूदक नहीं लगता। यदि लम्बा व्रत करने वाली स्त्री व्रत के मध्य में रजस्वला हो जाय तो उसका भी कोई प्रभाव नहीं पडता।

व्रत से उपलब्ध होने वाले पुण्य–

व्रत करना लोक कल्याण के लिए लाभकर है, यह शरीर और आत्मा दोनों को पवित्र करता है। व्रतों को करने से व्यक्ति को तीर्थ यात्रा का फल मिलता है। यदि कोई ब्रह्मचारी अध्ययन काल में व्रत करता है तो उसे श्राद्ध का फल प्राप्त होता है और उसे व्रत से पुण्य लाभ होता है व पाप सदैव के लिए दूर भागते है।

'व्रते च तीर्थेअध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः।

परान्नभोजनाद् देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्।।'

अर्थात व्रत, तीर्थ तथा अध्ययन काल मे जिसका अन्न खाया जाता है उसी को फल प्राप्त होता है।

व्रत के प्रतिनिधि–

व्यक्ति को आपत्ति दूर करने के लिए, देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए और

पुण्य लाभ करने के लिए व्रत स्वयं करने चाहिये। यदि किसी प्रकार की आपत्ति आ जाय और शरीर व्रत करने में असमर्थ हो जाय उस स्थिति में पति, पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र, पुरोहित, भाई और मित्रसे व्रत कराया जा सकता है। यदि कोई भी उपलब्ध न हो तो ब्राह्मण से व्रत करायें।

व्रत के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द— निम्नलिखित शब्द व्रत के लिए प्रयुक्त होते हैं—

(1) पंचदेव— सूर्य, गणेश, विष्णु, शिव और शक्ति।

(2) पंचोपचार— गंध, पुष्प, धूप, दीप, और नैवेद्य।

(3) कालत्रय— प्रातःकाल, मध्यकाल, और सायंकाल।

(4) वेद— ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद और अथर्ववेद।

(5) वेदषडंग— कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, शिक्षा और ज्योतिष।

(6) चार वर्ण— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

(7) पंचनदी— भागीरथी, यमुना, सरस्वती, गोदावरी और नर्मदा।

(8) पंचपल्लव— पीपल, गूलर, अशोक, आम और वट।

(9) पंचसुष्प— चमेंली, आम, शमी, पद्म, और कनेर।

(10) पंचगन्ध— चूर्ण किया हुआ, घिसा हुआ, जलाकर निकला हुआ, रथ से मथा हुआ प्राणी के अंग से निकला हुआ और कस्तूरी ये पाँच गंध है।

(11) पंचगव्य— ताँबे के वर्ण का गौमूत्र, लाल गाय का गोबर, सफेद गाय का दूध ा, काली गाय का दही और नीली गाय का घी ये पंचगव्य है।

(12) पंचामृत— गाय के दूध का दही, दूध, घी, चीनी, और शहद ये पंचामृत है।

(13) पंचरत्न— सोना,हीरा, नीलमणि, पद्मराग और मोती।

(14) षठकर्म— स्नान, संध्या, तप, होम, पठन—पाठन, देवार्चन और अतिथि सत्कार।

(15) षडंग— ह्रदय, मस्तक, शिखा, दोनों नेत्र, दोनों भुजाएँ और दोनों हाथ।

(16) **सप्तर्षि**– कश्यप, भरद्वाज, गौतम, अत्रि जमदग्नि, वशिष्ठ, और विश्वामित्र।

(17) **सप्तगोत्र**– माता, पिता, पत्नी, बहन, पुत्री बुआ और मौसी।

(18) **सप्तधान**– जौ, गेहूँ, धान, तिल, कामिनी, श्यामक और देवधान्य।

(19) **सप्तधातु**– सोना, चाँदी, ताँबा, आकूर्ट, लोहा, रांगा, और शीशा।

(20) **नवरत्न**– माणिक, मोती, मूँगा, सुवर्ण, पुखराज, हीरा, इन्द्रनील , गोमेद और वैदूर्य मणि।

(21) **नमस्कार**– धार्मिक ग्रन्थों में नमस्कार के कुछ नियम बनाये गये है जो व्यक्ति दूर हों जल में तैर रहा हो, सडक में दौड रहा हो, धन से घंमडी हो, स्नान कर रहा हो , मूर्ख हो और अपवित्र हो उसे व्रतशील व्यक्ति अभिवादन न करे।

यदि सम्पूर्ण धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो व्रत को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। जो व्यक्ति किसी मनोकामना और धार्मिक उद्देश्य के संकल्प के साथ किसी दिन विशेष तिथि विशेष, पर्व विशेष, और देवता विशेष, के लिए द्रढ़ प्रतिज्ञ होकर पवित्रता के साथ भोजन का परित्याग करके अनुष्ठान करता है उस धार्मिक अनुष्ठान को व्रत कहते हैं।

तीज–त्योहार–

तीज, त्योहार का अनुपालन किसी देवता, किसी घटना तथा मास के विशेष तिथिक्रम को सामूहिक रूप से मनाने वाले आयोजन को कहा जा सकता है। तीज, त्योहार एक व्यक्ति अथवा एक परिवार पृथक ढंग से नहीं मानता बल्कि इसे सामूहिक रूप से मनाया जाता है। तीज, त्योहार मनाने के निम्न कारण एवं परिस्थितियाँ होती है–

1– जन्म से सम्बन्धित– जो महापुरूष भारतवर्ष में किसी भी क्षेत्र में उत्पन्न हुए और उन्होंने भारतीय धर्म में परमात्मा एवं महापुरूष के रूप में मान्यता प्राप्त कर ली है। उनके जंन्म दिन को हम बड़े ही श्रद्धा के साथ एक पर्व के रूप में सामूहिक रूप से मनाते है।

2– मृत्यु स्मृति दिवस– जब कोई महापुरूष महान सेवाएँ करके विश्व का परित्याग करके चला जाता है तो उसकी स्मृति में सामूहिक रूप से तीज, त्योहार का अयोजन किया जाता है।

3– घटना विशेष– जब कोई विशिष्ट घटना घटती है और उस घटना का समाधान किसी महापुरूष के द्वारा किया जाता है तो उस घटना की स्मृति में तीज–त्योहार का आयोजन होता है।

4– विजय दिवस– जब कोई भी महापुरूष अथवा देवता आसुरी शक्ति को परास्त करता था, उस विजय दिवस को उस समय से तीज त्योहार के रूप में मनाया जाने लगा।

5– मास विशेष– भारतीय संस्कृतियों में महीनों और ऋतुओं का विशेष महत्व है, मुख्य रूप से कार्तिक, चैत्र और फाल्गुन मास के तीज–त्योहार ऋतुओं से सम्बन्धित तीज–त्योहार हैं। इनको भी बडे धूम धाम से मनाया जाता है।

तीज– त्योहार और व्रत में अन्तर–

तीज–त्योहार और व्रत दोनों का सम्बन्ध धर्म से है किन्तु इनमें स्पष्ट अन्तर दिखयी देता है। जब कोई व्यक्ति बिना किसी के मदद के धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन संकल्प के साथ करता है और उसे अकेला ही पूरा करता है तो वह व्रत की श्रेणी में आता है जैसे एकादशी व्रत, पूर्णमासी व्रत, चातुर्मास व्रत, गणेश चतुर्थी आदि। जब कोई आयोजन समाज के लोग मिलजुलकर किसी देवता, घटना तथा अन्य कारणों से मनाते है तो उसे तीज–त्योहार अथवा पर्व कहते है। जैसे नवरात्र, रामनवमी, शिवरात्रि, विजयदशमी, होली आदि।

तीज–त्योहारों और व्रतों का महत्व–

तीज त्योहारों और व्रतों का धार्मिक महत्व अति प्राचीनकाल से है, व्यक्ति अपने उपास्य देवकी स्मृतियों और उनकी उपलब्धियों के अवसरों को बडी धूमधाम से मनाते है। जहाँ इन तीज–त्योहारों से भारतीय संस्कृति का रूप झलकता है, वहीं

धार्मिक दृढ़ता और देव विशेष के प्रति श्रद्धा विशेष दिखाई देती है। व्रतों में भी व्यक्ति शरीर और वचन से पवित्र होकर विशेष कष्ट सहन करता हुआ देवता विशेष के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करता है। इससे हमें यह ज्ञान उपलब्ध होता है कि हम अति प्राचीनकाल से धार्मिक नियमों का अनुसरण करते रहे है।

धार्मिक भावनाओं के अतिरिक्त व्रत तथा तीज त्योहारों ने कई विशिष्ट कलाओं को जन्म दिया है जिनको देखकर भारत की लोक संस्कृति के सन्दर्भ में ज्ञान उपलब्ध होता है। तीज–त्योहारों में लोक नृत्य, लोक नाट्य लोक संगीत तथा लोक कलाओं को स्थायित्व प्रदान किया गया है। दीवाली, दशहारा, और होली व कजलियों के पर्व पर इन लोक कलाओं के दर्शन मूल रूप में दिखलाई देते है।

तीज–त्योहारों ने व्यक्तियों को आर्थिक लाभ भी पहुँचाया है, होली के त्योहार में रंग बेचने वाले और बनाने वाले तथा पिचकारी बेचने व बनाने वाले लाभान्वित होते है।

रक्षाबन्धन में ब्राह्मण और रक्षासूत्र बनाने वाले लाभान्वित होते है। इसी प्रकार दीपावली के अवसर पर कुम्भकारों, तेलियों, बेहनों तथा भरभूँजों को आर्थिक लाभ होता है। इसके अतिरिक्त लघु उद्योग से जुडे हुये व्यक्ति भी आयोजित होने वाले मेलों में अपना सामान बेचने को ले जाते है। इस तरह से यह तीज–त्योहार जिनमें विविध प्रकार की वस्तुओं का प्रयोग होता है, उन वस्तुओं के निर्माताओं को इनसे आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

2– तीज–त्योहारों के अनुपालन के उद्देश्य एवं उनका सम्बन्ध–

तीज–त्योहारों अथवा पर्व भारतीय संस्कृति के प्राण है, यदि आनन्द मनाने के ये अवसर न हों तो भारतीय संस्कृति निष्प्राण लगेगी। ये तीज–त्योहार व्यक्तियों के सम्मुख संस्कृति का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करते है। जिन्हें देखकर व्यक्ति भारतीय संस्कृति से प्रभावित होता है और वह इसके महत्व को भली प्रकार समझता है। ये तीज त्योहार भारतीय संस्कृति को गरिमा मण्डित करते हैं तथा इनको मनाने

के निम्न उद्देश्य है–

1– संस्कृति संरक्षण का उद्देश्य–

हमारी भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है, कोई भी इतिहासकर इस बात के सुनिश्चित साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर पया कि भारतीय संस्कृति का शुभारम्भ कितने वर्ष पूर्व हुआ। भारतीय संस्कृति जो वर्तमान समय में प्राणवान बनी हुई है, उनका मूल कारण वह वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था है जिसका अनुपालन हम आज भी कर रहे हैं तथा आज भी हम अपने जातिगत कर्मों और संस्कारों का परित्याग नहीं कर पाते। हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को व्रत, तीज–त्योहार मनाकर संरक्षित करते हैं और युगों से इन तीज–त्योहारों को मनाते चले आ रहे हैं। इन तीज–त्योहारों के माध्यम से हमने अपने समाज, धर्म, लोक संस्कृति, और लोक कला को संरक्षित किया है। शासन–सत्ता और समय के परिवर्तन के साथ तीज –त्योहारों के मनाने के ढंग में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है किन्तु फिर भी इनमें मौलिकता बनी हुई है।

2– महापुरूषों की स्मृतियाँ जीवित रखने का उद्देश्य–

हम तीज–त्योहार किसी न किसी महापुरूष की स्मृति में मनाते हैं तथा उन्हें मरणोपरान्त देवता के रूप में स्वीकार करते है। इन महापुरूषों ने संसार में अवतरित होकर मानव संस्कृति की रक्षा की, दुष्कर्मियों से समाज को बचाया और धर्म की स्थापना की थी। उनके लिए रामायण, महाभारत तथा अट्ठारह पुराणों की रचना की गयी। इसलिए हम उनके जीवन से सम्बन्धित विशेष दिवसों को तीज–त्योंहारों के रूप मे मनाते हैं और उनकी स्मृतियों को जीवित बनाये रखते है। भगवान श्रीराम, कृष्ण आदि को जन्म लिये हुए हजारों वर्ष व्यतीत हो गये किन्तु उनसे जुडे हुए तीज–त्योहारों रामनवमी, विजयदशमी, कृष्ण जन्माष्टमी, दीपावली की परीवा (प्रतिपंदा) आज भी हम धूम धाम से पर्व के रूप में मनाते है।

3– ऐतिहासिक घटनाओं की स्मृति बनाये रखने के उद्देश्य से–

हम तीज–त्योहार कभी–कभी ऐतिहासिक घटनाओं की याद ताजा बनाये रखने के लिए भी मनाते हैं। उदाहरणार्थ रक्षा बन्धन का त्योहार जो भाई और बहनों के प्रेम को सुदृढ़ बनाता है और समाज पर यह जोर देता है कि वह ब्राह्मण जैसे बुद्धिजीवियों को संरक्षण प्रदान करे। वहीं वह ऐतिहासिक घटना की याद भी ताजा करता है, रक्षा बन्धन के पावन त्योहार पर दिल्ली के सम्राट पृथ्वी राजचौहान ने चन्देल शासकों परआक्रमण किया था। इसलिए महोबा और उसके आस–पास के क्षेत्रों में रक्षाबन्धन का त्योहार रक्षा बन्धन के दिन न मनाकर दूसरे दिन जब कजेलियाँ सरोवरों में प्रवाहित की जाती है उस दिन मनाया जाता है। दूसरी स्मृति राजस्थान की रानी कर्णावती की है, जिसने मुगल सम्राट हुमायूँ को राखी भेजकर अपने राज्य की रक्षा की थी। इस प्रकार ये तीज–त्योहार ऐतिहासिक घटनाओं को ताजा बनाए रखने के लिए मनाये जाते हैं।

4– आर्थिक उद्देश्य–

तीज–त्योहारों के मनाने का उद्देश्य जीविका उपार्जन से भी जुडा हुआ है। मुख्य रूप से ब्राह्मण वर्ग तीज–त्योहारों के अवसर पर धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण करता रहा है, जिससे उसको आर्थिक लाभ होता है। मुख्य रूप से पितर पक्ष, एकादशी, पूर्णमासी, आमावस्या, मकर सक्रांन्ति, सकठ गणेश, कार्तिक पूजन तथा नवरात्रि आदि के अवसर पर ब्राह्मणों को विशेष दान उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त कुम्भकार, तेली, भुर्जी, वैश्य, बेहने, पटवा, आदि जातियों को भी आर्थिक लाभ तीज–त्योहारों से होता है। इस अवसर पर जहाँ मेलों का आयोजन होता है वहीं कुटीर उद्योग से जुडे हुए उद्यमी एवं अन्य व्यवसायी वर्ग के लोग आर्थिक उद्देश्य से अपना सामान इन स्थलों पर बेचने ले जाते है और अपना लाभ कमाते है। इन मेलों से उपभोक्ताओं को भी पर्याप्त लाभ होता है , जो समान व्यक्तियों के उपयोग का होता है वह मेले में उपलब्ध होता है जिन्हें व्यक्ति खरीदकर सन्तुष्ट होता है।

5— लोक कलाओं के संरक्षण का उद्देश्य—

हम अपनी लोक संस्कृति को संरक्षित रखना चाहते है, इसलिए तीज—त्योहारों के अवसर पर तरह— तरह के सांस्कृतिक आयोजन करते है। जिनमें लोक, नाट्य लोक नृत्य, लोक संगीत तथा लोक कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। ऐसे लोक वाद्य और नटों के प्रदर्शन जो सामान्य रूप से देखने को नहीं मिलते, वे मेलों के मााध्यम से हमें देखने को आसानी से मिल जाते है। इस अवसर पर विविध प्रकर की वेशभूषा, आभूषण तथा अस्त्र शस्त्र भी देखने के मिलते हे। इससे यह प्रतीत होता है कि हमारे तीज—त्योहार, लोक कलाओं का संरक्षण करते है और इसी के कारण हमारा साँस्कृतिक इतिहास भी आज तक जीवित है तथा अन्य क्षेत्रों से भिन्न है।

5— सामाजिक समन्वय का उद्देश्य—

तीज—त्योहारों के अवसर पर हमें उन लोगों से मिलने का अवसर उपलब्ध होता है जिनसे हम आसानी से नहीं मिल पाते। तीज—त्योहारों में व्यक्तियों का एक समूह उत्सव स्थल पर एकत्र होता है, उनमें से कुछ हमारे नजीदीकी रिश्तेदार भी होते है। जिनसे हमारी भेंट तीज—त्यौहार स्थल पर हो जाती है। तीज-–त्योहारों, सामाजिक सहायोग और समन्वय की भावना पर ही निर्भर करते हैं। इनसे लोक व्यवहार में वृद्धि होती है, सामाजिक सम्बन्ध सुदृढ़ होते है तथा नये लोगों से हमारे परिचय होते है। इस प्राकर मेला या तीज—त्योहार सामाजिक समन्वय बनाए रखने के उद्देश्य से आयोजित होते हैं।

तीज त्योहारों का स्वरूप— तीज त्योहारों को हम सर्वप्रथम उनकी व्यापकता के आधार पर विभाजित करते है—

1— राष्ट्रीय स्तर के तीज त्योहार—

कुछ त्यौहार राष्ट्रीय स्तर के हैं जो सम्पूर्ण भारतवर्ष में आयोजित होते है ये त्योहार होली, रक्षाबन्धन और दीपावली आदि है इनका आयोजन भारतवर्ष के प्रत्येक क्षेत्र में होता है, यद्यपि इनकों मनाये जाने का ढंग क्षेत्रीय संस्कृति में भिन्नता

होने के कारण अलग अलग है। कलकत्ता में विजयदशमी और नवरात्रि का त्योहार वैष्णवों के द्वारा आयोजित होते हैं इसी प्रकार कर्नाटक तथा दक्षिण भारत में विजयदशमी का त्योहार अलग ढंग से आयोजित होता है। रक्षाबन्धन दीपावली और होली मनाने की भी अलग अलग परम्परायें है।

2— क्षेत्रीय तीज त्योहार—

बहुत से तीज त्योहार ऐसे होते हैं जिनका आयोजन सम्पूर्ण भारतवर्ष में न होकर किसी एक प्रान्त अथवा किसी एक क्षेत्र में होता है। उदाहरणार्थ बिहू का त्योहार केवल आसाम में मनाया जाता है और पोंगल का त्योहार केवल केरल में, इसी प्रकार वैशाखी का त्योहार केवल पंजाब और हरियाणा में मनाया जाता है। इसी प्रकार कारसदेव, दूल्हा देव और हरदौल से सम्बन्धित तीज त्योहार केवल बुन्देलखण्ड में मनाये जाते है।

3— स्थानीय तीज त्योहार—

कुछ तीज त्योहार ऐसे होते है जो स्थान विशेष में ही सम्पन्न होते है उनका सम्बन्ध राष्ट्र और प्रान्तों से नहीं होता। उदाहरणार्थ— कर्वी जनपद के चित्रकूट का अमावस्या मेला, बाँदा जनपद के कालिंजर का कार्तिक पूर्णिमा मेला तथा हमीरपुर जनपद का भरूवा सुमेरपुर का तीजा मेला। ये मेले और तीज त्योहार स्थानीय जनता द्वारा आयोजित किये जाते हैं जो क्षेत्रीय विशेषता लिये हुये होते है। इन तीज त्योहारों में स्थानीय लोक संस्कृति की झलक देखने को मिलती है।

4— सम्प्रदायगत तीज त्योहार—

मुख्य रूप से हमारे तीज त्योहार सम्प्रदायों के आधार पर विभाजित होते है। शैव सम्प्रदाय से सम्बन्धित तीज त्योहार महाशिवरात्रि, तीजा, श्रावण, मास की नागपंचमी तथा मकर संक्रान्ति आदि है। इसी प्रकार शक्ति सम्प्रदाय के लोग वर्ष में दो बार नवरात्रि का आयोजन करते है और विविधप्रकार की देवियों की उपासना विविध अवसरों पर करते है इनके लिये अनेक आयोजन तीज त्योहारों में होते है।

मुख्य रूप से मैहर, विन्ध्याचल, तथा अन्य शक्ति स्थलों में नवरात्रि के अवसर पर पर्व का भव्य रूप देखने को मिलता है। इसी प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय के लोग रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, एकादशी, पूर्णमासी, कार्तिकमास, वामनद्वादशी, दीपावली आदि तीज–त्योहार को बड़े धूमधाम से अति प्राचीन काल से मना रहे है। इस प्रकार हम देखते है कि हमारे तीज–त्योहार अति प्राचीन काल से विभिन्न सम्प्रदायों के अनुपालन के कारण अलग विभाजित है

5– जातिगत तीज त्योहार–

कुछ तीज त्योहार ऐसे भी है जिनका सम्बन्ध जाति विशेष से है। ये तीज त्योहार दूसरी जातियों में नहीं होते जैसे हरिजन और आदिवासी लोग कर्मादेव तथा ग्रामीण देवताओं की पूजा करते है ये लोग मसान बाबा, बरमदेव आदि के उपासक होते है और निश्चित स्थान व निश्चित तिथि में इनकी पूजा करते है। इसी प्रकार कुल देवी और कुलदेवता की पूजा प्रत्येक जाति में अपने अपने कुल देवता के अनुसार की जाती है। अनेक तीज त्योहार ऐसे होते है जिनका अनुसरण जाति विशेष के लोग करते हैं अन्य जातियाँ उनका अनुसरण नहीं करती ।

लिंग भेद के अनुसार तीज त्योहारों का विभाजन–

हमारे तीज त्योहार बहुत से ऐसे भी हैं जो लिंग भेद के अनुसार विभाजित है। हम इन्हें निम्न रूपों में विभाजित कर सकते है।–

1– संयुक्त तीज त्योहार– भारतवर्ष में अधिकांश तीज त्योहार ऐसे है जिन्हें स्त्री पुरूष दोनों मिलकर के मनाते है दशहरा, दीपावली, होली, रक्षाबन्धन आदि तीज त्योहार संयुक्त रूप से मनायें जाते है इनके लिये कोई विभाजन रेखायें नहीं खीचीं गयी।

2–स्त्रियों के लिए तीज–त्योहार– कुछ तीज त्योहार ऐसे है जो सिर्फ स्त्रियों के लिए ही बने है। इन व्रतों को पुरूष नहीं करते। उदहरण के लिए तीजा का व्रत केवल स्त्रियाँ रहती है। इसी प्रकार संतान सप्तमी, महालक्ष्मी, सकठगणेश

आदि त्योहार केवल स्त्रियों के लिए निर्मित है।

भागवत पुराण में पुंसवन व्रत का उल्लेख मिलता है, यह व्रत एकवर्ष का होता है। इसे संतान प्राप्ति की अभिलाषा के लिए स्त्रियाँ रहा करती थी। भागवत पुराण

'सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम्।

धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः।।[5]

में ही यह उल्लेख मिलता है कि कृष्ण के युग में कात्यायनी देवी की पूजा मार्गशीर्ष माह में ब्रज की औरतें किया करती थी। इस अवसर में वह कात्यायनी देवी की बालू की मूर्ति बनाकर देवी की विभिन्न नामों से पूजा करती थी। इस प्रकार वे देवी से युवास्था में योग्य पति पाने की इच्छा व्यक्त करती थी।

'हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रज कुमारिकाः।

चेरूर्हविष्यं भु०जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्।।

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदिते अरूणे।

कृत्वा प्रतिकृतिं देवी मानर्चुर्नृप सैकतीम्।।[6]

3— पुरूषों के तीज—त्योहार— अनेक तीज—त्योहार ऐसे थे जो पुरूष स्वतः सम्पन्न करते थे तथा स्त्रियों का उनमें भाग लेना वर्जित था। ब्रह्मचर्य से जुडे हुए तीज—त्योहारों में स्त्री दर्शन अशुभ मान जाता था, सन्यासियों द्वारा आयोजित तीज—त्योहारों में भी स्त्रियों को भाग लेने की अनुमति नहीं थी। प्राचीन काल में हनुमान की मूर्ति को स्पर्श करने का अधिकार केवल पुरूषों को ही था, इसी प्रकार यज्ञोपवीत आदि संस्कार केवल पुरूषों के लिए थे।

काल के अनुसार तीज—त्योहारों का विभाजन—

कालान्तर में ज्योतिषाचार्यों एवं धर्मज्ञों ने विभिन्न प्रकार के तीज—त्योहारों को मनाने तथा उनकी विभिन्न प्रकार की क्रिया विधि के अनुपालन से सम्बन्धित नियम प्रतिपादित किए तथा इन तीज—त्योहारों को सौर सम्वत् पंचाग में प्रतिपादित तिथियों तथा नक्षत्रों के साथ जोडा गया। भागवत पुरण में इन तीज त्योहारों का

वर्णन उपलब्ध नहीं होता है परन्तु इनकी व्यापकता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि इन वार्षिक तीज–त्योहारों का प्रचलन तत्कालीन समय में रहा होगा। इन तीज त्योहारों को काल के अनुसार निम्नरूपों में विभाजित किया गया है–

चैत्रमास के तीज–त्योहार– चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा नव सम्वत्सर के रूप में मनायी जाती है, इस दिन व्यक्ति नित्य कर्मो से निवृत्त होकर नये वस्त्र धारण करता है और एक पवित्र चौकी पर सफेद वस्त्र विछाकर उस पर हल्दी से रंगे हुए चावलों का अष्टदल कमल बनाता है तथा ब्रह्मा का आवाहन करता है और इस मन्त्र का उच्चारण करता है–

'ओऽम् भूभुर्वः स्वः संवत्सराधिपतिमावाहयामि पूजयामि' ।'

2– **नवरात्रि व्रत**– चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक नौ देवियों की स्मृति में यह त्योहार मनाया जाता है। इस अवसर पर स्त्रियाँ और पुरूष नौ दिनों तक उपवास करते हैं देवी मूर्ति की स्थापना करते हैं तथा अन्तिम दिन हवन आदि करके देवी की मूर्तियों को सरोवर अथवा सरिता के तट पर विसर्जित करते है।

3– **तिसुआ सोमवार**– चैत्र मास के चारों सोमवार भगवान जगन्नाथ स्वामी को समर्पित है। जो लोग जगन्नाथ स्वामी के दर्शन करने आते है और वहाँ से वेंत ले के लौटते है उन बेतों की पूजा इस अवसर पर की जाती है। यह पूजा दोपहर को होती है तथा बेंतों को धोकर पूजन किया जाता है। इनमें फूलों की माला, जौ, आम, मंजरी, तथा टेसू के फूल चढाए जाते है।

4– **शीतलाष्टमी**– यह त्योहार चैत्र कृष्ण की अष्टमी को होता है, स्कन्द पुराण में इस व्रत का विधान है।

'व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाष्टमी परा।'[7]

जो व्यक्ति इस व्रत को धारण करे वह संकल्प के साथ शीतलादेवी का पूजन करे और एक दिन पूर्व बने हुए खाद्य पदार्थों का प्रसाद लगावे तथा रात्रि जागरण

जागरण करे। शीतला देवी की उपासना में यह मन्त्र पढने का विधान है।

'वन्देऽहं शीतलां देवीं रासमस्थां दिगम्बरम्।

मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंककृतमस्तकाम्।।'

5— संकष्ट चतुर्थी— भविष्य पुराण में इस व्रत का उल्लेख मिलता है यदि व्यक्ति अनिष्ट की शंका रखता हो और मुसीबतों से घिरा हो तो उसे यह व्रत प्रत्येक मास की कृष्ण चतुर्थी को करना चाहिये। इस अवसर पर गणेश जी की पूजा की जाती है तथा व्रत के दिन व्यक्ति दिन मौन रहे और गणेश की प्रतिमा का पूजन, धूप, दीप, गन्ध, पुष्प और अक्षत्, रोली से करे तथा इस मन्त्र का उच्चारण करे—

'संसार पीड़ा व्याथितं हि मां सदा संकष्ट भूतं सुमुख प्रसीद।

त्वं त्राहि मां मोचय कष्ट संधान्नमो नमो विघ्ननिनाशाय।।

5— सन्तान अष्टमी— यह ब्रत विष्णु धर्मोत्तर पुराण में उपलब्ध होता है तथा सन्तान की खुश हाली के लिये चैत्र माह की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को किया जाता है। इसमें श्रीकृष्ण और देवकी का पूजन दोपहर के समय किया जाता है और सात्विक पदार्थों का भोग लगाया जाता है।

6— अरून्धती व्रत— यह व्रत महर्षि कर्दम की पुत्री तथा वशिष्ठ की पत्नी अरून्धती के नाम से किया जाता है। यह चैत्र शुक्ल की प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है और चैत्र शुक्ल की तृतीया को समाप्त होता है, यह व्रत स्त्रियों के चरित्र उत्थान के लिये है। इसमें व्रत के दिन स्त्रियाँ सरिता मे स्नान करें और द्वितीया के दिन नये धानों के ढेर पर अरून्धती, वशिष्ठ और ध्रुव की मूर्तियाँ स्थापित करे तथा उनका पूजन करें । तृतीया के दिन गौरीशंकर और गणेश की पूजा करें व व्रत की समाप्ति के अवसर पर ब्राहणों को मीठा भोजन करावें।

7— गनगौर व्रत— यह व्रत चैत्र शुक्ल की तृतीया को किया जाता है होली के दूसरे दिन से जो कुँवारी और विवाहित बालिकायें प्रतिदिन गनगौर का पूजन करती हैं। वे चैत्र शुक्ल द्वितीया के दिन नदी, तालाब या सरोवर के किनारे गनगौर का

पूजन करती हैं और सांयकाल उसका विर्सजन करती हैं यह व्रत उत्तम पति की प्राप्ति के लिये किया जाता है। इस दिन पूर्व दिशा की ओर गौरी की बालू की मूर्ति स्थापित की जाती है तथा उसमें सुहाग की वस्तुयें काँच की चूडिंया, सिन्दूर, महावर, मेंहदी, टीका, बिंदी, कंघी, शीशा, काजल, आदि चढाये जाते हैं और चंदन, अछत, धूप, दीप से इनका पूजन किया जाता है। विवाहित स्त्रियाँ अपनी मांग भरती हैं और एक बार भोजन करती है इसका प्रसाद पुरूषों को वर्जित है।

8— श्रीव्रत— विष्णु धर्मोत्तर पुराण में इस व्रत का विवरण उपलब्ध होता है। यह व्रत चैत्र शुक्ल की पंचमी को किया जाता है। इसके लिये दो दिन पूर्व स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण करे और सारे दिन व्रत रहे तथा अन्त में दही, घी और चावल का भोजन करें। चतुर्थी के दिन स्नान करके व्रत रखे और पंचमी के दिन स्नान करके लक्ष्मी जी के चरणों में अर्पित करें, उसके पश्चात कमल पुष्पों से लक्ष्मी जी का पूजन करें हवन करे। इस व्रत से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

9— मत्स्य जयंती— मत्स्य के रूप में भगवान विष्णु ने प्रथम अवतार धारण किया था । यह व्रत चैत्र शुक्ल की पंचमी को किया जाता है और गीले आटे की गोलियाँ बनाकर मछलियों को खिलाई जाती है। इस अवसर पर मत्स्य पुराण का पाठ भी किया जाता है।

10— अशोक कलिका प्राशन व्रत— कूर्म पुराण के अनुसार यह व्रत चैत्र शुक्ल की अष्टमी को किया जाता है इस दिन स्नान करके अशोक के व्रत की पूजा की जाती है। तथा इसके पत्र और पुष्प भगवान शिव को चढ़ाये जाते हैं। इस

त्वामशोक नामाम्येनं मधुमास समुद भवम्।

शोकार्तः कलिकां प्राश्य मामशोकं सदा कुरू।।[8]

व्रत को करने वाले को शोक नही होता ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

11— गौरी जयन्ती— भविष्य पुराण के अनुसार पार्वती का जन्म चैत्र शुक्ल अष्टमी को हुआ था। इसलिये स्त्रियाँ इस दिन पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिये

इस व्रत का अनुपालन करती है। इस दिन गौरी की गोबर की प्रतिमा बनायी जाती है तथा प्रातःकाल देवी का पूजन होता है और नवरात्र की मूर्तियों के विर्सजन के साथ इसका विसर्जन होता है।

12— रामनवमी— विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार रामनवमी का त्योहार राम जन्मदिवस के रूप में मनाया जाता हैं इस दिन पुर्नवस नक्षत्र में कर्क लग्न में कौशल्या ने भगवान श्री राम को जन्म दिया था। इस दिन भगवान राम की उपासना की जाती है और लोग व्रत करते है।

13— कामदा एकादशी व्रत— इस व्रत का वर्णन अनेक पुराणों और स्मृति ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, इसके एक दिन पूर्व दोपहर में जौ, गेहूँ, तथा मूंग से निर्मित भोजन करें और एकादशी के दिन व्रत करे, जागरण करें और दूसरे दिन व्रत का पारण करें। यह व्रत पापों से छुटकारा प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

14— पजून—पूनो— यह व्रत चैत्र शुक्ल की पूर्णिमासी को किया जाता है। यह व्रत उन लोगों के यहाँ होता है जहाँ लड़की का जन्म न हुआ हो। इस व्रत में पांचवा सात मटकियां पूजी जाती है। इन मटकियों कों खडिया या चूने से रंगा जाता है। तथा इसके करूये को हल्दी से रगा जाता है। इसमें पजून कुमार और इसकी दो माताओं के चित्र बनाये जाते है। तथा मटकियों के बीच में करूवा रखा जाता है इन मटकियों में नाना प्रकार के पकवान और मिठाइयां भरी जाती है और इसके बाद कथा कही जाती है।

15— हनुमान जयन्ती— हनुमान जयन्ती कुछ लोगों के अनुसार कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी और कुछ लोगों के अनुसार चैत्र शुक्ल पूर्णिमासी को होती है। इनके जन्म के सम्बन्ध में दो श्लोक उपलब्ध होते है।

(1) 'उंर्जस्य चाक्षिते पक्षे स्वात्यां भौमे कपीश्वरः।

मेष लग्ने ऽज्जीनी गर्भाच्छव प्रादुरभूत् स्वयम्।। [9]

(2) *'कार्तिकस्या सिते पखे भूतायां च महानिशि।*

भौमवारेऽन्जना देवी हनुमन्तजीजनत्' ।। [10]

हनुमान जयन्ती के दिन हनुमान जी की मूर्ति का पूजन षोड़सोपचार विधि से करें तथा प्रतिमा को स्नान कराने के लिये नदी, सरोवर अथवा कुयें का जल लें फिर वस्त्रों में लाल, कोपीन, पीताम्बर आदि का प्रयोग करें। पूजा के लिये केसर युक्त चन्दन, मूंज का यज्ञोपवीत, हजारा केतकी और कनेर के फूल, गौ घृत से पूर्ण दीपक जलायें, गुड़ के पुए का प्रसाद लगायें तथा हनुमान जी की मूर्ति का परिक्रमा लगायें और श्रद्धानुसार केला, मोदक तथा फल अर्पण करें। कार्य सिद्धि के लिये इनका व्रत तथा पूजन किया जाता है।

वैशाख मास के व्रत— वैशाख मास में धार्मिक द्रष्टि से निम्नलिखित व्रत होते है।—

1— बरूथिनी एकादशी— वैशाख की कृष्ण पक्ष की एकादशी को बरूथिनी एकादशी कहतें है। इस व्रत को करने से सभी प्रकार के पाप नष्ट होते है। वह व्यक्ति जो इस व्रत को धारण करना चाहते हों भगवान के भजन के बाद एक बार भोजन करें तथा वह भोजन कांसे के पात्र में न करे और मसूर की दाल न खाय। भविष्योत्तर पुराण में इसका वर्णन उपलब्ध होता है।

'कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकं क्रोद्रवांस्तथा।

शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजन मैथुने।।

2— आसामाई व्रत— यह व्रत वैशाख कृष्ण पक्ष की द्वितीया को किया जाताहै। इस व्रत का उद्देश्य संतान की मंगल कामना है। इस व्रत को धारण करने वाली स्त्री पूजा के बाद एक बार बिना नमक का भोजन करे और शाम को फलाहार करे। इस व्रत में एक पान के पत्ते पर चन्दन से एक पुतली का चित्र बनाया जाता है। और उस पर चार कौडियाँ रखकर, एक चौकी पर आसामाई की स्थापना की जाती है फिर इस देवी की पूजा अक्षत, धूप, दीप, नेवैद्य से की जाती है। प्रसाद के

लिये खीर, पूडी, पुये पकवान आदि बनाये जाते हैं। ये पुये लंका की आकृति (तिकोने) के होते है तथा एक कच्चा धागा भी पुतली के ऊपर चढाया जाता है।

3— अक्षय तृतीया व्रत— यह व्रत त्रेता युग से प्रारम्भ हुआ था और आज तक बराबर होता है। यह जप तप और ज्ञान तथा दान के लिये फलदायक है। इस समय से सभी शुभ कार्य सम्पन्न होते है क्योंकि इस दिन से ही सतयुग प्रारम्भ हुआ था। इस दिन गरी के लड्डू, पंखा, जल से भरे घड़े जौ, गेहूँ, नमक, सत्तू, दही, चावल, गुड़, सोना तथाा वस्त्र आदि वस्तुयें ब्राह्मणों को दान दी जाती है। इस दिन गंगा स्नान का विशेष महत्व है तथा इसी दिन भगवान नर नारायण और परशुराम ने भी जन्म ग्रहण किया था।

4— गौरी पूजा— यह पूजा भी अक्षय तृतीया को होती है। इस पूजा में पार्वतीजी की पूजा मिटटी के कलश में जल भरकर फल पुष्प आदि से की जाती है।

'एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्माविष्णुशिवात्मकः।

अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथः।।

5— नरसिंह जयन्ती— यह त्योहार वैशाख शुक्ल पक्ष की चर्तुदशी को मनाया जाता है। इस दिन प्रहलाद की रक्षा के लिये भगवान ने नरसिंह अवतार धारण किया था। इस दिन पूजा के स्थान को गोबर से लीपकर एक कलश स्थपित किया जाता है और भगवान नरसिंह की मूर्ति का पूजन किया जाता है। और अपने सामर्थ्य के अनुसार गऊ तिल, स्वर्ण, वस्त्र आदि ब्राह्मणों को दान में दिये जाते है।

6— कमल सप्तमी— वैशाख शुक्ल के सप्तमी के दिन यह व्रत किया जाता है। इस दिन स्वर्ण कमल और सूर्य की मूर्तियों की पूजा की जाती है। पूजा के दिन एक वेदी पर कमल और उसके ऊपर सूर्य की प्रतिमा रखी जाती है। सूर्यास्त के समय जल का घड़ा एक गाय और कमल के पुष्प ब्राह्मण को दान में दिये जाते है और ब्राह्मण को भोजन भी कराया जाता है। पद्म पुराण में इसका उल्लेख मिलता है।

'नमस्ते पदम् हस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे।

दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते'।। [11]

7— शर्करा सप्तमी— वैशाख के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को यह व्रत आयु वृद्धि और अरोग्य रहने के लिये किया जाता है। व्रत के दिन सफेद तिलों के जल से स्नान करें, सफेद वस्त्र धारण करे तथा एक वेदी पर कुमकुम से चौक पूरें और वेदी पर शक्कर से भरा हुआ एक वस्त्र रखें उसके समीप कलश रखें व कलश का पूजन करे। इसका वर्णन पद्मपुराण में उपलब्ध होता है।

'विश्वदेवमयो यस्माद्वेदवादिति पठ्य से।

त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहिसनातन'।। [12]

8— जानकी नवमी— वैष्णव मत के अनुसार सीता जी का जन्म वैशाख शुक्ल नवमी को हुआ था, इस दिन वैष्णव लोग सीता जी का पूजन करते हैं और जन्मोत्सव मनाते है।

'पुष्यान्वितायां तु कुजे नवम्यां श्रीमाधवे मासिसिते हलाग्रतः।

भुवोऽर्चयित्वा जनकेन कर्षणे सीता विरासीद् व्रतमात्रकुर्यात'।। [13]

9— मोहिनी एकादशी— वैशाख शुक्ल पक्ष की एकादशी को मोहिनी एकादशी के रूप में मनाया जाता है। इस व्रत का वर्णन कूर्म पुराण मे उपलब्ध होता है। परमात्मा के अंशावतार राम तथा कृष्ण ने इस व्रत को किया था, मोक्ष प्राप्त करने के लिये व कुसंगत से बचने के लिये इस व्रत को किया जाता है।

10— मधुसुदन पूजा— वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी को यह व्रत किया जाता है। अभीष्ट फल प्राप्त करने की इच्छा से यह व्रत किया जाता है। इस दिन अन्न, वस्त्र, सुवर्ण, गऊ और पृथ्वी का दोहन किया जाता है।

11— वैशाखी पूर्णिमा व्रत— यह दिन पवित्र माना जाता है। इस व्रत में धर्म राज की पूजा की जाती है। इस दिन कलश पकवान और गऊ का दान किया जाता है तथा सात या पांच ब्राह्मणो को शक्कर सहित मीठे तिल दान दिया जाता है। व्रत

रखने वाला व्यक्ति तिल युक्त जल से स्नान करके तिलों से भरा हुआ पात्र भगवान विष्णु को समर्पित करे तथा हवन में तिलों की आहुति दे और एक समय भोजन करे इससे उसे लाभ होगा।

ज्येष्ठ मास के व्रत— ज्येष्ठ मास में निम्नलिखित व्रत होते हैं—

1— **करवीर व्रत**—

यह व्रत ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा को सम्पन्न होता है इस व्रत के दिन कनेर के वृक्ष की पूजा की जाती है। वृक्ष और उसकी शाखाओं को स्नान कराया जाता है उसके ऊपर लाल वस्त्र ओढाये जाते है तथा नैवेद्य गन्ध पुष्प, धूप, दीप आदि से वृक्ष की पूज की जाती है। फिर सात प्रकार के अनाज और उस पर केले, नारंगी, बिजौरा आदि रखकर पूजा सामग्री ब्राह्मण को दान में दी जाती हैं भविष्योत्तर पुराण में इसका वर्णन उपलब्ध होता है—

'करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ।

मौलिमण्डन दुर्गादिदेवानां सततं प्रियः।।

2— **पार्वती जन्म**— यह पर्व ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है इस दिन पार्वती का जन्म हुआ था। इस दिन पार्वती जी की पूजा फल, फूल नैवेद्य आदि से करें, यह व्रत केवल स्त्रियों के लिये है।

3— **शिवपूजा**— यह व्रत ज्येष्ठ मास शुक्ल या कृष्ण पक्ष की अष्टमी को किया जाता है इसका विवरण भविष्योंत्तर पुराण में मिलता है।

4— **उमा ब्रह्माणी**— यह व्रत ज्येष्ठ मास शुक्ल नवमी को होता है इस दिन पार्वती जी की पूजा होती हैं। व्रत के दिन रात्रि के समय ब्राह्मण एवं उसकी कन्या को दूध भात खिलाने का विधान है।

5— **गंगा दशहरा**— ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को स्वर्ग से गंगा जी का आगमन पृथ्वी पर हुआ था इसलिये इस दिन का महत्व व्रत के रूप में है। इस दिन अन्न, वस्त्र, आदि का दान दिया जाता है और उपवास किया जाता है। ब्रह्मपुराण में इसका

उल्लेख मिलता है।

'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः।

व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचन्द्रे वृषे रवौ।

दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।'

6– निर्जला एकादशी–

यह एकादशी ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी है यह सभी एकादशियों से श्रेष्ठ है। इस दिन बिना कुछ खाये व्रत रहा जाता है यदि व्रत न सधे तो फलाहार करके दूध पिया जा सकता है। इस व्रत के दिन कलश को जल से भरा जाता है तथा उसे सफेद वस्त्र से ढांककर शक्कर के साथ दक्षिणा देकर ब्राह्मण के दान में दे दिया जाता है। स्त्रियाँ नथ पहनकर, ओढनी पहनकर, मेंहदी लगाकर शीतल जल से भरा घडा दन करें और बडों के चरण स्पर्श करें। इस दिन अन्न, वस्त्र, छतरी, जूता, पंखा, फल आदि दान देने का विधान है।

7– वट सावित्री व्रत–

त्रयोदशी से पूर्णिमा तक और पूर्णिमा से अमावस्या तक यह व्रत किया जाता है, इस व्रत को स्त्रियाँ करती है। इस दिन बरगद वृक्ष की पूजा होती है। प्रातः काल एक बाँस की टोकरी में सात प्रकार के अनाज रखकर ब्रह्मा और सावित्री की मूर्ति स्थापित की जाती है। तथा एक दूसरी टोकरी में सत्यवान और सावित्री की मूर्ति स्थापित की जाती है, उसके पश्चात मूर्तियों की पूजा की जाती है, फिर बरगद के पेड में पानी सींचा जाता है। चना, फूल, धूप, और कच्चा सूत वृक्ष में लपेटा जाता है। इसके पश्चात बहुयें सासों के चरण छूती है। यह व्रत अखण्ड सौभाग्य वती हेने के लिये किया जाता है।

जैसा कि पाया जाता है कि मनुष्य अपनी सुविधा के अनुसार परम्पराओं को परिवर्तित कर लेता है। उसी प्रकार इस व्रत में भी पाया जाता है। अब यह व्रत मात्र महिलायें अमावस्या को ही मनाती हैं तथा सत्यवान और सावित्री की मूर्तियों का

उनकी पूजा में अभाव पाया जाता है।

आषाढ़ मास के व्रत— इस मास मे निम्नलिखित व्रत, तीज त्योहार सम्पन्न होते है—

1— **रथयात्रा**— यह त्योहार आषाढ़ माह के शुक्ला पक्ष की द्वितीया को मनाया जाता है। इस दिन जगन्नाथ स्वामी की रथ यात्रा सुभद्रा जी सहित निकालीजाती है। इस दिन लोग जगन्नाथ स्वामी को प्रसाद चढ़ाते हैं, और विविध प्रकार से उनकी पूजा करते हैं।

2— **स्कन्दषष्ठी व्रत**— यह व्रत आषाढ शुक्ल पंचमी से प्रारम्भ होता है और षष्ठी तक चलता है। इस दिन स्वामी कार्तिकेय की पूजा होती है। वाराह पुराण में इसका वर्णन उपलब्ध होता है।

3— **महिषघ्नी व्रत**— यह व्रत आषाढ शुक्ल की अष्टमी को सम्पन्न होता है। इस व्रत को करने वाले व्यक्ति हल्दी के जल से स्नान करते है तथा इसी जल से देवी को भी स्नान कराते है। इसके पश्चात देवी की पूजा केसर, चन्दन, धूप, कपूर, आदि से करते है। तथा इस समय देवी को जौ, चीनी, तथा घी से बने पदार्थ चढाये जाते हैं। इसके पश्चात ब्राह्मण एवं उनकी कन्याओं को भोजन कराया जाता है। तथा यह व्रत इष्ट सिद्धि के लिये किया जाता है, देवी भागवत में इसका उल्लेख प्राप्त होता है।

4— **देवशयनी एकादशी**— आषाढ शुक्ल पक्ष की एकादशी को देवशयनी एकादशी कहते हैं। कभी कभी इसे पद्मनाभा भी कहते है इसी दिन भगवान विष्णु क्षीर सागर में शयन करते है। इसलिये विष्णु की सोना, चादी, तांबा, व पीतल, की मूर्ति की पूजा की जाती है और उपवास रहा जाता है। इस व्रत से दीर्घायु एवं पुत्र आदि की प्राप्ति होती है। व्यक्ति इसे वंश वृद्धि और परिवारिक सुख के लिये अपनाते है।

5— **वामन पूजा**— आषाढ़ शुक्ल की द्वादशी के दिन वामन अवतार की पूजा की

जाती है। वामन भगवान की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करने का विधान है।

6— **हरि पूजा**— यह पूजा आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी को होती है। इसमें भगवान विष्णु की पूजा गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य से की जाती है।

7— **कोकिला व्रत**— यह व्रत आषाढ़ शुक्ल की पूर्णिमा से प्रारम्भ होता है और सावन की पूर्णिमा तक रहता है। मुख्य रूप से स्त्रियाँ इस व्रत को करती है। सैभागय और सम्पत्ति प्राप्ति के लिये यह व्रत किया जाता है। इस व्रत के अर्न्तगत स्त्रियाँ आँवले के जल में तिली का तेल मिलाकर स्नान करती हैं। उसके पश्चात अन्य जल में भिगोइ हुई औषधियों से स्नान करती है। ये औषधियाँ कूट, जटा, माँसी, दोनों हल्दी, भूरा, शिलाजीत, चन्दन, पच, चम्पक और नागरमोथा है। अन्त मे छः दिन पिसे हुये तिल और आवंले से स्नान किया जाता है व प्रतिदिन स्नान करके पीठी की कोयल बनाकर उसकी पूजा होती है।

'तिलस्नेहे तिलसोख्ये तिलवर्णे तिलामये।

सौभाग्य धन पुत्रांश्च देहि में कोकिले नमः।।'[14]

8— **व्यास पूर्णिमा**— यह पर्व आषाढ़ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन सम्पन्न होता है। इसदिन गुरू पूजा का विधान है गुरू का स्नेह प्राप्त करने के लिये श्रीपर्णी वृक्ष की चौकी पर सफेद वस्त्र फैलाकर उत्तर से दक्षिण की ओर व्यास पीठ बनाकर चावल अदि से ब्रह्मा, पराशर, शक्ति, व्यास, शुकदेव आदि की मूर्तियाँ बनाकर देवता के समान उनकी पूजा करें।

9— **योगिनी एकादशी**— यह एकादशी आषाढ़ माह में कृष्ण पक्ष को मनायी जाती है। इसमें भगवान नारायण की मूर्ति की पूजा की जाती है और ब्राह्मणों को दान दिया जाता है।

श्रावण मास के व्रत— श्रावण में निम्नलिखित व्रत, तीज—त्योहर सम्पन्न होते है।—

1— **शिवव्रत**— श्रावण मास के समस्त सोमवारों के दिन यह व्रत किया जाता है

और विशेष रूप से भगवान शिव की पूजा की जाती है तथा उनके साथ पार्वती, गणेश और नन्दी की भी पूजा की जाती है। भगवान शिव की पूजा जल, दूध, दही, शहद, घी, चीनी, जनेऊ, चन्दन, रोली, बेलपत्र, भांग, धतूरा, धूप और दीप से की जाती है तथा कपूर से भगवान शिव की आरती की जाती है।

2– **मंगला गौरी पूजन व्रत**– यह व्रत केवल स्त्रियों के लिये है यह सावन के सभी मंगलवारों को किया जाता है। स्त्रियां स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण करें एक पीढे पर लाल और सफेद कपड़ा रख लें और उसमें नौ ढेरी चावल और सोलह ढ़ेरी गेहूं लें उसी स्थान पर गणेश जी को रख दें। उस ढेरी में एक कलश रख दें तथा उसमें आम की एक डाल डाल दें उसके पश्चात चार बत्तियों वाला दीपक जलायें और गणेश जी की पूजा करे। गणेश जी पर पंचामृत, जनेऊ, चंदन, रोली, सिंदूर, सुपाडी, लौंग, पान, चावल, फूल, इलायची, बेलपत्र, फल, मेवा, और दक्षिणा चढावें। गेहूं का आटा और सुपाडी एक पात्र में रखकर दक्षिणा को उसमें दाब दें। फिर षोडश मात्रका का पूजन करें इसके पश्चात मंगला देवी का पूजन करें। गौरी की मूर्ति को जल, दूध, चीनी, दही, घी शहद आदि के पंचामृत से स्नान करावें उसके पश्चात परिधान धारण करें इसके बाद रोली, चंदन, सिंदूर, हल्दी, चावल, मेंहदी काजल आदि से देवी का पूजन करे फिर देवी की मूर्ति पर सोलह माला व सोलह तरह के पत्ते चढाये। आटा के सोलह लडडू, सोलह फल तथा पाँच प्रकार के मेवा चढायें इसके पश्चात सोलह बार सात प्रकार का अनाज – सोलह जीरा, सोलह धनिया, सोलह पान, सोलह सुपाडी, सोलह लौंग, सोलह इलायची एक सुहाग की डिब्बी, तेल रोली, मेंहदी, काजल और सोलह चूडिंया पूजा में अर्पित करें।

3– **कामिका एकादशी**– यह व्रत सावन की कृष्ण पक्ष की एकादशी को किया जाता है इसे पवित्रा के नाम से भी पुकारा जाता है। इस व्रत में भगवान विष्णु की प्रतिमा का पूजन किया जाता है और पंचामृत का भोग लगाया जाता है फिर आरती करने का विधान प्राप्त होता है।

4— **नागपंचमी**— यह व्रत श्रावणशुक्ला पंचमी को मनाया जाता है इस दिन नागों की पूजा का विधान है इस दिन घर के बगल में नागों की मूर्ति बनाकर उनका पूजन किया जाता है। पंचमी तिथि का स्वामी नाग है। इसलिये इनके पूजा का विधान है गरूड़ पुराण में नाग पंचमी का वर्णन उपलब्ध होता है।

5— **निउरी नवमी**— नाग पंचमी की पूजा के बाद सर्पों के आक्रमण से बचने के लिये श्रावण शुक्ला नवमी को नेवलों की पूजा की जाती है। पुत्रवती स्त्रियाँ इस व्रत को करती है और दाल की पीठी भरकर कचौडियों का प्रसाद लगाती है।

7— **रक्षा बन्धन**— यह त्योहार सावन की पूर्णिमा को मनाया जाता है इस दिन बहन अपने भाई को रक्षा सूत्र बाँधती है और विपत्तियों में रक्षा की कामना करती है।

भाद्रपद के तीज त्योहार— इस माह में निम्नलिखित तीज त्योहार सम्पन्न होते है—

1— **कज्जली तृतीया**— इस व्रत का विस्तृत वर्णन 'कृत्य रत्नावली' में उपलब्ध होता है। मुख्य रूप से भाद्रपद कृष्ण तृतीया को महेश्वरी वैश्य जाति के लोग जौ, गेहूं, चना और चावल के सत्तू में घी और मेवा डालकर विविध पदार्थ बनाते है और चन्द्रोदय के बाद उसका भोजन करते है। यह त्योहार एक जाति विशेष के लिये है।

2— **बहुला चौथ**— यह व्रत भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को किया जाता है इस व्रत के माध्यम से पुत्रों की रक्षा की कामना की जाती है। इस दिन चावल और गेंहू नही खाया जाता तथा गाय का दूध भी नहीं दुहा जाता है और गाय तथा सिंह की मिटटी की मूर्ति बनाकर उनकी पूजा की जाती है। इस व्रत को पुत्रवती मातायं ही रहती है।

3— **मूगा पंचमी**— भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की पंचमी को यह व्रत किया जाता है। यह स्त्रियों का व्रत है इस व्रत में सर्पो को दूध पिलाने के पश्चात दीवाल का थोडा सा भाग गेरू से पोता जाता है। फिर उस गेरू के ऊपर कच्चे दूध में घुले हुये

कोयले से घर की आकृति बनायी जाती है और उसके अन्दर पांच सर्प बनाये जाते है। उनकी पूजा जल, कच्चा दूध, रोली, चावल, बाजरा, आटा, घी और चीनी से की जाती है तथा इसके पश्चात बहू सास को मोठ और बाजरा देती है व चरण स्पर्श करती है।

4— मघा व्रत— जब भाद्रपद में मघानक्षत्र पडते है उस दिन यह व्रत किया जाता है। यह व्रत स्त्रियों द्वारा किया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ स्नान करके एक कलश पर रक्षा सूत्र बाँधती है। उसक पश्चात उस धागे को चौकी पर अंकित पुतलियों पर चढाया जाता है बादमें जो धागा बच जाता है उसे परिवारके सदस्यों के हाथों में बांध ा जाता है यह व्रत अनावृष्टि से बचने के लिये किया जाता है।

5— हलषष्ठी (हरछठ)— यह व्रत भगवान श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम जी के जन्मोत्सव के रूपमें मनाया जाता है। बलराम जी के प्रधान शस्त्र हल और मूसल है इसलिये इस दिन हल और मूसल की पूजा होती है। इस व्रत को पुत्रवती स्त्रियां करती है। इस दिन गाय के दूध और दही का सेवन नही किया जाता है स्त्रियाँ स्नान करके पृथ्वी को लीपती है और उसमें झडबेरी, पलाश के पत्तों को गाड दिया जाता है तथा चना, जौ, गेहूं, धान, अरहर, मक्का, तथा मूंग, की बहुरी से इसकी पूजा की जाती है। हरछठ के समीप हल्दी के रंग का कपड़ा भैंस के दूध से बने मक्खन से या घी से पूजन किया जाता है, पूजन के समय यह मन्त्र पढा जाता है—

'गंगाद्वार कुशावर्ते विल्वके नीलेपर्वते।
स्नात्वा कनखले देविहरं लब्ध्वती पतिम्।।
ललिते सुभगे देवि—सुख सौभाग्य दायिनी।
अनन्तं देंी सौभाग्यं महां तुभ्यं नमों नमः।

6— चन्द्रषष्ठी— भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन यह व्रत किया जाता है। इस व्रत को चन्द्रोदय व्यापिनी तिथि के नाम से जाना जाता है। इस व्रत को

नवविवाहिता और अविवाहित लड़कियाँ करती है। इसके पूजन के लिये एक पीढे पर जलका कलश रखा जाता है उसमें रोली छिड़क कर सात टीके लगाये जाते है तथा एक गिलास में गेहूं और दक्षिणा रखी जातीहै। चन्द्रोदय होने पर जब पूजन समाप्त हो जाता है तो गिलास का गेंहू और दक्षिणा किसी ब्राह्मणी को दिया जाता है। इस व्रत में पांच या सात पूडियां मिष्ठान्न और खीर का प्रसाद लगाया जाता है। बाद में नवविवाहिता बहुयें यह थाली सास को अर्पित कर देती है। इस व्रत की कथा सात लडकियो के साथ सुनी जाती है। बाद में उन लडकियों को भोजन भी करायाजाता है इस व्रत का विस्तृत वर्णन भविष्य पुराण में उपलब्ध होता है।

7— **पुत्र व्रत**— यह व्रत कृष्ण पक्ष की सप्तमी को किया जाता है और इसमें विष्णु भगवान की पूजा की जाती है तथा पूजा के उपरान्त हवन में तिलों की एक सौ आठ आहूतियाँ दी जाती हैं। इस अवसर पर ब्राह्मणों के भोजन कराया जाता है और बेर के फल खाकर छः रसों से युक्तभोजन किया जाता है। इस व्रत का वर्णन वाराह पुराण में उपलब्ध होता है।

8— **जन्माष्टमी**— यह व्रत भाद्रपद मास कृष्ण की अष्टमी को होता है इसदिन रोहिणी नक्षत्र में भगवान श्री कृष्ण का जन्म अर्धरात्रि को हुअ था। यह त्योहार शुद्धा औरविद्धा दो नामों से विभाजित है इसमें उदय से उदय पर्यन्त शुद्धा और सप्तमी या नवमी से विद्धा होती है। यह व्रत सर्वमान्य पाप नाशक और सभी के लिये है उस दिन सभी व्यक्ति व्रत धारण करते है और सात्विक भोजन करते है तथा नित्य कर्मो से निवृत होकर सूर्य, सोम, यम, कालसन्धि, भूत, पवन, दिकपति, भूमि, आकाश, खेचर, अमर, और ब्रह्मा को नमस्कार करते है। उत्तर की ओर मुहं करे फिर हाथ में जल, फल, फूल, ओर गन्ध लेकर संकल्प करें तथा घर में देविकी के लिये सूतिका गृह नियत करे और उसे सजाकर कृष्ण की मूर्ति या चित्र स्थापित करें। इसके पूजन मे देवकी, वसुदेव, बल्देव, ननद, यशोदा, और, लक्ष्मी के पूजन करने का विधान है।

9— गंगा नवमी— इस पर्व में गंगा नदी के पूजन करने का विधान है। गंगा नदी का स्नान करने और उसक पूजन करने से सुख और सौभाग्य की प्राप्ति होती है। इसका सम्बन्ध अत्रि गंगा से है अत्रि गंगा का उदय अनुसुइया जी की तपस्या से हुआ था।

10— अजा एकादशी— इस एकादशी को कृष्ण एकादशी भी कहा जाता है। यह व्रत करने से पूर्वजन्म की बाधायें दूर हो जाती है और आत्मा शुद्ध हो जाती है। इसे राजा हरिश्चन्द्र ने किया था और इस व्रत से मोक्ष मिला था।

11— गोवत्स द्वादशी— यह व्रत भाद्रपद कृष्ण पक्ष की द्वादशी को किया जाता है। इस व्रत में गाय बछडे की पूजा की जाती है। और एक दिन पूर्व अंकुरित हुये मूंग मोठ और बाजरा बछडे को खिलाये जाते है। इस दिन गाय का दूध दही और घी का प्रयोग नहीं किया जाता है।

12— कुश ग्रहणी अमावस्या— यह व्रत अमावस्या के दिन मनाया जाता है इसमें दस प्रकार के पुष्प का प्रयोग किया जाता है। अमावस्य के दिन सरोवर में जाकर पूर्व और उत्तर की ओर मुख करके कुश हाथ में लेकर उसे दाहिने हाथ से उखाड़े और उसे घर ले आवें।

13— महत्व माख्य शिवव्रत— यह व्रत भाद्रपद की शुक्ल प्रतिपदा को किया जाता है। इसदिन जटा युक्त त्रिशुल और कपाल धारण करने वाली शिवप्रतिमा का पूजन किया जाता है। पूजन के समय कलश स्थापित किया जाना है तथा नैवेद्य के रूप में अड़तालिस फल या लडडू तथा मिष्ठान आदि शिव को अर्पित किये जाते है। तथा अर्पित वस्तुयें सोलह देवताओं को सोलह ब्राह्मणों को और सोलह अपने पास रख ली जाती है। व्रत करने से राज्य सुख, धन, पुत्र, स्त्री, अरोगयता और दीर्घायु प्राप्त होती है।

15— हरतालिका व्रत— भविष्योत्तर पुराण में इस व्रत का उल्लेख मिलता है। भाद्रपद की शुक्ल तृतीया को भगवान शिव और पार्वती का पूजन किया जाता है।

यह व्रत कुमारी लडकियां और सौभाग्यशाली स्त्रियां करती है। शास्त्रों के अनुसार इस व्रत को कोई भी कर सकता है। तीजा के दिन पूजन सामग्री एकत्रित करके स्त्रियों निराहार व्रत करती है और सन्ध्या के समय स्त्रियां स्नान करके शिव पर्वती की पूजा करती है। सुहाग की समस्त वस्तुयें पार्वती जी को चढाई जाती है। अंगौछा भगवान शंकर को चढाया जाता है। पूजन के उपरान्त सुहाग सामग्री किसी ब्राह्मणी को और अंगौछा किसी ब्राह्मण को दान में दे दिया जाता है। इस व्रत को रखने से स्त्रियों को सौभाग्य प्राप्त होता है और वे कभी विधवा नहीं होती और बांझ नही होती यदि कोई स्त्री व्रत का परित्याग करती है तो उसे नरक का कष्ट भोगना पडता है।

16— **शिवा चतुर्थी**— भविष्य पुराण में तीन चतुर्थियाँ मानी गयी है इन्हें शिवा शान्ता और शुखा के नाम से जाना जाता है। इस दिन स्नान, दान, तप और उपवास करने से सौ गुना फल प्रप्त होता है। विवाहित स्त्रियां यदि इस दिन गुड, घी, नमक अदि से यदि अपने सास ससुर को तृप्त करें तो सौभाग्य की वृद्धि होती है।

17— **ऋषि पंचमी**— भाद्रपद शुक्ल पंचमी को सप्त ऋषि पूजन का विधान है यह पूजन चारों वर्ण की स्त्रियां कर सकती है। प्रातःकाल नदी में स्नान करके पृथ्वी को शुद्ध करके उसके ऊपर हल्दी की चौक पूरें और उसमे सप्त ऋषियों को स्थापित करें तथा गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से उनका पूजन करे ब्रह्मपुराण में इस व्रत का वर्णन मिलता है। पूजन के उपरान्त यह मन्त्र पढने क विधान है—

'कश्यपोऽत्रिर्भरद्धाजो विश्वामित्रोऽगौतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋष्यः स्मृताः।
दहन्तु पापं में सर्व गृहण्न्त्वर्घ्य नमो नमः।।

18— **सूर्य षष्ठी**— भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में सप्तमी युक्त षष्ठी को भगवान सूर्य का व्रत किया जाता है । इसदिन गंगा स्नान करने से अक्षय पुण्य फल की प्राप्ति होती है। इस व्रत के पूजन मे कनेर के लाल पुष्प गुलाल दीप अैर लाल

वस्त्र का विशेष महत्व है इस व्रत को करने से नेत्ररोग ओर कुष्ठ रोग दूर होता है। इस व्रत को करने वाल व्यक्ति रविवार के दिन नमक न खायें और एक बार भोजन करे सूर्य के रोज अर्ध्य दे।

19— सन्तान सप्तमी व्रत— यह व्रत भाद्रपद की शुक्ल पक्ष की सप्तमी को स्त्रियों द्वारा किया जाता है। यह व्रत पुत्र प्राप्ति, पुत्र रक्षा, और पुत्र अभ्युदय के लिये किया जाता है। दोपहर के समय चौक पूरकर चन्दन अछत धूप दीप नैवेद्य सुपाडी तथा नारियल आदि से शिव पार्वती की पूजा की जाती है। इस दिन खीर पूडी और गुड के पुये का प्रसाद लगाया जाता है इस व्रत को मुक्ताभरण भी कहते है।

20— दूर्वाष्टमी व्रत— भाद्रपद की शुक्ल अष्टमी को सात प्रकार के फल पुष्प दूर्वा नैवद्य आदि से पार्वती जी और शिव जी की पूजा की जाती है। यह व्रत सारी मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला है।

21— पद्मा एकादशी— आषाढ़ मास में शेष शैय्या पर निद्रा मग्न भगवान विष्णु भाद्रपद की शुक्ल पक्ष की एकादशी को करवट बदलते है इस दिन भगवान विष्णु और वामन की पूजा की जाती है तथा वामन भगवान की प्रतिमा स्थापित करक उनके मत्स्य कूर्म वाराह अदि नामों का उच्चारण करके गन्ध पुष्प आदि से उनका पूजन करे और ब्राह्मणो को भोजन करायें तथा दान दे।

22— वामन जयन्ती या वामन द्वादशी— भाद्र मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी को वामन जयन्ती मनायी जाती है। इस अवसर पर भगवान वामन की मूर्ति स्थापित करके उनका पूजन बावन पेडे (52) तथा बावनदक्षिणायें रखकर करें। बावन सकोरों में प्रसाद रखकर लगायें इन सकोरों में दही चावल चीनी शर्बत ब्राह्मण को दक्षिणा देने वाला धन आदि रखें तथा ब्राह्मणें का सोंटा दही माला गोमुखी कमण्डल छाता खडाऊँ दक्षिणा और पुस्तक दान में दे।

23—अनन्त चर्तुदशी— इस वृत का वर्णन स्कन्द, ब्रह्म, भविष्य आदि पुराणों में उपलब्ध होता है यह वृत भाद्रपद शुक्ल पक्ष की चर्तुदशी के किया जाता है। इस

दिन भगवान विष्णु की पूजा होती है। तथा तिथि की गणना उदय व्यापिनी से ग्रहण की जाती है। यह दिन अन्त न हेने वाले सृष्टि के कर्ता निगुण, ब्रह्म की भक्ति का दिन है इस दिन वेद ग्रन्थों क पाठ किया जाताा है और पूजा के उपरान्त स्मृति सूत्र हाथों में बाँधा जाता है। इस दिन स्नान करके अष्ट दल कमल पर कलश की स्थापन की जाती है और एक दूसरे बर्तन में कुश से निर्मित अनन्त की स्थापना की जाती है इसके पास कुमकुम के रूर और हल्दी निर्मित चौदह गाठों वाला अनन्ता रखा जाता है। तथा भगवान विष्णु की पूजा की जाती है। उनकी पूजा गन्ध, अछत, पुष्प, धूप तथा नैवेद्य से होती है। यह सूत्र पूरे वर्ष भर बँधा रहता है तथा पुराने सूत्र का परित्याग इस दिन कर दिया जाता है।

24— **उमा महेश्वर व्रत**— भाद्रपद की शुक्ल पूर्णमासी को उमामहेश्वर व्रत किया जाता है इसे वैष्णव उपासक नहीं करते। मत्स्य पुराण में इस व्रत का वर्णन मिलता है।

आश्विन मास के तीज त्योहार और व्रत—

1— **पितर पक्ष**— धार्मिक ग्रन्थों में तीन प्रकार के ऋणों का उल्लेख मिलिता है इनमें देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण है। इनमें से पितृ ऋण श्राद्ध के माध्यम से उतारा जा सकता है, क्वार मास की परीवा से यह व्रत प्रारम्भ होता है और पितृ मोक्ष आमावस्या तक यह बारम्बार चलता रहता है। इस पक्ष में प्रत्येक हिन्दू परिवार में प्रतिदिन पितरों को श्रद्धान्जलि अर्पित की जाती है। उर्द की दाल से पका हुआ पदार्थ अन्य प्रति दिन तर्पण के पश्चात चारों दिशाओं में फेंक दिया जाता है। इसी के साथ—साथ जिस दिन जिस व्यक्ति की मृत्यु होती है उस दिन उसकी श्राद्ध की जाती है। मृत्यु की तिथि में सर्वसुलभ जल, तिल, कुश, पुष्प आदि से श्राद्ध सम्पन्न किय जाता है। गाय और उसके पश्चात एक अथवा तीन अथवा पाँच ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है। इसके अतिरिक्त यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गयी हो और उसे पितरों में शामिल न किया गया हो तो वह धर्म नियमानुसार उन्हें पितरों

में शामिल कर सकता है। पुत्र का यह कर्तव्य है कि वह माता पिता के मृत दिवसों में श्राद्ध करे और ब्राह्मणों को भोजन कराये और पितृ मोक्ष अमावस्या के दिन पितृ विसर्जन करे।

2—इन्द्रा एकादशी— यह व्रत भटकते हुए पितरों को गति देने के लिए आश्विन मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को किया जाता है। इससे परिवार के मृत व्यक्तियों को सन्तुष्टि मिलती है।

3— विजयदशमी या दशहरा— यह त्योहार अश्विन मास की शुक्ल पक्ष की दशमी को मनाया जाता हैं यह शरद ऋतु के प्रारम्भ की सूचक है। यह त्योहार दिग्विजय यात्रा और व्यापार यात्रा के लिए शुभ माना जाता है। क्षत्रिय लोग इसे बडे उत्साह के साथ मनाते है। भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने इस दिन रावण का वध किया था। शक्ति उपासक विजय दशमी के दिन मूर्तियों का विर्सजन जलाशयों में करते है। बहुत से लोग इस दिनउपवास भी करते है ओर अतिथियों का स्वागत सत्कार भी करते है।

4— पापांकुशी एकादशी— आश्विन शुक्ल एकादशी को मौन रहकर भगवान का स्मरण किया जाता है और केवल फलाहार किया जाता है। यह व्रत पापों को नाश करने वाला है।

5— शरद पूर्णिमा— यह व्रत और त्योहार आश्विन मास की पूर्णिमा के दिन किया जाता है। इसे शरद पूर्णिमा कहा जाता है। इस दिन चन्द्रमा अपनी सोलह कलाएँ धारण करता है। इस दिन स्त्रियों का कार्तिक स्नान समाप्त होता है तथा इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने गोपिकाओं के साथ रचाया था। शरद पूर्णिमा के दिन स्नान करके अराध्य देव की पूजा करें, उन्हें सुन्दर वस्त्र पहनाऐ, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, नैवेद्य, तम्बाकू सुपाडी दक्षिणा आदि रखकर भगवान की पूजा करे, तथा गोदूध से बनी खीर और पूडियाँ बनाकर अर्धरात्रि के समय भगवान को भोग लगावें और खीर को खुले आकाश में रख दे दूसरे दिन उस प्रसाद को मिल बाँटकर खायें। विवाहित

व्यक्तियों को ही शरद पूर्णिमा का व्रत सम्पन्न करना चाहिए।

कार्तिक मास के व्रत–

कार्तिक मास में निम्नलिखित व्रत और त्योहार सम्पन्न होते है।

1–करवा चौथ– यह व्रत कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को होता है। यह व्रत सर्वाधिक प्रचलित है। इस दिन विवाहित स्त्रियाँ अपने पति की मंगल कामना के लिए यह व्रत रखती है इस दिन प्रातः काल स्नान करके स्त्रियाँ व्रत रखती है। स्त्रियाँ शाम को चन्द्रोदय होने के बाद शिव–पार्वती, स्वामी कार्तिकेय, गणेश और चन्द्रमा का पूजन करती है और शाम को चन्द्रमा के दर्शन के बाद उसे अर्ध्य देती है। तत्पश्चात भोजन करती है। पूजा के बाद ताँबा या मिट्टी के करवे में चावल उडद की दाल सुहाग की सामग्री कंघी, सीसा, सिंदूर, चूडियाँ और रूपया रखकर दान करती है तथा सास जी के चरण स्पर्श करती है।

2– अहोई अष्टमी– यह व्रत कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को पुत्रवती स्त्रियाँ करती है। इस व्रत में संध्या समय दीवाल पर आठ कोनों वाली एक पुतली अंकित की जाती है। पुतली के पास स्याऊ माता और उसके बच्चे बनाये जाते है। बाद में चन्द्रमा को अर्ध्य देकर भोजन किया जाता है यह व्रत संतान सुख के लिए किया जाता है।

3– तुलसी एकादशी– कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को तुलसी एकादशी कहा जाता है। इस दिन स्त्रियाँ विष्णु प्रिया तुलसी की पूजा करती है और तुलसी घडा के परिक्रमा लगाती है।

4– धन तेरस– यह त्योहार कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को मानाया जाता है इस दिन यमराज का पूजन किया जाता है। यम के लिए आटे का दीपक बनाकर मुख्य द्वार पर रखा जाता है इस दीपक में चार बत्तियाँ होती है। रात्रि में स्त्रियाँ जल,रोली, चावल, गुड, फूल, नैवेद्य से यमराज का पूजन करती है। इस दिन भगवान धनवन्तरि का भी जन्म हुआ था इसलिए वैद्य लोग धनवन्तरि की पूजा करते है।

इसी दिन पुराने बर्तन बदलकर नये बर्तन लाये जाते है तथा हल्की जुती हुई भूमि की मिटटी लेकर उसे दूध में फुलाकर फिर सेमर की शाखा उसमें डालकर स्नान करना चाहिये।

5— **नरक चतुदर्शी**— यह पर्व कार्तिक कृष्ण पक्ष की चर्तुदशी को मनाया जाता है। इस दिन घर की सफाई की जाती है और शरीर की स्वच्छता की जाती है। इस दिन सूर्योदय से पहले उठकर यमराज का तर्पण करके स्नान करने की विधि है तथा सन्ध्या समय दीप जलाने का भी विधान है। इस दिन वामन भगवान ने पृथ्वी को नापा था और भगवान श्रीकृष्ण ने नरका सुर का वध किया था।

6— **दीपावली**— यह त्योहार कार्तिक की कृष्ण पक्ष की आमावस्या को सम्पन्न होता है। इस दिन महालक्ष्मी अर्धरात्रि के समय ग्रहस्थों के यहाँ विचरण करती है। इस दिन गणेश लक्ष्मी का पूजन किया जाता है और घरों में दीपक जलाये जाते है तथा लक्ष्मी जी का स्वागत करने के लिए घर में सफाई की जाती है और लक्ष्मी जी काछाया चित्र लगाया जाता है। स्वादिष्ट व्यंजनों से लक्ष्मी जी का पूजन होता है। जिस चौकी में लक्ष्मी गणेश की प्रतिमा रखी जाती है। उस चौकी पर छः दीपक चार बत्तियों वाले तथा छब्बीस दीपक एक बत्ती वाले जलाये जाते है। इसके पश्चात रोली, चावल, फल, गुड़, गुलाल , धूप आदि से लक्ष्मी गणेश की पूजा की जाती है। यह पूजा पहले पुरूष करते है बाद में स्त्रियाँ करती है। गणेश और लक्ष्मी की मूर्ति के नीचे एक लाल कपडा बिछाया जाता है। उसमें सौ रूपये सवासेर चावल, गुड चार केले, मूली, हरी ग्वाँर फली तथा पाँच लड्डू रखकर गणेश जी की पूजा की जाती है। दूसरे दिन दीपक का कॉजल आँखों में लगाना चाहिये तथा चूने या गेरू में रूई भिगोकर दूसरे दिन चक्की चूल्हा सिल लोढ़ा आदि को पोत देना चाहिए या साफ कर देना चाहिए।

7— **अन्नकूट अथवा गोवर्धन पूजा**— यह त्योहार दीवाली के दूसरे दिन मानाया जाता है इस दिन द्वार के समीप गोबर का गोवर्धन पर्वत बनाया जाता है,

इसे मनुष्य आकार का बनाया जाता है फिर इसकी पूजा की जाती है। इसके पूर्व द्वापर युग में कृष्ण के पहले छप्पन प्रकार के भोजन बनाकर व्यक्ति भगवान इन्द्र की पूजा करते थे किन्तु द्वापर युग में कृष्ण का महत्व बढ़ जाने के कारण इन्द्र की पूजा के स्थान पर कृष्ण की पूजा होने लगी। अन्नकूट के दिन चन्द्रमा के दर्शन नहीं किए जाते इस दिन गाय बैल और पशुओं को स्नान कराया जाता है तथा उनका पूजन किया जाता है। गायों को मिठाई खिलाई जाती है उनकी आरती उतारी जाती है और उन की परिक्रमा भी लगायी जाता है। पकवानों का पर्वत बनाकर उस के मध्य कृष्ण की मूर्ति रखकर उसकी पूजा की जाती है। इस दिन दैत्य राज बलि का भी पूजन किया जाता है।

8— यम द्वितीया या भैयादूज— यह त्योहार कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को होता है। यह भाई बहन के पावन सम्बन्धियों का प्रतीक होता है। इस दिन भाइयों को तेल लगाकर नदी सरोवर में स्नान करना चाहिए और बहन के घर में स्नान करना चाहिए। वह इस अवसर पर भाई को भोजन कराकर तिलक लगाये और उसे भोजन उपरान्त नारियल का गोला दे, उपहार में भाई बहन को नाना प्रकार के वस्त्र और आभूषण प्रदान करते है।

9— अक्षय नवमी या आँवला नवमी— यह व्रत कार्तिक शुक्ल की नवमी को किया जाता है। इस दिन ब्राह्मणों को गाय, पृथ्वी, स्वर्ण, वस्त्र और आभूषण दान देने का विधान है। यह व्रत करने से व्यक्ति ब्रह्मा हत्या से मुक्त हो जाता है। इस दिन आँवला के वृक्ष की 108 परिक्रमाएँ की जाती है और वृक्ष की पूजा जल, रोली, अक्षत, गुड बतासा आँवला व दीपक से की जाती है तथा आँवले के पेड के नीचे भोजन किया जाता है। ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी को भोजन करया जाता है और आँवले के फल दान में दिए जाते है।

10— भीष्म पंचक— यह व्रत कार्तिक शुक्ल एकादशी से प्रारम्भ होता है और पूर्णिमा को समाप्त होता है। यह व्रत पापों को नाश करने वाला और धर्म, अर्थ, काम,

मोक्ष प्रदान करने वाला है। इस व्रत में सर्वप्रथम आँगन या नदी के तट पर चार स्तम्भों वाला मण्डप बनाया जाता है। उसके मध्य मे सर्वतो भद्र बेदी बनाई जाती है तथा उसके समीप तिल से भरा हुआ कलश स्थापित किया जाता है। मण्डप स्थल को गोबर से लीप दिया जाता है उसके पश्चात स्नान करके वासुदेव भगवान की पूजा की जाती है तथा हवन में घी, तिल, और जौ की एक सौ आठ आहुतियाँ दी जाती है। इस व्रत को करने वाला व्यक्ति पाँच दिनों तक ब्रह्मचर्य धारण करे काम क्रोध का परित्याग करें तथा दया और उदारता धारण करे। भगवान की पूजा प्रथम दिन कमल के पुष्पों से दूसरे दिन बेल पत्रों से तीसरे दिन केतकी के पुष्पों से चौथे दिन चमेली के पुष्पों से और पाँचवे दिन तुलसी की मंजरियों से पूजन करे।

11— **देवोत्थानी एकादशी**— यह व्रत कार्तिक शुक्ल एकादशी को किया जाता है इसे प्रबोधनी एकादशी भी कहते है। इस दिन भगवान विष्णु क्षीरसागर में नींद से जगते है। भगवान विष्णु की पूजा दोपहर को आँगन में चौक पूरकर करने का विधान है इसके पश्चात रात्रि में पुनःपूजा की जाती है। दूसरे दिन भगवान को शंख घंटा, घड़ियाल आदि बजाकर जगाया जाता है।

12— **तुलसी विवाह**— यह भी देवोत्थानी एकदशी के दिन होता है कुछ लोग इसे कार्तिक शुक्ल नवमी को मनाते है। इस दिन तुलसी की पूजा करते है और पाँचवे दिन अर्थात कार्तिक पूर्णिमा के दिन तुलसी का विवाह करते है।

13— **कार्तिक स्नान**— जो औरतें कार्तिक के पूरे महीने में भगवान कृष्ण के लिए सरोवरों में स्नान करती है उनका अन्तिम स्नान कार्तिक पूर्णिमा को होता है। इस व्रत का उल्लेख मदन पारिजात नामक ग्रन्थ में है। इस महीने में सायंकाल के समय देवमन्दिरों, चौराहों, गलियें, पीपल के वृक्षों और तुलसी के पौधे के पस दीपक जलाने की प्रथा है। बहुत से लोग लम्बे बाँस गाडकर कंडीले चलाते है।

मार्ग शीर्ष माह के तीज त्योहार और व्रत—

इस महीने में निम्न लिखित तीज त्योहार और व्रत सम्पन्न होते है—

1— भैरव जयन्ती या कालाष्टमी— शिव रहस्य ग्रन्थ के अनुसार मार्ग शीर्ष की कृष्ण अष्टमी को भैरव जयन्ती मनायी जाती है। पुराणों के मतानुसार भैरव भगवान शिव का दूसरा स्वरूप है, भैरव के रूप में उनका वाहन कुत्ता है। इनके इस स्वरूप से काल भयभीत रहता है इसलिए इन्हें काल भैरव भी कहते है। शिवसंहार के देवता है इसलिए काल भैरव उनका संहारक स्वरूप है। इस व्रत को धारण करने वाले व्यक्ति काल एवं शिवशंकर का पजून शिव मन्दिरों में रात्रिजागरण करके शंख, घंटा, दुंदभि बजाकर कीर्तन जप और पाठ से करते है। इस दिन कुत्तों को दूध दही और मिठाई खिलाई जाती है।

2— अवशान(श्मशान) देवी की पूजा— अवशान देवी की पूजा मार्ग शीर्ष कृष्ण पक्ष की दशमी को की जाती है। यह व्रत और पूजन किसी भी शुभ कार्य को बिना किसी बाधा के सम्पन्न करने के लिए किया जाता है। सर्वप्रथम सात या पाँच औरतें देवी को आमन्त्रित करती है फिर उनका पूजन करती है। इसके पूजन मे जमीन में गोलाकर चौक पूरी जाती है उसके ऊपर गेहूँ बिछाया जाता है। चौक के ऊपर मिट्टी के सात ढेर लागाये जाते है ये ढेर गोलाकार होते है फिर एक कोरे घडे में जल भरकर उसकी स्थापना की जाती है। सुहागिनी स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्र पहनकर आभूषण धारण कर पूजा के कलश को घेरकर बैठ जाती है। पूजा के अन्त में कलश पर चावल छोडे जाते है और मिटटी के ढेर में लगे सिन्दूर को औरते अपनी माँग में भरती है। इसमें सुहागिलों को भोजन भी कराया जाता है।

3— दत्तात्रेय जयन्ती— यह जन्मोत्सव और त्योहार मार्गशीर्ष की कृष्ण पक्ष की दशमी को मनाया जाता है। ये ब्रह्मा विष्णु, महेश के संयुक्त स्वरूप थे। इनके तीन शिर और छै भुजाएं थी तथा ये अत्रि ओर अनुसुइया के पुत्र थे।

4— उत्पन्ना एकादशी— यह एकादशी मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष की एकादशी को सम्पन्न होता है। इस पर्व को व्रत के रूप में मनाने से सुख शान्ति की प्राप्ति होती है, इस दिन परोपकारिणी देवी का जन्म हुआ था। इस दिन व्रत रहते हुए भगवन

के भजन कीर्तन करने का महत्व है।

5— मोक्षदा एकादशी— मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की एकादशी को मोक्षदा एकादशी के रूप में मनाते है इसी दिन गीता जयन्ती भी होती है। कुरुक्षेत्र के मैदन में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था तथा उन्हें कर्म की ओर प्रशस्त किया था।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।'[15]

इस दिवस में भगवान वेदव्यास और श्री कृष्ण की पूजा की जाती है और गीता का पाठ किया जाता है इससे व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है।

पौष माह के तीज त्योहार व्रत—

इस महीने में निम्न लिखित तीज त्योहार और व्रत होते हैं—

1— सफला एकादशी— पौष माह की कृष्ण पक्ष की एकादशी को सफला एकादशी कहते है इस दिन भगवान नारायण की पूजा की जाती है। अगरबत्ती, नारियल, सुपाडी आँवला तथा लौंग आदि से भगवान की पूजा की जाती है। इस दिन दीप दान करने की प्रथा है और रात्रि जागरण किया जाता है।

2— मौनी आमावस्या— पौष माह की आमावस्या को मौन व्रत धारण किया जाता है। यह व्रत करने से चिंतन शक्ति की वृद्धि होती है। इस दिन पीपल के वृक्ष के नीचे भगवान विष्णु की पूजा की जाती है और पीपल के वृक्ष की एक सौ आठ परिक्रमाएं लगायी जाती है इस वृक्ष की पूजा केवल ब्राह्मण ही करते है। इससे यह सिद्धान्त प्रस्फुटित होता है कि सम्पूर्ण विश्व का निर्माता एक ब्रह्म है। एक सौ आठ ब्रह्म का अंक है इसका अर्थ यह है कि प्रकृति के आठ महातत्व है ये तत्व पृथ्वी, जल, ज्वाला, पवन, व्योम, मन, बुद्धि, और अहंकार है। इन तत्वों का महायोग आठ है इसलिए साधू सन्त भी अपने नाम के आगे 108 लगाते है।

3— पुत्रदा एकादशी— पौष माह के शुक्ल पक्ष की एकादशी को पुत्रदा एकादशी

भी कहते है। इस व्रत को करने से सन्तान की प्राप्ति होती है। और सन्तान की रक्षा भी होती है निः सन्तान आदमी इस दिन व्रत रखे और भगवान की पूजा भी करे।

माघ मास के तीज त्योहार और व्रत–

इस माह में निम्नलिखित तीज त्योहार और व्रत आते है–

1– मकर संक्रान्ति– माघ मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को मकर संक्रान्ति का पर्व मनाया जाता है। जितने समय में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है उसे सौर वर्ष कहते है। पृथ्वी का गोलाई में सूर्य के चारों ओर घूमना क्रान्ति चक्र कहलाता है। इस चक्र को बारह भागों में विभाजित किया जााता है जिन्हें पृथक–पृथक राशियों का नाम दिया जाता है। जब पृथ्वी एक राशि से दूसरी राशि मे प्रवे श करती है तब उसे संक्रान्ति कहते है। इस दिन पृथ्वी मकर राशि में प्रवेश करती है इसलिए उसे मकर संक्रान्ति कहते है। इस दिन सूर्य कर्क रेखा का परित्याग करके मकर रेखा की ओर जाते है। इसलिए दिन बडे होने लगते है और रातें छोटी होने लगती है। वैदिक युग में उत्तरायण को देवयान और दक्षिणायन को पितृयान के नाम से पुकारा जाता था। इस दिन देवता पृथ्वी पर अवतरित होते है और पुण्य आत्माएँ शरीर छोडकर स्वर्गलोक में प्रवेश करती है। धर्मशास्त्रों के अनुसार इस दिन दान पुण्य जाप आदि का अनुष्ठाान किया जाता है इस पर्व को खिचडी के नाम से पुकारा जाता है। कई स्थानों पर होली की तरह अग्नि जलाकर तिल, गुड, चावल, और भुने मक्के से अग्नि की पूजा की जाती है, इस दिन दान देने की प्रथा है। इस अवसर पर नदी और तालाब के किनारे मेले भी आयोजित होते है।

2– सकठ चौथ या सकठ गनेश– माघ कृष्ण चतुर्थी को यह त्योहार महिलाओं द्वारा बडी धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ निर्जला व्रत रखती है, और शाम को फलाहार लेती है। इस अवसर पर शकल कन्द, लपसी, तिली के लडडू का पहाड और उसका प्रसाद वितरण किया जाता है।

3– षटतिला एकादशी– यह त्योहार माघ मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी को

मनाया जाता है इसे षठ्तिला एकादशी कहते है। इस दिन काली गाय तथा काले तिलों को दान देने का महत्व है तथा इस दिन व्यक्ति अपने शरीर में तिली लगाकर स्नान करता है। व्रत उपरान्त तिली के तेल में पके पकवान खाता है और तिली का हवन देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए किया जाता है।

3— मौनी आमावस्या— माघ मास की आमावस्या को भी मौनी आमावस्या कहा जाता है, इस दिन मौन रहकर गंगा नदी में स्नान करने का विधान है। जो लोग त्रिवेणी के तट पर सम्पूर्ण माघ मास में निवास करते है उनके लिए इसका विशेष महत्व है।

4— बसन्त पंचमी— माघ शुक्ल पंचमी के दिन बसन्त ऋतु का आगमन पृथ्वी पर हो जाता है इसलिए उनके स्वागत के लिए बसन्त पंचमी धूम—धाम से मनायी जाती है। इस दिन राधा और कृष्ण की विशेष लीलाएँ ब्रजभूमि में विशेष रूप से सम्पन्न हुई थी, इसलिए इन का विशेष महत्व है इस दिन सरस्वती पूजन का विधान है। मुख्य रूपसे कलश स्थापना करके गणेश, सूर्य, विष्णु और महादेव की पूजा भी होोती है। इस दिन से फाग गायन उत्तर प्रदेश में प्रारम्भ होता है। किसान लोग नये अन्न मे गुड घृत मिश्रित करके अग्नि में हवन करते है।

5— शीतलाषष्ठी— यह व्रत माघ शुक्ल की षष्ठी के दिन मनाया जाता है। इस दिन शीतला देवी का पजून भी होता है, यह व्रत सन्तान को रोग मुक्त रखने के लिए किया जाता है।

6— अचलासप्तमी(सौर सप्तमी)— माघ शुक्ल सप्तमी को अचला सप्तमी कहते है इस दिन स्त्रियाँ सूर्य नारायण के लिए व्रत करती है। इस दिन स्त्रियाँ एक ही समय भोजन करती है तथा सूर्य देव का पूजन करती है। वे प्रातःकाल तालाब या नदी के किनारे जाती है सिर पर दीप धारण करके सूर्य की स्तुति करती हैं तथा स्नान के बाद सूर्य की अष्टदली मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करती है। इस दिन ताँबे के बर्तन में चावल भरकर ब्राह्मण को दान देने का विधान है। इसी समय सूर्य, शिव

व पर्वती की मूर्तियों का विसर्जन सरिता में कर दिया जाता है और घर में लौटकर ब्राह्मण को भोजन कराने का विधान कहा गया है

7— सूर्य सप्तमी— माघ शुक्ल सप्तमी को सूर्य सप्तमी कहते है। इस दिन भगवान सूर्य को सूर्योदय के समय गंगा जल से अर्ध्य देना चाहिए तथा अर्ध्य देकर रोली, मौली, चन्दन, चावल, फल फूल, जनेऊ, धूप दीप नैवेद्य की दक्षिणा देना चाहिये और परिक्रमा करना चाहिए। भगवान सूर्य की स्तुति करने का भी विधान है।

8— भीष्म अष्टमी— माघ शुक्ल अष्टमी को भीष्म अष्टमी के रूप में मनाने का विधान है इस दिन भीष्म स्वर्ग वासी हुए थे। इस दिन भीष्म पितामह को श्रद्धाजंलि अर्पित की जाती है।

9— जया एकादशी— माघ शुक्ल एकादशी को जया एकादशी के रूप में मनाया जाता है। एक गन्धर्व जो इन्द्र के साथ के कारण अपनी पत्नी सहित पिशाच योनि में आ गया था। उसने माघ शुक्ल एकादशी का व्रत किया इससे वह पुनः गन्धर्व योनि में आ गया इसलिए इस व्रत को किया जााता है।

10— माघी पूर्णिमा— माघ माह के अन्तिम दिन को माघी पूर्णिमा के नाम से पुकारा जाता है इस दिन पवित्र नदी, सरोवरों में स्नान करने का महत्व है। इसके पश्चात श्रद्धालू इस पर्व पर यज्ञ, तप, दान से धर्म का संरक्षण करते है। इस दिन भगवान विष्णु की पूजा की जाती है तथा पितरों को श्राद्ध दिया जाता है और निर्धनों को भोजन, वस्त्र, तिल, कम्बल, गुड, कपास, घी, लडडू, फल, अन्न, खडाऊँ आदि दान में दिये जाते है व ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

फाल्गुन माह के व्रत तीज त्योहार—

इस माह में निम्न लिखित व्रत, तीज त्योहार सम्पन्न किये जाते है—

1— विजया एकादशी— फाल्गुन कृष्ण एकादशी को विजया एकादशी के नाम से जाना जाता है। इसदिन भगवान श्रीराम लंका पर आक्रमण करने के लिए समुद्र तट पर पहुँचे थे। जब भगवान राम समुद्र पार नहीं कर पाये तो उन्होंने ऋषियों की

सलाह पर इस एकादशी व्रत का पालन किया। उन्होंने सात अनाजों के ढेर पर एक कलश स्थापित किया उसके पास पीपल आम, बड़ और गूलर के पत्ते रखे फिर एक बर्तन में जौ भरकर उसे कलश पर स्थापित किया इस प्रकार उन्होंने लक्ष्मीनारायण की स्थापना करके उनका विधि पूर्वक पूजन किया इसी दिन से विजया एकादशी का व्रत रहा जाता है।

2— महाशिव रात्रि— यह व्रत फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी को होता है कुछ लोग चर्तुदशी को यह व्रत मानते है। इस व्रत में भगवान शिव की उपासना और पूजा की जाती है। कहते है कि सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान शिव का जन्म ब्रह्मा से रूद्र के रूप में हुआ था तथा यह भी कहा जाता है कि इसी दिन भगवान शिवशंकर ताडंव नृत्य करते हुए तीसरे नेत्र की ज्वाला से ब्रह्माण्ड को नष्ट कर देते है इस लिए इसे काल रात्रि भी कहा गया है। इस व्रत को चारों वर्ण के लोग स्त्री पुरूष बालक सभी कर सकते है। प्रातः काल स्नान करके शिवरात्रि का व्रत रखा जाता है फिर पत्र पुष्प तथा सुन्दर वस्त्रों से एक मण्डप तैयार किया जाता है उस मण्डप में सर्वतोभद्र बेदी पर कलश की स्थापना तथा शंकर पार्वती और नन्दी की मूर्ति स्थापित की जाती है फिर एक कलश में जल भरकर रोली मौली, चावल,पान सुपाडी लौंग इलायची , चन्दन दूध दही घी शहद, कमलघटा, धतूरा, बेल पत्र, मकउवा लगाकर का प्रसाद लगाकर पूजा की जाती है तथा रात्रि जागरण किया जाता है। दूसरे दिन जव, तिल, खीर, बेल पत्र, से हवन करके ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है। भगवान शंकर में चढाया गया प्रसाद कोई ग्रहण नहीं करता।

3— अविघ्न कर व्रत— यह व्रत विघ्न बाधा दूर करने के लिए फाल्गुन माह की शुक्ल चर्तुदशी को किया जाता है। महाराज सगर ने अश्वमेध यज्ञ पूरा करने के लिए यह व्रत किया था और भगवान शंकर ने भी त्रिपुरासुर का वध करने के लिए यही व्रत किया था। समुद्र मंथन निर्विघ्न पूरा करने की इच्छा से भगवान नारायण ने भी इस व्रत को किया था। इस दिन गणेश जी की पूजा की जाती है और उन्हें

तिली का भोग लगाया जाता है। तिल से हवन भी किया जाता है और तिल का दान भी किया जाता है।

4— जानकी व्रत या सीताअष्टमी— फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को सीता जी के पूजन का विधान है। यह व्रत भगवान श्री रामचन्द्र जी ने समुद्र तट की तपोभूमि पर वशिष्ठ जी की आज्ञा से किया जाता था। इसमें जौ, चावल, तिल का हवन और पुए का प्रसाद लागाया जाता है। यह व्रत अभीष्ठ सिद्धि के लिए किया जाता है। इस दिन जानकी प्रतिमा का पूजन किया जाता है और एक हजार दीपक जलाए जाते है। यह व्रत स्त्रियों का व्रत है।

5— आँवल एकादशी— यह व्रत फाल्गुन शुक्ल एकादशी के दिन किया जाता है, इस दिन आंवले के वृक्ष के पास बैठकर भगवान का पूजन किया जाता है इससे किसी भी कार्य में सफलता मिलती है।

6— होलिकोत्सव— होली का त्योहार फाल्गुन मास की पूर्णमासी को सम्पन्न होता है। यह त्योहार रंगो का त्योहार है इसे बच्चे बूढे नर नारी सभी लोग प्रेम से मनाते है। पूर्णमासी की रात्रि को पहले एकत्रित लकडियों तथा घास फूस के ढेर लगाकर होलिका का पूजन किया जाता है बाद मे इसमें आग लगायी जाती है। जब होली जल जाती है। तो होली की भस्म शरीर पर लगायी जाती है। वैदिक काल मे इस पर्व को 'नवान्नेष्टि यज्ञ' कहा जाता था। यह त्योहार नयी फसल आने का सूचक थ खेत के अधपके अनाज से यह यज्ञ किया जाता था, यज्ञ में भुंजे हुए अन्न को होला कहते थे। इस पर्व के बाद नव सम्वतसर प्रारम्भ होता है। इसी दिन मनु का जन्म भी हुआ इसीलिए इसे मन्वादितिथि भी कहते है। इसी दिन नरसिंह भगवान ने प्रहलाद की रक्षा के लिए हिरणाकश्यप का वध किया था तथा हिरण्यकश्यप की बहन अग्नि में भष्म हो गयी थी और प्रहलाद बच गया था।

यह त्योहार आठ दिन तक मनाया जाता है, इस दिन आम्र मंजरी और चंदन को मिलाकर खाने का विधान है भविष्य पुराण में इस त्योहार का वर्णन मिलता है

तथा होलिका दहन से सारे अनिष्ट दूर हो जाते है।

इस प्रकार एक वर्ष में जो व्रत भारतीय संस्कृति को अपनाने वाले व्यक्ति करते है उनकी संख्या सैकडो में है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा सम्पूर्ण जीवन मंगलमय कार्यों के लिये समर्पित है और हम सदैव लोककल्याण के लिये जो कार्य अकेले अथवा सामूहिक रूप में करना चाहते है वे हमें तीज त्योहार के रूप में दिखलाई देते है। विश्व का कोई ऐसा अन्य धर्म नही है जहाँ इतने अधिक तीज त्योहार होते है। हम जहाँ एक ब्रह्म के उपासक है वही बहुउद्योगवाद के उपासक भी है देवी देवताओं पर श्रद्धा रखना भारतीय इतिहास की परम्परा रही है जो लोक संस्कृति को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करती है। ऐतिहासिक द्रष्टि से यह तीज त्योहार भारतीय संस्कृति के मूल स्रोतों से जुडे हुये है। इनका वर्णन समस्त पुराणों में यत्र तत्र उपलब्ध हो जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण में भी वैष्णव मत से सम्बन्धित तीज त्येहार देखने को मिल जाते है। कुछ तीज त्योहार और भी हैं जिनका सम्बन्ध वर्ष से न होकर जयोतिष शास्त्र से है। ये निम्नलिखित है—

1— अधिमाषव्रत— जिस मास में सूर्य संकान्ति नहीं होती उस मास को अधिमास कहते हैं बहुत से लोग इसे मलमास या पुरूषोत्तम मास भी कहते हैं, जिस मास में दो संक्रान्ति पडे उसे छैः मास कहते है। यह अधिमास बत्तीस माह, सोलह दिन, और चार घडी के अन्तर से आता है। जबकि छः मास एक सौ एकतालिस वर्ष बाद उसके बाद उन्नीस वर्ष बाद पुनः आता है। इन महीनों में को ई शुभ कार्य नही किये जाते है। इसके सम्पूर्ण साठ दिनों में प्रथम मास की शुक्ल पक्ष की परीवा और द्वितीय मास की अमावस्या वक व्रत रखने और दान पुण्य करने का विधान है इस व्रत में भगवान विष्णु का सूर्य के स्वरूप में पूजन किया जाता है। इसमें गुड़ आटे के बने हुये पुओं को कांसे के बर्तन में रखकर दान किया जाता है।

2— संक्रान्ति व्रत— जब सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है उस अवधि को संक्रान्ति कहते है। इस दिन स्नान करके एक चौकी पर शुद्ध वस्त्र

बिछाकर चावल का अष्टदल कमल बनाकर उसमें सूर्य की प्रतिमा स्थापित करके उसका पूजन स्नान, गन्ध, पुष्प, धूप, तथा नैवेद्य से विधिपूर्वक करें इससे समस्त पाप नष्ट हो जाते है। उपवास के दिन जप, तप, देव, पूजा, पितृऋण, तथा ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है।

ग्रहण के व्रत–

जब सूग्र ग्रहण पडे तो उस दिन सरिता में स्नान करें और वहाँ जप, दान, पूजन, यज्ञ आदि करे, यह कार्य ग्रहण के पूर्व करे और ग्रहण के बाद पुनः स्नान करे। चन्द्रग्रहण में भी यही विधा होती है इसमें चन्द्रोदय से लेकर ग्रहण की समाप्ति तक यही विधा अपनायी जाती है। ग्रहण की अवधि में शरीर में तेल लगाना, भोजन करना, जल पीना, शौच करना, केस विन्यास करना, रति किया करना, दातून करना आदि सभी वर्जित है। इस समय सिर्फ परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

हमारे सम्पूर्ण सांस्कृतिक नियम लोक कल्याणार्थ महापुरूषों द्वारा निर्मित किये गये है तथा इन्हें विभिन्न प्रकार के तीज त्योहारों को जोडा गया है। ताकि भारतवर्ष का व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों को समझे ब्राह्मण और विद्वानों आदि का आदर करें महापुरूषों के प्रति श्रद्धा रखे तथा यह मानकर चले कि उसका जीवन परमात्मा कत है और नाशवान है इसलिये वह नैतिक आदर्शो को अपना कर जीवित रहे। भारतवर्ष से यह सांस्कृतिक आदर्श प्राचीन काल से अब तक अनुकरणीय है।

3– भागवत पुराण में व्रत, तीज–त्योहारों का वैष्णव भक्ति अथवा कृष्ण भक्ति से सम्बन्ध–

सम्पूर्ण भागवत् पुराण भगवान विष्णु और उनके विविध अवतारों से सम्बन्धित है उस युग में व्रतों तीज त्योहारो का क्या महत्व था इस सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी भागवत पुराण से उपलब्ध नही हो पाती है फिर भी इस महाग्रन्थ में कृष्ण को आनन्द अवतार के रूप में मान्यता मिली हुई है। भागवत पुरण का रचनाकार इस तथ्य को स्वीकार करता हैं कि अवतरित होने वाला परमात्मा संसार मे प्राणियों

के दुःख का निवारण करता है और उनके दुःखों को दूर करके उन्हें जीवन के विविध आनन्द प्रदान करता है। जीवन के यही विविध आनन्द भविष्य में चलकर किसी देव विशेष से सम्बन्धित घटना विशेष की स्मृति से जोड दिये जाते है तथा व्रत और पर्व का नाम दे दिया जाता है। जो पर्व भारतवर्ष में अब तक सर्वत्र मनाये जाते हैं उनका सम्बन्ध देव विशेष तथा घटना विशेष से है।

वैदिक युग से लेकर अब तक तीज—त्योहार और व्रतों की परम्परा चली आ रही है इसमें कुछ तीज—त्योहार युगानुसार बढते रहते है। उदाहरणार्थ सतयुग में वे ही तीज—त्योहार सम्पन्न होते थे जो सतयुग के महापुरूषों के नाम समर्पित थे। त्रेता युग में ये तीज त्योहार त्रेता युग के महापुरूषों के साथ जुड गये, इस प्रकार इस युग में सत युग और त्रेता दो युगो के तीज—त्योहार माने जनाये लगे। जब द्वापर युग आया तो तीज त्योहारों में द्वापर युग तक के महापुरूषों को शामिल कर लिया गया, इस प्रकार अब तीन युगों के तीज—त्योहार मनाये जाने लगे। इस संसार में कलियुग का पदार्पण राजा परीक्षित के शासन काल में हुआ, उसी युग के महाभारत तथा अठारह पुराण रचे गये। भागवत पुराण भी उसी युग की घटनाओं को वर्णित करता है। इसलिए अन्य पुराणों और भागवत पुराण आदि ग्रन्थों में कुछ नये तीज—त्योहारों को शामिल किया गया है। उस युग में उन्हें तीज—त्योहारों के रूप में भले ही विशेष मान्यता उपलब्ध न रही हो किन्तु भविष्य में चलकर ये दिवस तीज त्योहारों के रूप में भारतीय जनता द्वारा मनाये जाने लगे।

सम्पूर्ण भारतीय समाज जो भरतीय धर्म का अनुसरण करता है वह वैदिक युग में वैदिक धर्म का अनुपालन करता था। वैदिक युग में एक देववाद के साथ साथ बहुदेववाद का अनुपालन भी होता था, किन्तु आगे चलकर इस धार्मिक पद्धति में अनेक परिर्वतन हुए और यह मूर्ति उपासना को अपनाकर तीन भागों में विभक्त हो गया तथा यह उपासना शक्ति उपासना, शिव उपासना और विष्णु उपासना के नाम से विख्यात हुई। सम्पूर्ण तीज—त्योहार नौ देवियों, शिव, कालभैरव तथा विष्णु के

विविध अवतारों में विभाजित होकर सर्वत्र मनाये जाने लगे। इन तीज–त्योहारों के लिए विविध प्रकर के नियम निर्मित हुए तथा भिन्न–भिन्न समयों में इनको मनाये जाने का क्रम चला। ये त्योहार एकल, सामूहिक, स्थानिक तथा स्त्री और पुरूषों के लिए पृथक–पृथक बने, जिन्होने भारतीय संस्कृति को अपने–अपने ढंग से प्रभावित किया। तीज–त्योहारों का बाह्रय स्वरूप भले ही बदला है किन्तु उनके सांस्कृतिक स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

भागवत पुराण में पृथक से तीज–त्योहारों का विवरण उपलब्ध नहीं होता किन्तु अनेक स्थल ऐसे उपलब्ध होते है, जिनसे घटना विशेष के कारण तीज–त्योहार और व्रत का बोध होता है। ये निम्न लिखित है–

दत्तात्रेय जयंती– यह पर्व मार्ग शीर्ष माह की कृष्णपक्ष की दशमी को मनाया जाता है। ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों के अंश के रूप में महर्षि अत्रि के पुत्र के रूप में दत्तात्रेय का जन्म हुआ था, इस अवतार में उन्होंने अलर्क और प्रहलाद आदि को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था। दत्तात्रेय के तीन सिर और छः भुजाएँ थी, तथा वे भगवान के छठवें अवतार थे, इनके सन्दर्भ में जानकारी भागवत पुराण में उपलब्ध होती है।

'षष्ठेः अत्रेरपत्यत्वं व्रतः प्राप्तोऽनसूयया।

आन्वी क्षिकी मलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान।।'[16]

इस त्योहार में भगवान दत्तात्रेय की पूजा का विधान है।

नव सम्वत्सर दिवस–

भगवान ने सातवाँ अवतार प्रजापति की आकूति नामक पत्नी से यज्ञ के रूप मे अवतार धारण किया तथा अपने पुत्र याम और देवताओं के साथ स्वायम्भुव मनु की रक्षा की , उसी की स्मृति में त्योहार मनाया जाता है। भगवान के इस अवतार का वर्णन भागवंत पुराण में उपलब्ध होता है।

'तत सप्तम आकूत्यां रूचेर्यज्ञोऽभ्यजायत्।

स यामाद्यैः सुरगणैर पात्स्वायम्भुवान्तरम्।।'[17]

ऋषभ देव जयन्ती–

भागवत पुराण के अनुसार ऋषभ देव भगवान के आठवें अवतार थे किन्तु हिन्दू लोग भगवान ऋषभ देव की उपासना नहीं करते। इनकी पूजा और उपासना जैन धर्म के अनुयायी करते है तथा जैन लोग उन्हें अपने 24 तीर्थकरों में एक मानते है इन्होंने परमहंस मार्ग का शुभारम्भ किया। भागवत पुराण में इसका उल्लेख मिलता है।

'अष्टमे मेरूदेव्यां तु नाभेर्जात उरूक्रमः।

दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम्।।'[18]

मत्स्य अवतार जयंती–

यह त्योहार चैत्र शुक्ल पंचमी को मनाया जाता है इस दिन भागवन ने पृथ्वी की रक्ष के लिए अवतार धारण किया था। कहते है कि चाक्षुष सम्वतसर में जब सम्पूर्ण पृथ्वी जल में डूब रही थी। उस समय मत्स्य के रूप में भगवान ने दसवाँ अवतार धारण किया था और पृथ्वी के अधिपति वैवस्वत मनु की रक्षा की थी इसका उल्लेख भागवत पुराण में मिलता है।

'रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधि सम्पल्वे।

नात्यारोप्य महीमय्या मपाद्वैवस्वतं मनुम्।।'[19]

धनवन्तरि जयन्ती–

यह त्योहार कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन होता है इस दिन भगवान धनवन्तरि समुद्र से बारहवें अवतार के रूप में प्रकट हुए तथा उन्होंने अमृत घट देवताओ को दिया। पूरे भारतवर्ष में वैद्य, डाक्टर और वैष्णव उपासक इसे धूम–धाम से मनाते है। इस सन्दर्भ में भी भागवत पुराण में उल्लेख मिलता है–

'धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशम मेव च ।

अपाययत्सुरानयान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ।।'[20]

नरसिंह अवतार जयन्ती–

वैशाख शुक्ल पक्ष की चर्तुदशी के दिन भक्त प्रहलाद की रक्षा के लिए भगवान ने नरसिंह अवतार धारण किया था। उन्होंने दैत्यराज हिरण्याकश्यप का वध किया, इसी स्मृति में नरसिंह जयन्ती मनायी जाती है। इसका विवरण भागवत पुराण में मिलता है।

'चतुर्दशं नारसिंह बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम्।

ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा।।'[21]

वामन द्वादशी–

भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी को वामन द्वादशी के रूप में मनाते है। इस दिन विष्णु भगवान ने वामन अवतार धारण किया था और राजा बलि से तीन पग धरती दान माँगी, जिसे राजा बलि ने देना स्वीकार किया तब भगवान ने राजा बलि को पाताल भेज दिया। इसका सन्दर्भ भी भागवत पुराण में उपलब्ध होता है।

'पचदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः।

पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम्।।'[22]

परशुराम जयन्ती–

परशुराम परमात्मा विष्णु के सोलहवें अवतार थे। जब उन्होंने देखा कि राजा लोग ब्राह्मण विरोधी हो गये है तो उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों को राज्य सत्ता से वंचित किया। उनकी स्मृति में परशुराम जयन्ती मनायी जाती है।

'अवतारे षोडशमें पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृघन्।

त्रिः सप्तकृत्वः कुपितौ निः क्षत्रामकरोन्महीम्।।'[23]

गुरू पूर्णिमा–

यह पर्व गुरू के सम्मान में प्रति वर्ष आषाढ़ माह की पूर्णमासी को मनाया जाता

है। इस दिन भगवान श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास, पराशर ऋषि के संयोग से, सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुए। उन्होंने वेदों का विभाजन किया तथा पुराणों की रचना की, उन्हीं की स्मृति में गुरूपूर्णिमा मनायी जाती है।

'ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।

चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्टा पुंसोअल्पमेधसः।।'[24]

रामनवमी–

चैत्र शुक्ल नवमी तिथि को राजा दशरथ के पुत्र के रूप में भगवान विष्णु ने अपना अठारहवाँ अवतार धारण किया था। रामनवमी को हम उनके जन्मोत्सव के रूप में मनाते है। इसका उल्लेख भागवत पुराण में उपलब्ध होता है।

'नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया।

समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम्।।'[25]

कृष्णजन्माष्टमी–

यह त्योहार भाद्रपद की कृष्णपक्ष की अष्टमी को कृष्ण जन्म के रूप में मनाया जाता है। इस दिन भगवान विष्णु ने कृष्ण के रूप में वसुदेव और देवकी के यहाँ कंस के कारागार में जन्म लिया तथा उनका पालन और जन्मोत्सव नन्द यशोदा के यहाँ हुआ। उन्हीं की स्मृति में यह त्योहार बडी धूमधाम से सम्पूर्ण भारतवर्ष में मनाया जाता है। कृष्ण जन्म का उल्लेख भागवत पुराण में उपलब्ध होता है।

'एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी।

रामकृष्णाविति भुवो भगवान हरद्भरम।'[26]

बुद्ध जयन्ती–

कलियुग में भगवान विष्णु ने मगध देश में दैत्यों को मोहित करने के लिए बुद्ध अवतार धारण किया। इसका वर्णन भागवत पुराणों में उपलब्ध होता है।

'ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।

बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकटेषु भविष्यति।।'[27]

उनकी स्मृति बनाये रखने के लिए बुद्ध धर्म का अनुसरण करने वाले व्यक्ति इसे बुद्ध पूर्णिमा को मनाते हैं।

पुंसवन व्रत–

यह व्रत मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ किया जाता है। जिन स्त्रियों के पुत्र नहीं हो अथवा पुत्र उत्पन्न होकर मर जाते है उन्हें यह व्रत पति की आज्ञा और ब्राह्मणों से इस व्रत की विधि सुनकर व्रत करना चाहिए। इस व्रत के अर्न्तगत भगवान लक्ष्मीनारायण की पूजा करनी चाहिए और पति को ही साक्षात् भगवान मानकर उनकी पूजा करनी चाहिऐ। यह व्रत भगवान विष्णु का व्रत है इस नियम को लेकर स्त्री इसे खण्डित न करे । यह व्रत को पूरे एक वर्ष अथवा बारह महीने का होता है। इसका पारण अथवा उद्यापन मार्गशीर्ष माह की आमावस्या को किया जाता है। इस व्रत को करने से स्त्री को अखण्ड सौभाग्य तथा पुत्र की प्राप्ति होती है। व्रत की समाप्ति पर हवन आदि का भी विधान है। भागवत पुराण में इस व्रत का उल्लेख मिलता है।

'शुक्ले मार्ग शिरे पक्षे योषिदर्शुरनुज्ञया।
आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिक मादितः।।
एतच्चरित्वा विधिवद्तं विभो।
रभीप्सितार्थ लभते पुमानिह।
स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं
श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो ग्रहम्।।'[28]

भागवत पुराण में इस व्रत को मुख्य रूप से पत्नी (स्त्री) द्वारा संपादित करने के लिए कह गया है, परन्तु यदि किसी कारण वश पत्नी यह व्रत न कर पाये या वह वीच में इस व्रत को करने अयोग्य हो जाये तो पति को इस व्रत का अनुष्ठान करने के लिए कहा गया है।

'कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरूभयोरपि।

पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत् समाहितः।।'[29]

इससे स्पष्ट होता है कि व्रत अथवा तीज त्योहार का आयोजन पति अथवा पत्नी दोनों में से एक कोई भी कर सकता है तथा दोनों में से एक चाहे जो कार्य करे, कार्य के परिणाम या प्रतिफल के दोनों भागीदार हाते है यह मान्यता तद्‌युगीन समाज में प्रचलित थी। भागवत पुराण में पुंसवन का व्रत के रूप में विस्तार से उल्लेख हुआ है जब कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में यह संस्कार के रूप में जाना जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्रत कालान्तर में सोलह संस्कारों में शामिल कर लिया गया।

पयोव्रत—

यह व्रत कश्यप ऋषि की पत्नी अदिति ने उस समय किया, जब कश्यप ऋषि समाधि में लीन थे और स्वर्ग पर दैत्यों का अधिकार हो गया था। देवता तथा दैत्य ये सब एक ही पिता कश्यप ऋषि की संताने हैं। तथापि पुत्रों के कष्ट से दुखित अदिति को कश्यप ऋषि ने इस व्रत का अनुष्ठान करने कहा यह व्रत फाल्गुन मास के शुक्ल में किया जाता है। इसमें शुक्ल पक्ष के बारह दिन तक केवल दूध पीकरकमलनयन भगवान विष्णु की पूजा करे और आमावस्या के दिन सुअर की खोदी हुई मिटटी से अपना शरीर मलकर नदी में स्नान करना चाहिए फिर इस व्रत को प्रारम्भ करना चाहिए, यह व्रत वाराह भगवान का है। इस व्रत का उल्लेख भी भागवत पुराण में उपलब्ध होता है।

'फाल्गुन स्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः।

अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः।

सिनीवाल्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायात् क्रोऽविदीर्णया।

यदि लभ्येत वै स्त्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत।।'[30]

शिवरात्रि व्रत—

भागवत पुराण में यह वर्णन मिलता है कि भगवान श्री कृष्ण के काल में शिवरात्रि का पर्व बडी धूमधाम से मनाया जाता था। इस अवसर पर मथुरा में रहने वाले समस्त गोप भगवान शिव के दर्शन करने जाते थे और पार्वती जी का भी पूजन करते थे। इस अवसर पर उपवास करने का विधान भागवत पुराण में उपलब्ध होता है, जो यह व्रत करता है शिव उनकी प्राण रक्षा करते है।

'एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः।
अनोभिर नडुद्युक्तैः प्रययुस्ते अम्बिकावनम्।।
तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पुशपतिं विभुम्।
आनुर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेअम्बिकाम्।।
ऊषूः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य घृतव्रताः।
रजनी तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः।।'[31]

जन्माष्टमी व रामनवमी विशेष महत्व के त्योहार—

भागवत पुराण के मतानुसार विष्णु का कृष्ण स्वरूप और रामस्वरूप अति महत्व पूर्ण त्योहार है। इसलिए भागवत पुराण यह मन्त्रणा देता है कि जनमाष्टमी और रामनवमी को विशेष उत्साह के साथ मनाया जाय मन्दिरों में उनकी मूर्तियों की स्थापना की जाय तथा उस दिन लोग व्रत उपवास आदि न करें तथा ये त्योहार सामूहिक रूप से मनाये जायें।

'मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम्।
गीतताण्डव वादित्रगोष्ठी भिर्मद्रगृहोत्सवः।।
यात्रा बलि विधानं च सर्ववार्षिक पर्वसु।
वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम्।।'[32]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत के रचनाकाल तक शाक्तिकमत, शैवमत और वैष्णव मत लोक व्यवहार में थे। इन्हीं से सम्बन्धित व्रत, तीज—त्योहार मनाये

जाते थे किन्तु जब कृष्ण का अस्तित्व बढ गया, उस समय भगवद् भक्ति की ओर व्यक्तियों का आकर्षण बढा। उन्होंने वैष्णव मत से प्रभावित होकर अनेक नवीन पर्वों को सृजित किया तथा उनका अनुपालन करके भगवान श्री कृष्ण के प्रति भक्ति भावना और आस्था प्रकट की। निर्धारित तीज–त्योहार भगवान को श्रद्धा अर्पित करने के तरीके है और उनकी स्मृतियाँ है।

कृष्ण भक्ति का तीज त्योहारों से सम्बन्ध–

भागवत भक्त श्रीकृष्ण को परमपिता परमेश्वर के रूप में स्वीकार करते है। श्री कृष्ण के जन्म लेने से लेकर उनके देवलोक जाने तक के जीवन के महत्व को अलौकिक दृष्टि से ग्रहण किया गया है और उनके कृत्यों को तौलते हुए यह अनुभव किया गया कि भगवान श्री कृष्ण ने जो भी किया, वैसा कर पाना सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। आध्यात्मशास्त्र के अनुसार यह आत्मा बन्धनों से युक्त है अथवा स्वतन्त्र है। यह कोई भी व्यक्ति नहीं जानता कि मनुष्य के व्यावहारिक गुण क्या हैं, वास्तविक तत्व क्या है ये सारी चीजे माया मूलक है, इन्द्रजाल है तथा जादू के खेल के सामान है। इसलिए यह परमात्मा जिसे कृष्ण के रूप में स्वीकार किया जाता है वह किसी प्राणी को न तो बंधन में रखता है और न किसी को मोक्ष देता है। आध्यात्मिक दृष्टि से व्यक्ति अपने को बंधन युक्त या बंधन मुक्त समझता है। इसी प्रकार से आनन्द और शोक जीव मस्तिष्क से अनुभव करता है। जब कोई विछुडता है तो उसे दुःख का अनुभव होता है और जब कोई मिलता है तो उसे आनन्द का अनुभव होता है। यह सब लीला है और कुछ नहीं है। जो व्यक्ति संसार की वास्तविकता को समझ लेता है वह जीवन को स्वप्न वत् मानता है तथा संसार के कृत्यों से ज्यादा प्रभावित नहीं होता।

यह जीव जो मनुष्य रूप में दिखलाई देता है वह विश्व की तमाम क्रियाओं को करता है, लेकिन सामान्य क्रियाओं के कारण वह अपने को कर्ता न मानकर दूसरे को कर्ता मानता है। जबकि वही कर्म का कर्ता ओर फल का भोगने वाला है। वह

प्राण और इन्द्रियों के वशीभूत होकर नाना प्रकार के कृत्य करता है। जो व्यक्ति बुरा काम नहीं करता और न किसी का बुरा सोचता है वह आगे चलकर परमात्मा बन जाता है और लोग उनका अनुसरण करने लगते है। यदि संसार के प्राणी उस परमात्मा पुरूष का अनुसरण करने लगें और सम्पूर्ण कर्मों को उस परमात्मा पुरूष को समर्पित कर दे तो निश्चित ही उसका उद्वार हो सकता है। जो व्यक्ति परमात्मा कृष्ण के अवतारों और लीलाओं का गान, स्मरण और अभिनय करता है, वह परमात्मा का भक्त हो जाता है। परमात्मा भी उसे प्यार करता है और उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। परमात्मा का भक्त वही है जो परमात्मा के कृत्यों का अनुसरण करता है और अपने शरीर की भूख प्यास, शोक–मोह, जन्म, मृत्यु परमात्मा को समर्पित कर देता है। इस प्रकार सारे व्रत–त्योहार जो वैष्णव मत से सम्बन्धित है, वह कृष्ण से प्रभावित हैं उनकी लीलाओं से जुडे हुए है। इनको बार–बार मनाने से उनकी स्मृतियाँ सदैव मस्तिष्क में बनी रहती है।

4– वैष्णव तीज–त्योहारों को मनाये जाने की विधि और उसका धर्म से सम्बन्ध–

वैष्णव सम्प्रदाय का उदय श्रीकृष्ण के उपरान्त हुआ है यह ठीक प्रतीत होता है। इस समय के पश्चात धर्म का विभाजन चार भागों मेंहुआ तथा ये चारों अपनी–अपनी विचारधारा के अनुसार धार्मिक कृत्यों अथवा तीज–त्योहारों को मनाते थे।

वैदिक धर्मावलम्बी–

वैदिक धर्म पर विश्वास करने वाले व्यक्ति जो वेदों को धर्म उत्पत्ति का मूल साधन मानते थे तथा वेदों में वर्णित परमात्मा और देवताओं पर आस्था रखते थे उन्हें वैदिक धर्मावलम्बी कहा जाता था। ये लोग वेदों में वर्णित धार्मिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते थे और उनका अनुपालन जप, तप, ज्ञान तथा दान के माध्यम से करते थे, इन लोगों का धार्मिक अनुष्ठान यज्ञों के माध्यम से पूरा होता था। यज्ञों के

माध्यम से ये लोग अपने मनोरथों की पूर्ति किया करते थे तथा ये यज्ञ भी कई भागों में विभाजित होते थे, ब्राह्मण लोग ज्ञान, बुद्धि और देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए यज्ञ करते थे, वैश्य लोग धन धान्य की प्राप्ति और व्यवसाय सफलता के लिए यज्ञ करते थे, उनके यज्ञ अलग प्राकर के होते थे।

यज्ञ विधि–

यज्ञ करने और कराने वाला व्यक्ति सर्वप्रथम यज्ञ का स्थान सुनिश्चित करता था तथा उस स्थान में यज्ञ करने के लिए एक अथवा अनेक वेदिकाओं का निर्माण होता था। इन वेदिकाओं के लिए समिधा, हवन सामाग्री, धूप, तिल, जौ, घृत आदि सामग्री अनिवार्य थी। यज्ञ का शुभारम्भ आचार्यों तथा योग्य ब्राह्मणों के माध्यम से होता था। यज्ञ समाप्ति के अवसर पर यज्ञ कर्ता के सम्बन्धी आमन्त्रित किए जाते थे तथा योग्य ब्राह्मणों को भी आमन्त्रित किया जाता था। इस अवसर पर उन्हें दान–दक्षिणा और विविध प्रकार के उपहार दिये जाते थे, यहाँ भूमिदान, गोदान, अन्नदान और स्वर्णदान देने का विधान था। ब्राह्मणों को भोज अनिवार्य रूप से दिया जाता था तथा यज्ञों में विविध प्रकार के मन्त्रों का उच्चारण होता था। जो विविध प्रकार के देवताओं को प्रसन्न करने के लिए होते थे।

भागवत पुराण में राजा बलि द्वारा किए गए यज्ञ का वर्णन उपलब्ध होता है, यज्ञ के अवसर पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों अथवा ब्रह्मचारियों को नाना प्रकार की वस्तुएं दान देने का विधान है। राजा बलि ने यह यज्ञ नर्मदा नदी के तट पर भृगुकच्छ नामक स्थान पर भृगुवंशी ब्राह्मणों से सम्पन्न कराया था। इस अवसर पर ब्राह्मण कुमार के रूप में अवतरित वामन भगवान के लिए अनेक वस्तुओं के दान की व्यवस्था की गयी।

'तं नर्मदायास्तट उत्तरे बले

यंर्त्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके।

प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं

व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम्।।

यद्–यद् वटो वा०छसि तत्प्रतीच्छ में।

त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये।

गां का०चनं गुणवद् धाम मृष्टं

तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम्।

ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा

रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ।।[33]

भागवत पुराण में राजा दक्ष के द्वारा किये यज्ञ का विवरण प्राप्त होता है, जिसमें उन्होंने शंकर आदि ब्रह्मनिष्ठ देवताओं का अपमान करते हुए पहले वाजपेय यज्ञ किया पुनः बाद में बृहस्पतिसव नाम का महायज्ञ किया। इस यज्ञ में देवर्षि, पितर तथा देवता लोग अपनी पत्नियों के साथ पधारे तथा राजा दक्ष ने इन सबका स्वागत सत्कार किया।

'इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च।

बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम्।।

तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षि पितृ देवताः।'

आसन कृत स्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः।।[34]

राजा पृथु ने सौ अश्वमेघ यज्ञ करने की दीक्षा ली तथा यह यज्ञ उनके द्वारा सम्पन्न किए गये। इस यज्ञ में पृथ्वी ने कामधेनु का रूप लेकर यज्ञ में सहयोग किया तथा समस्त वस्तुओं की आपूर्ति की जिनका प्रयोग यज्ञ में होता है।

'यत्र धर्म दुधा भूमिः सर्वकामदुधा सती।

दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान् यजमानस्य भारत।।[35]

इस प्रकार राजा पृथु ने इन यज्ञों के माध्यम से अपनी कीर्ति को सदैव के लिए अमर बना लिया।

भगवान श्री कृष्ण ने इन्द्र का घमण्ड चूर करने के लिए एक नवीन यज्ञ का

सृजन कियाथा जो गिरि राज गोवर्द्धन पर्वत का परिक्रमा लगाने का विधान है। इस यज्ञ के बाद ब्राह्मणों का आर्शीवाद लिया जाता है।

'कालात्मना भगवता शक्रदर्प जिघांसता।

प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वग्रह्णन्त तद्वचः।।

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाऽऽह मधुसूदनः।

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद द्रव्येण गिरिद्विजान्।।

उपह्रव्य बलीन् सर्वानादृता यवसं गवाम।

गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिः चक्रः प्रदक्षिणम्।।[36]

यह एक पुनीत पर्व के रूप में दीपावली के उपरान्त प्रतिपदा (परीवा) के दिन प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

भागवत पुराण के अनुसार श्री कृष्ण का अस्तित्व ब्रज में हो गया था, उस समय वहाँ वेदवादी ब्राह्मण स्वर्ग प्राप्त की इच्छा से आङिंरस नाम का यज्ञ कर रहे थे। इस समय तक भगवान श्री कृष्ण की मान्यता ईश्वर के रूप में नही हो पायी थी, इसलिए यज्ञ का भाग उन्हें समर्पित नहीं हो सका तथा कृष्ण अपमानित हुए। दोबारा उन्होंने भोजन माँगने के लिए ग्वालों को ब्राह्मण पत्नियों के पास भेजा तब उन्होंने श्री कृष्ण को ग्वालों के साथ देख उन्हें देवता के रूप में मान्यता देकर उनका स्वागत सत्कार किया। उनका यह मानना कि प्रत्यक्ष के देवता ही वास्तविक देव हैं जो लोक कल्याण कर सकते है। अप्रत्यक्ष देवता कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिए यज्ञ प्रत्यक्ष देवताओं के लिए होना चहिए।

'प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः।

सत्रमाङिंरसं नाम ह्यसते स्वर्गकाम्यया।।

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः।

अभिस्त्रः प्रियः सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः।।

निषिध्यमानाः पतिभिभ्रति भिर्बन्धुभिः सुतैः।

भगवत्युन्तमश्लोके दीर्घश्रुतघृताशयाः ।।[37]

इन यज्ञों में यज्ञ पद्धति और दान पद्धति वेदानुकूल थी किन्तु कृष्ण के समय में होने वाले यज्ञों में पशुबलि का विरोध किया गया और जन कल्याण पर जोर दिया गया।

भागवत पुराण में यह वर्णन मिलता है कि जिस यज्ञ में समस्त देवता तो बुलाए जाते है और यदि उसमें भगवान विष्णु का आवाहन नहीं किया जाता तो वह फलीभूत नहीं हो सकता। राजर्षि अंड. ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया किन्तु उस यज्ञ में भगवान विष्णु प्रमुख देवता के रूप में आमन्त्रित नहीं हुए। इसलिए कोई भी देवता यज्ञ में भाग लेने नहीं आया किन्तु जब विष्णु भगवान को सम्मान के साथ अग्नि में आहुति डालकर बुलाया गया तो वे यज्ञ कुण्ड में प्रगट हुए। उनके हाथ में स्वर्ण पात्र था, जिसमें खीर भरी हुयी थी। वह खीर राजा अङं ने याच को की आज्ञा से अपने हाथ में लेली और उसे सूघँकर वह खीर उसने अपनी पत्नी को दे दी जिनसे उनके एक पुत्र हुआ।

'अङोअश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम।

नाजग्मुर्देवता स्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ।।

तस्मात्पुरूष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः।

हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पापसम्।।

स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वा०जलि नौदनम्।

अवघ्राय मुदा मुक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधी ।।[38]

जो यज्ञ कामना पूर्ति के लिए किये जाते थे उनसे व्यक्तियों के मनोरथ पूर्ण होते थे किन्तु जिन यज्ञों में जीव हिंसा का सहारा लिया जाता था वे अधर्म यज्ञ कहलाते थे।

धार्मिक अनुष्ठान अथवा यज्ञ को सम्पादित करने के लिए भागवत पुराण के रचना काल तथा उससे कुछ पूर्व में जो विधि अपनायी जाती थी उसके निम्न बिंदु थे

1— यज्ञ स्थल का चुनाव

2— यज्ञ कराने वाले आचार्यो का चयन

3— यज्ञ उददेश्य का निर्धारण

4— यज्ञ सामग्री का संकल्प

5— विविध देव और धर्म मन्त्रों के माध्यम से यज्ञ का शुभारम्भ

6— यज्ञ की धार्मिक विधि द्वारा समाप्ति

7— यज्ञ में अनेक व्यक्तियों को आमन्त्रित करना और उन्हें सम्मानित करना

8— यज्ञ समाप्ति के पश्चात यज्ञ में भाग लेने वाले ब्राह्मणो को भूमि, गऊ, वस्त्र, पात्र, स्वर्ण आदि दान देकर सम्मानित करना।

9— अतिथियों, ब्राह्मणों, अकिंचनों तथा विकलागों को भोजन कराना।

10— यज्ञ सामग्री को किसी जलाशय को समर्पित करना

इस विधि से यज्ञ सम्पन्न होते थे।

जन्म स्मृति से जुडे हुये तीज त्योहारों को मनाने की विधि—

जब कोई महापुरूष पैदा होता है तो वह ऐसे कृत्य करता है जो सदैव याद किये जाते है तथा वह व्यक्ति उस देश के निवासियों के लिये परमात्मा बन जाता है। भागवत धर्म वाले राम और कृष्ण को परमब्रह्म परमेश्वर के रूप में मानते है। इसलिये वैष्णव धर्म से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों में इन जन्मोंत्सवों को मनाने की विविध विधियों का वर्णन उपलब्ध हो जाता है। चैत्र मास की रामनवमी को मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्रीराम का जन्म दशरथ नन्दन के रूप में अयोध्य में हुआ था। जन्म लेने के बाद बालपन से ही उन्होने जन कल्याण के अनेक कार्य किये, विश्वामित्र के यज्ञों की रक्षा की ताडका, सुबाहु, मारीच आदि राक्षसों का वध किया और लंका नरेश दशकंधर का वध किया तथा उन्होने अनुशाषन बद्ध राजधर्म की स्थापना की। इसलिये उनके जन्मदिन को इस विधि से मनाते है।

1— धर्म स्थलों की सजावट

2— श्रीराम, लक्ष्मण और सीता की मूर्तियों का जलाभिषेक

3– श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण की मूर्तियों का विविध प्रकार से श्रंगार

4– विविध प्रकार के पकवानों से भगवान से भगवान की मूर्तियों को प्रसाद लगाना, इस प्रसाद में पंचामृत पंजीरी और फलों का होना अनिवार्य है।

5– भगवान राम से सम्बन्धित भजन कीर्तन का आयोजन तथा रामलीला आदि के माध्यम से रामजन्म लीला का मंचन।

6– प्रसाद आदि का वितरण।

7– इस अवसर पर वैष्णव धर्मावलम्बियों के द्वारा उपवास व्रत धारण करना तथा पवित्र होकर पूजा में भाग लेना।

इसी प्रकार कृष्ण जन्माष्टमी में भगवान श्रीकृष्ण के जन्मदिन को मनाने का विधान हैं भगवान श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद माह की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था। उन्होने कंस के कारागार में रात्रि के बारह बजे नन्द और देवकी के पुत्र के रूप में जन्म लिया था। इस तिथि को प्रत्येक वर्ष निम्न विधि से जन्माष्टमी को मनाने का विधान है–

1– देवस्थानों में जाकर मन्दिरों में मूर्तियों की स्थापना करें।

2– मूर्तियों का जलाभिषेक स्वतः पवित्र होकर करें।

3– मूर्तियों का विविध प्रकार से श्रंगार करें इस अवसर पर कृष्ण से सम्बन्धित स्थानों की यात्रा करें।

4– विविध उपहारों प्रसाद आदि से भगवान श्री कृष्ण की पूजा करें। पूजा में फल पंचामृत तुलसीदल तथ विविध प्रकार के पकवान सम्मिलत किये जायें।

5– जन्मदिन के दिन सभी वैष्णव भक्त उपवास रखें।

6– जन्म के दिन वैष्णव भक्तों का दर्शन करें, उनकी सेवा करें तथा भगवान के गुण कीर्तन आदि का गायन करें।

'मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम्।

गीतताण्डववा दित्र गोष्ठी भिर्मदृग्रहोत्सवः।।[39]

घटना प्रधान तीज त्योहारों को मनाने की विधि—

भारतवर्ष में अनेक तीज त्योहार ऐसे होते है जिनका सम्बन्ध विविध प्रकार की घटनाओं से है उदाहरण के लिये नरक चौदस के दिन भगवान ने नरकासुर का वध किया था तथा दीपावली की प्रतिपदा के दिन श्रीकृष्ण ने इन्द्र का घमण्ड चूर किया था। वामन द्वादशी के दिन वामन भगवान ने राजा बलि को पाताल पहुँचा दिया था। इस प्रकार से अनेक तीज त्योहार विविध प्रकार की घटनाओं से भरे है। तथा इन तीज त्योहारों को मनाने की विधि निम्न प्रकार है—

1— सम्बन्धित देवता के लिये व्रत धारण करना।

2— सम्बन्धित देवता की पूजा शास्त्र में वर्णित विधि के अनुसार करना।

3— सम्बन्धित देवता को पूजा के उपरान्त प्रसाद लगाना और उनकी आरती करना।

4— सम्बन्धित त्योहार से सम्बन्धित कथा का वाचन एवं श्रवण करना तथा अनेक व्रतों की कथा सुनने का विधान ब्राह्मणों से है।

ऋतु से सम्बन्धित तीज त्योहार मनाने की विधि—

हमारे यहां अनेक तीज त्योहार ऐसे है। जिनका सम्बन्ध ऋतुओ से हैं इन त्योहारों में मुख्य रूप से बसन्त पंचमी, माघ स्नान, कार्तिक स्नान, मकर संक्रान्ति, शरद पूर्णिमा, कार्तिकपूर्णिमा, होलिका उत्सव, वैशाखी के त्योहार आदि ऋतुओं से सम्बन्धित तीज त्योहार है। इनकी पूजा का विधान निम्न प्रकार है—

बसन्तपंचमी के दिन पीले वस्त्र धारण करके, पीले रंग की वस्तुओं से अपने अपने आरध्य देव के पूजन का विधान है, इस दिन बुद्धि से जुडे हुये व्यक्ति माँ सरस्वती का पूजन भी करते है। प्राचीनकाल में यह त्योहार मदुनोत्सव के रूप में भी मनाया जाता था। इस दिन संगीत और गायन के कार्यक्रम आयोजित करने का विध ाान है। मधुमास के अन्तिम क्षणों में होलिकोत्सव मनाया जाता है। इसको मनाने की विधि निम्न है—

1— होलिका दहन के लिये स्थान विशेष का चुनाव।

2— होलिका दहन स्थल में लकडियों का पन्द्रह दिन पूर्व से एकत्रित किया जाना।

3— फाल्गुन मास की पूर्णमासी को धार्मिक नियम के अनुसार होलिका का पूजन गोबर से निर्मित बल्लों आदि से किया जाता है। इसके पश्चात होलिका में मन्त्रोचारण के साथ अग्नि दी जाती है।

4— दूसरे दिन एक दूसरे पर रंग डालकर तथा गुलाल अबीर आदि लगाकर अभिवादन करने का विधान है।

इस प्रकार शरद पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, और माघ माह को भी पवित्र सरिताओं में स्नान करके मनाया जाता हैं, इस अवसर पर देव दर्शन, देव पूजा, गुरू पूजा, वृक्ष पूजा, प्रकृति पूजा, करने का विधान है।

ज्योतिष तन्त्र से प्रभावित तीज त्योहारों को मनाने की विधि—

भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति ज्योतिष और तन्त्र विज्ञान पर आस्था दखता है वह नेष्ट ग्रहों में कोई कार्य नही करना चाहता। इसी प्रकार जब अधिक मास अथवा मलमास पडतें है उस समय भी व्रत आदि करने का विधान है। ज्योतिष तन्त्र के अनर्तगत चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का विशेष महत्व है, लोग ग्रहण के दिन को शूदक मानते है और इसे निम्न प्रकार से मनाते है—

1— ग्रहण की अवधि में भगवान के मन्दिरों के पट बन्द कर दिये जाते है।

2— ग्रहण के उपरान्त समस्त जल जो पीने के लिये रहता है उसे बदल दिया जाता है।

3— ग्रहण के उपरान्त पवित्र सरोवरों, नदियों में स्नान किया जाता है।

4— ग्रहण के उपरान्त अन्तर्गत जातियों को अनाज देने का विधान है।

जब ग्रहण समाप्त हो जाता है। उस समय मन्दिर की मूर्तियों का पुनः अभिषेक, श्रंगार, और पूजन होता है तथा प्रसाद आदि लगाया जाता है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में बारह माह की चौबीस एकादशी बारह पूर्णमासी, अठारहवे

दिन नवरात्रि के तथा चौबीस दिन प्रदोष के पर्वो के रूप में मनाये जाते है। इस दिन व्यक्ति निम्न प्रकार के कार्य करता है—

1— देव आराधना एवं देवदर्शन।

2— विविध प्रकार की कथाओं का श्रवण एवं प्रसाद वितरण।

3— पवित्र सरिताओं व सरोवरों में स्नान करना।

4— विविध प्रकार के व्रतों का अनुपालन।

5— विविध प्रकार के दान कर्म करना।

इस प्रकार हम देखते है कि सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति परिकल्पित आनन्द की प्राप्ति के लिये जो धार्मिक कृत्य समय समय पर करती है। उन्हें हम तीज त्योहार के नाम से पुकारते है। परमात्मा पर श्रद्धा रखता हुआ व्यक्ति मनोकामना की पूर्णता के लिये इनका अनुसरण करता है। ये तीज त्योहोर भारतीय संस्कृति के व्यावहारिक स्वरूप में हमें दिखलायी देते है। तथा इनकी विविधता ही इनकी विशेषता है भारत वर्ष के लोगों बहुदेववाद पर विश्वास करते हुये विविध देवों के लिये विविध प्रकार के पर्वो का आयोजन करते है परन्तु सभी देवताओं को परमपिता परमेश्वर का ही अंग माना जाता है। इसलिये यह बहुदेववाद भी एक देव वाद से सम्बन्धित है।

5— धार्मिक अनुष्ठानों की परिभाषा तथा उनका सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों से सम्बन्ध—

भारतवर्ष के लोग अति प्राचीन काल सें वेदों में निर्दशित नियमों को पालन करते रहें है और आज भी उनका पालन कर रहे है। इसलिये धर्म को पुर्वमीमांसा सूत्र में वेद हित प्रेरक नाम से पुकारा गया तथा धर्म का सम्बन्ध उन क्रिया संस्कारों से जोडा है जिनसे आनन्द की उपलब्धि होती है, जो वेदों द्वारा प्रेरित और प्रशंसित हैं।[40] जो कार्य विघ्न बाधा दूर करने के लिये और आनन्द लाभ के लिये किये जाते है वे धार्मिक अनुष्ठान कहलातें है क्योकि ये सभी परमात्मा को समर्पित रहते है। गौतम धर्मसूत्र ने वेद का धर्म का मूल माना है।[41] यही कथन वशिष्ठ धर्मसूत्र और

मनुस्मृतिका भी है इसलिये वेदों की आज्ञा का अनुसरण करना, व्यक्तियों के साथ अच्छा व्यवहार करना, उचित संकल्प लेकर, कार्य करना, परम्पराओं का पालन करना इन्ही को धार्मिक कार्यों के अन्दर रखा जाता है। वेदों में अलग अलग आयु और वर्ण के अलग अलग नियमों का विधान है तथा इसी व्यवस्था का अनुसरण बाद के काल में रचे गये धर्मग्रन्थों व पुराणों ने भी कियाहै। ब्रह्मचारी के कर्तव्यों की चर्चा करते हुये यह नियम बतलाया गया है कि ब्रह्मचारी मदिरापान से दूर रहे साधू सन्तों का समादर करे विद्वान ब्राह्मणों का कहना माने आदि कार्यों को धर्म से जोड़ा गया है तथा विविध धार्मिक कार्यों को धार्मिक अनुष्ठानों से भी जोडा गया है। ये धार्मिक अनुष्ठान निम्नलिखित थे–

वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन करना–

वर्णाश्रम व्यवस्था का अनुपालन करना एक धार्मिक अनुष्ठान माना गया है। कोई भी व्यक्ति जो जिस परम्परा में और जिस जाति में जन्म लेता है उसका वह जन्म से ही सदस्य बन जाता है। वह जन्म से ही अपने वर्ण के नियमों का पालन करता है तथा विवाह आदि भी वर्ण व्यवस्था के अनुसर ही करता है और जिन जातियों मे उसके लिये भोजन करना मना है वह वहां भोजन आदि कार्य नही करता। वह अपने वर्ण के अनुसार अपना कार्य या निर्धारित व्यवसायकरता है। वह वर्ण के अनुसार जिस ऊंची या नीची जाति में जन्म लेता है उसके कर्तव्यों का अनुपालन भी वह अपने वर्ण धर्म के अनुसर करता है।

भागवतपुराण में वर्णधर्म और मानव धर्म का उल्लेख उपलब्ध होता है। इस पुराण के अनुसार जो व्यकित कर्म से शुद्ध हैं वे ब्राह्मण है उन्हें यज्ञ, अध्ययन, दान, ब्रह्मचर्य तथा आश्रम धर्म का विशेष पालन करना चाहिये । अध्ययन–अध्यापन, दान लेना–दान देना, यज्ञ करना और यज्ञ करना ये छः कर्म ब्राह्मणो के है। इसी प्रकार क्षत्रियों को दान लेने का अधिकार नही है। प्रजा की रक्षा करना अपराध करने वाले को दण्ड देना तथा राज चलाने के लिये कर लेना क्षत्रियों का कर्तव्य है इसी प्रकार

'विप्रस्याध्ययनादिनी षडन्यस्याप्रतिग्रहः ।

राज्ञो वृत्तिः प्रजगोप्तुर विप्राद् वा करादिभिः ।। [42]

वैश्यों को ब्राह्मण वंश का अनुयायी रहकर गो रक्षा, कृषि एवं व्यापार के द्वाराअपनी जीविका चलाना चाहिये तथा शूद्र का धर्म है कि वह द्विजातियों की सेवा करे और उसकी जीविका के प्रबन्ध का दायित्व उसके स्वामी का है। इस प्रकार वर्ण धर्म

'वैश्यस्तु वार्ता वृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ।

शूद्रस्य द्विजशुश्रुषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत ।। [43]

का पालन करना एक धार्मिक अनुष्ठान माना गया है।

आश्रम धर्म का पालन–

भारतीय धर्म शास्त्र के अनुसार सम्पूर्ण सौ वर्ष की आयु का विभाजन चार आश्रमों के रूप में किया गया है। व्यक्ति जन्म से लेकर पच्चीस तक की आयु तक ब्रह्मचर्यआश्रम का पालन करता है। पचीस वर्ष से पचास वर्ष तक की आयु तक वह ग्रहस्थ धर्म का पालन करे तथा पचास वर्ष से लेकर पचहत्तर वर्ष तक की आयु तक वह वानप्रस्थ अश्रम का पालन करे और पचास वर्ष से लेकर सौ वर्ष तक वह सन्यास व्रत का पालन करे। इन आश्रमों का पालन करने से व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति करता है। आश्रम धर्म का पालन करना व्यक्ति के जीवन में एक धार्मिक अनुष्ठान था। आश्रम धर्म के बारे में तृतीय अध्याय में विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है।

सामाजिक संस्कारों का अनुपालन–

धर्मशास्त्रों में संस्कारो को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतवर्ष में उसी व्यक्ति को पवित्र माना जाता था जो संस्कार युक्त होता था। संस्कारो का विधान पौराणिक ग्रन्थों के अतिरिक्त स्मृतिग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार संस्कार धर्म के मूल थे और लोक प्रिय थे।[44] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी संस्कारो को धार्मिक अनुष्ठान के रूप में स्वीकार किया गया हैं इस ग्रन्थ का मानना

है कि चूडाकर्म आदि संस्कार मनुष्य की पापों से रक्षा करते है।[45]

श्रीमद्भागवत महापुराण में सोलह संस्कारों की बहुत अधिक प्रशंसा की गयी है। इस पुराण के अनुसार जो व्यक्ति अपने परिवार में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के सब संस्करो को धार्मिक नियमानुसार सम्पन्न करता है। वे लोग पितृयान या धूम मार्ग से पित्रीश्वर अर्यमा के लोक में जाते है और दुबारा अपने ही परिवार में जन्म लेते है। इसलिये जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारो का अनुपालन करना एक धार्मिक अनुष्ठान है इनमें मुख्य संस्कार निम्नलिखित है–

'दक्षिणेन पथार्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते।

प्रजामनु प्रजायन्ते श्मशानान्तक्रियाकृतः।।[46]

पुंसवन संस्कार– पुराणों में पुंसवन संस्कार के अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। विष्णु पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि कश्यप ऋषि की पत्नी दिति ने शक्तिशाली पुत्र को प्राप्त करनेके लिये यह व्रत रखा था। कश्यप ऋषि ने दिति को इस व्रत को पवित्रता के साथ पालन करने का निर्देश दिया था।

शक्रं पुत्रो निहन्ता ते.........शौचिनी धायिष्यसि

.......इत्येव मुक्तवा तां देवी संगतः कश्यपो मुनिः।[47]

भागवत पुराण में भी इसी प्रकार का विवरण उपलब्ध होता है जिसके अनुसार इस पुंसवल संस्कार का एक वर्ष तक बिना किसी त्रुटि के पालन करने पर शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न होता है।

'सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम्।

धारयिष्यसि चेतुभ्यं शक्रहा भविता सुतः।।[48]

भागवत पुराण में इसे संस्कार की जगह व्रत की संज्ञा दी गयी है। मत्सय पुराण में कश्यप दिति प्रसंग में गर्भावस्था के समय में संस्कार विधि के अनुसार श्रेष्ठ आचरणों पर बल दिया गया है। ताकि उस स्त्री से शीलवान एवं आयुष्मान पूर्ण संतान प्राप्त हो।

'इति इति वृत्ता भवेन्नारी विशेषेण तु गर्भिणी।

यस्तु तस्या भवेत्पुत्रः शीला युर्वद्विसंयुतः।।।[49]

भागवत पुराण के अनुसार स्त्री को पुंसवन व्रत लेने के पश्चात अर्थात गर्भ धारण करने के पश्चात शास्त्र वर्णित निषिद्ध कर्मों का त्याग करके सर्वदा पवित्र रहना चाहिये तथा सभी सौभाग्य के चिन्हो से सुसज्जित रहे। प्रातःकाल कलेवा करने के पहले ही गाय ब्राह्मण लक्ष्मी जी और भगवान नारायण की पूजा करे।

'धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमंगलसंयुता।

पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्राम श्रियमच्युतम्।।[50]

पुराणोंमें पुंसवन व्रत या संस्कार पर अत्यधिक जोर दिया गया है। जिसका उददेश्य श्रेष्ठ संततान प्राप्त करना था। इससे यही स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में जिस समय में पुराण रचे गये उस समय युद्धो कीभरमार थी तथा शस्त्रों की अपेक्षा मनुष्यों की हानि अधिक होती थी। अतः श्रेष्ठ संतानों को युद्धों के लिये प्राप्त करना आविश्यक समझा गया होगा। भागवत पुराण में इस व्रत पर काफी प्रभावकारी ढंग से जोर दिया गया है क्योंकि इस पुराण की रचना जिस समय हुई उस समय देशी राजा तो आपस में लडाइयाँ करते थें परन्तु इस समय बाहरी आक्रमणों से भारतीय जनता अत्यधिक तृस्त थी। भारतीय जनमानस इन बाहरी आक्रमणकारियो को म्लेक्क्ष नाम से पुकारती थी तथा धार्मिक द्रष्टि से इनसे घ्रणा करती थी इसलिये उनकेआक्रमणों को रोकने के लिये श्रेष्ठ संतोनों की आवश्यकता थी।

सीमान्तोनयन संस्कार– पुराणो में इस संस्कार का भी उल्लेख मिलता है। इस संस्कार के अर्न्तगत सीमान्तो नयन के अवसर पर पितरों की अर्चना करनी पडतीथी।

'सीमान्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने।

नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत्प्रयतो गृही।।[51]

जात कर्म संस्कार–

जात कर्म एक धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है। इसका उल्लेख भी कई पुराणों

में उपलब्ध होता है। विष्णु पुराण में इसका सविस्तार वर्णन है। यह संस्कार शिशु के उत्पन्न हो जाने के बाद सम्पन्न होता है।

'जातस्या जातकर्मादिक्रिया काण्डम शेषतः।

पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धं चाभ्युदयात्मक्रम।

.........................विप्रान्भोजयेन्म नुजेश्वर।।

सचैलस्य पितुः स्नानं जाते पुत्रे विधीयते।

जात कर्म तदा कुर्याच्छाद्धमभ्युदये च यत्।

नान्दीमुखं पितृगण स्तेन..........प्रीयते। [52]

भागवत महापुराण में भी श्री कृष्णे जन्म संस्कर को बडे धूम धाम से मनाने का विधान है इस दिन प्रसूता और जातक को स्नान करााया जाता था तथा दोनों को वस्त्र और आभूषण पहनने को दिये जाते है वेद ब्राह्मणाों को बुलाकर स्वस्ति वाचन और जातकर्म कराया जाता है तथा देवताओं और पितरों की पूजा की जाती है।

'नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताल्हादो महामनाः।

आहूय विप्रान वेदज्ञान स्नात शुचिरलंडकृतः।।

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै।

कारयामास विधिवत पितृदेवार्चनं तथा।।[53]

नामकरण संस्कार–

यह संस्कार जातकर्म संस्कार की भाँति ही मनाया जाता है इस संस्कार के अर्न्तगत बालक के नामकरण और उसके स्वरूप पर विचार होता है तथा जो नाम बालको के रखे जाते है। उनके अन्त में जाति सूचक शब्द शर्म, वर्म, गुप्त और दास लगाये जाते है इसका उल्लेख विष्णुपुराण मे उपलब्ध होता है।[54] भागवत पुराण में कृष्ण और बलराम के नामकरण संस्कार का वर्णन उपलब्ध होता है। उनका यदुवशियों के आंचार्य गर्गाचार्य जी ने किया

'एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत्।

चकार नामकरणं गूढों रहसि बालयोः।।'[55]

उपनयन संस्कार— यह संस्कार विद्या आरम्भ करने के पूर्व किया जाता है। विष्णु पुराण मे इस संस्कार का उल्लेख मिलता है। इस संस्कार को पूरा कर लेने के बाद विद्यार्थी गुरू गृह में पढने का अधिकारी होता है।

'ततोऽननन्तर संस्कार संस्कृतो गुरूवेश्मनि।

..............................कुर्याद्विद्यापिरग्रहम।।'[56]

भागवत पुराण में श्रीकृष्ण के यज्ञोपवीत अथवा उपनयन संस्कार का वर्णन उपलब्ध होता है कृष्ण के पिता वसुदेव ने अपने पुरोहित गर्गाचार्य तथा दूसरे ब्राह्मणो से श्रीकृष्ण और बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया।

'अब शूरसुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत्।

पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद द्विज संस्कृतिम्।।'[57]

विवाह संस्कार—

यह संस्कार पच्चीस वर्ष की आयु के पश्चात प्रारम्भ होता हैं। इसमें युवा स्त्री पुरूष दाम्पत्य सूत्र बन्धनों मे बंध जाते हैं और परिवार को आगे चलाने के लिये सन्तान उत्पत्ति कर सकते हैं।

'गृहीत विद्यों.................कुर्याद्वारपरिग्रहाम्।

सह धर्म चारिणी प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया।

समुद्वेहद्दात्ये त्सम्य गूढं महाफलम्।'[58]

भगवत पुराण में विवाह के अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय धार्मिक व्यवस्था के अर्न्तगत कई प्रकार के विवाहों को मान्यता प्राप्त थी। इन विवाहों में वर तथा कन्या की स्वीकृति अनिवार्य थी एक प्रसंग के अनुसार महदेव जी (शंकर) ने प्रजापति दक्ष की कन्या का अग्नि और ब्राह्मणो के सामने पाणिग्रहण किया थ।

'एष में शिष्यतां प्राप्तो यन्में दुहितुरग्रहीत्।

पाणिं विप्राग्नि मुखतः सावित्रया इव साधुवत्।'[59]

सत्राजित ने अपनी कन्या सत्यभामा का श्री कृष्ण के साथ पाणिग्रहण संस्कार किया था।

'तां सत्यभामां भगवानुपयेमेंयथाविधि।

बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्य गुणन्विताम्।'[60]

शकुन्तला की स्वीकृति मिल जाने पर राजा दुष्यन्त ने उससे गन्धर्व विवाह किया था जो देशकाल और शास्त्र की आज्ञा को जानने वाले थे। स्वयंम्बर प्रथा का प्रचलन भी था।

'ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलम्।

गान्धर्वविधिना राजा देशकाल विधानवित्।'[61]

भागवत पुराण के अनुसार विदर्भ नरेश की कन्या से विवाह पाण्ड्य नेरश मलय ध्वज ने समरभूमि में समस्त राजाओं को जीतकर किया था। भागवत पुराण मे पुत्रिका धर्म

'उपयेमें वीर्ययणां वेदभीं मलयध्वजः।

युधि निर्जित्य राजन्यान् पाण्डयः परपुरअंजयः।'[62]

विवाह का विवरण उपलब्ध होता है। जिसके अनुसार किये जाने पाले विवाह में यह शर्त होती है। कि कन्या के जो पहला पुत्र होगा उसे कन्या के पिता ले लेंगे। ऐसा विवाह आकूति का रूचि प्रजापति के साथ हुआ था। विवाह के समय कन्या को विदा

'आकूतिं रूचये प्रादादपि भ्रातमतीं नृपः।

पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः।'[63]

करने के साथ मे दहेज देने का प्रचलन था । ऐसा विवरण भागवत पुराण मे उपलब्ध होता है कि देवकी के पिता देवक ने अपनी कन्या को विदा करते समय हाथी, घोडे, रथ, वस्त्र, आभूषण, तथा दासियाँ दहेज में दी थी।[64]इस प्रकार स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में कई प्रकार के विवाहों को मान्यता प्राप्त थी, जिसमें

वर एवं कन्या की स्वीकृति आवश्यक थी। दहेज प्रथा विवाह का आवश्यक अंग नही थी कन्या का पिता अपनी सामर्थ्य के अनुसर कन्या के सुखमय जीवन के लिये दहेज दिया करता था।

मृत्यु संस्कारः— मृत्यु संस्कार जीवन का अन्तिम संस्कार होता है। जबकोई व्यक्ति संसार छोड देता है उस समय उसके शरीर को जल में प्रवाह करके, भूमि में गाड़ करके और अग्नि में अन्तेष्टि करने की प्रथा थी। भागवत पुराण के अनुसार विभीषण ने अपने स्वजन सम्बन्धियों का पितृयज्ञ की विधि से शास्त्र के अनुसार अन्त्येष्टि कर्म किया था।

'स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रा नुमोदितः।

पितृमेघविधिनेन यदुक्तं साम्परायिकम्।।'[65]

श्री कृष्ण के स्वधामगमन के पश्चात यदुवंश के मृत व्यक्तियो में जिनको कोई पिण्ड देने वाला न था उनका श्राद्ध अर्जुन ने कमशः विधि पूर्वक करवाया।

'बन्धूनं नष्टगोत्राणामर्जुनः साम्परायिकम।

हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः।।'[66]

मानव जीवन के ये संस्कार धार्मिक अनुष्ठान के रूप से अति प्राचीन काल में सम्पन्न होते रहे है। इनसे हमारी संस्कृति संरक्षित होती रही हैं और इन्ही के कारण हमारी पहचान बनी रही है।

नैमित्तिक धर्म अनुष्ठान—

जीवन के नित्य कर्मो को भी धार्मिक अनुष्ठान माना गया है। कूर्म पुराण तथा अन्य ग्रन्थों में यह निर्देश मिलता है कि वह प्रातःकाल उठे और भगवान के नाम का स्मरण करे। इसके पश्चात मल मूत्र का त्याग करे, इसके व्यक्ति मुख प्रक्षालन करे,

'ब्रह्मा मुरारि स्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधष्च।

गुरूश्च शुक्रः शनिराहु केतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।'[67]

आचमन करे, दांत साफ करे, और स्नान करे, ये स्नान कई प्रकार के होते है इन्हे

मुख्य (जल के साथ), गौण, नित्य और काम्य, स्नान के रूप में विभाजित किया गया है।[68] जब पितृ पक्ष हो उस समय पितरों को पानी देने के लिये डुबकी लेकर जल देने का विधान है।[69] स्नान करने के पश्चात पवित्र वस्त्र धारण करना चाहिये। वस्त्र दो प्रकार के है प्रथम वस्त्र कमर के नीचे का वस्त्र तथा द्वितीय वस्त्र कमर के ऊपर का होता है। इसके अतिरिक्त वह आभूषण, जनेऊ, आदि धारण करे और भगवान के पूजन के पश्चात धार्मिक चिन्ह माथें में अकित कर यह स्मृति चिन्ह धर्म, सम्प्रदाय और जाति के अनुसार होते है।[70]

नैमित्तिक देव आराधना—

जो व्यक्ति परमात्मा पर विश्वास करता हो उसे स्नान करने के पश्चात संध्या वंदन करना चाहिये और उसके पश्चात होम करना चाहिये यदि व्यक्ति देव ऋण , ऋषि ऋण और पितृ ऋण से छुटकारा पाना चाहता है तो वह जीवन भर होम यज्ञ करे, यह यज्ञ अग्नि प्रज्जवलित करके किया जाता है इसका उल्लेख मनुस्मृति में है[71] होम करने के पश्चात जप करने का विधान है यह जप मुख से उच्चारण करके ओठ चलाकर और मस्तिष्क से मौन रहकर किया जाता है इसका उल्लेख निम्न ग्रन्थों में है।[72] इसके पश्चात पितरों को प्रतिदिन तर्पण करने का विधान है।

पंच महायज्ञ— पंचमहायज्ञों का आयोजन करना भी एक धार्मिक अनुष्ठान है इनका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है यह यज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, पितृयज्ञ और देवयज्ञ व ब्रह्मयज्ञ के नाम से विख्यात है। यह यज्ञ गृहस्थ को पुरोहितों की सहायता से करना चाहियें।

अथातः पंच यज्ञाः। देवययज्ञों भूतयज्ञः पितृयज्ञों ब्रह्मयज्ञों मनुष्य यज्ञ इति।[73]

उपकर्म— अनेक उपकर्म भी धार्मिक अनुष्ठान का अंग होते है इन उपकर्मो का यह अर्थ है कि व्यक्ति अपने नियमित कर्मो से छुटकारा लेकर कुछ ऐसे कर्म करता है जो सामान्य रूप से नही किये जाते। इन उपकर्मों मे हस्त नक्षत्र की श्रवण पंचमी को उपकर्म होता है। कभी कभी यह उपकर्म भाद्रमास की पूर्णमासी को भी होता है।

इस दिन व्यक्ति स्नान करके यज्ञ करता है तथा देवताओं का आवाहन करता है इससे व्यक्ति को पुण्य लाभ होता है।

देवस्थल का निर्माण या मूर्ति स्थापना— अनेक धनी मानी व्यक्ति जिनके पास पर्याप्त धन है वह देव स्थानों का निर्माण कराते है और वहाँ विविध धार्मिक अनुष्ठानों के साथ गर्भगृह में देवताओं की मूर्ति की स्थापना कराते है। भागवत पुराण मे देवमन्दिर निर्माण के निर्द्रेश उपलब्ध होते है। धर्म पर विश्वास रखने वाले

'ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः।

उद्यानो पवना क्री डयुर मन्दिर कर्मणि।।'[74]

व्यक्ति अपने आराध्य देव के लिये देवमन्दिरो का निर्माण कराते है और इन मन्दिरों में सोलह विधियों मे ईश्वर की उपासना करते है तथा देव दर्शन को शुभ मानते है।

पवित्र सरोवरों मे स्नान— धार्मिक अनुष्ठान के अन्र्तगत तीज त्योहार और व्रत के अवसर पर पवित्र सरोवरों पर स्नान करने का विधान है। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी आदि नदियाँ अत्यन्त पवित्र मानी जाती है। इन नदियों मे धार्मिक व्यक्ति पूर्णमासी, अमावस्या, मकर संक्रान्ति, ग्रहण आदि पर्वों पर स्नान करते है और अपने देव को अर्ध्य देते है। अनेक साधू संत माध मास में गंगा नदी के तट पर कल्पवास करते है और यज्ञ आदि करते है।

तीर्थ स्थलों का दर्शन— तीर्थ स्थलों का दर्शन करना भी एक धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है। अनेक पुराणों में विभिन्न तीर्थ स्थलों वर्णन उपलब्ध है। ये सम्पूर्ण तीर्थ शिव विष्णु और शक्ति तीर्थों के नाम से विख्यात है। इनमें वाराणसी, हरिद्वार, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगासागर, रामेश्वरम, मथुरा, अयोध्या, पुष्कर जी आदि प्रसिद्ध तीर्थ स्थल हैं जिनकी यात्रा धार्मिक अनुष्ठान के अन्र्तगत की जाती है। भागवत पुराण के अन्र्तगत तीर्थयात्रा का वर्णन उपलब्ध होता है यह तीर्थयात्रा नन्द जी ने अपने परिवार सहित शिवतीर्थ की, की थी।

'एकदा देव यात्रायां गोपाला जातकौतुकाः।

अनोभिरन डुद्युक्तैः प्रययुस्तेअम्बिकावनम्।।'[75]

धर्मग्रन्थों का पठन–पाठन– वेद, पुराण, शास्त्र आदि ग्रन्थों का पढना और उन्हें सुनना धार्मिक कृत्य एवं धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है। इन धार्मिक ग्रन्थों कें पठन पाठन एवं श्रवण से व्यक्ति के मस्तिष्क में धार्मिक प्रवृत्तियां जन्म लेती है तथा उसका आचरण सुधर जाता है और उसकी श्रद्धा देवी देवताओ के प्रति बढ जाती है। भागवत महापुराण में इस ग्रन्थ के महत्व को उजागर किया गया है इसके अनुसार जो व्यक्ति भागवत पुराण को सुनते है उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और जो भागवत ग्रन्थ का श्रवण नही करते उनका जन्म बेकार है। यदि व्यक्ति का

'आर्दशुष्कं लघुस्थुलंवाङ.य्नः कर्मभिः कृतम्।

श्रवणं विदेहत्पापं पावकः समिधो यथा।।

अस्मिन वै भारते वर्षे सुरिभिर्देवसंसदि।

अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तिकम्।।'[76]

शरीर पुष्ट है और उसने श्रीमद्भागवत कथा नहीं सुनी है तो उसका जीवन व्यर्थ है। उसका शरीर नस, तथा नाडी रूपी रस्सियों से बंधा हुआ है। उस पर मांस और रक्त थोपकर उसे चर्म से मढ़ दिया गया है तथा इसके प्रत्येक अंग से दुर्गन्ध आती है क्योकि यह मल मूत्र का भांड ही है। वृद्धावस्था में यह शरीर रोगग्रस्त हो जाता है अैर अन्त में मर जाता है। यदि इस शरीर को गाड दिया जाता हैं तो इसमे कीडे पड जाते है और फेंक दिया जाता है तो जंगली पशु उसे खा जाते है व जला दिया जाता है तो राख की ढेरी में परिणित हो जाता है। इसलिये बिना सत्कर्म किये इस शरीर से कुछ भी मिलने वाला नही है। यदि व्यक्ति एक सप्ताह तक भागवत का श्रवण करे तो उस भगवान की प्राप्ति हो सकती है। ओर दोषों से छुटकारा मिल सकता है।

'सप्ताह श्रवणाल्लोके प्राप्यतें निकटे हरिः ।

अतो दोषनिवृत्यर्थ मेतदेव देव हि साधनम् ।।[77]

सदाचरण— व्यकित वही धार्मिक है जो धर्म के अनुकूल आचरण करता है। भागवत पुराण में सत्य, दया, तपस्या, शोच, तितिक्षा, उचित अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी, महात्माओं की सेवा, धीरे–धीरे सांसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, अभिमान का त्याग, मौन आत्मचितंन, प्राणियों को अन्त आदि का सहयोग और मनुष्यो में इष्टदेव के प्रति श्रद्धा का भाव, सतों की सेवा, भगवान के लीला, गुण नाम आदि का श्रवण । कीर्तन स्मरण, उनकी, सेवा, पूजा, उनके प्रति आदर का भाव तथा अपने को परमात्मा का दास सखा समझना और परमात्मा के लिये अपने शरीर का उत्सर्ग करना यही मनुष्यो के परम धर्म है और यही धर्माचरण व सदाचरण है। इनका अनुपालन करने से परमात्मा प्रसन्न है ओर व्यक्ति की प्रतिष्ठा संसार में बढ जाती है ।78

समाज एवं धर्म से धार्मिक अनुष्ठानों का सम्बन्ध—

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जन्म से लेकर मृत्यु तक उसके समस्त संस्कार समाज में ही सम्पन्न होते है वह समाज मे पैदा होता है। समाज मे उसका पालन होता है तथा वह कुछ कार्य सामाजिक व्यक्तियों के लिये करता है और समाज के दूसरों व्यक्ति उसके लिये कार्य करते है। इस प्रकार उसका सम्पूर्ण जीवन समाज को ही समर्पित रहता है और समाज उसके लिये समर्पित रहता है।

धर्म भी समाज का एक अंग है इसे एक विशेष जीवन शैली का नाम दिया जा सकता है। जिस शैली के अर्न्तगत वह अपना सम्पूर्ण जीवन और आचरण संसार की विशेष शक्ति को समर्पित कर देता है और सम्पूर्ण संसार को वह उसी हृदय में लोक कल्याण की भावना उत्पन्न करते है। इसलिये ये धार्मिक अनुष्ठान समाज को प्रभावित करते है और धर्म के अंग है।

5– पौराणिक द्रष्टि से धार्मिक स्थानों का महत्व और उसकी यात्रा का प्रभाव–

अति प्राचीन काल से वे स्थान हमारे तीर्थ स्थान बन गये है जिन्हे देवता, ऋषि, मुनि और महापुरूषों ने अपना कर्मस्थल बनाया है। इस संसार में गरीब व्यक्ति कुछ भी करने में समर्थ नही है इसलिये उसका कोई सामाजिक महत्व ही नही है। केवल राजा महाराजा और धनी व्यक्ति ही अपने स्वप्न को साकार कर सकते है और विशिष्ट धार्मिक यज्ञों को सम्पन्न करा सकते है। इसलिये धनहीन व्यक्तियों को पुराणों में यह सलाह दी गयी है कि वे यज्ञों का अनुष्ठान न करके नजदीकी तीर्थ की यात्रा करें, तीर्थ यात्र यज्ञों से कई गुना श्रेष्ठ है।

'ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम्।
न हि शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते।
बहुपकरणा यज्ञा नाना संभार विस्तराः।
प्राप्यते प्रार्थि वैरेतैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित्।
यो दरिद्रैपि विधिः शक्यः प्राप्तुः नरेश्वर।
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम।
तीर्थानुमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते।'[79]

भारतवर्ष का सबसे पवित्र तीर्थ स्थल प्रयाग को स्वीकार किया जाता है इस तीर्थ की यात्रा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। इस तीर्थ स्थल में गंगा यमुना का पवित्र संगम है। यह तीर्थ स्थल तपस्या करने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने और दान देने के लिये भी उपयुक्त है।[80] भागवत पुराण में तीर्थ स्थल प्रयाग में स्नान तथा देवता ऋषि एवं पितरों के तर्पण के लिये इंगित किया गया है।

'अनुस्त्रोतेन सरयूं प्रयागमुषाम्य सः।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् जगाम् पुलहाश्रमम्।'[81]

प्रयागराज के पश्चात दूसरा तीर्थ स्थल सप्तगोदावर और गोकर्ण है इस तीर्थ स्थल

मे स्नान करने के पश्चात अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। भागवत पुराण में

'सप्तगोदावरे चैव गोकर्णे च तपोवने।

अश्वमेध फलं तत्र स्नात्वा च लभते नरः।।[82]

गोकर्ण तीर्थ को भगवान शंकर का क्षेत्र कहा गया है जहाँ भगवान शंकर सर्वदा विराजमान रहते है।

'ततोऽभिव्रता भगवान केरलांस्तु त्रिगर्तकान्।

गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः।।'[83]

शैव तीर्थ– प्राचीन काल से भगवान शिव पर अनार्य, दैत्य, राक्षस, यक्ष, तथा आर्य लोग उनको आदि देव मानकर उनकी पूजा करते है। इसलिये भगवान शिव से सम्बन्धित तीर्थ की यात्रा करना शैव धर्म के लोग अपना पुनीत कर्तव्य मानते है। शैव तीर्थो मे कैलाशमानसरोवर, अमरनाथ, पशुपतिनाथ, कालींजर, काशीविश्वनाथ, सोमनाथ, बैजनाथ, महाकाल और रामेश्वरम् आदि हैं।

शक्ति तीर्थ– जो लोग शक्ति को आदि देवी मानते है वे लोग शक्ति स्थलों की यात्रा करते है। प्रमुख शक्ति तीर्थ स्थलों में विन्ध्याचल, कालीकट, वैष्णव देवी, मैहर, मदुरै, कामाख्या देवी, आदि प्रसिद्ध तीर्थ स्थल हैं।

वैष्णव तीर्थ– जो लोग भगवान विष्णु पर आस्था रखते है ओर भगवान के बीस अवतारों को स्वीकार करते है वे लोग विष्णु तीर्थो की यात्रा करते है। मुख्य रूप से अयोध्या मथुरा, जगन्नाथ पुरी, तिरूपति बाला जी, और द्वारका पुरी है। प्रमुख वैष्णव तीर्थ द्वारका पुरी की यात्रा करने पर और वहाँ के स्थलों का दर्शन करने पर समस्त पाप दूर हो जाते है।[84]

तीर्थ यात्रा के उद्देश्य– सम्पूर्णदेश के सन्दर्भ मेंजानकारी प्राप्त करना तीर्थ यात्रा का प्रमुख उददेश्य है। यदि व्यक्ति एक ही स्थान पर बना रहेगा तो केवल उसे अपने ही क्षेत्र की जानकारी प्राप्त हो पायेगी वह दूसरों की भाषा, वेश भूषा पहनावा और धार्मिक आचरणों के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नही कर

पायेगा। इसलिये वह तीर्थ यात्रा करके अपने ज्ञान की शक्ति बढाता है और अपनी व्यावहारिकता का भी विस्तार करता है। यदि वह एक ही स्थान पर बना रहता है तो माया–मोह के बन्धनों को नहीं त्याग सकता। साथ ही जो धन उसने एकत्र कर रखा है उसका भी वह सदुपयोग नहीं कर पायेगा। इसलिये तीर्थ यात्रा एक पुनीत कर्तव्य है तथा तीर्थ यात्रा करने वाले व्यक्ति को शुभ कर्म कर्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है।

'तीर्थन्युनुसरन् धीरः श्रद्दधानों जितेन्द्रियः।

कृतपापश्च शुद्धयेत किं पुत्रः शुभकर्मकृत।[85]

तीर्थ यात्रा से लाभ— तीर्थ यात्रा व्यक्ति कई उददेश्यो की पूर्ति के लिये करता है। वायु पुराण में कनक नन्दी नाम के एक तीर्थ का वर्णन है जहाँ पर स्नान करने से तीर्थ यात्री को मोक्ष प्राप्त होता है अर्थात तीर्थ यात्रा का उददेश्य पुण्य लाभ करना और मोक्ष प्राप्त करना है।[86] विष्णु पुराण के अनुसार तीर्थयात्रा करने से पापियों के हदय का शुद्धिकरण हो जाता है।[87] महाभारत में इस बात का उल्लेख मिलता है कि तीर्थ यात्र ा करने वाले व्यक्ति को जन्म बन्धन से मुक्ति मिल जाती हैं।[88] कोई भी व्यक्ति जो तीर्थ यात्रा करने जाता है वह ज्ञान वृद्धि, पुण्य लाभ, सम्पर्क वृद्धि तथा, सम्पत्ति का सदुपयोग करने के लिये जाता है। इससे उसे मानसिक सन्तोष भी प्राप्त होता है।

तीर्थ यात्रा करने का स्त्रियों को अधिकार— तीर्थ यात्रा करने के लिये स्त्रियां भी अधिकारी है। यदि कोई स्त्री अपने पति के साथ तीर्थ यात्रा करती है तो वह अपने पापों का विनाश करती है और अपने वंश को लाभ पहुँचाती है।

'यस्य पुत्रा स्नुषा भार्या पापाय स्नापयेत्तथा।[89]

तीर्थ यात्रियों के कर्तव्य—

पौराणिक ग्रन्थों में तीर्थ यात्रियों के लिये कुछ कर्तव्यों का वर्णन मिलता है जिनका पालन करना तीर्थ यात्रियो के लिये अनिवार्य है। ये निम्नलिखित है—

सदाचार पालन— वायु पुराण में यह निर्देश उपलब्ध होता है कि यदि कोई तीर्थयात्री तीर्थयात्रा का फल चाहता है तो वह अपने हृदय और इन्द्रियों को वश में रखे तथ मन और शरीर को पवित्र रखे व अहंकार से दूर रहे।

'अंहकारविमुक्तो यः स तीर्थफलमश्नुते।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चापि सुसंतम्।।'[90]

देव आराधना— यदि व्यक्ति परमात्मा पर विश्वास रखता है तो उसे तीर्थ स्थलों में जाकर जप हवन और तपस्या करनी चाहिये, ऐसा करने से उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है।[91] जब व्यक्ति ग्रहस्थ आश्रम में रहता है उस समय वह मायाजाल में फंसा रहता है जिसके कारण वह ईश्वरीय कर्तवयों से विमुख हो जाता है। इसलिये उसे यह निर्देश दिया गया है कि वह जप, हवन, और तपस्या तीर्थ स्थलों में करे। अमरकण्टक नामक तीर्थ में अंगिरा नामक ऋषि ने भीषण तपस्या की थी।

'शिलास्थितस्तपस्तेये सर्वेषां दुष्करअच यत्।'[92]

श्राद्ध कर्म— तीर्थ स्थलों में श्राद्ध कर्म करना अति उत्तम माना गया है। जिन पूर्वजों ने हमे जन्म दिय तथा सुख के साधन प्रदान किये उनके प्रति श्रद्धा रखना हमारा नैतिक कर्तव्य है इसलिये तीर्थों में श्राद्ध कर्म करना चाहिये। जो व्यक्ति गया जी में अपने पूर्वजों के लिये श्राद्धकर्म सम्पन्न करता है वह उन्हें संसार सागर से पार कराता है।

'कांक्षन्ति पितरः पुत्रान्न्र कभयादभीरवः।

गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति।।'[93]

तीर्थ स्थल में दानादि कर्म सम्पन्न कराना— जो व्यक्ति तीर्थ स्थलों में दान देता है। वह वैतरणी में स्नान करके गोदान आदि कर्मों से इक्कीस कुलों का उद्धार करता है। इसलिये परिवार कल्याण के लिये तीर्थ स्थलों में दान देना आवश्यक है।

'स्नातो गोदो वैतरण्यां त्रिः सप्तकुल मुद्धरेत।'[94]

यज्ञ आदि कर्म सम्पन्न कराना— तीर्थ स्थलों में यज्ञ आदि कर्म कराना अत्यन्त शुभ माना गया है। वायु पुराण में यह वर्णन मिलता है कि भस्म कूट तीर्थ में वसिष्ठ ने अश्वमेंघ यज्ञ कराया था ।[95] इसी प्रकार गंगाद्वार नामक तीर्थ में राजा दक्ष ने यज्ञ किया था। महाभारत और विष्णु स्मृति में भी इस बात का

'पुरा हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमारभत्।

गंगाद्वारे शुभे देशे ऋषिसिद्धनिषेविते।।[96]

समर्थन किया गया है कि पितरों के मोक्ष के लिये यदि अश्वमेध यज्ञ का आयोजन गया जी में किया जाये तो उससे विशेष पुण्य लाभ होता है।

आत्मोसर्ग— जो व्यक्ति तीर्थ स्थलों में अपने प्राण त्यागता है उसे पुण्य लाभ होता है। शिवतीर्थ में मरने वाला व्यक्ति रूद्रलोक की प्राप्ति करता है। महाभारत में प्रयाग

'वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान्विमुंचति।

सर्वान्लोकानतिक्रम्य रूद्रलोकं स गच्छति।।[98]

को श्रेष्ठ माना गया है। [99]

मुण्डन एवं कन्यादान— वायु पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि मुण्डन कराने के लिये गया तीर्थ सर्वश्रेष्ठ है। इस तीर्थ मे पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशा में मुण्डन कराया जा सकता है। मत्स्य पुराण में उपलब्ध वर्णन के अनुसार जो

'मण्डं कुर्याच्च पूर्वेऽस्मिन्पश्चिमें दक्षिणोत्तरे' ।[100]

व्यक्ति आर्ष विवाह कराता है उसे कन्यादान गंगा यमुना के संगम पर करना चाहिये इससे कन्यादान करनेवाला व्यक्ति नरक गामी नही होता है।

'गंगायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति।

आर्षेणैव विवाहेन यथाविभवसम्भवम्।

नस पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा।[101]

तीर्थ यात्रा विधि— जो व्यक्ति पचास वर्ष से अधिक आयु का हो गया हो और जो ग्रहस्थ आश्रम से सम्पूर्ण उत्तर दायित्व का निर्वाह कर चुका हों जिसने अपनी

सारी सम्पत्ति और कारोबार अपने पुत्रो को सौंप दिया हो तथा जिसके ऊपर किसी प्रकार का ऋण शेष न हो वही तीर्थ का वास्तविक अधिकारी है। तीर्थयात्रा करने से पहले वह तीर्थयात्री का वेश धारण करे उसके पश्चात अपने ग्राम की परिक्रमा करे तदोपरान्त वह दूसरे गांव में श्राद्ध अवशिष्ट अन्न का भोजन करे, इसके पश्चात दान न लेता हुआ प्रतिदिन तीर्थ यात्रा करे। जिस तीर्थ यात्रा में वह पहुँचे वहाँ वह पहँचु वहाँ वह

'गया यात्रां पवक्ष्यामि शृणु नारद मुक्तिदाम्।

विधाय कर्पटीवेषं कृत्वा ग्रामं प्रदक्षिणम्।

ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्।

ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रह विवर्जितः।[102]

पवित्र सरोवरों में स्नान करे तथा धार्मिक स्थलों के दर्शन करे, यज्ञ, दान, तप, तथ मुण्डन संस्कार भी साथ में करता चले। तीर्थ यात्रा में वृषभ को वाहन के रूप में प्रयोग न करे ऐसा करने से गोवध का पाप लगता है।[103] तीर्थ यात्रा से वापस आने के पश्चात नियमानुसार धार्मिक अनुष्ठान करे तथा तीर्थों के स्मृति चिन्ह प्रसाद आदि निजी सम्बन्धियो को वितरित करे और परिचितों को भी उपहार आदि दे।

पुराणों में वर्णित तीर्थ स्थल– पुराणों मे सर्वाधिक पवित्र तीर्थ प्रयाग को माना गया है।

'सर्वेषु लोकेषु प्रयागं पूजयेद् बुधः।

पूज्यते तीर्थराजस्तु सत्यमेव युधिष्ठिर।

ब्रह्मापि स्मरेत नित्यं प्रयागं तीर्थमुत्तमम्।

तीर्थराजमनुप्राप्य न चान्यत्किंचिदर्हति।।[104]

इस विश्व में कुल मिलाकर साठ करोड़ दस हजार स्थल है इनके यदि वह केवल प्रयाग की यात्रा कर ले तो उसे सम्पूर्ण तीर्थों का फल मिल जाता है। अन्य तीर्थों में प्रयाग की भाँति वाराणसी को भी श्रेष्ठ तीर्थ मानाा गया है, इस स्थान की यात्रा

करने वाले को मोक्ष आसानी से सुलभ है।[105] वाराणसी के पश्चात गया का महत्वपूर्ण स्थान है गया को अन्य तीर्थों से श्रेष्ठ माना गया हैं इस स्थल की यात्रा करने से ब्रह्म हत्या, मदिरापान, चौर्यकर्म, गुरू भार्या समागम तथा पापात्माओं के संसर्ग के सभी पाप नष्ट हो जाते है।

'ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वगनागमः।

पापं तत्संगजं कर्म गया श्राद्धाद्विनश्यति।[106]

वैष्णव धर्म का अनुसरण करने वाले व्यक्ति मथुरा को अपना प्रमुख तीर्थ मानते है। इसका प्राचीन नाम मधुवन था, इस क्षेत्र में प्राचीनकाल में मधु नाम का एक दैत्य रहता था इसलिये इसका नाम मधुवन पड़ा। त्रेता युग में इसी क्षेत्र में लवण नामक दैत्य का वध करके श्रीराम के भाई शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी बसायी थी। वर्तमान समय

'माधवं लवणं हत्वा गत्वा मुध्वनं च तत्।

शत्रुघ्नेन पुरी तस्य मथुरा तत्र सन्निवेशिता।।[107]

में यह नगरी कृष्णतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी को मथुरा के यमुनाजल में स्नान करके हरि दर्शन करने से पुण्य फल का लाभ होता है। मथुरा के पश्चात कुरूक्षेत्र

'यज्जेयेष्ठ शुक्लद्वादश्यां स्नातवा वै यमुना जले।

मथुरायां हरिं दृष्टवा प्राप्नोति पुरूषः फलम्।।[108]

एक पवित्र तीर्थ स्थल है, पुराणो के अनुसार इस क्षेत्र की स्थापना संवरण के पुत्र कुरू ने की थी।[109] जो व्यक्तित कुरू क्षेत्र में उपवास करता है उसे पुण्य फल उपलब्ध होता है। मत्स्य पुराण के अनुसार कुरूक्षेत्र तीनों लोंकों में सर्वोत्तम है।[110] इस स्थल में देवताओं ने यज्ञ किया तथा इसी क्षेत्र में कौरव और पाण्डवों ने धर्मयुद्ध किया और इसी क्षेत्र में भी श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता के अपदेश दिया था।

कुरूक्षेत्र के पश्चात पुष्कर क्षेत्र एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है यहाँ धार्मिक कृत्य और उपवास किये जाते है। मत्स्य पुराण के अनुसार इस स्थल में पुष्कर देवी की

उपासन पुरूहुता देवी के नाम से की जाती है। पुष्कर के बाद द्वारका महत्वपूर्ण

'पुष्करे पुरुहुतेति केदारे मार्गदायिनी।।'[111]

तीर्थस्थल है इसे श्रीकृष्ण ने समुद्र के एक द्वीप में बारह योजन भूमि पर निर्मित किया था। इस द्वारकापुरी के चारों ओर समुद्र प्रवाहित होता है तथा इसे कृष्ण तीर्थ की संज्ञा दी जाती है।

'द्वारका कृष्ण तीर्थ च तथार्बुद सरस्वती।'[112]

इसके अतिरिक्त बहुत से अन्य तीर्थ भी है जिनका धर्मिक महत्व है इनमें से कुछ निम्न है अच्छोदा, अजतुंग, अमरकण्टक, उमातुंग, कमलालय, कलापग्राम, कुशप्लवन, कृतशौच, कांची, कुम्भ, गंगाद्वार, गंगासागर–संगम, गंगोदभेद, गोमंत, चित्रकूट, चैत्ररथ, धूतपाय, पुरूषोत्तम, प्रभास, प्लक्ष, बदर्याश्रम, ब्रह्मतुंगहद, भद्रेश्वर, भृगुतंग, मलय, मायापुरी, रामतीर्थ, रूद्रकोटि, वराहशैल, विश्वेश्वर, वैद्यनाथ, श्रीशैल, सोमेश्वर, हयशिरा आदि अन्य पौराणिक तीर्थ है। इस प्रकार हम देखते है कि भारतवर्ष में सैकड़ो ऐसे स्थल हैं जो महापुरूषों तथा देवताओं की कर्मस्थली रहे है । जब हम इनतीर्थों की यात्रा करतें हैं उस समय उन महापुरूषों की स्मृतियां हमारे मस्तिष्क में जाग उठती है और हम उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करते है।

भागवत पुराण में वर्णित तीर्थस्थल– भागवत पुराण में भागवत भक्तों को यह निर्देश दिया गया है कि वे तीर्थयात्रा करें । इस पुराण में ब्रह्म हत्या आदि

'यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु।

वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीय व्रत धारणम्।'[113]

अपराधों की शुद्धि का साधन तीर्थों में स्नान बताया गया है। जब बलराम जी ने रोम हर्षण ऋषि का बध कर दिया तो ब्राह्मणों ने उन्हे बारह महीने तक विभिन्न तीर्थो में स्नान करने के लिये प्रेरित किया जिससे उनकी शुद्धि हो सके । बलराम जी

'ततश्च भारतं वर्ष परीत्य सुसमाहितः।

चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुद्धयसे।।'[114]

ने नैमिषारण्य से अपनी तीर्थ यात्रा प्रारम्भ की उसके बाद वे कौशिकी नदी के तट पर आये, इसके पश्चात वे उस सरोवर में गये जहाँ से सरयू निकली है। यहाँ से वे प्रयाग आये उसके पश्चात उन्होने गण्डकी, गोमती विपाशा, नदियों की यात्रा की और यहाँ से वे सोननद गये। इसके पश्चात उन्होने गंगासागर की यात्रा की गंगासगर से बलराम जी महेन्द्र पर्वत गये, महेन्द्र पर्वत परशुराम जी की तपस्थली है। इसके पश्चात वे सप्तगोदावरी, वेणा, पम्पा, भीमारथी नदियों के तट पर गये यहाँ उन्होने स्वामी कार्तिकेय का दर्शन किया और महादेव के निवास स्थान श्री शैल पर पहुँचे। इसके पश्चात वे वेंकटान्चल (बालाजी) के दर्शन करने गये यहाँ से वे कामाक्षी, विष्णु काच्छी, शिवकाच्छी होते हुये और कावेरी नदी में स्नान करते हुय श्रीरंगक्षेत्र पहुचें श्रीरंग क्षेत्र विष्णु का तीर्थ सथल है। यहाँ से बलराम जी ऋषभ पर्वत, दक्षिण मथुरा और सेतुबन्ध की यात्रा पर गये। इसके पश्चात वे मलय पर्वत गये यहाँ उन्होने अगस्तय ऋषि का आश्रम देखा और समुद्र की यात्रा की तथा इसी क्षेत्र में उन्होनें कन्याकुमारी के रूप में दुर्गा देवी के दर्शन किये। यहाँ से अनन्तशयन पंजाब, पच्चाटसरस होते हुये केरल और त्रिगर्त देश की यात्रा की इसके पश्चात गोकर्ण तीर्थ मे आये। इसके पश्चात सुरपारक क्षेत्र की यात्रा उन्होने की इसके पश्चात बलरम जी ताप्ती, पयोष्णी नदियों में स्नान करते हुये दण्डकारण्य आये। इसके पश्चात वे नर्मदा नदी के तट पर गये। नर्मदा नदी से बलराम जी महिष्मती नगरी गये, यहाँ पर उन्होने मनु तीर्थ में स्नान किया। इसके पश्चात वे अपने तीर्थ में वापस चले गये।[115]

तीर्थ यात्रा का मनुष्य के ऊपर प्रभाव—

जो व्यक्ति तीर्थ यात्रा कर चुकता है वह उपने शरीर को अत्यन्त पवित्र बनाने का प्रयास करता हैं तथा अनेक दुर्गुणों को वह त्याग देता है। उसके हदय में ईश्वर के प्रति एक विशेष प्रकार का अनुराग प्राप्त होता है। वह जीवन को नश्वर समझकर और अपनी आत्मा को देवसेवा में समर्पित कर तथा माया के बन्धानें से मुक्त होकर

ऐसे कार्य करता है जिससे उसे कोई बुरा न कह सके और उसकी निन्दा न करे। समाज के अन्य व्यक्ति भी तीर्थ यात्री से पूर्ण श्रद्धा रखते है। जब वह तीर्थ पर जाता है तो समाज के लोग उस तीर्थ यात्री को भेंट उपहार आदि देकर प्रेम से विदा करते हैं और थोड़ी दूर तक जातें हैं जब तीर्थयात्री तीर्थयात्रा करके वापस आता है तो उसके प्रति समाज के लोग श्रद्धा के भाव रखते है तथा उसे एक दुर्गुण मुक्त प्राणी मानते है। उसको पवित्र आत्मा के रूप में समादर करतें हैं और उसके तीर्थयात्रा अनुभव से लाभ उठातें हैं। तीर्थयात्रा करने वाला व्यक्ति अनुभवी और ज्ञानी हो जाता है। समाज के अन्य व्यक्ति भी उससे प्रेरणा लेकर तीर्थ यात्रा करने जाते है। तीर्थ यात्रा पुण्य तथा पाप से सम्बन्धित भले ही न हो या हो व्यक्ति इस बहाने से समपूर्ण भारतवर्ष से परिचित हो जाता था वहाँ बोली जाने वाली विविध भाषाओं से उसका परिचय होता है विविध प्रकार की लोक संस्कृतियों के सन्दर्भ में वह जानकारी प्राप्त करता था तथा उसका व्यवहार विभिन्न क्षेत्रों में फैल जाता था और जब कोई उस क्षेत्र का यात्री उससे मिलने आता था तो वह आदर पूर्वक सम्मान करता था। इस प्रकार उसका व्यक्तिगत व्यवहार और परिचय देश के अन्य भागों से हो जाता था तथा उसका नाम और वंश तीर्थ स्थल के पण्डितों (पण्डों) के यहां बही (डायरी) में अकित हो जाता था। इस तरह उसका वंश परिचय भी इतिहास का अंग हो जाता था।

7– भगवत पुराण में अपशकुन और शकुन का विचार–

भारतीय समाज में रहने वाला व्यक्ति ज्योतिष विज्ञान में अति प्राचीन काल से विश्वास कर रहा है। वह अपने कार्य सदैव शुभ मुहूर्त में करना पसन्द करता है। ज्योंतिष विज्ञान के कुछ ऐसे तथ्य है जो अपशकुन के लिये निर्धारित लिये गये हैं। उनका परिणाम यहाँ के व्यक्तियों ने भोगा हैं जिसके कारण उन्हे ज्योतिष विज्ञान में विश्वास होने लगा है। तद्‌युगीन व्यक्ति यह मानते थे कि जब प्रकृति समय का अनुसरण न करे तो उस समय भयंकर विनाश के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। इन

भयकंर विनाश के लक्षणों को अपशकुन कहते है। भागवत पुराण में वर्णित पहला अपशकुन आकाश मे उल्कापात का होना है इसके अतिरिक्त पृथ्वी में भूकंप आना, प्राणियों में अकारण रोग उत्पन्न हो जाना भी अपशकुन माना गया है। उपरोक्त

'पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान् सदैहिकान्।

दारूणाअशंसतोऽदूम्दयं नो बुद्धिमोहनम्।।'[116]

अपशकुन से यह अन्दाज लग जाता है कि निकट भविष्य में कोई न कोई बुरी घटना घटने वाली है।

अपशकुनों के सन्दर्भ में यह वर्णन भी उपलब्ध होता है कि जब किसी पुरूष की बाँयीी जांघ और भुजा बार बार फड़के तो उसे अपशकुन माना जाता है तथा जब ह्रदय जोर–जोर से धडकने लगे तो उससे यह भी यह आभास हो जाता है कि कोई न कोई बुरी घटना घटने वाली है।

'ऊर्वक्षिबाहवो मंह्व स्फुरन्त्यंङ्.पुनः पुनः।

वेपथुश्चपि ह्रदये आराद्दा स्यन्ति विप्रियम्।'[117]

भागवत पुराण में यह भी वर्णन मिलता है कि जब सियारिन सूर्योदय केसम्मुख मुख करके रोने लगे और उसके मुंख से आग निकलने लगे, कुत्ता बेवजह रोने लगे तो भी अपशकुन होता है।

'शिवैषोद्यन्त मादित्यमभि रौत्यनलानना।

मामंगं सारमेयोऽयमभिरेभत्यभीरूवत्।।'[118]

जब अच्छे और बुरे पशु अपनी दिशा बदल दें और घोडे रोने लगे उस समय भी अपशकुन होता है।

'शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे।

वाहाश्च पुरूषव्याघ्र लक्षये रूदंतो मम्।।'[119]

जब पेडुखी, उल्लू और कौआ रात्रि में कर्कश आवाज करने लगें उस समय भी अपशकुन होता है।

'मृत्यूदुतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन मनः।

प्रतयुलूकश्च कुहानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः।[120]

जब गाय के बछडे दूध न पियें और गायें अपना दूध न दुहने दें और बैल उदास दिखाई दें तो भी अपशकुन होता है।

'न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यान्ति च मातरः।

रूदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृष्भा व्रजे। ।[121]

भागवत पुराण में ही यदुवंशियो के विनाश के पूर्व श्रीकृष्ण ने आकाश पृथ्वी और अन्तरिक्ष में बडे भयंकर अपशकुन देखे थे। द्वारका मे इन अपशकुनों को देखकर श्रीकृष्ण ने यदुवशियों को बताया कि ये साक्षात यमराज की ध्वजा के समान हमारे महान अनिष्ट के सूचक है।

'दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान् समुत्थितान्।

दृष्टाऽऽसीनान् सुधार्मायां कृष्णः प्राहयदूनिदम्।।

एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यम केतवः।

मुहूर्त्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुग्डवाः।।[122]

जब देवताओं की मूर्तियों रोने लगे या उनसे पसीना चूने लगे और देश तो गाँव, शहर, बगीचा, आनन्द रहित जो जाये तो भी अपशकुन माना जाता है। इन अपशकुनों के कारण द्वारकापुरी में अनेक दुर्घटनायें हुई और भगवान श्रीकृष्ण भी सदैव के लिये परमधाम चले गये।

'कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनार्मबन्धुना।

शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रूक।[123]

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में कुछ शकुन भी उपलब्ध होते हैं। जब किसी व्यक्ति को कोई गाय अपने बछडे को दूध पिलाती हुई दिखाई दे तो उसे बहुत शुभ माना जाता है इसी प्रकार जब व्यक्ति को नीलकण्ठ के दर्शन होते है तो भी उसे बहुत

शुभ माना जाता है। जब किसी व्यक्ति को यात्रा के समय जल से भरा हुआ घट लिये कोई महिला दिख जाये तो उसे भी बहुत शुभ माना जाता हैं भारतीय ज्योतिष शास्त्र में सुंअर के दर्शन को बहुत शुभ माना गया है। उसके दर्शन से लक्ष्मी की प्राप्ति होती ह। इसी प्रकार से पुरूष के दाहिने अंग को फडकने को भी शुभ माना गया है।

इससे स्पष्ट होता है कि जहाँ तत्कालीन समाज के लोग धार्मिक कर्मकाण्डों के प्रति अन्ध भक्ति रखते थे वहीं वह सामाजिक रूढियों से जकड़े हुये थे। शकुन तथा अपशकुन उसी रूढिवादिता के एक अंग थे, जिन पर वर्तमान समय में भी लोग विश्वास करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. देवल स्मृति ;
2. धर्म सिन्धु ; काशीनाथ उपाध्याय, बम्बई, 1961, पृष्ठ—62 ;
3. गरूड़ पुराण ;
4. विष्णु पुराण ;
5. भागवत पुराण, 6—18—54 ;
6. वही, 10—22—1, 2 ;
7. स्कन्द पुराण ;
8. कूर्म पुराण ;
9. उत्सव सिन्धु ;
10. व्रत रत्नाकर ;
11. पद्म पुराण ;
12. वही ;
13. वैष्णव उपासना पद्धति ;
14. भविष्योत्तर पुराण ;
15. महाभारत ;
16. भागवत पुराण, 1—3—11 ;
17. वही, 1—3—12 ;
18. वही, 1—3—13 ;
19. वही, 1—3—15 ;
20. भागवत पुराण, 1—3—17 ;
21. वही, 1—3—18 ;
22. वही, 1—3—19 ;
23. वही, 1—3—20 ;

24. वही, 1—3—21 ;
25. वही, 1—3—22;
26. वही, 1—3—23 ;
27. वही, 1—3—24 ;
28. वही, 6—19—2 ; तथा 6—19—25
29. वही, 6—19—18 ;
30. वही, 8—16—25, 26 ;
31. वही, 10—34—1, 2, 4 ;
32. वही, 11—11—36, 37 ;
33. वही, 8—18—21, 32 ;
34. वही, 4—3—3, 4 ;
35. वही, 4—19—7 ;
36. वही, 10—25—31, 32, 33
37. वही, 10—23—3, 19, 20 ;
38. वही, 4—13—25, 36, 37 ;
39. वही, 11—11—36 ;
40. पूर्वमीमांसा सूत्र, 1—1—2 ;
41. गौतम धर्मसूत्र, 1—1—2 ;
42. भागवत पुराण, 7—11—14 ;
43. वही, 7—11—15 ;
44. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या 33 ;
45. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1—13 ;
46. भागवत पुराण, 3—32—20 ;
47. विष्णु पुराण, 1—21—33, 34 ;

48. भागवत पुराण, 6—18—54 ;

49. मत्स्य पुराण, 7—47 ;

50. भागवत पुराण, 6—18—52 ;

51. विष्णु पुराण, 3—13—6 ;

52. वही, 3—10—4, 5 तथा 3—13—1, 4 ;

53. वही, 10—5—2 ;

54. विष्णु पुराण, 3—10—8 ;

55. भागवत पुराण, 10—8—11 ;

56. विष्णु पुराण, 3—10—12 ;

57. भागवत पुराण, 10—45—26 ;

58. विष्णु पुराण, 3—10—13, 26 ;

59. भागवत पुराण, 4—2—11 ;

60. वही, 10—57—44 ;

61. वही, 9—20—16 ;

62. वही, 4—28—29 ;

63. वही, 4—1—2 ;

64. वही, 10—1—31, 32 ;

65. वही, 9—10—29 ;

66. वही, 11—31—22 ;

67. वामन पुराण, 14—23 ;

68. गर्ग समृति चन्द्रिका, पृष्ठ—123 ;

69. मनु स्मृति, 2—176 ; विष्णु धर्मसूत्र 64—23, 24 ;

70. आह्नीक प्रकाश, पृष्ठ 248, 252,

71, मनुस्मृति, 4—26 ;

72. अघमर्षण, ऋग्वेद 10–190–1, 3 ; शतरूद्रिय, तैत्तरीय संहिता 4–5–1, 11 ;

73. आश्वलायन गृहसूत्र, 3–1–1,2 ;

74. भागवत पुराण, 11–11–38 ;

75. वही, 10–34–1 ;

76. भागवत महात्म्य, 5–55, 56

77. वही, 5–62 ;

78. भागवत पुराण, 7–11–8 से 12 तक

79. मत्स्य पुराण, 112–12, 15 ;

80. वही, 192–23 ;

81. भागवत पुराण, 10–79–10 ;

82. वायु पुराण, 77–19 ;

83. भागवत पुराण, 10–79–19 ;

84. विष्णु पुराण, 5–38–11 ;

85. वायु पुराण, 77–125 ;

86. वायु पुराण, 77–106 ;

87. विष्णु पुराण, 5–38–11 ;

88. वन पर्व, 82–31 ;

89. मत्स्य पुराण, 106–6 ;

90. वायु पुराण, 110–4, 5 ;

91. ब्रह्माण्ड पुराण, 3–13–55 ;

92. वायु पुराण, 112–33 ;

93. वही. 105–8, 9 ;

94. वही, 112–26 ;

95. वही, 112–65, 66 ;

96. वही, 30—94 ;

97. विष्णु स्मृति, 85—67 ; तथा वनपर्व 87—11 ;

98. मत्स्य पुराण, 106—11 ;

99. वनपर्व, 85—83 ;

100. वायु पुराण, 105—25 ;

101. मत्स्य पुराण, 106—9 ;

102. वायु पुराण, 110—1, 3 ;

103. पद्म पुराण, उत्तर खण्ड, 223—4 ;

104. मत्स्य पुराण, 109—15, 16 ;

105. वही, 180—55 ;

106. वायु पुराण, 105—13 ;

107. वही, 88—185 ;

108. विष्णु पुराण, 6—8—31 ;

109. विष्णु पुराण, 4—19—76, 77 ;

110. मत्स्य पुराण, 109—3 ;

111. मत्स्य पुराण, 13—30 ;

112. वही, 22—38 ;

113. भागवत पुराण, 11—11—37 ;

114. वही, 10—78—40 ;

115. वही, 10—79—1 से 32 तक

116. वही, 1—14—10 ;

117. वही, 1—14—11 ;

118. वही, 1—14—12 ;

119. वही, 1—14—13 ;

120. वही, 1–14–14 ;

121. वही, 1–14–19 ;

122. वही, 11–30–4, 5

123. वही, 1–14–44 ;

षष्ठम अध्याय

"समाज एवं धर्म में स्त्रियों का योगदान"

1- विश्व के विकास में स्त्रियों का योगदान।

2- भागवत एवं अन्य पुराणों में वर्णित स्त्रियों की स्थिति।

3- भागवत पुराण में वर्णित स्त्रियों के कर्तव्य एवं धर्म।

4- भागवत पुराण की महिला पात्र।

5- भागवत में वर्णित प्रमुख पुरूष पात्रों का नारियों को सहयोग।

अध्याय–6
''समाज एवं धर्म में स्त्रियों का योगदान''

1– विश्व के विकास में स्त्रियों का योगदान :–

यह संसार कितना पुराना है और इस संसार में जीव की उत्पत्ति कब हुई, इस सन्दर्भ में कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोणों में यह संसार और पृथ्वी अरबों वर्ष पुरानी मानी जाती है। आध्यात्मिक दृष्टि कोणों में यह पृथ्वी पहले जल में डूबी हुई थी, जिसे वराह भगवान ने जल से बाहर निकाला धर्म दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी परमात्मा की क्रति है और वह परमात्मा विष्णु के नाम से जाना जाता है। विष्णु के नाभि से उदित कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई तथा उस ब्रह्म ने समस्त सृष्टि का सृजन किया। ब्रह्मा स्वतः को कर्ता–धर्ता न मानकर

'देवदेव नमस्तिेऽस्तु भूतभावन पूर्वज।

तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्व निदर्शनम्।'[1]

परम्ब्रह्म परमेश्वर को और उसके विराट स्वरूप को सृष्टि का कर्ता–धर्ता मानते हैं, स्वयं को श्रृष्टि का कर्ता धर्ता नहीं मानते।

'येन स्वरोचिषां विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम्

यथार्कोअग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारका:।।[2]

सृष्टि उत्पत्ति के सन्दर्भ में सबसे पहले पृथ्वी पिण्ड का निर्माण किया गया तब उसमें जीव पैदा हुआ, उसके बाद जब उसका विकास हुआ तो वह व्यष्टि से समष्टि रूप में पर्णित हो गया। इस प्रकार से पिण्ड और ब्राह्माण्ड की रचना हुई।

'तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छाक्तिचोदिता:।

सद्सत्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यद:।।[3]

कुछ समय तक यह पृथ्वी निर्जीव रही, उसके पश्चात काल, कर्म और स्वभाव के अनुसार जीव की उत्पत्ति हुई। मानव जीव भी उसी समय पैदा हुआ हुआ, किन्तु प्रथम किस रूप में पैदा हुआ, इस सन्दर्भ में कोई भी जानकारी किसी भी

आध्यात्मिक ग्रन्थ और वैज्ञानिक ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होती है। यही जानकारी उपलब्ध होती है कि जिस प्रकृति ने संसार में जीव पैदा किया, उसने जीवों में पुरूष का लिंग, जलवीर्य, सृष्टि मेघ उत्पन्न किए तथा जननेन्द्रियाँ प्रत्येक प्राणियों में बनायी और इस तरह से मैथुन सृष्टि का शुभारम्भ परमात्मा ने किया।

'अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः।

पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्द निर्वृतेः।।'[4]

संसार में जीव नर और मादा दो रूपों में प्रगट हुआ, यह विभाजन केवल मनुष्यों का ही नहीं है अपितु सम्पूर्ण जीव नर और मादा में विभाजित है। सृष्टि के विकास क्रम में जीव मादा के उदर से जन्म लेता है और जब वह विकास क्रम में निश्चित आयु को प्राप्त कर लेता है, उस समय उसका लैंगिक आकर्षण उसी कोटि कि मादा जीव के प्रति पैदा होता है। जब तक पुरूष जीव का सम्मिलन मादा जीव से नहीं हो जाता, उस समय तक सम्मिलन प्रयास जारी रहता है। मादा और पुरूष (नर) की सम्मिलन क्रिया को मैथुन के नाम से कामसूत्र और दूसरे ग्रन्थों में पुकारा गया है। इस प्रक्रिया में पुरूष लिंग के माध्यम से श्रृष्टि बीज, स्त्री योनि अपने गर्भ तक ले जाती है, यहाँ स्त्री शुक्राणु और पुरूष बीज शुक्राणु का सम्मिलन होता है। इस तरह से जीव बीज स्त्री के गर्भाशय में स्थापित होता है। वह नौ अथवा साढ़े नौ माह की अवधि तक रहकर वीर्य से पिण्ड और पिण्ड से आकृति धारण करके गर्भाशय से बाहर निकल आता है तथा उसमें आत्मा स्थित हो जाती है। यह जीव उत्पन्न होने के पश्चात अपने ही जैसे अन्य जीवोंकी भाँति क्रियाएँ करने लगता है अर्थात जीव की उत्पत्ति मैथुन क्रिया के परिणामस्वरूप मादा जीवों से ही होती है किन्तु इन मादा जीवों के अन्दर स्वतः बीज संचय की क्षमता नहीं होती है। इसलिए उसे पुरूष से ही बीज ग्रहण करना पड़ता है।

देवीभागवत पुराण में एक प्रसंग उपलब्ध होता है कि शक्ति ने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्म से सम्भोग करने की इच्छा व्यक्त की, ब्रह्मा ने ऐसा करने

से मना कर दिया, इसलिए शक्ति ने उसे नष्ट कर दिया। उसके पश्चात शक्ति ने विष्णु को उत्पन्न किया तथा विष्णु से भी उसने सम्भोग करने की इच्छा व्यक्त की तब विष्णु ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, इसलिए शक्ति ने विष्णु को भी नष्ट कर दिया। इसके पश्चात शक्ति ने शिव को उत्पन्न किया तथा शिव से भी उसने सम्भोग करने की इच्छा व्यक्त की, शिव ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया किन्तु यह शर्त रखी कि वह अपना तीसरा नेत्र दान दे तो वह ऐसा कर सकते हैं। शक्ति ने अपना तीसरा नेत्र शिव को प्रदान कर दिया, शिव ने यह समझा कि माता और पुत्र के बीच योनि सम्बन्ध स्थापित होना नैतिक नहीं है। इसलिए उसने कामुक शक्ति को नष्ट कर दिया और चन्द्रमा में स्थित अमृत के माध्यम से ब्रह्मा और विष्णु को जीवित कर लिया। इस तरह से शिव आदिदेव कहलाये तथा इसी के साथ–2 ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि सृजन के नाम पर सहमत हुए। उन्होंने शक्ति को तीन रूपों में विभाजित करके जीवित किया तथा उन्हें अपनी–अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया। यह स्वरूप ब्रह्माणी अथवा योगमाया, लक्ष्मी और गौरी के रूप में प्रकट होकर तीनों देवों की अर्धांगनी बनी तथा इन देवों ने ही मैथुन सृष्टि को विश्व सृजन का आधार माना। प्राचीन काल से लेकर आज तक सृष्टि सृजन का यही आधार है।

सृष्टि के प्रारंम्भिक विकास क्रम में किसी प्रकार का कोई संगठन नहीं था तथा जीव पूरी तरह प्रकृति पर ही आश्रित था। वह युवावस्था में किसी भी स्त्री तत्व से योनि सम्बन्ध स्थापित कर लेता था, इस प्रकार वह अपनी युवावस्था में अनेक जीवों से योनि सम्बन्ध स्थापित करता था। इस प्रकार जीव तो सृजित होते थे किन्तु उनके पिता सुनिश्चित नहीं हो पाते थे। पुरूष तत्व केवल मादा तत्व से योनि सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात किसी भी प्रकार के दायित्व का निर्वाह नहीं करता था, सारे दायित्वों का निर्वाह माता को ही करना पडता था। वह जीवों को जन्म देती थी, जन्म देकर उसे पल्लवित करती थी और स्वावलम्बी बनाकर उसे छोड़ देती थीं। माता को स्वतः यह ज्ञान नहीं होता था कि उसने कितने कितने जीवों को जन्म

दिया और वे कहाँ गये, कभी–2 उन्हीं जीवों से ही उनके युवा हो जाने पर उसके योनि सम्बन्ध भी स्थापित हो जाते थे। इस प्रकार केवल जीव मातृकुल के नाम से ही जाना जाता था, पितृकुल अस्तित्व में नहीं थे।

जब मानव सभ्यता का विकास क्रम प्रारम्भ हुआ तथा सुख और दुःख की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का निर्माण हुआ, उस समय इस आवश्यकता की अनुभुती हुई कि व्यक्ति का एक संगठन बनाया जाय। यह संगठन एक दूसरे को सहयोग दे, उनकी रक्षा करे, आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करे तथा वे पुरूष ा जो स्त्रियों का उपभोग करते हैं, वे स्त्रियों से बँधकर रहें इस बात की भी आवश्यकता महसूस की गयी। निकट भविष्य में व्यक्तियों का यह समूह प्रारम्भिक समाज के रूप में परिणित हुआ और इस युग के बुद्धिजीवियों ने समाज के कुछ नियम निर्मित किए तथा इन नियमों के आधार पर समाज को आवश्यकतानुसार चार भागों अथवा चार वर्गों में विभाजित किया गया। यद्यपि यह विभाजन परमपिता परमेश्वर का विभाजन माना जाता है, क्योंकि जिस चीज के कर्ता–धर्ता का नाम नहीं मालुम होता उसे परमात्मा क्रत मान लिया जाता हैं। इसलिए समाज के बुद्धिजीवियों व संरक्षकों ने समाज में संसाधन उपलब्ध कराने वाले व्यक्तियों और सेवा करने वाले व्यक्तिों का विभाजन भी परमात्मा क्रत मान लिया। इस प्रकार से समाज और समाज को गति देने वाली महिलाएँ भी चार वर्णो में विभाजित हुई। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अभाव में समाज के इस विकासक्रम को परमात्मा की क्रति के रूप में स्वीकारा गया।

'पुरूषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः।
ऊर्धोर्वश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोअभ्यजायत'।।[5]

समाज के विकास क्रम में सामाजिक सम्बन्धों पर विशेष जोर दिया गया तथा सामाजिक सम्बन्धों पर विशेष जोर देने के लिए वेदों की संरचना की गयी। ये वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के नाम से जाने गये, तथा वेदों के माध्यम से स्त्री पुरुषों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए गये। कन्या की किशोर अवस्था में

कन्या का पिता किसी योग्य पुरूष से कन्या का विवाह सम्पन्न करता है। इस प्रकार कन्या का पिता और युवक का पिता दोनों नजदीकी रिश्तेदार बन जाते है तथा युवा स्त्री और पुरूष मिलकर एक नए परिवार को जन्म देते हैं। इस प्रकार हम देखतें हैं कि स्त्री जहाँ मानव समाज की जन्मदात्री है वहीं वह परिवार की जन्मदात्री भी है। आगे चलकर ये परिवार वंश, गोत्र, जाति, वर्ण आदि में परिवर्तित हो जाते हैं।

स्त्रियाँ विश्व में समस्त सम्बन्धों की सृजेता भी हैं। जिस पुरूष से वह वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करती हैं। वह उसका पति होता है तथा दोनों मिलकर जिन सन्तानों को जन्म देते हैं, वे उनके पुत्र और पुत्रियाँ कहलाते हैं। ये पुत्र और पुत्रियाँ एक ही उदर से जन्म लेने के कारण भाई और बहनके रिश्तों को जन्म देती हैं। आगे चलकर जब इनके वैवाहिक सम्बन्ध कहीं स्थापिंत हो जाते हैं तो पुत्र और पुत्रियों के माता–पिता, और सास–ससुर बन जाते हैं, तथा पुत्र और पुत्रियों से उत्पन्न सन्तानों भी नये रिश्तों को जन्म देती हैं। पुत्री से उत्पन्न सन्तानें माता–पिता को नानी–नाना तथा भाई को मामा और बहन को मौसी के नाम से सम्बोधित करते हैं। इसी प्रकार पुत्र से उत्पन्न संताने माता–पिता को बाबा–दादी, बहन को बुआ और भाई को चाचा के नाम से सम्बोधित करते हैं तथा भाई की पत्नी को चाची और मामा की पत्नी को मामी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। भारतवर्ष के सम्पूर्ण समाज में कुल इतनी रिश्तेदारियाँ हैं, जिनका वर्णन विविध ग्रन्थों में उपलब्ध हो जाता है तथा इन सम्पूर्ण रिश्तों को जन्म देने वाली स्त्री ही होती है।

भारतीय समाज में सोलह संस्कारों का विशेष महत्व है, इन संस्कारों का विभाजन स्त्री से उत्पन्न सन्तानों की आयुक्रम के अनुसार निर्धारित होता है। इनमें पुसंवन, गर्भाधान, सीमान्तोंनयन, जातक, अन्नप्राशन, मुंडन, कर्णछेदन, उपनयन आदि संस्कार स्त्रियों से उत्पन्न सन्तानों के ही होते है। यदि स्त्रियाँ सृष्टि सृजन में सहायक न होती। तो सम्भवतः यह संस्कार भी जिन्हें हम सामाजिक और धार्मिक संस्कार के रूप में मान्यता देते हैं, ये भी हमारे सम्मुख न होते। समस्त मांगलिक

संस्कारों में स्त्रियों का विशेष योगदान रहता है और जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, इसलिए ये संसकिारों की जन्मदात्री और संरक्षिका भी है।

जिस भारतीय सभ्यता को हम युगों से देख रहे हैं, उसका सृजन भी महिलाओं द्वारा ही हुआ है। स्त्रियाँ समाज को केवल जन्म नहीं देती अपितु उसका पल्लवन, विकास और पुण्य विकास उन्हीं के द्वारा सम्भावित होता है। स्त्रियाँ मनुष्य को नैमित्तिक कर्मों का बोध कराती हैं, उन्हें भाषा का ज्ञान देती हैं, उन्हें कपडे पहनने सिखाती है तथा सामान्य पारिवारिक व्यवहार की शिक्षा देती हैं और गुरू ग्रह में ज्ञान अर्जित करने के लिए भेजती हैं। ग्रहस्थ जीवन में परिवार को विकसित करने में स्त्रियों का ही महान योगदान रहता है। हमने सभ्यता के जिन युगों को ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में ग्रहण किया है, उनकी जन्मदात्री भी स्त्रियाँ ही रही हैं। स्त्रियों ने जिन सामाजिक आदर्शों को जन्म दिया, उन सामाजिक आदर्शों का अनुपालन समाज के प्रत्येक वर्ग ने किया है। इसलिए सभ्यता और सामाजिक विकास विश्व में स्त्रियों की देन है।

जिन महान व्यक्तियों की हम पूजा अथवा आराधना देवता, परमात्मा अथवा महापुरूष के रूप में करते हैं, उनकी जन्मदात्री स्त्रियाँ ही हैं। राजा दक्ष की कन्यााएँ यदि शिव और कश्यप ऋषि को न ब्याही गयी होती तो यह संसार दैत्यों और देवताओं से विहीन होता तथा शिव भी अस्तित्व विहीन होते। यदि पार्वती का विवाह शिव से न हुआ होता तो सम्भवतः गणेश और स्वामी कार्तिकेय का आस्तित्व भी समाज में न होता। इसी प्रकार यदि कौसल्या ने मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्रीराम को जन्म न दिया होता तो आज हम उन्हें परमात्मा के रूप में कैसे पूजते। इसी प्रकार यदि देवकी ने कृष्ण को जन्म न दिया होता और यशोदा ने उनका पालन पोषण न किया होता तो भगवान श्रीकृष्ण का अस्तित्व भी संसार में न होता। जिन विद्वान पुरूषों ने वेदों की संरचना की, पुराणों की संरचना की तथा धर्म का निर्माण

किया, वे भी किसी माता के सन्तान थे। इस संसार में माताएं ही प्रशंसनीय है जिन्होंने विलक्षण व्यक्तियों, महापुरूषों और परमात्मा को धरती में जन्म दिया। इसलिए स्त्रियों का अस्तित्व विशिष्ट रूप में संसार में स्वीकार किया जाता रहा है और किया जाता रहेगा।

इसप्रकार की महत्वपूर्ण घटनाएं स्त्रियों से ही सम्बन्धित हैं, दानव कन्या शची का विवाह देवराज इन्द्र से होना एक अभूतपूर्व पौराणिक घटना है। इसी प्रकार शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का विवाह राजा ययाति से होना भी एक महत्वपूर्ण पौराणिक घटना है। इन घटनाओं के अतिरिक्त भगवान श्री राम के जीवन में भी स्त्रियों का महत्व पूर्ण स्थान रहा है। मंथरा औश्र कैकेयी की ईर्ष्या के कारण भगवान श्री राम का वनगमन, सूपनखा के अपमान के कारण असुरपति रावण द्वारा सीता का अपहरण तथा सीता के अपहरण के कारण लंकापति रावण का वध इस बात का प्रतीक है कि राम के जीवन में स्त्रियों का प्रभाव रहा है। इसी प्रकार महाभारत में शकुनी की बहिन गंधारी से धृतराष्ट्र का विवाह होना और द्रोपदी का कौरवों की महासभा में अपमानित होना, महाभारत का कारण बना। कभी–2 व्यक्ति जब वासनात्मक वृत्तियों से ऊब जाता है, उस समय वह माया मोह के बंधनों को त्यागकर और इसी को विलासिता की वस्तु समझकर स्थायी शान्ति की खोज में चला जाता है। महावीर स्वामी और महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों से ही प्रेरणा ग्रहण करके जैन और बुद्ध धर्म को जन्म दिया। अनेक महान व्यक्तियों ने अपनी माताओं और पत्नियों से प्रेरणा ग्रहण करके उच्च स्तर का साहित्य सृजन किया। इस प्रकार स्त्रियों से प्रेरणा ग्रहण करना, स्त्रियों से प्रेम करना और स्त्रियों से नफरत करना तीनों प्रकार की भावनाएँ ही पुरूषों को नवीन गति देकर विकास के पथ पर अग्रसर करती हैं।

स्त्रियाँ कर्तव्य बोध की जननी हैं, यदि स्त्रियों को पुरूषों के साथ दाम्पत्य सूत्र बंधनों में न बाँधा गया होता और देवताओं को स्त्रियों के साथ न जोड़ा गया होता

तो पुरूषों में कर्तव्य बोध न होता। स्त्रियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के बाद पुरूष यह अनुभव करता है कि नारी की रक्षा करना उसका प्रथम कर्तव्य है, नारी की रक्षा करने के लिए वह उद्योग आदि कार्यों से जुडता है तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के संसाधन जुटाता है। पचास वर्ष की अवस्था तक वह परिवार का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता है वह जो भी अर्जित करता है परिवार के बंधनो से बंध कर करता है। इसके अतिरिक्त पितृभक्त, देवऋण और गुरूऋण से मुक्त होने के लिए वह नाना प्रकार के धार्मिक कृत्य स्त्री से प्रेरणा लेकर ही करता है। वह अपने परिवार में उत्तरदायित्व का निर्वाह, सामाजिक संस्कारों एवं धार्मिक अनुष्ठनों को आयोजित करता हुआ अपने जीवन को विराम देता है। इसलिए व्यक्ति कर्तव्यों का अनुपालन करना भी स्त्रियों से ही सीखता है।

संसार में जो भी आर्थिक और सामाजिक समस्यायें उत्पन्न होती है, उनका जन्म भी स्त्रियों से होता है। पुरूषों को स्त्रियों के कारण ही सामाजिक लोक व्यवहार में वृद्धि करनी पडती है, पहले वह अपने विवाह के लिए समाज के अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उसके पश्चात वह अपने पुत्र और पुत्रियों के लिए दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करता है। इन सम्बन्धों की स्थापना में वह नाना प्रकार की समस्याओं का सामना करता है और ये सब समस्याएँ स्त्रियों से पैदा हैं। व्यक्तियों की आर्थिक समस्याएँ भी स्त्रियों के कारण ही पैदा होती हैं, जब वह नैतिक ढंग से अर्थोपार्जन नहीं कर पाता तब वह अनीति से धन उपार्जित करता है, तथा पाप और अधर्म को जन्म देता है। वह परिवार चलाने के लिए कर्ज लेता है, इस कर्ज के कारण कभी—कभी अनेक प्रकार के संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। जब परिवार की जनसंख्या बढ़ जाती है उस समय संकुचित दृष्टिकोणों के कारण परिवार में बँटवारे की स्थिति पैदा हो जाती है। इन पारिवारिक बँटवारों के कारण ही आपसी वैमनस्य, मनमुटाव और संघर्ष उत्पन्न होता है, ये सारे संघर्ष भी स्त्रियों की देन हैं। कभी—2 युवा बालिकाओं के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, ये समस्याएँ

वैवाहिक सम्बन्धों के कारण, बालिकाओं के प्रेम सम्बन्धों के कारण और उनकी रक्षा के कारण उत्पन्न होती है तथा ये समस्याएँ कभी–2 गंभीर संघर्षों को भी जन्म देती हैं (इस तरह हम देखते हैं कि स्त्रियाँ व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, जातीय, स्थानीय, राष्ट्रीय और धार्मिक समस्याओं की जन्मदात्री हैं)। जनसंख्या वृद्धि, संसाधनों का अभाव और धन की कमी स्त्रियों के कारण ही होती है। स्त्रियों के कारण ही कभी–2 परिवार में कुपुत्र पैदा हो जाते हैं जो परिवार, जाति, राष्ट्र और धर्म को कलंकित करते हैं। रावण, वाणासुर तथा कंस जैसे आततायी असुर और कौरव जैसे अभिमानी पुरूष तथा शकुनी जैसे भिडाऊ व्यक्ति माताओं की कोख से जन्म लेकर संसार को कलंकित करते रहते हैं।

जो भी धार्मिक पौराणिक और ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं और उनमें जो भी पौराणिक आख्यान, ऐतिहासिक घटनाएँ, कर्तव्य बोध आदि के नियम उपलबध होते हैं उनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में स्त्रियों से ही है। हर महापुरूष के साथ उसकी माता और पत्नी की नाम जुडा होता है जैसे राम के साथ माँ कौशल्या और पत्नी सीता का नाम जुडा है उसी प्रकार कृष्ण के साथ माँ देवकी, यशोदा तथा प्रेयसी राधा व पत्नी रूक्मिणी और सत्यभामा आदि के नाम जुड़े है। इन महापुरूषों के लिए अनेक पौराणिक ग्रन्थों की रचना भी हुई। अनेक तीज त्योहार भी स्त्रियों से हुए हैं जिनका वर्णन पुराणों में मिलता है, दीपावली और महालक्ष्मी व्रत विष्णु पत्नी लक्ष्मी से सम्बन्धित है, तीजा और नवरात्रि शिव की पत्नी पार्वती और नौ देवियों से सम्बन्धित हैं तथा होली का सम्बन्ध प्रहलाद की बुआ होलिका से है। अनेक ग्रन्थ स्त्रियों को उनके कर्तव्यों का बोध करते हैं, भागवत पुराण में भी स्त्रियों को उनके कर्तव्यों का बोध कराने वाले अनेक प्रसंग उल्लिखित

'स्त्रीणां च पति देवानां तच्छुश्रुषानुकूलता।

तद्वन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तम्तधारणम्।। [6]

हैं मत्स्य पुराण के अनुसार बिना स्त्री के सृष्टि संरचना संभावित नहीं है, वही सृष्टि

का सृजन करने वाली और वही सृष्टि की संचालिका भी है। विष्णु पुराण में भी यह

'स्त्रिया विरहिता सृष्टिर्जन्तूनां नोपपद्यते'।[7]

वर्णन उपलब्ध होता है कि मारिषा नामक कन्या का सम्बन्ध विश्व सृष्टा प्रचेताओं से था, उसी से यह संसार अस्तित्व में आया। वायु और ब्रह्मण्ड पुराण में भी स्त्री रूप

'मारिषा नाम नाम्नैषा .... भार्या वोऽस्तुवंशवर्द्धिनी'।[8]

धारिणी वसुन्धरा वैन्य को निर्देशित करती है कि जन जीवन के अस्तित्व में उसकी कारण भूत प्रतिष्ठा है। अथर्ववेद में भी एक मन्त्र उपलब्ध होता है, जिसमे वीर पुत्र

'मदृते च विनश्येयुः प्रजाः पार्थिवसत्तम'।[9]

उत्पन्न करने के लिए स्त्री के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है।[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टि सृजन और विश्व के विकास के बिना स्त्री के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता। सृष्टि के आदिकाल से लेकर आज तक विश्व का अस्तित्व मातृशक्ति के कारण ही है। इसलिए धर्मग्रन्थकारों ने इस सत्य को स्वीकार किया है कि जहाँ नारी की पूजा होती है वही देवता निवास करते है– 'यत्र नारियन्त पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः'। इसलिए जननी और जन्मभूमि दोनों को ही स्वर्ग से महान माना गया है 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' यह एक कटु सत्य है कि यदि नारी मानवों को जन्म देना बन्द कर दे तो सौ वर्ष बाद पृथ्वी मानव विहीन हो जायेगी, इसलिए सृष्टि का अस्तित्व उस समय तक है जब तक नारी सन्तानों को जन्म देती रहे।

2– भागवत एवं अन्य पुराणों में वर्णित स्त्रियों की स्थिति–

भारतीय धर्म और सामाजिक व्यवस्थ का वर्णन वेदों और पुराणों में उपलब्ध होता है, कोई भी धर्म और समाज ऐसा नहीं है जिसमें नारी के अस्तित्व और प्रतिष्ठा को स्वीकार न किया गया हो नारी हमारी माता बहन भार्या और पुत्री के रूप में उपलब्ध होती है। हमारे जीवन का अस्तित्व ही नारी से प्रारम्भ होता है और जीवन का अन्त भी 'भू' माता की गोद में ही होता है। वह हमारी जन्म दात्री, धात्री, पोषिका,

जीवन संगिनी तथा हमारे शरीर का अंग है और उसके सम्पूर्ण सुख दुख हमारे सुख दुख से जुडे हुए है। नारियों का वर्णन भागवत एवं अन्य पुराणों में अति विस्तार पूर्वक निम्न रूपों में उपलब्ध होता है।

नारी जननी के रूप में— सर्व प्रथम हम नारी को सृष्टि का सृजन करने वाली मानते हैं। विष्णु पुराण में संसार के रक्षक भगवान विष्णु को कृष्ण के रूप में जन्म देने वाली देवकी को देवी की उपाधि दी गयी है तथा उसे जगत का कल्याण करने वाली देवी माना गया है। भागवत पुराण में भी देवकी के गर्भ में भगवान कृष्ण के

'तवं सर्वलोकरक्षार्थ मवतीर्णा महीतले।

प्रसीद देवि जगतश्शं शुभे कुरु।

प्रीत्या तं धारयेशानं धृतं येनाखिलं जगत्।।'[11]

आने पर उसे देवी रूप ही माना गया है। वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराण में कश्यप

'ततो जगन्मग्ङंलमच्युतांश

समाहितं शूरसुतेन देवी।

दधार सर्वात्मिकमात्मभूतं

काष्ठा यथा ऽऽनन्दकरं मनस्तः' ।'[12]

ऋषि की दोनों पत्नियों दिति ओर अदिति को देवी के रूप में स्वीकार किया गया है, इन दोनों को संसार की माता माना जाता है। भगवान शिव की अर्धागिंनी

'यास्तु शेषास्तदा कन्याः प्रतिजग्राह कश्यपः।

चतुर्दश महाभागाः सर्वास्ता लोक मातरः।[13]

पार्वती को भी संसार की माता माना गया है, वे सौभाग्य वती है और स्वामी कार्तिकेय की माता भी है।

'त्वमस्य जगतो माता जगत्सौभाग्य देवता' ।[14]

पुत्र का लालन पालन करने वाली माँ के रूप में स्त्री —

हर माता जिसे वह जन्म देती है अथवा जिसका वह पालन करती है, उसके

प्रति उसका स्नेह बढ जाता है। विष्णु पुराण में एक आख्यान उपलब्ध होता है कि कृष्ण द्वैपायन वेव्यास की माता सत्यवती ने व्यास को यह आदेश दिया कि वह विचित्र वीर्य की पत्नी भुजिष्या से सस्म्बन्ध स्थापित करे और संताने पैदा करे। वेदव्यास ने माता की आज्ञा मानकर यह कार्य सम्पन्न किया, अर्थात स्त्री को पौराणिक युग में किसी पुरूष से बीज ग्रहण करके संतान पैदा करने का अधिकार था। वायु और

' सत्यवती नियोगाच्च मत्पुत्रः कृष्णद्वैपायनो मा तुर्वचनमनति क्रमणीय मिति कृत्वा विचित्रवीर्यक्षेत्रे धृतराष्ट्रपाण्डुतत्प्रहितभुजिष्यां विदुरंचोत्पादयामास।।'[15]

ब्रह्माण्ड पुराण में भी मातृ धर्म रक्षा धर्म प्रेरित कर्तव्यों का उल्लेख मिलता है। मत्स्य

'मातरं रक्षतं चैव धर्मश्चैवानुशिष्यताम्' ।[16]

पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि स्त्री का कर्तव्य गर्भधारण, सन्तान को जन्म देना और सन्तान का पालन–पोषण करना उसका कर्तव्य है। यदि स्त्री चरित्र हीन भी है और किसी पुत्र की माँ है तो उसका परित्याग नहीं किया जा सकता, माता के रूप में उसका दर्जा महान है।

'पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कथ०चन्।
गर्भधारण योषाभ्यां तेन माता गरीयसी।।'[17]

भागवत पुराण में यह वर्णन उपलब्ध होता है कि जब गोपिकाओं ने यह सुना कि यशोदा के पुत्र हुआ है, तो गोपिकाओं ने आनन्द मनाया और अंजन तथा आभूषण से अपना श्रंगार किया। माँ यशोदा ने श्री कृष्ण का पालन पोषण बहुत प्यार से किया, किन्तु वे स्वभाव से बहुत चंचल थे इसलिए माँ के नियन्त्रण में नहीं थे परन्तु उनकी माता उन्हें भय की वस्तुओं से बचाने की चिन्ता करती थी। कुछ ही दिनों बाद भगवान श्री कृष्ण खडे होकर चलने लगे।

'श्रृग्ङ्यग्निदंष्ट्रयसि जलद्विजकष्टकेभ्यः
क्रीडा परावति चलौ स्वसुतौ निषेदृधुम।

गृह्वाणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ

शेकात आयतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ।।'

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ।

अघृष्टजानुभिः पध्विचक्रमतु रअज सा ।।'[18]

इसके पूर्व ही यशोदा और रोहिणी को वे अपने वात्सल्य से आनन्दित करते थे।

'तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ।

पक्ङांङ्रागरूचिरावुयगुह्वा दोर्भ्याम् ।।

दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य,

मुग्धस्मिताल्पदनं ययतुः प्रमोदम् ।।'[19]

इस प्रकार माता का कर्तव्य जहाँ पुत्र को जन्म देना है, वहीं उसकी वात्सल्यता को भी स्वीकार करनाहै। यदि उसने पुत्र को जन्म न भी दिया हो तो भी वह किसी भी बालक को पाल पोषकर माता का स्नेह प्रदान कर सकती है।

स्त्री की हत्या एक जघन्य अपराध–

ब्राह्मण, कन्या, गऊ, पत्नी तथा माता को धर्म के अनुसार अत्यन्त पवित्र मानाा गया है। वायु और ब्रह्मण्ड पुराण में यह वर्णन उपलब्ध होता है कि जब कंस ने देवताओं की यह भविष्यवाणी सुनी कि देवकी का आठवाँ पुत्र कंस का घातक होगा, उस समय कंस ने देवकी की हत्या करने पर विचार किया। उस समय वसुदेव ने उसका ध्यान आकर्षित किया कि क्षत्रियों का कर्तव्य स्त्रियों पर हाथ चलाना नहीं है। भागवत पुराण में भी इस बात का

'न स्त्रियं क्षत्रियो जातु हन्तुमर्हति कश्चन।[20]

वर्णन मिलता है कि जब देवकी का विवाह वसुदव के साथ सम्पन्न हुआ, उस समय उसे देवताओं की आकशवाणी सुनने को मिली कि जिसको तू रथ में बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवीं सन्तान तुझे मार डालेगी। इस आकाश वाणी को सुनकर भोजवंश के कलंक कंस ने देवकी को चोटी पकड़कर जान से मारने का प्रयत्न

किया । इस पर वसुदेव जी ने समझाया कि यह तुम्हारी छोटी बहन है,

'पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ।

अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेअबुध ।।

इत्युत्कः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ।

भगिनीं हन्तुमारब्धः खग्ङपाणिः कचेऽग्रहीत् ।।[21]

यह दीन है और इसका विवाह अभी–2 हुआ है, इसलिए इसका वध करना उचित नहीं है। तुम भेजवंश के बहादुर हो तथा कुल की कीर्ति बढाने वाले हो

'ऐषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ।

हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ।।[22]

इस स्थिति में स्त्री का वध तुम्हारे योग्य नहीं है। इस कथन के पश्चात कंस ने देवकी का वध नहीं किया।

'श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान भेजयशस्करः ।

स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमद्धाहपर्वणि ।।[23]

मत्स्य पुराण में एक प्रसंग आया है कि तीन लोकों में रहने वाली स्त्रियाँ, स्त्री वध को निम्न कोटि का अपराध मानती है। यदि दो पक्षों के मध्य युद्ध हो रहा है उस समय भी शत्रु पक्ष की स्त्रियों पर हमला नहीं किया जा सकता और उनका वध भी नहीं किया जा सकता।

'पाप निर्दय निर्लज्जकस्ते कोपः स्त्रियः प्रति ।

न दाक्षिण्यं न ते लज्जा न सत्यं शौर्यवर्जित ।

किं त्वया न श्रुतं लोके ह्यवध्याः शत्रुयोर्षितः ।।[24]

वेदों ने भी स्त्री वध की निन्दा की है, मुख्य रूप से शतपथ ब्राह्मण में स्त्री वध को उचित नहीं कहा गया।[25]

इसी प्रकार विष्णु स्मृति व मनुस्मृति में भी इस बात की सिफारिश की गयी है कि जो व्यक्ति स्त्री का वध करे उसे दण्ड दिया जाय।[26] पुराणों में एक प्रसंग स्त्री

वध का उपलब्ध होता है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार अपने पिता के कहने से परशुराम ने अपनी माता का वध कर दिया था, किन्तु परशुराम के इस कृत्य की प्रशंसा नहीं की गयी। परशुराम के इस कृत्य को गुरू और ब्राह्मण की हत्या की कोटि में रखा गया है।

'गुरूस्त्री ब्रह्महत्योत्थ पातकक्षपणाय च।

तपश्चरसि नानेन तपसा तत्प्रणश्यति।

कृत्वा मातृवधं घोरं सर्वलोकविगर्हितम्।।[27]

इसी प्रकार का एक ओर उदाहरण पुराणों में उपलब्ध होता है, जब देवासुर संग्राम के समय भगवान विष्णु ने भृगु की पत्नी का वध कर दिया था। जिसके कारण भगवान विष्णु को सात बार दैवी स्तर से उतरकर मानवीय स्तर पर आना पडा था।

'यस्मात्ते जानता धर्मानवध्या स्त्री निषूदिता।

तस्मात्वं सप्तकृत्वो वै मानुषेषु प्रपत्स्यसि।।[28]

स्पष्ट है कि नारी का सम्मान सदैव भारतवर्ष में होता रहा है क्योंकि उसे किसी भी स्थिति में अवध्य ही माना गया है।

कन्या के प्रति उदार भाव–

भारतीय समाज में कन्या का बहुत अधिक सम्मान होता था। विष्णु पुराण में मारिषा नामक कन्या का उल्लेख मिलता है, जिसे कन्या रत्न के रूप में सम्बोधित किया गया है और उसका पालन राजा सोम ने अपनी किरणों से किया था। पुराणों में दूसरा उदाहरण ब्रह्मा की पुत्री शतरूपा के

'रत्नभूता च कन्येयं वार्क्षेयी वरर्णिनी।

भविष्यं जानता पूर्व मया गोभिर्विवर्द्धिता।।[29]

सन्दर्भ में प्राप्त होता है, उसके शरीर में ब्रह्मा का आध आंश विराजमान था।[30]

कन्या के प्रति पिता का स्नेह होना स्वाभाविक है,देवयानी शुक्राचार्य की पुत्री थी उसका अपमान वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ने किया था, यह अपमान शुक्राचार्य

सहन नहीं कर सके अन्त में देवयानी को प्रसन्न करने के लिए वृषपर्वा ने शर्मिष्ठा को उसकी दासी बना दिया था।[31] हर पिता अपनी कन्याओं का विवाह योग्यवर से करना चाहता है किन्तु कभी–2 शाप वश विपरीत आचरण के लिए मजबूर होता है। इस प्रकार राजा मान्धाता ने अपनी कन्याओं का विवाह वृद्ध सौभरि से कर दिया तथा उसके पश्चात भी वे अपनी कन्याओं से प्रेम करते रहे। उन्होंने सौभरि के योगबल से एकत्रित उपभोग सामग्रियों को स्वतः जाकार देखा।[32] विवाहित कन्याओं के साथ भी समुचित व्यवहार करने का निर्देश पुराणों में मिलता है। इनमें उन्हें पवित्र अन्न खिलाये जाने का निर्देश दिया गया है।[33] पिता का वास्तविक प्रेम उस समय देखने को मिलता है जब वह पिता का घर छोडकर ससुराल जाने लगती है।[34] इस प्रकार हम देखत हैं कि पिता का स्नेह कन्या के प्रति उताना होता है जितना माता का।

पैतृक सम्पत्ति पर स्त्री अथवा कन्या का अधिकार–

भारतीय धर्मशास्त्र में कन्या को भी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार दिया गया है। विष्णु पुराण में यह विवरण उपलब्ध होता है कि स्यमन्तक मणि सत्रजित को सूर्य से मिलाती थी। सत्रजित की मृत्यु के उपरान्त इस मणि के लिए ग्रहकलह हुआ, बाद में यह मणि सत्यभामा को उपलब्ध हुई। पुराणों में सत्यभामा के भाई का उल्लेख नहीं मिलता, कई धर्मशास्त्रों में पैतृक सम्पत्ति पर पुत्री का अधिकार स्वीकार किया गया है।

"ममैवायं पितृधन मित्यतीव च सत्यभामापि स्पृहपांचकार।

...........................पितृधनं चैतत्सत्यभामाया नान्यस्यैतद्।[35]

भागवत पुराण में भी राजा सत्यजित और स्यमन्तक मणि का वृतान्त उपलब्ध होता है। विवरण के अनुसार सत्यजित राजा ने श्रीकृष्ण को स्यमन्तक मणि की चोरी लगायी और स्यमन्तक मणि के मिल जाने पर उन्होंने कृष्ण से क्षमा याचना की और सत्यभामा का विवाह भगवान श्रीकृष्ण से कर दिया तंथा उन्होंने अपनी

कन्या और स्यमन्तक मणि श्रीकृष्ण को अर्पण कर दी।

'एवं व्यवसितो बुद्धया सत्राजित् स्वसुतां शुभाम्।

मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपहार ह।।'[36]

याज्ञवल्क्य स्मृति में यह विवरण उपलब्ध होता है कि जिस मनुष्य के पुत्र नहीं होता और उसकी आकस्मिक मृत्यु हो जाती है तो उसके धन के अधिकारी पत्नी, कन्या, पिता और माता होते हैं, अर्थात धन पर अधिकार कन्या का पत्नी के बाद होता है। ऋग्वेद में भी एक उदाहरण उपलब्ध होता है कि

'पत्नी दुहिताश्चैव पितरौ भ्रतरस्था।

एषामभावे पूर्वस्य धनभागमुत्तरोत्तरः।

स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्यं सर्ववर्णष्वयं विधिः।[37]

ऊषा अपने भ्राता के अभाव में पिता के धन को प्राप्त करती है।[38] कुल मिलाकर निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि पिता के पुत्र नहीं है तो पुत्री सम्पत्ति की अधिकारिणी बन सकती है।

नारी को शिक्षा का अधिकार–

वेदों और पुराणों में बालिकाओं और स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार दिया गया था। यह शिक्षा आध्यात्मिक और व्यावहारिक दो रूपों में दी जाती है, पुराणों में वर्णित अनेक स्त्रियों ने विद्या ग्रहण की और वे सुप्रसिद्ध महिलाएँ बनी। उनमें कुछ निम्नलिखित है–

वृहस्पति भगिनी– ब्रह्माण्ड पुराण में वृहस्पति भगिनी को ब्रह्मवादिनी के नाम से पुकारा जाता है, इन्होंने समस्त पृथ्वी को पर्यटन किया था।

'बृहस्पतेस्तु भगिनी भुवना ब्रह्मवादिनी।

योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमश(स) क्ता चरति स्मह।।[39]

अपर्णा, एकपर्णा और पाटला– वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में इन तीन कन्याओं का वर्णन उपलब्ध होता है, ये तीनों ब्रह्मवादिनी और ब्रह्मचारिणी थी तथा ये महान

तपस्विनी भी थी।[40]

मेना और धारिणी— इन कन्याओं का वर्णन विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण में उपलब्ध होता है, ये कन्याएँ ब्रह्मवादिनी, योगिनी और ज्ञानवान थी।[41]

संनति— मत्स्य पुराण में इस कन्या का विवरण उपलब्ध होता है, पिता के कार्य में लगी रहने के कारण यह ब्रह्मवादिनी थी।[42]

शतरूपा— मत्स्य पुराण में इसका विवरण उपलब्ध होता है, इसे ब्रह्मवादिनी माना गया है।

'या सा देहार्द्धसम्भूता गयत्री ब्रह्मवादिनी।

शतरूपा शतेन्द्रिया।'[43]

उमा— पार्वती की तपस्या का वर्णन मत्स्य पुराण में उपलब्ध होता है। जो कठोर तप पार्वती ने किया था वह कोई नहीं कर सकता, उसने बल्कल वस्त्र धारण किया तथा तप में द्रुमतल ओर तृण आदि खाकर जीवन का निर्वाह किया।[44] वायुपुराण में भी इस का वर्णन उपलब्ध होता है।

'तपस्तप्वती चैव यत्र देवी वराग्ङंना।'[45]

पीवरी— यह भी एक विद्धान कन्या थी, उसने योग्य पति पाने के लिए तपस्या की थी।

'एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता।

योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारूणम्।।'[46]

धर्मव्रता— वायु पुराण के अनुसार इस कन्या ने भी पिता के आदेश के अनुसार योग्यवर पाने के लिए तपस्या की।

'तपः कुरू वरार्थ त्वं तथेत्युक्तवा वनं ययौ।

कन्या सा च तपस्तेपे सर्वेषां दुष्करं च यत्।'[47]

विविध विद्याओं में महिलाओं की सहभागिता—

ऐसे अनेक पौराणिक उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि महिलाएँ विविध विद्याओं में पारंगत थी तथा उनका वर्चस्व निम्न विद्याओं में था—

नृत्य एवं संगीत कला— नृत्य और संगीत कला स्त्रियों का मुख्य केन्द्र बिन्दु था, वे अनेक तीज त्योहारों पर अपने उल्लास का प्रदर्शन नाच गाकर किया करती थी। मत्स्य पुराण में किशोर द्वादशी नामक व्रत में नृत्य और गीत के माध्यम से देवता को प्रसन्न करती थी। गायन और नृत्य के साथ–2 वे वीणा का भी प्रयोग करती थीं।

'नारी वा कुरूते या तु विशोकद्वादशीवृतम।

नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुपात्।।'[48]

पुराणों में अप्सराओं की नृत्य कला का सविस्तार

'भावेषु पार्थिवनिजप्रिय धैर्यबन्धसर्वायहारचतुरेषु कृतान्तराभिः।

तन्त्रीस्वनोपमितमंजुल सौम्यगेय गन्धर्वतार मधुराखभाषणीभिः।।

वीणाप्रवीण तरपा णितलांगुलीभि .... ।'[49]

वर्णन मिलता है और उसकी उपमा सूर्यमण्डल की शोभा से की गई है।

'नृत्यन्त्यप्सरसो यान्ति सूर्यस्यानु निशाचराः।[50]

नृत्यकला के सन्दर्भ में भागवत पुराण में भी विवरण उपलब्ध होता है । जब भगवान श्री कृष्ण गोपिकाओं के साथ रॉस कर रहे थे, उस समय भगवान श्री कृष्ण का सौन्दर्य मेघमण्डल के समान था और गोपिकाओं का सौन्दर्य विजली के समान था। गोपिकायें भगवान श्रीकृष्ण से सटकर नृत्य कर रही थी और मधुर गान कर रहीं थी, व इस गान में विविध राग रागिनियाँ निकल रही थी।

'उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठयो रतिप्रियाः।

कृष्णाभिमर्शमुदिता यदीग्तेनेदमावृतम्।।

काचित समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः।

उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति।

तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात्।।'[51]

भागवत पुराण में ही वेणुगीत का भी उल्लेख मिलता है, ऐसा प्रतीत होता है कि वेणु अथवा बाँसुरी कृष्ण के युग का सबसे प्रसिद्ध वाद्य था। वह गायों के चराने के अवसर पर बाँसुरी वादन किया करते थे।

'कुशुमितवनराजिशुष्मिभृङ

द्विजकुलघुष्टुसरः सरिन्महीध्रम।

मधुपतिखगाह्या चारयन् गाः

सहपशुपाल बलश्चुकूज वेणुम्।

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।

काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसरवीभ्योऽन्ववर्णयन्।'[52]

भागवत पुराण में ही गीत गायन पद्धति का भी उल्लेख मिलता है। गोपिका गीत के माध्यम से गोपिकाएँ अपने हृदय की अभिव्यक्ति किस प्रकार से करती हैं यह दर्शनीय है। वे काव्यात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करती हैं, जो अत्यन्त वेदना युक्त होता हुआ भी हृदयग्राही है। श्री कृष्ण जब गोपिकाओं को छोड़कर जब मथुरा चले जाते हैं, उस समय कृष्ण वियोग के कारण उनके हृदय में जो वेदना उत्पन्न हुई वह गीत के रूप में व्यक्त हुई।

'जयति तेअधिकं जन्मना ब्रजः

श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।

दयति दृश्यतां दिक्षु तावका

स्त्वथि घृतासवस्तां विचिन्वते।।

शुरदुदाशये साधुजातसंत्

सरसितोदर श्रीमुषा दृशा।

सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका

वरदनिन्तो नेह किं वधः।'[53]

भागवत पुराण में ही गायन पद्धति का उल्लेख मिलता है, इस युग में वृन्द गीत (समूह गीत) और युगल गीत गाने की पद्धति थी। इसके उदाहरण भागवत् पुराण में उपलब्ध होते हैं, इसमें गीत गायन तथा सौन्दर्य वर्णन का उल्लेख है।

'कुन्ददामकृतकौतुक वेषो

गोपगोधन वृतो यमुनायाम्।

नन्दसूनुरनघे तव वत्से

नर्मदः प्रणयिनां विजहार।।

मन्दवायुरूपवात्यनुकूलं

मानयन् मलयजस्यर्शेन।

वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये

वाद्यगीत बलिभिः परिव्रुतुः। [54]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महिलाओं के मध्य में संगीत एवं नृत्य कला का प्रचार प्रसार अत्यन्त प्राचीन काल से है।

चित्रकला में स्त्रियों की निपुणता–

प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ चित्रकला में अत्यन्त निपुण रही हैं, विष्णु पुराण में यह उदाहरण उपलब्ध होता है कि वाणासुर के मन्त्री कुष्माण्ड की कन्या की सखी चित्रलेखा ने एक चित्रपट पर प्रमुख देव, दानव, गन्धर्व और मनुष्यों के चित्र बनाये थे। इस चित्रावली में उसने अनुरूद्ध का चित्र भी बनवाया था, जिसको देखकर वाणासुर की कन्या ने उससे विवाह किया था। भागवत् पुराण में भी

'ततः पटे सुरान्दैत्यान्गन्धर्वांश्च प्रधानतः।

मनुष्यांश्च विलियास्यै चित्रलेखा व्यदर्शयत्।।' [55]

चित्रकला का उदाहरण उपलब्ध होता है किन्तु यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि उसका निर्माता कौन था तथा इन चित्रों को किस विधि से बनाया जाता था, फिर भी यह जानकारी उपलब्ध होती है कि उस युग में चित्रकला का महत्व था।

'वृन्दशो वृजवृषा मृगगावो

वेणुवाद्यहृतचेतस आरात्।

दन्तदष्टकवला धृतकर्णा

निद्रिता लिखितचित्र मिवासनम्।।'[56]

युद्ध कला में स्त्रियों की निपुणता–

राष्ट्र की रक्षा करना केवल पुरूषों का दायित्व नहीं था, आपितुं स्त्रियाँ भी राष्ट्र रक्षा में सहयोग प्रदान करती थी। विष्णु पुराण के अनुसार जब भगवान श्री कृष्ण ने द्वारका पुरी में दुर्ग का निर्माण कराया, उस समय उसकी रक्षा के लिए, स्त्री योद्धाओं की नियुक्ति भी की थी। भागवत पुराण

'तस्माद्दुर्गं करिष्यामि यदूनामरिदुर्जयम्।

स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयुः किं पुर्नवृष्णिपुग्ङवाः।'[57]

में यह उल्लेख भी आया है कि जब श्रीकृष्ण रूक्मणी का अपहरण करके द्वारका पुरी ले आये थे, उस समय भगवती भवानी के दर्शन हेतु जब रूक्मणी जा रहीं थी तब उनकी रक्षा के लिए सहस्त्रों वीरांगनायें भी नियुक्त थी।

'नानोपहार बलिभिर्वारमुख्याः सहस्त्रशः।

स्त्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलक्ङंताः।[58]

पत्नी के रूप में स्त्री का स्थान–

अत्यन्त प्राचीन काल से स्त्री को सहधर्मिणी का स्थान मिला हुआ है, जो स्त्री पति के आदेश का पालन करती है और उसे सहयोग प्रदान करती है उसे महान फल की प्राप्ति होती है।

'सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया.................. महाफलम्।[59]

भागवत महापुराण में भी पतिव्रत धर्म का पालन करना स्त्रियों का माहन कर्तव्य माना गया है।

'तद् यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः।

क्रदन्ति वत्सा बालाश्च तान् पापयत दुह्हत।।'[60]

धार्मिक अनुष्ठान में स्त्रियों का योगदान–

अनेक पौराणिक ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि स्त्रियों को यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने का अधिकार है। ब्रह्मण्ड पुराण में इस बात का उल्लेख मिलता है तथा उसी को वायु पुराण में भी दर्शाया गया है।

'छायापत्नी सहायो वैमणिश्रृंग इवोच्छितः।

भूत्वा यज्ञवराहो वै अपः स प्राविशत्प्रभुः।'[61]

माया पत्नी सहायो वै गिरि श्रृंगमिवोच्छ्रयः।'[62]

भागवत पुराण मे भी यज्ञ आदि कर्मो का उल्लेख मिलता है, यज्ञ आदि कर्म भगवान श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों के सहयोग से ही करते थे। ब्रह्मण्ड पुराण

'जुह्वन्तं च वितानाग्नीन् यजन्तं पचभिर्मरवैः।

भोजयन्तं द्विजान् क्कापि भुजानमवशेषितम्।।

क्कापि सन्ध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम्।

एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु।'[63]

में ऐसे कई कई उल्लेख मिलते हैं जिनमें से कई ऐसे अनेक जोडो को ब्रह्मा, विष्णु व महेश की उपासना करते हुए दिखलाया गया है। पत्नी परिवार की मुखिया होती

'एनामेवार्चचन्तयन्ये सर्वे श्री देवतां नृप।

ब्रह्मा विष्णुमहेशाद्याः सस्त्रीकाः सर्वदा सदा।'[64]

थी कभी–2 विशेष कार्यों में उसका परामर्श लिया जाना अनिवार्य था। उसंका कार्य

'हेहे शालिनि मद्गेहे यत्किंचिदतिशोभनम्।

भक्ष्योपसाधनं मृष्टं तेनस्यान्न प्रसाधय।।'[65]

सन्तान को जन्मं देना तथा उसका पालन पोषण भी करना भी होता था, विष्णु पुराण में इसका उल्लेख मिलता है। भागवत पुराण में भी यह उल्लेख मिलता है कि यशोदा

जी जहाँ

'यदि शक्नोषि गच्छत्वमति चं चलचेष्टित।

इत्युक्त्वाथ निजं कर्म सा चकार कुटिम्बनी।।[66]

गृहस्थी के कार्य सम्पन्न करती थी, वहीं वह बालक कृष्ण के आचरण पर भी नियन्त्रण रखती थी तथा बालक को कभी–2 दण्डित भी करती थी।

'उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः

प्रविश्य संद्रश्य च दध्यमत्रकम्।

भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्मत

ज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती।।

उलूखलाङघ्रेरूपरि व्यवस्थितं

मकार्य कामं ददतं शिचि स्थितम्।

हैयग्ङवं चौर्यविशक्ङितेक्षणं

निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः।।[67]

स्त्री का कर्तव्य गृहस्थ जीवन को सुखी बनाना है, अथर्ववेद में वह घर की रानी है उसका यह कर्त्तव्य है कि वह पारिवारिक मर्यादाओं का पालन कराये और करे।[68] पत्नी का यह भी कर्तव्य है कि वह पति की सेवा करे तथा वंश की वृद्धि करे।[69]

भागवत पुराण में भी स्त्रियों के कर्त्तव्यों को उजागर किया गया है तथा उन्हें निर्देश दिया गया है कि वह पति की सेवा करें और उनके अनुकूल रहें। पति के सम्बन्धियों को प्रसन्न रखे, घर को साफ सुथरा रखें तथा अपने शरीर को सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से सजाये रखें। पति देव की छोटी बडी इच्छाओं को समय के अनुसार पूर्ण करे ओर विनय इन्द्रिय संयम एवं प्रिय वचनों से प्रेम पूर्वक पतिदेव की सेवा करें।

'स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छु श्रूषांनुकूलता।

तद्वन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्।।

संमार्जनोपलेपाभ्यां ग्रहमण्डलवर्तनैः।

स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा।।

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।

वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले–काले भजेत् पतिम्।।' [70]

समाज में विधवा स्त्रियों की स्थिति–

भारतीय समाज में स्त्री का विधवा होना अच्छा नहीं माना जाता है। विष्णु पुराण के अनुसार मारिषा नाम की स्त्री बाल्यकाल में विधवा हो गयी थी, उसे मन्दभागिनी शब्द से सम्बोधित किया गया है। विधवास्त्री

'भगवन्बालवैधव्याद् वृथाजन्मा हमींदृशी।

मन्दभाग्या समुद्भूता विफला च जगत्पते।।' [71]

को यह निर्देश दिया गया है कि वह अपने शरीर का श्रृंगार न करे, म्लान वस्त्र धारण करे। मत्स्य पुराण में विधवा स्त्रियों का वर्णन विस्तार से उपलब्ध होता है। विधवाओं को अत्यन्त दयनीय

'नारी याऽभर्तृकाऽकस्मान्तनुस्ते व्यक्तभूषणा।

न राजते तथा शक्रम्लानवस्त्र शिरोरूहा।।' [72]

माना जाता था तथा राजाओं को यह निर्देश था कि अपने राज्य की विधवाओं का पालन–पोषण यथा सम्भव करें। मत्स्य पुराण के अनुसार विधवाओं को यह

'नारी वा विधवा ....क्रमान्मुक्तिप्रदं देव किंचिदव्रविमोहोच्यताम्।' [73]

निर्देश था कि वे अपना समय धार्मिक कार्यों में बिताएँ, ऐसा करने से उन्हें मोक्ष प्राप्त हो सकता था।

'नारी वा विधवा..................क्रमान्मुक्तिप्रदं देव किंचिद्व्रतविमोहोच्यताम्।' [74]

पौराणिक युग में विधवा विवाह का कोई प्रचलन नहीं था, जब सत्यवान की मृत्यु हो चुकी थी उस समय सावित्री पिता के लिए विशेष चिन्ता का कारण बन गयी

थी। मत्स्य पुराण के अनुसार किसी विधवा बालिका को विवाह करने का अधिकार नहीं है।

'संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः।

सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते चिन्तयित्वा नराधिपः।।'[75]

सती प्रथा का प्रचलन–

पौराणिक युग में सती प्रथा का प्रचलन था, विष्णु पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण की मृत्यु के उपरान्त रूक्मणी आदि रानियों ने उनके देह का आलिंगन करते हुए अग्नि में प्रवेश किया था।

'अष्टौ महिष्यः कथिता रूक्मिणी प्रमुखास्तु याः।

उपगुह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम्।।'[76]

भागवत पुराण में भी भगवान श्री कृष्ण और बलराम जी की मृत्यु के पश्चात उनकी पत्नियों का सती होने का उल्लेख उपलब्ध होता है। कहीं कहीं

'वसुदेवपत्न्यस्तग्दात्रं प्रद्युम्नादीन हरेः स्नुषाः।

कृष्णपत्न्यो अविशन्नग्नि रूक्मिण्याण्द्या स्तदात्मिकाः।।'[77]

सती होने पर प्रति बन्ध भी है, यदि किसी स्त्री का पति मर जाता है और वह स्त्री गर्भवती है तो वह सती नहीं हो सकती इसका उल्लेख पुराणों में मिलता है।

'नैवमतिसाहसाध्यवसायनी भवती भवत्युित्क्ता सा तस्मादुनुमरण निर्बन्धाद्विरराम।'[78]

परदा प्रथा–

पौराणिक युग में पर्दा प्रथा का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं होता, ज्यादातर स्त्रियाँ पर्दा नहीं करती थीं और वे अनेक कार्यों में पुरूषों के साथ सहभागिता निभातीं थी। जिस समय राजा निमि अपनी पत्नियों के साथ द्रुतक्रीडा कर रहे थे, वहाँ पर महर्षि वशिष्ट भी मौजूद थे। विष्णु पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि

निमिर्नाम् सह स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत।

तत्रान्तरे अभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः।'[79]

कंस ने जिस स्थान पर मल्ल युद्ध का आयोजन किया था, वहाँ अन्तःपुर और नागरिकों की स्त्रियाँ भी विद्यमान थीं। भागवत पुराण में भी इस घटना

'अन्तःपुराणां मंचाश्च तथान्ये परिकल्पिताः।

अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नगरयोषिताम्।।[80]

का उल्लेख मिलता है कि कंस द्वारा आयोजित मल्ल युद्ध को देखने के लिए नगर की बहुत सी औरतें आयी थीं। इस मल्ल युद्ध को देखकर उन्होंने इस अन्याय की निन्दा भी की।

'तद् बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः।

ऊचुः परस्परं राजन्सानुकम्पा वरूथशः।।[81]

पुराणों में कहीं–2 पर पर्दा प्रथा का समर्थन भी उपलब्ध होता है। मत्स्य पुराण में यह वर्णन मिलता है कि राजा ययाति की पत्नियाँ सदैव पर्दे में रहती थीं उनका दर्शन चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम तथा वरूण भीनहीं कर सकते थे। इसी प्रकार का एक

'सोमश्चेन्द्रश्च वायुश्च यमश्च वरूणाश्च वा।

तव वा नाहुष गृह कः स्त्रियं दृष्टुगर्हति।[82]

और उदाहरण पुराणों में उपलब्ध होता है कि राजा हिमवान की पत्नी जब नारद जी के सम्मुख आयीं तो उन्होंने मुख में घूंघट डालकर उन्हें प्रणाम किया।

'तवन्दे गूढवदना पाणि पद्मकृतांजलिः।[83]

स्त्रियों की वेश भूषा–

अनेक ग्रन्थों में इस बात के उदाहरण देखने को मिलते हैं कि पौराणिक युग में स्त्रियों और पुरूषों के वस्त्र अलग–2 होते थे। इसका मूल कारण स्त्रियों की प्राकृतिक संरचना, पुरूषों से भिन्न होना था, इसलिए उनके वस्त्र भी भिन्न होना स्वाभाविक है। उनकी वस्त्र पहनने की पद्वति और आभूषण धारण करने की पद्धति पुरूषों से अलग थी। इस युग में स्त्रियाँ ऊनी, रेशमी और सूती वस्त्र धारण करती थी तथा वे केश संवारती थी और अनेक प्रकार के आभूषण धारण करती थी।

श्रीमद्भागवत महापुराणों में महिलाओं के अनेक आभूषणों का वर्णन उपलब्ध होता है। जब गोपिकाएँ नृत्य कर रही थी उस समय उनकी कलाइयों में कंगन, पैरों में पायजेब और कमर में कर्धनी थी जिनमें छोटे–छोटे घुँघरू लगे हुए थे। उनके कानों मे कुंडल और केंशों मे चोटियाँ थी, जो नृत्य के समय शोभा दे रहीं थी।

'वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्।

साप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमंडले।।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रू विलासै

भैज्यन्मध्यैश्चल कुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलो लैः।

स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो।

गायन्त्यस्तं तडित इव वा मेघचक्रे विरेजुः।।'[84]

स्त्रियों के मनोरंजन के साधन –

पौराणिक युग में स्त्रियाँ अपने लिए विविध प्रकार के मनोरंजन के साधन जुटाती थीं। कुवाँरी लडकियाँ विशेष रूप से अपने हम उम्र सहेलियों के साथ विविध प्रकार की क्रीडाएँ किया करती थी, इनमें गुड्डा, गुड्डियों के खेल भी शामिल थे। इसके अतिरिक्त ये लडिकियाँ संगीत, गायन, वादन तथा विविध प्रकार के नृत्यों से अपना मंनोरंजन करती थी। विवाहित स्त्रियाँ रति क्रीडा, छोटे बालकों तथा पति साथ द्रुत क्रीडा से अपना मनोरंजन करती थी। भागवत पुराण में संगीत, गायन, तथा वादन के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते है। इस समय सामूहिक नृत्य का प्रचलन था, जो कभी–कभी और पुरूषों के साथ होता था। इस सम्बन्ध में गोपियों के नृत्य के उदाहरण उपलब्ध होते हैं।[85] विवाहित महिलाएँ कभी–कभी पुरूषों से अपना मनोंरजन किया करती थी, उनके मनोरंजन हँसी–मजाक से होते रहते थे। भागवत पुराण में इसका उदाहरण उपलब्ध होता है।

'हसन्तं हास्यकथया कदाचित् प्रिपया गृहे।

क्वापि धर्म सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित्।।'[86]

पौराणिक काल में स्त्रियों की दशा का मूल्याकंन–

वाल्मीक रामायण, महाभारत और अठारह पुराणों के रचना के समय तक स्त्रियों की स्थिति बहुत उच्च कोटि की थी, इस समय तक बहुत कम स्त्रियाँ अधोगति को प्राप्त होती थी। स्त्रियों का चरित्र बहुत अच्छा था, वे नैतिक मूल्यों का अनुपालन करती थीं तथा पति आज्ञा का अनुसरण करती थी। कुमारी कन्याओं के प्रति समाज में दया का भाव था, विविध प्रकार की विवाह पद्धतियाँ इस युग में प्रचलित थी तथा कन्या के विवाह के अवसर पर दहेज देने की प्रथा थी। दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा का विवाह कृष्ण के पुत्र साम्ब से हुआ, इस अवसर पर उसने दहेज में बारह सौ हाथी, दस हजार घोड़े, छे हजार स्वर्ण रथ और आभूषण पहने हुई एक हजार दासियाँ दहेज में दी।

दुर्योधन पारिबर्ह कुज्जरान् पष्टि ह्ायनान्।

ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान्।।

रथानां षटसहस्त्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम्।

दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्त्रं दुहितृवत्सलः।।[67]

समाज में विधवा स्त्री की स्थिति अच्छी नहीं थी, उनके दर्शन को अशुभ माना जाता था और उन्हें कठोर धार्मिक नियमों का अनुपालन करना पडता था। लडकियों को पुरूषों की तरह स्वतन्त्रता नहीं थी किन्तु कहीं–कंही पर स्व्यम्बर के माध्यम से उन्हें अपने पति को वरण करने का अधिकार था। पुरूष अनेक स्त्रियों से विवाह कर सकता था, किन्तु स्त्रियों को ऐसा करने का अधिकार नहीं था। सामाजिक पर्यावरणा के अनुसार लडके ओर लडकियों का पालन अलग–अलग होता था तथा पुरूषों की आपेक्षा स्त्रियाँ अधिक बन्धन में थी।

3– भागवत पुराण में वर्णित स्त्रियों के कर्तव्य एवं धर्म–

सृष्टि को विकसित करने में स्त्रियों का महान योगदान है,यदि स्त्रियाँ न होती तो संसार की परिकल्पना भी न की जाती। धार्मिक ग्रन्थों में उस पृथ्वी को भी स्त्री

का रूप माना गया है, जिसमें जन्म लेकर हम पल्लवित होते है विकसित होते है तथा विभिन्न प्रकार के भोग भोगते है और उसी की गोद में अन्त में सो जाते है। यदि पृथ्वी अथवा माता न होती तो हमारा जीवन अस्तित्व विहीन होता, इसलिये माता सर्वोपरि है तथा पृथ्वी सर्वोपरि है जिसके कारण सम्पूर्ण जीव जगत का अस्तित्व हमें दिखलाई देता है।

भागवत पुराण में पृथ्वी जब असुरो के भाव से बोझिल हो गयी, उस समय वह गऊ का रूप धारण करके तथा नेत्रों में अश्रु धारण कर अत्यन्त करूणा के साथ अपने दुःख की अभिव्यक्ति करने के लिये वह ब्रह्मा जी के पास गयी। ब्रह्मा जी उस

'गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करूणं विभोः।

उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत।। [88]

उस समय पृथ्वी को लेकर शकंर तथा अन्य देवताओं के साथ क्षीर सागर के तट पर गये। देवताओं के अनुरोध पर श्री कृष्ण रूप में परमात्मा ने पृथ्वी पर अवतार लेने का निश्चय किया और यह आश्वासन दिया कि वह अपनी कालशक्ति से पृथ्वी का भार दूर करेंगें, इसके लिये देवता गण भी सहयोगी बने

'पुरैव पुंसावधृता धराज्वरो

भवद्भिरंशैर्य दुषूप जन्यताम्।

स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः

स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि।। [89]

पृथ्वी में उत्पन्न होने वाला कोई भी प्राणी, पृथ्वी को अपने पुत्र की भांति प्रिय है किन्तु प्राणियों की योग्यता और अयोग्यता प्राणियों द्वारा किये गये कार्यो से प्रकट होती है। जब प्राणी कोई अच्छे कार्य करता है तो पृथ्वी माता उसके कार्यो से प्रसन्न होती है, यदि कोई बुरे कार्य करता है तो पृथ्वी माता उन पुत्रों से दुःखी होती है । इस संसार में दानव, देवता, मनुष्य, असुर और गन्धर्व अपने—अपने कर्मो के अनुसार विभाजित हैं तथा यही अपने अपने कर्मो के अनुसार प्रंशसित और निन्दित भी है।

मनुष्यों का यह विभाजन कर्मानुसार है, जब कोई व्यक्ति जन कल्याण के लिये अतिश्रेष्ठ कार्य करता है तो वह हमारा परमात्मा तथा ईश्वर बन जाता है। जब कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह जनहित के कार्य करता है तो वह हमारा देवता बन जाता है उसके प्रति हमारी यह कल्पना रहती है कि वह हमें सुख संसाधन प्रदान करेगा। जो व्यक्ति न किसी का बुरा सोचते है और न किसी का बुरा करते है वे मनुष्य कहलाते है और मनुष्य पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर है प्रकृति के संसाध् ानों का उपभोग करके वे अपनी लीला व्यतीत करते हैं तथा वे सुख की प्राप्ति के नियें ईश्वर तथा देवताओं की उपासना करते है। इस संसार में वे अपने से अधिक ईश्वर को शक्तिशाली समझते है और अन्य देवताओं को भी ईश्वर का विशेष गण मानकर उनकी उपासना करते हैं। इन्ही मनुष्यों का एक ऐसा समूह भी है जो हमेश उल्टा सोचता है वह संकीर्ण विचारधारा से ग्रसित होने के कारण अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को प्राथमिकता देता है और सदैव दूसरों को नुकसान पहुँचाता है। ऐसे लोगों को राक्षस एवं असुर के नाम से पुकारा जाता है किन्तु यह सार्वभौमिक सत्य है कि देवता, मनुष्य, दैत्य, दानव तथा असुरों ने अपनी माताओं से ही जन्म ग्रहण किया है यदि इनकी मातायें न होती तो इनका अस्तित्व पृथ्वी में नहीं होता।

इस संसार में नारी या कन्या एक शक्ति के रूप मे पैदा होती है जैसे यशोदा की पुत्री योगमाया एक देवी के रूप में उत्पन्न हुई व कृष्ण के बदले उन्हें देवकी के यहाँ भेज दिया गया। भगवान ने उनको यह आदेश दिया कि तुम संसार में एक देवी के रूप में स्थापित होगी और समस्त संसार तुम्हारी पूजा करेगा, तुम यशोदा के गर्भ से जन्म लेना। भविष्य में यह शक्ति देवी के रूप में अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित हुयी

अथामंशभागेन देवया: पुत्रतां शुभे।

प्राप्स्यामि त्वं यशेदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि।।

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्।

धूयोपहार बलिभीः सर्वकामवर प्रदाम्।। [90]

हुई तथा इस शक्ति को दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी शारदा और अम्बिका के नाम से पुकारी जायेंगी और पौराणिक काल के बाद ऐसा हुआ भी। सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनेक शक्ति स्थलों का निर्माण हुआ, जहाँ इन देवियों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हुई और शक्ति उपासना का शुभारम्भ हुआ।

'नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च।।
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च।
माया नारायणी शानी शरदेत्यम्बिकेति च।। [91]

भागवत पुराण तथा अन्य पुराणों में शक्ति की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कुछ अन्तर प्रतीत होता है भागवत पुराण शक्ति को विष्णु जन्य योगमाया मानता है जबकि ब्रह्माण्ड पुराण शक्ति को तीनों लोकों की जननी कहता है तथा उस शक्ति को पाप का विनाश करने वाली कहा गया है। वैदिक साहित्य में भी रूद्राणी तथा भवानी शब्दों का प्रयोग दैवी शक्ति के लिये किया गया है।

'त्रिजगतां जननी बभासे विद्योतमान विभता। [92]
भासते सा भगवती पापध्नी ललितांबिका। [93]

शक्ति की परमात्मा की तरह अपरिभाषित है देवी भागवत के अनुसार शक्ति सदैव अद्रश्या रहती है तथा उसका क्रियात्मक स्वरूप ही हमें दिखलाई देता है। मनुष्य की सफलता के लिये तीन प्रकार की शक्तियां अनिवार्य है पहली शक्ति शारीरिक शक्ति है जो व्यकित के शरीर में निवास करके उसे कार्य करने के योग्य बनाती है। दूसरी शक्ति बौद्धिक शक्ति है जो व्यक्ति के मस्तिष्क में निवास करती है, इसे ज्ञान शक्ति के नाम से पुकारा जाता है तथा इस शक्ति के माध्यम से व्यक्ति सुख–दुख, उचित अनुचित और न्याय अन्याय का ज्ञान प्राप्त करता है। व्यक्ति के अन्दर तीसरी शक्ति संसाधन अथवा संगठन की शक्ति है, जिसके माध्यम से

व्यक्ति किसी भी उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। जब व्यक्ति के पास शारीरिक शक्ति, बुद्धि और संसाधन तीनों शक्तियाँ होती है, उस समय वह उनके प्रयोग से मनुष्य से देवता और देवता से परमात्मा बना जाता हैं किन्तु वह जब शक्ति का दुरूपयोग करता है,उस समय वह अधोपतित हो जाता हैं तथा मनुष्य से दैत्य, दानव और असुर के रूप में परिणित हो जाता है।

हमारे पास एक अन्य शक्ति भी है, वह शक्ति प्रजनन की शक्ति है। यह शक्ति केवल पृथ्वी और नारी में है, पृथ्वी और नारी जब पुरूष से बीज तत्व प्राप्त करती है तो वह प्रजनन कर सकती है। बिना बीज तत्व पाये किसी भी प्रकार का प्रजनन संभावित नहीं है और यह बीज तत्व पुरूष परमात्मा ने अपने पास ही रखा है। इसी बीज तत्व को ग्रहण करने के लिए सम्पूर्ण नारी तत्व को पुरूष तत्व से सम्पर्क स्थापित करना पडता है, उसी के बाद वह बीज ग्रहण कर पाती है। बीज तत्व और शक्ति तत्व के सम्मिलन के लिए सामाजिक व्यवस्था में नारी और पुरूष को दाम्पत्य सूत्र बन्धनों में बाँधा गया है तथा इसे मैथुन सृष्टि के नाम से पुकारा गया है और यही सृष्टि सृजन का मूल आधार भी है।

हमारे ह्रदय में परमात्मा के प्रति जो आस्था ओर विश्वास प्रकट होता है, वह भक्ति के रूप में होता है और यह भक्ति भावना भी नारी के रूप में ही हमारे सम्मुख उपस्थित होती है। भक्ति एक प्रकार का वह आकर्षण और प्रेम है जो परमात्मा की

'अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ में तनयौ मतौ।

ज्ञान वैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ।।[94]

प्राप्ति के लिए व्याक्तियों के ह्रदय में उत्पन्न होती है और जब भक्त अपनी विशिष्ट क्रियाओं से परमात्मा की समीपता प्राप्त कर लेता है उस समय उसे सन्तुष्टि मिलती है। स्वाभाविक है कि नारी ह्रदय में अनुराग और प्रेम की भावना पुरूषों से कहीं अधिक होती है और वह पुरूषों से स्नेह भी करती है। यह भक्ति भावना और अनुराग सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक सा है।

'उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।

कूचित्कूचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।।[95]

युग परिवर्तन होने के कारण लोगों की आस्था और भावनाओं में परिवर्तन हो जाता है। कलियुग के आगमन पर व्यक्ति कुकर्मों में लग गये, नारियों के प्रति उनकी आस्था वासनात्मक हो गयी, ब्राह्मणों के हृदय में धन का लोभ पैदा हो गया तथा तीर्थों में नारकी पुरूष रहने लगे और तप के स्थान पर ढोंग होने लगा। व्यक्ति का अपने मन पर काबू नहीं रहा, लोग दम्भ और पाखण्ड का सहारा लेने लगे, तथा शास्त्र, ध्यान, योग का फल नहीं रहा और पण्डितों का भी दृष्टिकोण स्त्रियों के प्रति वासनात्मक हो गया। इस प्रकार नारी जो माता और शक्ति के रूप में उपासित थी, वह वासना एवं संतुष्टि का साधन बन गयी। कहने का तात्पर्य यह है कि पौराणिक युग मे नारी का जो सम्मान था, उस सम्मान में कमी इसलिये आयी

'पण्डितास्तुं कलत्रेण रमन्ते महिषा इव।

पुत्रस्पोत्यादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने।।[96]

क्योंकि समय के प्रभाव के कारण पुरूषों के हृदय में नारियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आया।

नारियों का कर्तव्य— सम्पूर्ण नारी समुदाय जो पुरूष की जननी, भार्या और प्रेरक है, उसके निम्न कर्तव्य धर्मग्रन्थों में वर्णित हैं—

प्रजनन— पृथ्वी और नारी दोनों का यह कर्तव्य है कि वह संन्तति को जन्म दे, जिससे इस पृथ्वी में जीव जगत बिना रूके चलता ही रहे। यदि नारी और पृथ्वी अपना प्रजनन कार्य रोंक देगी तो संसार सौ वर्षो में जन शून्य हो जायेगा। प्रजनन के कारण ही नारी विश्व शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है और आज तक उपासित है। भागवत पुराण में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें नारी ने गर्भ धारण करके योग्य पुत्रों को जन्म दिया, देवकी ने परमब्रह्म परमेश्वर को ही अपने गर्भ में धारण किया।

'तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाजितान्तरां

विरोचयन्तीं भुवन शुचिस्मिताम्।

आहैष में प्राणहरो हरिर्गुहां

ध्रवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी।।[67]

धर्मशास्त्रों के अनुसार प्रजनन करना नारी का स्वाभाविक गुण है, सन्तान उत्पन्न करके वह वंश वृद्धि करती है और परिवार को भविष्य की ओर ले जाती है। जो स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न नहीं करती उनकी सदैव निन्दा होती है। बाँझ स्त्री को अशुभ और पवित्र माना गया है तथा वह विशिष्ट धार्मिक कार्यों में भाग लेने की अधिकारिणी भी नहीं है। इसलिए सन्तान उत्पन्न करनेवाली स्त्रियाँ ही सौभाग्य शालिनी मानी जाती है तथा उनसे उत्पन्न सन्तान ही माता को सम्मान दिलाते है।

संतान का पालन पोषण करना–

संतान को जन्म देकर स्त्री उत्ऋण नहीं हो जाती, अपितु उत्पन्न सन्तान को पाल पोष कर बडा करना उसका नैतिक कर्तव्य है। वह अपने आँचल का दूध पिलाकर अपनी सन्तानों के शरीरों को बलवान तथा स्वावलम्बी बनाती है। वह उसे भाषा का बोध कराती है और बचपन में ही उसे व्यावहारिक ज्ञान देती है, इसलिए माता को प्रथम गुरू की संज्ञा दी जाती है। माता बालक को संस्कार प्रदान करती है, ज्ञान प्रदान करती है, और उसके अन्दर वो गुण उत्पन्न करती है जिसके कारण वह मनुष्य से देवता और देवता से परमात्मा बन जाता है। माता केवल वही नहीं है जो जन्म देती है, माता वह भी है, जो शिशु का पालन पोषण करती है। पृथ्वी मानवों को जन्म नहीं देती बल्कि प्राकृतिक सत्य के अनुसार मानव, मानव से ही जन्म ग्रहण करते हैं किन्तु यह पृथ्वी हमें पंच महाभूतों के सहायोग से वे संसाधन प्रदान करती है जिससे हम पलते है। इसलिए पृथ्वी भी हमारी माता है, पृथ्वी के अतिरिक्त वह स्त्री जो जननी के स्थान पर हमार पालन पोषण करती है वह भी हमारी माता है। यशोदा कृष्ण की वास्तविक माता नहीं थी किन्तु यशोदा जी ने भगवान श्रीकृष्ण का

पालन पोषण माता के रूप में किया, इसलिए वे कृष्ण की वास्तविक माता से भी जयादा महान है। यहाँ तक कि वृन्दावन में यह जाना जाता था कि यशोदा जी के ही पुत्र हुआ है। यशोदा जी ने नन्द जी के सहयोग से उसका लालन–पालन

'गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम्।

आत्मानं भूषयाअएच क्रुर्वस्त्राकल्पाऽजनादिभिः।।[98]

किया। श्रीकृष्ण को नहलाना धुलाना और पलके पे सुलाना, यह उनका लालन पालन ही था जो स्वाभाविक रूप से हर माता अपने पुत्र के साथ करती है।

'कदाचिदौत्थानिक कौतुकाप्लवे

जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्।

वादित्रगीताद्विज मन्त्रवाचकै

श्चकार सुनोरभिषेचनं सती।।

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं

विप्रैः कृतस्वस्त्ययं सुपूजितैः।

अन्नाद्यवासः स्त्रगभीष्टधेनुभिः

संजात निद्रा क्षममशीशयच्छनैः।।[99]

गृहस्थ आश्रम में स्त्री के कर्तव्य–

प्रत्येक कन्या विवाह के उपरान्त अपने माता पिता का धर छोड़कर अपने पति के धर चली जाती है। उस स्थिति में स्त्री के कुछ नैतिक दायित्व होते है, ये नैतिक दायित्व निम्नलिखित है–

कुल मर्यादाओं के पालन करना– कन्या विवाहित होकर जब पति के घर जाती है, उस समय उसका यह नैतिक कर्तव्यय है कि वह अपनी ससुराल के रीति रिवाजों को ठीक ढंग से समझ ले और ऐसे आचरण करे जिससे पति के कुल की मर्यादा किसी प्रकार भंग न हो। उसको परिवार के बडे–बूढे व्यक्ति सास, ससुर आदि की सेवा बडे ही आदर के साथ करना चाहिये तथा उनकी आज्ञा का अनुसरण

भी करना चाहिये। जब कोई परिवारिक सदस्य घर में आ जाय तो पति के सम्बन्धियों की सेवा भी वह ठीक ढंग से करे।

'स्त्रीणां च पति देवानां तच्छुश्रूषानुकूलता।

तद्वन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्।।'[100]

गृहस्थी के कार्यों में दिलचस्पी लेना— नारी का यह कर्तव्य है कि ग्रहस्थी के कार्यों में दिलचस्पी ले, वह मकान को साफ—सुथरा रक्खे, उसे समय—पर लीपे पोते तथा घर को झाडू लगाकर साफ रखे और घर का प्रत्येक सामान साफ सुथरा रखे।

'संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः।

स्वयं च मण्डित नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा।।'[101]

सहनशीलता एवं आत्मसंयम—

ससुराल में जाने के बाद स्त्री का यह कर्तव्य है कि वह सहनशील बन जाय, उसे अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिए तथा जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिए और किसी भी प्रकार का प्रलोभन नहीं रखना चाहिए। उसे गृहस्थी के समस्त कार्यों की जानकारी होना चाहिए, अपना काम निकालने के लिए सत्य तथा मधुर वचन का सहारा लेना चाहिए और पति को पतित होने से बचाना चाहिए।

'संतुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक्।

अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत्।।'[102]

पति को सहयोग—

स्त्री का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह उस व्यक्ति के प्रति विश्वास पात्र हो जिसके साथ उसका विवाह हुआ है। उसका यह नैतिक कर्तव्य है कि वह पति की सेवा करे, उसका कहना माने, पति के नियमों की रक्षा करे और पति को परमेंश्वर मानकर उसमें पूर्ण आस्था रखे। जो स्त्रियाँ पति की आज्ञा का अनुसरण करती है और पति को परमेश्वर का दूसरा रूप मानती हैं, उन्हें वैकुण्ठलोक में परमात्मा की

उपलब्धि होती है और वे लक्ष्मी जी के समान परमात्मा के साथ आनन्दित होती है।

'या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा।

हर्यात्मना हरे र्लोके पत्या श्रीरिव मोदते।।'[103]

कन्या के रूप में नारी के कर्त्तव्य–

जब कोई भी कन्या अविवाहित हो उस समय उसका यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपने माता पिता तथा गुरू और बडे भाई की आज्ञा का अनुसरण करे। ऐसे कार्य न करे जिससे पारिवारिक जन अपमान का अनुभव करें। वह अपना समय विविध प्रकार की कलाओं और विद्याओं को सीखने में बिताएं और लड़कियों के साथ खेलकूद, नृत्य तथा गायान से अपना मनोरंजन करें। यदि उसके विवाह के लिए लडकियों स्वयम्बर किया जा रहा हो तो वह अपनी इच्छा के अनुकूल अपना पति चुने। यदि उसकी शादी उसकी इच्छा के विपरीत कहीं की जा रहीं है तो वह माता पिता के विरोध में निर्णय ले सकती है। भागवत पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि जरासन्ध का साथी शिशुपाल रूक्मिणी से विवाह करना चाहता था किन्तु रूक्मिणी उससे विवाह नहीं करना चाहती थी। इसलिए उसने श्रीकृष्ण को यह सलाह दी कि वे यहाँआकर मेरा अपहरण करें और राक्षस विधि से मेरा पाणि ग्रहण करें। इस कार्य के लिए उसने श्रीकृष्ण को यह उपाय बतलाय कि विवह के अवसर

'श्वोभविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्

गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः।

निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य

मांराक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्।'[104]

उनके यहाँ कुल देवी का पूजन होता है। वह उस समय कुल देवी के मन्दिर जायेंगी, यह समय उनके अपहरण करने का उपयुक्त अवसर होगा। इस सन्दर्भ में उन्होंने एक प्रेमपत्र श्रीकृष्ण को भेजा, यह पत्र एक ब्राह्मण के माध्यम से प्रेषित किया गया।

'यस्यांघिपंकजरजःस्नपनं महान्तो

वाच्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै।

यह्मम्बुजाक्षङ्ग न लभेय भवत्प्रसादं

जह्यामसून् व्रतकाकृशाच्छतजन्मभिः स्यात्।।'[105]

यह प्रेम पत्र जब श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण देवता से प्राप्त किया, उस समय उसे यह आश्वासन दिया कि जिस प्रकार लकडी से रगडकर अग्नि पैदा की जाती है उसी प्रकार वह रूक्मिणी जो मुझसे प्रेम करती है, उस परम सुन्दरी राजकुमारी को वहाँ से निकाल लाऊँगा।

'तमानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान् मृघे।

मत्परामनवद्याङ्गीमेध सो अग्नि शिखामिव।।'[106]

नारी के धर्म के प्रति कर्तव्य–

धर्म का अनुपालन करना केवल पुरूषों का ही कर्तव्य नही है अपितु धर्म का अनुपालन करना नारी का पुनीत कर्तव्य है। जब तक वह अविवाहित रहकर पिता के घर में निवास करे, उस समय तक उसे पिता के धर्म का अनुपालन करना चाहिये। जब वह पति के घर जाये उस समय वह पति के धर्म का अनुपालन करे तथा जप, तप, व्रत, यज्ञ, दान ये धर्म के अंग है इनका अनुपालन करना प्रतयेक स्त्री का कर्तव्य है। देवदर्शन, तीर्थयात्रा, सदग्रन्थों का पाठ करना भी स्त्री का नैतिक कर्तव्य है यदि पति पंचमहायज्ञों का आयोजन करता है अथवा श्राद्ध आदि कर्म करता है तो पत्नी का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह इन धार्मिक कार्यों में अभिरूचि ले और पति को सहयोग प्रदान करें। नन्द जी की पत्नी यशोदा जी सदैव दान आदि कर्मों में विश्वास रखती थी। तथा उन्होने अनेको बार ब्राह्मणों को दान दिया। करवट अभिषेक के अवसर पर जो ब्राह्मण कृष्ण को आशीर्वाद देने आये थे, उन्हें यशोदा जी ने अन्न, वस्त्र, माला गाय, आदि वस्तुयें दान में दीं। इस प्रकार हम

'नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं

विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुभजितैः ।

अन्नाद्यवासः स्त्रगभीष्टधेनुभिः

संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः । ।[107]

देखतें है कि महिलायें धर्म का अनुपालन कर अपने दायित्व की पूर्ति करती है।

प्रौढ़ महिलाओं का परिवार के सदस्यों के प्रति कर्तव्य—

जब महिला प्रौढ़ हो जाती थी और उससे उत्पन्न कन्या एवं पुत्रों के विवाह हो जाते थे उस समय प्रौढ महिलाओं को दायित्व बढ़ जाता था। वे जिन कुल मर्यादाओं का अनुपालन करती आयी है उनका प्रशिक्षण देना उनका नैतिक कर्तव्य था यह प्रशिक्षण बहू और बेटियों दोनों को दिया जाता था तथा समयानुसार पुत्रों को भी कुल मर्यादाओं की शिक्षा प्रदान की जाती थी। प्रौढ़ महिला का यह कर्तव्य था कि वह बहू बेटियों को गृहस्थी के कार्य को निवपटाना, विविध प्रकार के भोज्य पदार्थों को बनाना विविध प्रकार के वस्त्रों का निर्माण करना और उसको धारण करने के तरीके सिखाये। जो धार्मिक ब्रत, पूजन, त्योहार, देवउपासना, के कार्य परिवार में सम्पन्न होते थे उनके विषय में विविध प्रकार की जानकारियाँ प्रौढ़ महिलाओं से ही उपलब्ध होती थी, इसी प्रकार ये महिलायें बहुओं को प्रजनन में सहयोग करती थी तथा उनकी संतानों के लालन पालन करने में भी उनका पूर्ण सहयोग रहता था। जब कभी पुत्रों के बीच में पारिवारिक विवाद उठ खड़े होतें थे और कोई भी बुजुर्ग व्यक्ति इन विवादो को निपटाने के लिये नहीं होता था। उस समय यही महिलायें न्याय करके परिवारिक विवादों का निपटारा करती थी। परिवार के सदस्यों में अलग अलग कार्य का बँटवारा करना तथा अलग होने की स्थिति में जमीन जायदाद का बँटवारा कराना भी इनका नैतिक कर्तव्य था। किसी भी परिवार में प्रौढ़ स्त्री का कथन मान्यता रखता था तथा प्रौढ़ स्त्रियाँ भी ऐसा आचरण करती थी जिनसे उनका वर्चस्व परिवार मे बना रहता था। इस प्रकार हम देखते है कि स्त्रियों के

कर्तव्य, समाज और परिवार के प्रति अत्यन्त महत्व पूर्ण थे तथा उनकी सहभागिता पुरूषों से किसी प्रकार कम नहीं थी।

4— भागवत पुराण की महिला पात्र—

भागवत पुराण भक्ति और प्रेम का प्रतीक महाकाव्य है इस महाकाव्य में भक्ति को एक नारी पात्र के रूप में परिकल्पित किया गया है। नारी का स्वाभाविक आकर्षण उसका शरीरिक सौन्दर्य और उसके हृदय में व्याप्त प्रेम भावना है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि समस्त जीव— जगत की सृष्टि नारी तत्व से हुई है और आज भी यही शक्ति जीव जगत को आकृति प्रदान कर रही है। युवावस्था में नारी के प्रति आकर्षण पुरूष के हृदय में उत्पन्न होता है और एक सुनिश्चित प्रेम प्रसंगो के कारण स्त्री और पुरूष एक दूसरे से जुड जाते है और फिर जीवन भर जुडे रहते है। कभी—कभी जीवन में ऐसी घटनाएं भी घटित होती है। जब प्रेमी और प्रेमिका कतिपय घटनाओं के कारण एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। अलग होने की इस स्थति को वियोग के नाम से पुकारा जाता है। इसके कारण हृदय में एक असहाय वेदना उत्पन्न होती है। जिसे विरह के नाम से पुकारा जाता है तथा यही वेदना प्रेम की पराकाष्ठा का मूलयांकन भी करती है और जब वे एक दूसरे से पुनः मिलते हैं तो असीम आनन्द की उपलब्धि होती है। प्रेम केवल प्रेम है चाहे वह व्यक्ति विशेष के प्रति हो अथवा भगवान और देवता के प्रति, इस प्रेम के कारण ही ईश्वर और आराध्य देव के प्रति भावना का उदय हुआ। यदि भक्ति नारी है तो भगवान पुरूष, यदि भगवती नारी है तो उसका उपासक पुरूष है । इससे यह देखने को मिलता है कि सम्पूर्ण विश्व सृजन और विकास के लिए स्त्री और पुरूष दो रूपों में विभाजित है दोनों रूप, गुण और स्वभाव की द्रष्टि से पृथक हैं फिर भी दोनों एक हैं तथा सम्मिलन और समरसता के दोनों ही पक्षधर है।

भागवत पुराण में जो भी कथानक श्रीकृष्ण के चरित्र से सम्बन्धित है वहाँ उस कथानक के निर्माण में स्त्री और पुरूष दोनों प्रकार के पात्रों का सहयोग एवं संगम

है। यह सत्य है कि श्रीकृष्ण को उनके विलक्षण कर्मो ने ही महान बनाया किन्तु यह भी सत्य है कि श्रीकृष्ण को महान बनाने में स्त्री तत्व का विशेष योगदान है। यदि देवकी ने श्रीकृष्ण को आकृति प्रदान न की होती तो क्या संसार में उनका देवत्व और परमात्म स्वरूप देखने को मिलता, यदि गोपिकाओं ने उनके प्रति समर्पित प्रेमभावना न रखी होती तो क्या कृष्ण लीला से जुडे हुए प्रेम प्रसंग हमें सुनने को मिलते हैं। कृष्ण के व्यक्तित्व को महान बनाने में देवकी, यशोदा, गोपिकाएं, रूक्मिणी, सत्यभामा, जामवंती, सुदामा की पत्नी, द्रोपदी आदि का महान योगदान है। निश्चित ही भगवत पुरण में वर्णित नारी पात्रों का महत्व कम करके नहीं देखा जा सकता है। कृष्ण के जीवन में महिलाएं प्रेरणा स्रोत के रूप में रही है, जिनके कथानक भागवत पुराण के माध्यम से सदैव के लिए अमर हो गये। भागवत पुराण की मुख्य महिला पात्र निम्न है–

देवकी– भागवत महापुराण की प्रथम महला पात्र भगवान श्रीकृष्ण को जन्म देने वाली देवकी जी हैं। भागवत में वर्णित प्रभंग के अनुसार मथुरा में यदुवंशी नरेश सूरसेन का राज्य था, इसके कारण यह क्षेत्र यदुवंशियों का निवास स्थल हो गया। इनके पुत्र का नाम वसुदेव था उनका विवाह देवकी के साथ हुआ। यहाँ पर उग्रसेन का पुत्र कंस भी था देवकी उसकी चचेरी बहन थी, वह चचेरी बहन से बहुत प्रेम करता था तथा बहन को विदा करने के लिए वह स्वतः रथ हाँक रहा था। देवकी को दहेज में सोने के हारों से अलंकृत चार सौ हाथी, पन्द्रह हजार घोडे, अठारह सौ रथ दो सौ सुकुमार दासियाँ दी गयी थी। जब देवकी विदा हो रही थी, उस समय देवताओं की आकाशवाणी हुई कि इससे उत्पन्न होने वाला आठवाँ पुत्र तेरी मृत्यु का कारण बनेगा। इस आकाशवाणी को सुनकर कंस देवकी को जान से मारने के लिए तैयार हो गया। इस पर वसुदेव ने कंस को समझाया कि वह भोज वंश का राजकुमार है, स्त्रियों पर हाथ चलाना उसके लिए उचित नहीं है। कंस ने उसे तो जीवन दान दिया किन्तु उसके आठों पुत्रों का वध करने का निश्चय किया। कंस

को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया कि वह पहले कालिनेम नाम का अशुर था, जिसका वध विष्णु ने किया था। इसलिए विष्णु ने बदला लेने की गरज से कंस ने उग्रसेन को कैदकर लिया और वसुदेव और देवकी को भी जेल में डाल दिया। '[108]

भगवान श्रीकृष्ण ने लोक कल्याण के लिए देवकी के उदर से जन्म लिया, वे विष्णु के अवतार के रूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने उत्पनन्न होने के समय व्यक्तियों छः के स्वभाव वर्णित किए, इन छः स्वभावों में पैदा होना रहना, बढना, बदलना, घटना, और नष्ट हो जाना। उन्होंने कहा कि यह शरीर एक वृक्ष की छाल मात्र है जिसमें रोम, रूधिर, माँस, मेद अस्थिमज्जा और शुक्र है। इनमें पाँच महाभूत तथा मन बुद्धि और अहंकार, मुख आदि नौ द्वार है इसके अतिरिक्त प्राण, अपान, व्यान, उदान, कमान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंज्जय ये दस प्राण शरीर रूपी वृक्ष के पत्ते है इस शरीर रूपी वृक्ष में जीव और ईश्वर दो पक्षी निवास करते है। परमात्मा ने अवतार लेकर देवकी को सन्तुष्ट किया तथा भगवान के जन्म के अवसर पर सम्पूर्ण प्रकृति मनोहर लगने लगी थी।

पुत्र की रक्षा करना और उसे बचाना यह माता का प्रमुख कार्य है माता देवकी यह जानती थी कि यह उनका आठवाँ पुत्र है। यदि कंस को यह पता लग गया तो वह उसे नष्ट कर डालेगा इसलिये भगवान श्री कृष्ण को वसुदेव के साथ नन्द के यहाँ प्रेषित कर दिया और उनकी नवजात पुत्री को अपने यहाँ मँगवा लिया। उन्हें यह विश्वास था कि कंस यह जब सुनेगा कि देवकी के पुत्री पैदा हुई है तो वह उसका बध न करेगा। किन्तु कंस ने उस पुत्री को भी मारने का प्रयत्न किया तब वह पुत्री कंस के हाथ से छूटकर आकाश में उड़ गयी और योगमाया के रूप में पर्णित हो गयी। इधर कंस ने अपना वर्ताव अपनी बहन देवकी के प्रति बदल दिया और उसने देवकी और बसुदेव को अपनी कैद से छोड दिया। हम देखते है कि देवकी का चरित्र चित्रण एक वास्तविक माँ के रूप में चित्रांकित हुआ है। देवकी को भागवत पुराण में एक शिशु का कल्याण सोचते वाली माता के रूप में हुआ है जब

परमात्मा महान है जिसने देवकी की कोख से जन्म लिया है तो परमात्मा की माँ उससे भी महान होगी।[109]

यशोदा— गोकुल में नन्द बाबा का परिवार रहता था, उनकी पत्नी का नाम यशोदा था जिस समय मथुरा में भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। उस समय गोकुल में भी यशोदा जी ने एक पुत्री को जन्म दिया प्रसव वेदना के कारण उन्हें यह पता नही लग सका कि कब उनकी पुत्री को गोकुल से मथुरा ले जाया गया और कृष्ण को वहाँ से लाकर यशोदा के समीप सुला दिया गया। यह रहस्य केवल नन्द बाबा और बच्चे ही जानते थे। पुत्र जन्म से यशोदा अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा गोकुल में कृष्ण का बारहँवा संस्कार धूमधाम से मनाया गया केवल नन्द और यशोदा के घर में ही नही अपितु अन्य गोपिकाओं के घर में भी कृष्ण जन्मोत्सव मनाया गया। सभी गोपिकाओं ने नन्द बाबा के घर जाकर नवजात शिशु को आर्शीवाद दिया हल्दी तेलयुक्त पानी छिडका और मंगल गीत गाये। इसके पश्चात श्रीकृष्ण का नामकरण संस्कार किया गया तथा श्रीकृष्ण अनेक प्रकार की बाल लीलायें करने लगे । उनके संस्कार के लिये कुल पुरोहित गर्गाचार्य आये, उनहोने यह जानते हुये कि कृष्ण यशोदा के पुत्र नही है उनका नामकरण संस्कार कर दिया। इसके पश्चात भगवान श्री कृष्ण बाललीलायें करते रहे ओर पैदल चलने लगे, बचपन की समस्त चंचलताये भगवान कृष्णमें थी। गोपिकायें उनकी शिकायतें कहने के लिये माता यशोदा के पास आने लगी। उन्होने यशोदा को कहा कि यशोदा यह तेरा कान्हा बडा नटखट हो गया है गायों को दुहने के समय बछडे छोड देता है और हम डाँटती है तो जोर जोर से हँसता है। यह चोरी के बडे बडे उपाय करता है और मीठे मीठे दूध दही को चुराकर खा जाता है खाता ही नही है दूध दही बानरों को बांट डालता है घर वालो को डरवाता धमकाता है और बच्चों को रूलाकर भाग जाता है।

वत्सान् मुअचन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः

स्तेयं स्वाद्वत्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेय योगैः।

मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नान्ति माण्ड भिन्नति

द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युप क्रोश्य तोकान् [110]

इसके अतिरिक्त यदि दूध काफी ऊपर छीकें में टंगा है तो भी वह उसे निकाल लेता है और बर्तनों में छेद कर देता है। यदि कोई वस्तु कहीं छिपाकर रखी जाती है तो भीं वह ढूंढ लेता है यदि चोरी करते कहीं पकडा जाता है तो हमें ही चोर बना देता है तथा माँ यशोदा के सामने ऐसा बन जाता है जैसे उसने कोई अपराध ही न किया हो फिर भी माँ यशोदा गोपियों की शिकायतें सुनती थी। एक बार कृष्ण ने मिटटी खायी तथा उनकी शिकायत लडकों ने यशोदा से की, माँ यशोदा ने उन्हें डाँटा भगवान यशोदा से भयभीत हुये। इस प्रकार से यशोदा भगवान श्रीकृष्ण का पालन पोषण एक वास्तविक माता के रूप में करती रहीं

एक बार जब यशोदा जी के घर में माखन खाया जा रहा था और अंगीठी में दूध गरम हो रहा था कृष्ण दूसरे घर जाकर बासी माखन खाने लगे वह ग्वालिन श्री कृष्ण की शिकायत करने आयी थी। यशोदा श्रीकृष्ण को मारने के लिये छडी लिये थी। उसके बाद भगवान श्रीकृष्ण ओखली में कूद गये माँ यशोदा ने उन्हें डरवाया धमकाया और एक रस्सी से उन्हें ओखली में बांध दिया। यहाँ माता का वात्सल्य भी है और उसमें उचित संस्कार डालने की कामना की, यशोदा एक सच्ची माँ की तरह भगवान श्रीकृष्ण का पलन पोषण करती थी।

भागवत पुराण में यशोदा का चरित्र धात्री और माता दोनो का ही है जब वह कृष्ण के अति विशिष्ट कार्यों का वर्णन सुनती थी तो उन्हें भी प्रसन्नता होती थी। ब्रज भूमि में अनेक असुरों का बध श्रीकृष्णने किया जिसमें यशोदा को गर्व हुआ। उन्होने अनुभव किया कि वे एक ऐसे पुत्र की माता हैं जो शक्तिशाली तथा लोक कल्याणकारी भी है। जब श्रीकृष्ण कंस का वध करने के लिये मथुरा गये उस समय माँ यशोदा को पुत्र के बिछुड़ने का वियोग हुआ था किन्तु उन्हें प्रसन्नता भी थी कि वह लोक कल्याणार्थ मथुरा में गया है। इस तरह भागवत पुरण में यशोदा का चरित्र

एक माता के रूप में सविस्तार वर्णित है।[111]

पूतना— कंस को यह सन्देह था कि देवकी से उत्पन्न आठवाँ पुत्र मथुरा के आस पास कहीं पल रहा है। उस समय उसने पूतना नाम की राक्षसनी को इस कार्य के लिये नियुक्त किया था कि वह ब्रज में उत्पन्न होन वाले छोटे छोटे बालकों को मार डाले । उसने इसी उददेश्य से एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके गोकुल में प्रवेश किया वह किसी प्रकार यशोदा जी के घर में प्रवेश पा गयी तब उसने भगवान श्रीकृष्ण को शैय्या से सोते हुये उठा लिया वह ऊपर से मधुर व्यवहार कर रही थी तथा समय पाकर भगवान श्रीकृष्ण को विष से लेप किया हुआ स्तन पिलान लगी भगवान श्रीकृष्ण ने जोर से उसके स्तन को काटा जिससे वह असली रूप मे आकर मृत्यु की प्राप्त हुई । इस प्रकार पूतना एक खलनायिका के रूप में बहुत छोटे से पात्र के रूप में भागवत पुराण मे आती है तथा इससे यह प्रेरण मिलती है कि जो नारियाँ शिशुओं का अकल्याण सोचती है उनका अन्त इसी प्रकार होता है।[112]

गोपिकायें— गुण—कर्म और रूप के आकर्षण के कारण भगवान श्री कृष्ण की लोकप्रियता पूरे ब्रजमंडल में बढ गयी थी तथा वहाँ पर रहने वाली महिलायें श्रीकृष्ण को एक अवतारी पुरूष के रूप में प्रेम करने लग गयी थी। शरद ऋतु के आगमन पर जब प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ गया उस समय श्रीकृष्ण ने वंशी वादन के माध्यम से गोपिकाओं को अपनी ओर आकर्षित किया तथा गोपिकयें जो ब्रज की युवा बालायें थी। वे कृष्ण से आकर्षित हुई और कहने लगी जब श्री कृष्ण गाय चराकर बाँसुरी बजाते हुये वापस आते है उस समय हमें अपनी ओर आकर्षित करते है। ऐसा लगता है यह बाँसुरी हमारी सौत है जो समस्त आनन्द स्वतः लिये जा रही है।

शरदकाल में ही भगवान श्रीकृष्ण ने चीर हरण के समय जिन रात्रियों का संकेत किया था वे रास रचाने के लिये उन रात्रियों की प्रतीक्ष कर रही थी। शरद पूर्णिमा के दिन जब चन्द्रोदय हुआ उस समय समस्त गोपिकायें एकत्रित हुई उनहोने समस्त शील और संकोच का परित्याग किया तथा वे यमुना नदी के तट पर कृष्ण

के रूप में सौन्दर्य का ध्यान करके विरह वेदना से पीडित होकर यमुना नदी के तट पर आ गयी। यहाँ पर श्रीकृष्ण ने बडे प्रेम और आवेग से उनका आलिंगन किया जिसमें उन्हे अपार आनन्द का अनुभव हुआ।

'दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेष निर्वृत्या क्षीणमंगला।।'[113]

रॉस रचाते रचाते भगवान अचानक अर्न्तध्यान हो गये, उस समय गोपिकाओं की दशा उसी प्रकार हो गयी जैसे गजराज के बिना हथिनियों की हो जाती है। श्रीकृष्ण को वे इधर उधर ढूंढती रही इस वियोग से श्रीकृष्ण के ह्रदय में जो इनके

'अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगना।

अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्।'[114]

प्रति वास्तविक प्रेम था उसका परीक्षण हुआ और यह वियोग एक तप की भाँति था जो एक तपस्वी भक्त परमात्मा की प्राप्ति के लिये करता है।

इसके पश्चात गोपिकायें भगवान के विरह में गीत गाती हैं उसके पश्चात भगवान प्रकट हो जाते है तथा गोपिकाओं को दर्शन देते हैं। जब गोपिकायें फूट फूट कर रो रही थी उस समय भगवान श्रीकृष्ण आ गये और उन्होने कहा कि तुम मेरी सच्ची प्रेमिका हो तुमने जो आनन्द मेरी भक्ति भावना से प्राप्त किया है वह अमर है किन्तु जिस प्रेम मे किसी प्रकार का स्वार्थ है लेनदेन की भावना है वहाँ वास्तविक प्रेम नहीं है। व्यवहार में निश्च्छल और सत्य भावना रखने वाले ही वास्तविक प्रेमी होते है मैने देख लिया कि तुम लोगों ने मेंरे लिये लोकमर्यादा, वेदमार्ग, और सगे सम्बन्धियों को छोड दिया है। तुम्हारी प्रेम परीक्षा लेने के लिये ही मै छिप गया था, प्रेम मे दोष मत निकालो तुम सब मेरी प्यारी हो और मै तुम्हारा प्यारा हूँ।

'एवं मदर्थो ज्झितलोकवेद

स्वानांहि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः।

मया परोक्षं भजता तिरोहितं।

मासूपितुं माईथतत् प्रियं प्रियाः।[115]

गोपिकाएं भगवान की प्रेयसी और सेविका के रूप में थी, वे यमुना तटपर एक दूसरे के गले में बाँह डाले खडी हुई थी। श्रीकृष्ण ने इनके साथ महारॉस रचाया, इस महारॉस के माध्यम से गोपिकाओं को अति आनन्द प्राप्त हुआ। भगवान गोपिकाओं के कंधे में हाथ रखकर नृत्य कर रहे थे, नृत्य करते–करते उन सभी को आलिंगन का सुख प्राप्त हो रहा था, उसके पश्चात श्रीकृष्ण ने जलक्रीडा की, उसके पश्चात श्रीकृष्ण ने उपवन में प्रवेश किया इस प्रकार लीला के माध्यम से गोपिकाओं ने भगवान श्रीकृष्ण के प्रसन्न किया और भगवान श्रीकृष्ण भी उनकी भक्ति से प्रसन्न हुए। महारॉस के पश्चात गोपिकाएँ अपने अपने घरों को चली गई।

जब अक्रूर जी के साथ भगवान श्रीकृष्ण और बलराम मथुरा चले गये उस समय गोपकाओं को वियोग हुआ। गोपिकाओं का हाल जानने के लिए भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव जी को गोकुल भेजा, उद्धव जी को यह अवसर उपलब्ध हुआ कि वास्तव में गोपिकाएँ भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेमिकाएँ ही हैं। भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर उद्धव जिनकी सकल सूरत भगवान श्रीकृष्ण से मिलती जुलती थी गोकुल आये, गोपिकाओं ने उनके सामने कृष्ण प्रेम की प्रशंसा की और अपने हृदय की वेदना को रोकर और गाकर व्यक्त किया। जब उद्धव ने गोपिकाओं को बर्गलाना चाहा, तो उन्होंने स्पष्ट कहा कृष्ण के प्रति हमारा प्रेम सच्चा है, हम किसी भी रूप में उसे छोड नहीं सकते और उनकी चर्चा सदैव करेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि

'मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा

स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्

बलिमापि बलिमन्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद य

स्तदंलमसि तसख्यैर्दुस्तयजस्तत्कथार्थः।।'[116]

भागवत महापुराण में गोपिकाओं का चरित्र चित्रण एक निश्च्छल प्रेमिका के रूप में

किया गया है,जो प्रेमी कृष्ण की समीपता प्राप्त करने के लिए, सब कुछ त्यागने के लिए तैयार है। गोपिकाओं का यह प्रेम प्रेरणा प्रद है तथा भक्त और भगवान के पवित्र संबधों को दर्शाने वाला भी है।

रूक्मिणी— रूक्मिणी भी भगवानकी अनन्य प्रेमिका थी, यह विदर्भ के राजा भीष्मक की पुत्री थी, राजा भीष्मक के पाँच पुत्र और एक कन्या थी, इनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम रूक्मणी इसके पश्चात रूक्मरथ, रूक्मबाहु, रूक्मकेश और रूक्ममाली थे तथा इनकी बहन का नाम रूक्मणी था। रूक्मिणी ने भगवान श्रीकृष्ण की प्रशंसा आने वाले अतिथियों से सुन ली थी, इसलिये वह भगवान श्रीकृष्ण को प्रेम करने लगी किन्तु परिवार के लोगों ने इसका विवाह जरासन्ध के मित्र शिशुपाल से करने का निश्चय किया जो इसे पसन्द नहीं था। इसलिए रूक्मणी ने अपना एक प्रेम पत्र ब्राह्मण देवता के हाथ द्वारकापुरी श्रीकृष्ण के पास भेजा, उसने अपने प्रेम पत्र में भगवानश्रीकृष्ण के रूप और गुणों की प्रशंसा की और कहा कि मैनें आपको अपना प्रियतम मान लिया है। मै। आपको वरण कर चुकी हूँ आप मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कीजिये, मुझे भय है कही निकट भविष्य में शिशुपाल कहीं स्पर्श न करले इसलिए आप आकर शिशुपाल की सेनाओं को हराकर राक्षस विधि से मेरा वरण कर लीजिये।

'तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरंङ जाया।
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभोविधोहि।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपते र्बलिमम्बुजाक्ष।
श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य
मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्।'[117]

रूक्मणी का यह प्रेम पत्र ब्राह्मण देवता के माध्यम से प्राप्त करके भगवान श्रीकृष्ण बहुत प्रभावित हुए, और रथ में सवार होकर एक ही रात में विदर्भ देश में जा पहुँचे।

इस समय कुण्डिन नरेश रूक्मणी का विवाह शिशुपाल से करने की तौयारी करने जा रहे थे, उसके विवाह में राजा दमघोष अपने पुत्र शिशुपाल के विवाह के लिए यहाँ आ गया, इस विवाह में भाग लेने के लिए साल्व नरेश जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौण्ड्रक भी आये थे। इस समय बलराम जी को शंका हुई कि कहीं कृष्ण पर कहीं कोई संकट न आ जाय। रूक्मणी को कृष्ण के आने की सूचना नहीं मिल पाई थी इसलिए वह भी चिन्तित थी। इसी समय रूक्मणी को यह पता लगा कि भगवान श्रीकृष्ण और बलराम भी उनका स्वयंबर देखने आये हैं, इस समय देवीदर्शन के लिए रूक्मणी अनेक बाजों के साथ जा रही थी। अनेक ब्राह्मण स्त्रियाँ भी रूक्मिणी के साथ थी। रूक्मणी जब देवी के मन्दिर में पहुँची तो यहाँ उन्होंने गणेश वन्दना की और कृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने का वरदान माँगा। रूक्मिणी जी ने जल, अछत, गंध, धूप, वस्त्र, पुष्पमाला, आभूषण, आदि देवी को समर्पित किए तदनन्तर इसी सामग्री से सुहागिन ब्राह्मणियों की पूजा की। वे जैसे मन्दिर से पूजा करके बाहर आयी उस समय भगवान श्री कृष्ण उन्हें मिले, भगवान श्रीकृष्ण ने रूक्मणी को उठाकर रथ पर बैठा लिया और रूक्मणी का हरण कर ले गये। द्वारका पुरी पहुँच कर रूक्मणी का विवाह सम्पन्न कराने की योजना बनी, इस समय उन्होंने अपने शत्रु राजाओं को परास्त किया और रूक्मणी से द्वारकापुरी में जाकर पाणिग्रहण किया। कुछ दिनों के उपरान्त रूक्मिणी ने एक सुन्दर

'भगवान भीष्मक सुतामेव निर्जितय भूमिपान।

पुरामानीय विधिवदुपयेमे कुरूिद्वह।'[118]

पुत्र को जन्म दिया जो काम देव के अवातर थे, उनका नाम प्रद्युम्न था। प्रद्युम्न का अपहरण शम्बरासुर नामक दैत्य ने कर लिया और नवजात शिशु को समुद्र में फेंक

दिया, उस नवजात शिशु को एक मछली निगल गयी थी। यह मछली शम्बरासुर के रसोई तक पहुँची, शम्बरासुर ने उस मछली को भोजन के लिए उपयोग करना चाहा तो उसमें से एक नवजात शिशु निकला जिसका पालन पोषण रसोइये ने किया, बाद में प्रद्युम्न ने अपनी महाविद्या से शम्बरासुर का बध कर दिया और वह प्रद्युम्न अपनी माँ के पास पुनः लौट आया। भागवत पुराण मे रूक्मणी के चरित्र को एक प्रेमिका, एक पत्नी और एक माता के रूप में चित्रित किया गया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि लडकी अपनी इच्छा के विरूद्ध किसी अन्य से ब्याही जाती है तो वह उसका विरोध कर सकती थी।

एक बार भगवान श्रीकृष्ण रूक्मनी जी के साथ बैठे हुए थे तथा रूक्मणी जी उनकी सेवा कर रहीं थी, उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं अन्य राजाओं के समान प्रतिभाशाली और सम्पन्न नहींथा फिर तुमने मुझसे विवाह क्यों किया। इस पर रूक्मणी ने जवाब दिया कि मेरे लिये आप सब कुछ हैं चाहे आप कुछ भी न हों, आप परमब्रह्म परमेश्वर हैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सबके रूप में आप ही प्रकट है, आप ही रिद्धी, सिद्धि सबके पति हैं। आप सारी जगत की आत्मा है आपके ही इशारे पर यह संसार उत्पन्न है, आप की शक्ति के आगे जरासन्ध और शिशुपाल, दन्त्वक्त्र आदि कुछ भी नहीं है। आपने सब वीरों को परास्त करके मेरा हरण किया है, इसलिए आप ही शक्तिशाली है, मैं वह कुलटा स्त्री नहीं हूँ जो विवाह के बाद भी दूसरे पुरूष से आकर्षित होऊँ। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मैने तो तुमसे हँसी की थी और तुम बुरा मान गयी, तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो मेरे प्रति तुम्हारा अनन्य प्रेम है। तुम मुझसे जो अभिलाषायें करती हो वे तुम्हें सर्वदा प्राप्त हैं, और यह बात भी है कि मुझसे की हुई अभिलाषायें संसार की कामनाओं के समान बन्धन में डालने वाली नहीं होती, बल्कि वे समस्त कामनाओं से मुक्त कर देती है। इस प्रकर रूक्मिणी एक अनन्य प्रेमिका के रूप में भी दिखलायी देती है।

'यान् यान् कामयसे कामान् मय्यकामाय भामिनि।

सन्ति ह्योकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा।'[119]

सत्यभामा— रूक्मणी की भाँति सत्यभामा भी कृष्ण की रानी थी। एक बार राजा सत्यजित ने श्री कृष्ण पर झूंठा आरोप लगाया जिससे भगवान दुःखी हुये थे। जिससे रजा सत्रजित भगवान सूर्य का उपासक था, सूर्य ने उससे प्रसन्न होकर उसे स्यमन्तक मणि प्रदान की, राजा सत्रजित उसे गले में धारण करके सूर्य के समान आलोकित होते थे। यह मणि पहन कर एक बार वह द्वारिका पुरी गया, द्वारिका पुर वासियों ने उसे भ्रमवश सूर्यभगवान समझा जब कि भगवान श्रीकृष्ण उसे पहचान गये। जो मणि वह धारण किये था। उससे आठ मन सोना प्रति दिन उत्पन्न होता था तथा उस मणि की वजह से कोई अशुभ कार्य नहीं होता था। एक दिन उस मणि को उसके भाई प्रसेन ने धारण कर लिया, यह प्रसेन जामवंत की गुफा में घुस गया था, तथा जामवंत ने उसे मार डाला था। भगवान श्रीकृष्ण भी प्रसेन की खोज में गये थे जब श्री कृष्ण जामवंत की गुफा में अन्दर गये उस समय बच्चे उस मणि से खेल रहे थे। जामवंत श्री कृष्ण की महिमा के समझ नहीं पाया था, इसलिए वह हकृष्ण से अठ्ठारह दिन तक लड़ता रहा उसके पश्चात भगवान श्रीकृष्ण गुफा से बाहर आये उनकी सेना के लोग और राजा बिना कृष्ण के द्वारिका पुरी वापस चले गये थे। इसी समय राजा सत्रजित ने कृष्ण के पास वह मणि देखी तो उसे बहुत प्रायश्चित हुआ। भगवान श्रीकृष्ण से वह लज्जित हुआ और प्रायश्चित करने के लिए उसने अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह भगवान श्रीकृष्ण से कर दिय और साथ में स्यमन्तक मणि भी दे दी। इस प्रकार सत्य भामा कृष्ण की पत्नी बनी।

जाम्बवती— जाम्बवंती भी श्री कृष्ण की पटरानियों में थी, जब भगवान श्री कृष्ण को राजा सत्रजित ने स्यमन्तक मणि की चोरी का आरोप लगाया उस समय उन्हें गहरा दुःख हुआ। उन्हें शक हुआ कि सत्रजित का भाई प्रसेन इस मणि को पहनकर कहीं चला गया है उसे खोजने के लिए कृष्ण राजा सत्रजित के साथ जाम्बवन्त की

गुफा के पास पहुँचे यहाँ प्रसेनजित मरा हुआ पड़ा था तथा स्यमन्तक मणि से जम्मबवंत के बालक खेल रहे थे। भगवान श्रीकृष्ण का जामवंत से अट्ठाइस दिन तक मल्ल युद्ध हुआ, इस युद्ध में जामवंत परास्त हुआ और उसने भगवान श्रीकृष्ण को स्यमन्तक मणि वापस कर दी तथा अपनी पुत्री जामवंती का विवाह भगवान श्रीकृष्ण के साथ कर दिया।

'तेषां तु देव्युपस्थानत् प्रत्यादिष्टाशिषा स च।

प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन् हरिः।'[120]

द्रौपदी— द्रौपदी पाँच पाण्डवों की पत्नी और भगवान श्री कृष्ण की बहन थी, वह भगवान श्री कृष्ण की सभी पटरानियों से मिलने के लिये द्वारका पुरी आई थी। भगवान श्री कृष्ण ने जब कौरवों की सभा में द्रौपदी का अपमान हो रहा था और चीर हरण किया जा रहा था। उस समय द्रौपदी के सम्मान की रक्षा भगवान श्री कृष्ण ने ही की थी।

कालिन्दी— कालिन्दी ने द्रौपदी को अपन परिचय देते हुये कहा कि मैं लम्बे समय से भगवान कृष्ण की प्रेयसी थी जब भगवान श्री कृष्ण अर्जुन के साथ यमुना तट पर आये उस समय उनहोंने मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया।

'तपश्चरतीमाज्ञाय स्वपाद स्पर्शनाशया।

सख्योपेत्याग्रहीत पाणिं योऽहं तदगृहमार्जनी।।'[121]

मित्रबिंदा— मित्रबिंदा ने अपना परिचय देते हुये कहा कि जब मेरा स्वयंबर हो रहा था उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने मुझे जीत लिया और द्वारका पुरी ले आये तथा मेरे भाइयों ने मेरा अपमान करना चाहा उन्हें भी भगवान श्रीकृष्ण ने परास्त किया।

'यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्यभूपान्

निन्येऽवयूथगमिवात्मबलि द्विपारिः।

भ्रातृंश्च मेऽपकुरूतः स्वपुरं श्रियौक

स्तस्यास्तु मेऽनुभवमङ्‌घ्यवनेजनत्वम्।'[122]

सत्या— सत्या ने द्रौपदी से कहा कि जब मेरा स्वयंम्बर हो रहा था उस समय सात बैल मल्लयुद्ध करने के लिये अखाडे में छोडे गये थे । भगवान श्रीकृष्ण ने इन बैलों को परास्त किया पकड़ लिया और एक कोने में बाँध दिया तथा मेरे साथ विवाह करके यहाँ ले आये और अब मैं इनकी पत्नी के रूप में इनकी सेवा कर रही हूँ।

'य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरंगिणीम्।

पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तद्दास्यमस्तु में ।'[123]

भद्राः — भद्रा ने अपना परिचय देते हुये कहा कि भगवान श्रीकृष्ण मेरे मामा के पुत्र है जब मेरे पिता को यह मालुम हुआ कि मैं भगवान श्रीकृष्ण कें प्रेम करती हूँ उस समय उन्होंने मुझे कृष्ण को सौंप दिया।

'अस्य मे पाद संस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि।

कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ।'[124]

लक्ष्मणा— लक्ष्मणा ने अपना परिचय देते हुये कहा कि मै वृद्ध सेन क पुत्री हूँ मेरे पिता ने मेरे स्वयंम्बर के लिये मछली भेदने की शर्त रखी थी। श्रीकृष्ण ने मछली भेदकर यह प्रतिस्पर्धा जीती इस प्रकार से उनका विवाह मुझसे हुआ तथा मैने भी उन्हें वरण किया अब मै उनकी पत्नी हूँ।

'तावन्मृदंगयटहाः शंखभेर्यानकादयः।

निनेदुर्नटनर्तक्यों ननृतुर्गायका जुगः ।'[125]

सुभद्रा— सुभद्रा भगवानश्रीकृष्ण की बहन और अर्जुन की पत्नी थी। एक बार अर्जुन तीर्थयात्रा के लिये प्रभात क्षेत्र पहुँचे यहाँ उन्होने सुना कि बलराम जी मेरे मामा की पुत्री का विवाह दुर्योधन के साथ करना चाहते हैं। भगवान श्री कृष्ण इससे सहमत नहीं थे अर्जुन स्वतः सुभद्रा से विवाह करना चाहते थे। एक दिन उनसे आकर्षित हुये और सुभद्रा भी उनसे आकर्षित हुई जब वहा द्वारका पुरी से रथ में बाहर निकली उस समय अर्जुन ने सारथी को मारपीट कर उसका अपहरण कर लिया इस प्रकार सुभद्रा अर्जुन की पत्नी बन गयी।

'रथस्थो धनुरादय शूरांश्चारुन्धतों भटान्।

विद्राव्य क्रोशतां स्वान्तं स्वभागं मृगराडिव।'[126]

भागवत महापुराण में वर्णित समस्त नारी पात्र भगवान श्रीकृश्ण से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित है इनमें से देवकी और यशोदा कृष्ण की माता के रूप में वर्णित है गोपिकायें कृष्ण की अनन्य प्रेमिकायें है द्रौपदी और सुभद्रा कृष्ण की बहने हैं तथा शेष महिला पात्र उनकी पत्नियाँ है। भागवत पुराण का कथानक महिला पात्रों से प्रमुख रूप से जुडा हुआ है तथा इन्हीं की वजह से भगवान श्रीकृष्ण युग पुरूष परमपिता परमेश्वर के रूप में स्थान प्राप्त कर पाये है । भागवत पुराण में जो भी है वह सब का सब महिला पत्रों की गरिमा मयी भक्ति भावना का ही प्रतीक है और वे ही भगवान की सच्ची प्रेमिका तथा उपासिका के रूप मे दिखलाई देती है। इसलिये कृष्ण भक्ति पुरूषों से अधिक महिलाओं के मध्य में लोकप्रिय हुई

भारतीय संस्कृति में नारी अत्यन्त मान और आदर–सत्कार की पात्री है चाहे समाज में हो अथवा धममें, वह धुरी के एक पहिये के समान रही है तथा वह अपने आत्म विश्वास और साहास से हमेशा पुरूषों को प्रभावित करती रही है।

5– भागवत में वर्णित प्रमुख पुरूष पात्रों का नारियों को सहयोग–

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में नारियों को पुरूषों से उच्च स्थान प्रदान किया गया है। इसलिये जहां व्यक्ति को युगल नामों के सम्बोधित किया गया है। वही स्त्री नाम को प्राथमिकता के आधार पर पहले रखने का विधान है जैसे गौरीशंकर, राधाकृष्ण, राधेश्याम, सीताराम, रेवतीरमण, आदि। इसी प्रकार माता का महत्व पिता से अधिक माना जाता है क्योंकि माँ सन्तति को जन्म देती है उसका पालन पोषण करती है तथा उसे योग्य नागरिक और सामाजिक व्यक्ति के रूप में परिणित करती है उस माता की प्रशंसा सब कोई करता है जो वीर पुत्रों को जन्म देती है। भारतीय समाज में स्वामी कार्तिकेय और गणेश जैसे पुत्रों को जन्म देकर शिव पत्नी पार्वती

का श्रेय पूरे संसार में बढ़ा कौशल्या का श्रेय राम तथा जैसे पुत्र को जन्म देने के कारण पूरे संसार में फैला इसी प्रकार देवकी और यशोदा का श्रेय श्रीकृष्ण को जन्म देने के कारण पूरे विश्व में फैला।

पुरूष ने नारी के महत्व को समझा इसलिये उसने नारी को माता, भार्या, बहन, और पुत्री के रूप में स्वीकार किया नारी के प्रजनन से लेकर उसके पालन, पोषण, विकास, विवाह तथा जीवन भर के सहायोगी के रूप में पुरूषों ने सदैव नारी का साथ दिया है। सर्वप्रथम वह नारी को जीवन संगिनी अथवा भार्या के रूप में पाणिग्रहण के उपरान्त प्राप्त करता है उसके पश्चात वह अपनी जीवन संगिनी का साथ जीवन भर निभाता है जीवन के सम्पूर्ण सुख दुःख सहभागी बनकर काटता है। यदि स्त्री को किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव होता है तो वह उसके दुःख में बराबरी का भार ग्रहण करता है विवाहोपरान्त उसे अपनी पत्नी के शरीर पर पूरा अधिकार हो जाता है। उसके शरीर का उपभोग कर वह सृष्टि को आगे चलाने के लिये संतान उत्पन्न करता है तथा जिन सन्तानों को वह अपनी पत्नी से जन्म दिलाता है उन संतानो के प्रति भी वह अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है। यदि उसकी चिर संगिनी ग्रहस्थी के दायित्वों की आपूर्ति करती है तो वह उस ग्रहस्थ आश्रम के सुखमय बनाने के लिये आर्थिक संसाधन प्रदान करता है तथा धर्म, अर्थ, काम, व मोक्ष की पूर्ति के लिये पुरूषार्थ भाव अपनाकर पत्नी को सहयोग प्रदान करता रहता है।

यदि किसी दंपति को पुत्री के रूप में कन्या उपलब्ध होती है तो पुरूष पिता का दायित्व कन्या के प्रति बढ़ जाता है। उसके पालन पोषण तथा कन्या की सुरक्षा में पिता अपनी सहभागिता निभाता है कन्या के शारीरिक अंगों के विकास के साथ कन्या के प्रति चिन्ताये बढने लग जाती है जब कन्या पूर्ण सयानी हो जाती है तो कन्या के प्रति चिन्तयें बढ़ने लग जाती है। जब कन्या पूर्ण युवा हो जाती है तो कन्या का पिता योग्य वर की की खोज कर उसका विवाह किसी पुरूष विशेष से

कर देता है और उसके जीवनको सुखी बनाये रखने के लिये यथा शक्ति दहेज भी देता है। कभी कभी कन्या अपने पिता की इच्छा के विरूद्ध विवाह आदि सम्बन्धों में निजी इच्छा शक्ति को बल देती है और स्वतः का निर्णय ले लेती है। सम्मान में ठेस लगने के बावजूद पिता इसे स्वीकार करता है और कन्या के कल्याणार्थ वह जीवन भर लगा रहता है। भारतीय समाज में कन्यादान का विशेष महत्व है और इसे बहुत अच्छा माना जाता है।

स्त्रियों के साथ एक अन्य सम्बन्ध भी होता हैं वह सम्बन्ध भाई और बहन का है, भाई और बहन दोनो की माँ एक होने के कारण दोनों का पालन पोषण एक ही प्रकार के पर्यावरण में होता है। भाई और बहन के मध्य में जो प्रेम होता है वह वासनात्मक सम्बन्धों से बहुत दूर है भाई बड़ा अथवा छोटा कोई भी हो वह अपने उत्तर दायित्व का निर्वाह करता है और अपनी बहन का कल्याण सदैव सोचता रहता है। यदि बहन सगी नही है तो वह मानी हुई बहन के प्रति भी अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है वह अपनी बहन का अपमान कभी सहन नही कर सकता वह उसके लिये संघर्ष करता है किन्तु कभी कभी बहन अपने भाई की इच्छा के विपरीत आचरण करती है। उससे पारिवारिक संघर्ष उत्पन्न होते है तथा उसे भी भाई किसी न किसी रूप में सहन ही करता है।

जब एक युवक और एक युवती योनि आकर्षण के कारण एक दूसरे के नजदीक आते है। उस समय वे प्रेमी प्रेमिका के रूप में दिखलाई देने लगते है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अर्न्तगत इस प्रकार का प्रेम निन्दनीय अवश्यहै किन्तु जब ये सामाजिक बन्धनों को न मानता हुआ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। उस समय समाज उसे स्वीकार करता है उदाहरण के लिये नल दमयन्ती का प्रेम प्रसंग सत्यवान सावित्री का प्रेम प्रसंग तथा श्रीकृष्ण का गोपिकाओं के प्रति स्नेह इसी प्रकार के उत्कृष्ट उदाहरण है इन प्रेम प्रसंगों में भी पुरूष स्त्री को सहयोग प्रदान करता है अैर स्त्री की उपलब्धि के लिये परिवारिक और सामाजिक बन्धनों को

तोड देता है तथा नाना प्रकार के संघर्ष झेलता है पुराणों तथा उच्च कोटि के साहित्यक ग्रन्थों में ऐसे प्रेम प्रसंग सर्वत्र उपलब्ध है यहाँ तक कि पुरूषों को अपनी जान तक देना पडी।

भागवत पुराण में जो प्रमुख पुरूष पात्र है उन्होने नारियों को जो सहयोग प्रदान किया है वह भी द्रष्टव्य है–

वसुदेव– वसुदेव यदुवंश के थे इनका विवाह देवकी से हुआ था। विवाह के समय एक आकाश वाणी हुई कि देवकी के आठवें पुत्र से बसुदेव के चचेरे साले कंस की हत्या होगी। यह सुनकर कंस क्रोधित हुआ, उसने अपनी बहन देवकी को मारने का प्रयत्न किया इस पर वसुदेव जी ने अपनी पत्नी को सहयोग प्रदान करते हुये कंस को समझाने का प्रयत्न किया कि वह बहन की हत्या न करे।

'एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा।

हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः।'[127]

वसुदेव के कहने से कंस ने देवकी को जीवनदान दिया तथा कंस ने वसुदेव और देवकी दोनों को ही यातना ग्रह में डाल दिया। देवकी के कारण ही वसुदेव को यातनाग्रह का कष्ट उठाना पड़ा और उनकी आँखों के सामने उनके सातों पुत्रों की हत्या की गयी। अपने आठवें पुत्र को भी वे अपने साथ नही रख सके, देवकी की इच्छा पूर्ति के लिये वसुदेव जी ने श्रीकृष्ण को नन्द जी के यहाँ भेज दिया पुत्र के ले जाने में उन्हे मार्ग के भीषण कष्ट भी उठाना पड़े इसलिये देवकी के प्रति वसुदेव का त्याग महान है।

नन्द बाबा– नन्दबाबा गोकुल के एक प्रसिद्ध गोप थे समाज में इनकी व्यापक प्रतिष्ठा भी थी तथा ये वसुदेव के मित्र भी थे । इसी कारण उन्होने वसुदेव के पुत्र को अपने यहाँ शरण देने का निश्चय किया और उसके बदले में अपनी नवजात कन्या को कंस की बलिवेदी में चढ़ने के लिये वसुदेव को दे दिया तथा वसुदेव के पुत्र को अपना पुत्र मानकर उसका पालन पोषण किया। वह अपनी पत्नी यशोदा से

सर्वाधिक प्रेम करते थे और हर समय उसे प्रसन्न रखने का यत्न करते थ। यशोदा को प्रसन्न रखने के लिये ही उन्होने कृष्ण जन्मोत्सव को अत्यन्त उत्साह के साथ सम्पन्न कराया।

'नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताहाल्दो महामनाः।

आहूयः विप्रानवेदज्ञान् स्नातः शुचिलंकृतः।

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै।

कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा।'[128]

इसके पश्चात कृष्ण का पालन पोषण जब यशोदा के द्वारा किया जा रहा था उस समय नन्द जी का पूर्ण सहयोग उन्हे उपलब्ध था। कृष्ण जब कंस वध के लिये मथुरा चले गये उस समय उनके हृदय में यशोदा की भाँति कृष्ण के प्रति अनुराग पैदा हुआ था। पुत्र के अभाव का दुःख कम करन में वे यशोदा को सदैव सहयोग प्रदान करता रहे इस तरह से एक कुशल गृहस्थ के रूप में नन्द बाबा स्त्रियों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करते रहे।

श्री कृष्ण— श्रीकृष्ण की भावना स्त्रियों के प्रति बडी ही उदार प्रतीत होती है उनका जन्म कंस के कारागार मे देवकी के उदर से हुआ तथा उनका पालन पोषण यशोदा के घर में हुआ था। भगवान श्रीकृष्ण अपनी दोनो माताओं के प्रति आदर का भाव रखते थे। माँ यशोदा जिन्होने कृष्ण का पालन पोषण किया कृष्ण को अत्यन्त प्रिय थी। वे अपनी बाल लीलाओं से माँ यशोदा को सदैव प्रसन्न रखते थे और यदि कोई गलती किसी भी प्रकार की हो जाती थी तो वो माँ की प्रताड़ना बहुत प्रेम पूर्वक सहन कर लेते थे।

कृष्ण का मातृत्व भाव सहज था पूतना ने भले ही उनके साथ छल कपट किया हो किन्तु कृष्ण ने पूतना का स्तन पान मातृत्व भाव से ही किया यदि अपने छल कपट की सजा वह स्वतः पाई तो इसमे बालक कृष्ण का कोई दोष नहीं है। गोकुल गाँव में रहने वाली समस्त बुजुर्ग महिलाओ के प्रति उनका भाव माता के रूपमें ही

उनको सम्मान देना था, वे विचित्र बाल लीलाओं के माध्यम से उनका मनोंरंजन करते थे।

श्री कृष्ण का गोपिकाओं के प्रति स्नेह निश्छल प्रेम का प्रतीक था, यह प्रेम भक्त और भगवान का था। इस प्रेम में किसी भी प्रकार से वासनात्मक सम्बन्ध नही थे, इस प्रेम का उददेश्य था गोपिकाओं के हदय में प्रेम के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना और उन्हे जीवन के वास्तविक आनन्द का अनुभ्व कराना। यदि कृष्ण की आयु की तुलना गोपिकाओं की आयु से की जाये तो गोपिकायें श्री कृष्ण से आयु में काफी बड़ी थी और अधिकाशं गोपिकाये विवाहित थी। इसलिये उनके मध्य वासनात्मक सम्बन्धों की परिकल्पना नही की जा सकती यदि ऐसा है भी तो प्रेम किसी भी मर्यादा को स्वीकार नही करता और जहाँ आत्मा का सम्बन्ध आत्मा से है वहाँ शरीर बन्धनों को कोई स्थान भी नही है। गोपिकायें कृष्ण की अनन्य प्रेमिकायें थी और कृष्ण उनके अनन्य प्रेमी थे।

कृष्ण ने अपना विवाह रूक्मणी, सत्यभामा, जाम्बवन्ती, आदि आठ कन्याओं से किया, इन सभी का प्रेम कृष्ण के प्रति था और कृष्ण का प्रेम इनके प्रति था। कृष्ण ने अपने जीवन के अन्त तक अपनी सम्पूर्ण पत्नियों का साथ दिया और उनसे उत्पन्न संतानों को बराबरी का स्नेह प्रदान किया।

कृष्ण की दो बहने थी प्रथम मानद बहन तो द्रौपदी थी जिसके प्रति उनका उपकार एक ऐतिहासिक कथानक बन गया। जब युधिष्ठर द्रौपदी को जुआँ में हारने के पश्चात कौरव सभा में मूक द्रष्टा बैठे थे और कौरव पुत्र दुसाशन द्रौपदी का चीर हरण कर रहा था। उस समय भगवान श्री कृष्ण ने ही द्रौपदी के सम्मान की रक्षा की थी। इसी प्रकार अपनी सगी बहन सुभद्रा का ध्यान रखते हुये, उन्होने अर्जुन के हाँथो उसका अपहरण करा दिया था क्योकि कृष्ण का यह मानना था किसी भी कन्या का विवाह उसकी इच्छा के विरूद्ध ऐसे व्यक्ति से नहीं करना चाहिये जिसे वह नहीं चाहती। कृष्ण की उदार भावनायें नारियों के प्रति सदैव रही है। इसलिये

कृष्ण अधिक लोकप्रिय हुये।

बलराम— बलराम कृष्ण के बडे भाई एवं रोहिणी के पुत्र थे उनका भी स्नेह स्त्रियों के प्रति उदारता पूर्ण रह तथा उन्होने कभी भी देवकी और यशोदा के प्रति अनुदार भावनायें नही रखी। जब मथुरा में मल्ल युद्ध के माध्यम से कृष्ण ने कंस का बध किया। उस समय उन्होने देवकी को उतना सम्मान दिया जितना कृष्ण ने प्रदान कियाथा। बलराम का विवाह रेवती के साथ हुआ था वे अपनी पत्नी तथा बहनों को बहुत अधिक चाहते थे उनका प्रेम स्त्रियों के प्रति बराबर बना रहा।

उद्धव— उद्धव श्री कृष्ण के मित्र थे वे योग और ज्ञान पंथ के अनुयायी थे तथा व्यक्ति पूजा के और मूर्ति पूजा के विरूद्ध थे। उनका यह मानना था कि परमात्मा की उपलब्धि वेद मार्ग से ही उपलब्ध हो सकती है। भगवान श्री कृष्ण ने अपने मित्र उद्धव से कहा कि तुम ब्रज जाकर मेरे माता—पिता, यशोदा मइया और गोपिकाओं को जो मेरे विरह में दुःखित हो रही है उन्हे मेरा सन्देश सुनाकर वेदना मुक्त करो। भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर उद्धव ब्रजभूमि मे आते

'गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह।

गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय।।'[129]

है और वहाँ की वास्तविक स्थिति का अवलोकन करते है जो प्रश्न नन्दबाबा उद्धव से करते है उनका उत्तर उद्धव अपने हिसाब से देते है । गोपिकाओं की प्रेम भावनाओं को देखकर उन्होंने ब्रज के निवासियों से कहा कि यह निश्चित है कि कृष्ण परमात्मा है उनसे प्रेम परमात्मा के रूप में करना चाहिये। उन्हे शरीर धारी मानकर स्नेह न करना चाहिये। गोपिकाओं को उद्धव की बात पसन्द नही आई और उन्होंने ज्ञान के स्थान पर प्रेम और श्रृद्धा की प्रधानता अपने तर्क के माध्यम से सिद्ध की जिसके आगे उद्धव झुके तथा उन्हौन साधन भक्ति और प्रेम मार्ग को ज्ञान मार्ग से श्रेष्ठ माना। स्त्रियों के सन्दर्भ में उनका द्रष्टिकोण परिवर्तित हुआ और वे स्त्रियों के सहयोगी बन गये तथा गोपिकाओं का सन्देश लेकर उद्धव मथुरा गये तथा कृष्ण

की श्रेष्ठता के आगे नतमस्तक हो गये।

कंस— कंस भोज वंश का राजकुमार था इसका स्नेह अपनी चचेरी बहन देवकी के प्रति बहुत अधिक था। जब देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ, उस समय देवक की पुत्री देवकी का रथ स्वतः कंस हाँक रहा था। इसी समय आकाशवाणी हुई कि देवकी का आठवां पुत्र कंस का वध करेगा, उसके मष्तिस्क मे अचानक परिवर्तन हुआ और उसने देवकी की हत्या करने का विचार किया।

'इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः।

भगिनी हन्तुमारब्धः खंगपाणिः कचेऽग्रहीत।'[130]

वसुदेव के हस्तक्षेप के कारण उसने देवकी का बध नहीं किया उसके पश्चात जब देवकी के पुत्र हुये उस समय वसुदेव ने अपने सभी पुत्र उसे एक एक करके सौपने का निश्चय किया।

'नह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद् वागाहाशरीरिणी।

पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयुमुत्थितम्।'[131]

उसने वसुदेव के सभी पुत्रों का मार डाला व आठवें पुत्र का स्थान परिवर्तित करने के कारण वह उसे मार नही पाया था। कंस कालिनेम नामक राक्षस का अवतार था, उसका बध विष्णु ने किया था इसलिये वह विष्णु से शत्रुता रखता था। कालान्तर में वह अपनी बहन देवकी से पुनः स्नेह करने लगा और आठवीं कन्या को बध करने की इच्छा से उसे हाथ में लेकर मारना चाहा इस पर कन्या ने देवी का रूप धारण कर उससे यह कहा तुम बालकों की हत्यामत किया करो।

'किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत।

यत्र क व पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा।'[132]

देवकी से प्रभावित होकर उसने उसी समय वसुदेव और देवकी को कैद से छोड दिया और अपने पाप के स्वीकार किया तथा स्त्रियों को प्रति वह विनम्र हो गया।

'तयभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः।

देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत।

अहो भागिन्य हो भाम मया वां वत पाप्मना।

पुरूषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताःसुताः।।'[133]

सुदामा— सुदामा जी एक जितेन्द्रिय ब्राह्मण थे वे ब्रह्म ज्ञानी, विषयों से विरक्त और धन संग्रह की प्रवृत्ति न रखने वाले व्यक्ति थे। उनकी पत्नी भी पति की भाँतिं सहन शील थी और भूख से दुबली हो रही थी एक दिन दरिद्रता की प्रतिमूर्ति दुखिनी पतिव्रता भूख के मारे काँपती हुयी अपने पति के पास जाकर यह बोली कि भगवान श्री कृष्ण आपके सखा है लक्ष्मी पति है ब्राह्मणाो के भक्त है साधु सन्त को आश्रय देने वाले है जब आप उनके पास जायेगें तो वे आाप को अपना कुटुम्बी समझकर आपको अपना बहुत सा धन देगें।

'ननु ब्रह्मन् भगवतः सख साक्षाच्छ्रियः पतिः।

ब्रह्मण्यऽच शरण्यऽच भगवान् सात्वतर्षभः।

तमुपेहि महाभाग साधूनां च परायणम्।

दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने।'[134]

सुदामा जी ने अपनी पत्नी का कथन मानकर पत्नी से यह कहा कि भगवान श्रीकृष्ण के लिये कुछ भेंट देने को हो तो दे दो, घरमें कुछ नहीं था। वह पडोस से चार मुठठी चावल बाँध लाई थी और उसे एक कपडे में बांध दिया। सुदामा जी इस भेंट को लेकर द्वारका पुरी पहुँचे, कृष्ण ने सुदामा जी का स्वागत सत्कार किया और अन्त में जब सुदामा जी जाने लगे उस समय उन्होंने अपनी पत्नी की दी हुई भेंट कृष्ण के अर्पित की भगवान श्री कृष्ण ने उसे प्रेम से स्वीकार किया तथा भगवान श्रीकृष्ण से उनका माँगने का साहस का नही हो सका और वे रास्ते में लौट पडे तथा सेचने लगे कि भगवान ने मुझे थोडा भी धन नहीं दिया। जब सुदामा जी अपने

'अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत्।

इति कारूणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात्।'[135]

घर पहुँचे तो उन्होने अपने घर की काया कल्प देखी इसे देखकर वे आश्चर्य चकित हो गये। उनकी धर्मपत्नी स्वर्ण आभूषण धारण किये हुये देवांगना के समान प्रतीत हो रही थी। यदि सुदामा जी ने अपनी पत्नी का समर्पण युक्त सहयोग न प्रदान किया होता तो उनकी आर्थिक स्थिति मे परिवर्तन नही हो सकता था। यह परिवर्तन पत्नी की प्रेरणा और उनके प्रयासों से ही सम्भव हो सका था। भागवत पुराण मे आर्थिक स्थिति परिवर्तन का संकेत इस रूप में उपलब्ध होत है।

'पत्नीं वीक्ष्या विस्फुरन्ती देवी वैमानिकीमिव।

दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्ती स विस्मितः।'[136]

इस प्रकार हम देखते है कि भागवत महापुराण में वर्णित पुरूष पात्रों ने किसी न किसी रूप में महिलाओं के प्रति आदर भाव व्यक्त किया है और उन्हें हर प्रकार से सहयोग प्रदान किया है। सामाजिक मर्यादाओं का अनुपालन करते हुये पुरूष पात्रों ने नारी सौन्दर्य को मातृ वासना तृप्ति का साधन स्वीकार नहीं किया अपितु नारी को प्रेम और भक्ति का प्रतीक माना है और समाज के उच्च आदर्शों की स्थापना में उसे सदैव अपना सहयोग प्रदान किया है।

सन्दर्भ गन्थ

1. भागवत पुराण, 2–5–1 ;
2. वही, 2–5–11 ;
3. वही, 2–5–33 ;
4. वही, 2–6–7 ;
5. वही, 2–5–37 ;
6. वही, 7–11–25 ;
7. मत्स्य पुराण, 154–156 ;
8. विष्णु पुराण 1–15–8 ;
9. वायु पुराण, 62–156 ;
10. अथर्ववेद 3–23–2 ;
11. विष्णु पुराण 5–2–20, 21 ;
12. भागवत पुराण, 10–2–18 ;
13. (अ) वायु पुराण, 66–54 ; (ब) ब्रह्माण्ड पुराण ;
14. मत्स्य पुराण, 13–18 ;
15. विष्णु पुराण, 4–20–38 ;
16. वायु पुराण, 69–107 ; तथा ब्राह्मण्ड़ पुराण 3–7–67 ;
17. मत्स्य पुराण, 227–150 ;
18. भागवत पुराण, 10–8–25, 26 ;
19. वही, 10–8–23 ;
20. वायु पुराण 96–225 ; ब्रह्माण्ड पुराण 3–71–231 ;
21. भागवत पुराण, 10–1–34, 35 ;
22. वही, 10–1–45 ;
23. वही, 10–1–37 ;

24. मत्स्य पुराण, 128–49

25. शतपथ ब्राह्मण, 11–4–3, 2 ;

26. मनुस्मृति, 9–230 ;

27. ब्रह्माण्ड पुराण, 3–23–66, 69

28. वायु पुराण, 97–141 ;

29. विष्णु पुराण, 1–15–7 ;

30. विष्णु पुराण 1–7–17 ;

वायु पुराण, 10–8 ;

31. मत्स्य पुराण, 29–1, 18 ;

32. विष्णु पुराण, 4–2–101, 111 ;

33. विष्णु पुराण, 3–11–69 ;

34. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 4–8 ;

35. विष्णु पुराण, 4–13–151, 154 ;

36. भागवत पुराण, 10–46–43 ;

37. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2–139, 140

38. ऋग्वेद, 1–124–7 ;

39. ब्रह्माण्ड पुराण, 3–2–28 ;

40. वायु पुराण, 72–13, 5 ; ब्रह्माण्ड पुराण ;

41. विष्णु पुराण, 3–10–19 ; वायु पुराण 30–28–29 ; ब्रह्माण्ड पुराण 2–13–30;

42. मत्स्य पुराण, 20–27 ;

43. वही, 4–24 ;

44. वही, 154–290–294, 301, 308, 309 ;

45. वायु पुराण, 41–31 ;

46. मत्स्य पुराण 15–5, 6 ;

47. वायु पुराण, 107–5, 6 ;

48. मत्स्य पुराण, 82–29 ;

49. ब्रह्माण्ड पुराण, 3–27–7, 8

50. विष्णु पुराण, 2–10–20 ;

51. भागवत पुराण, 10–33–9, 10 ;

52. वही, 10–21–2, 3 ;

53. वही, 10–31–1, 2 ;

54. वही, 10–36–20, 21 ;

55. विष्णु पुराण, 5–32–22 ;

56. भागवत पुराण, 10–35–5 ;

57. विष्णु पुराण, 5–23–11 ;

58. भागवत पुराण, 10–53–42;

59. विष्णु पुराण, 3–10–26;

60. भागवत पुराण, 10–29–22;

61. वायु पुराण, 6–22–23;

62. ब्रह्माण्ड पुराण, 1–5–19;

63. भागवत पुराण, 10–69–24, 25 ;

64. ब्रह्मण्ड पुराण, 4–40–93,97;

65. विष्णु पुराण, 2–15–14;

66. वही 5–6–15;

67. भागवत पुराण, 10–9–7,8;

68. अथर्ववेद 14–1–43;

69. विष्णु पुराण, 13–24;

70. भागवत पुराण, 7–11–25,26,27;

71. विष्णु पुराण, 1—15—63;
72. मत्स्य पुराण, 154—19;
73. वही 54—5;
74. वही 185—19;
75. वही 208—13;
76. विष्णु पुराण, 5—38—2;
77. भागवत पुराण, 11—31—20;
78. विष्णु पुराण, 4—3—33;
79. मत्स्य पुराण, 61—32;
80. विष्णु पुराण, 5—20—27;
81. भागवत पुराण, 10—44—6;
82. मत्स्य पुराण 31—12;
83. वही 154—134;
84. भागवत पुराण, 10—33—6,8;
85. वही 10—33—6,7,8;
86. वही 10—69—28;
87. वही 10—86—50;
88. वही 10—1—18;
89. वही 10—1—22;
90. वही 10—2—9,10;
91. वही 10—2—11,12;
92. ब्रह्माण्ड पुराण 4—29—145;
93. वही 4—37—84;
94. भागवत महात्म्य 1—45;

95. वही 1—48;

96. वही 1—75;

97. भागवत पुराण 10—2—20;

98. वही 10—5—9 ;

99. वही 10—7—4,5 ;

100. वही 7—11—25;

101. वही 7—11—26;

102. वही 7—11—28;

103. वही 7—11—29;

104. वही 10—52—41;

105. वही 10—52—43;

106. वही 10—53—3;

107. भागवत पुराण 10—7—5;

108. वही 10—1—1 से 69 तक;

109. वही 10—3—1 से 46 तक;

110. वही 10—8—29;

111. वही 10—9—1 से 23 तक;

112. वही 10—6—1 से 13 तक;

113. वही 10—29—10;

114. वही 10—30—1;

115. वही 10—33—21;

116. वही 10—47—17;

117. वही 10—52—39,41;

118. वही 10—55—53;

119. वही 10—60—50;

120. वही 10—56—36;

121. वही 10—83—11;

122. वही 10—83—12;

123. वही 10—83—14;

124. वही 10—83—16;

125. वही 10—83—30;

126. वही 10—86—26;

127. वही 10—1—45;

128. वही 10—5—1,2;

129. वही 10—46—3;

130. वही 10—1—35;

131. वही 10—1—54;

132. वही 10—4—12;

133. वही 10—4—14,15;

134. वही 10—80—9,10;

135. वही 10—81—20;

136. वही 10—81—27;

सप्तम अध्याय

"उपसंहार"

1 ~~अ~~- उपसंहार।

2 ~~ब~~- शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन।

3 ~~स~~- शोध के उद्देश्य।

4 ~~द~~- शोध की विषय सामग्री।

5 ~~य~~- शोध की समतुलना।

6 ~~र~~- शोध के परिणाम।

7 ~~ल~~- शोध की उपयोगिता।

अध्याय—7
उपसंहार

श्रीमद्भागवत महापुराण प्राचीन भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण एवं उपयोगी धरोहर है, इस पुराण में वेदों द्वारा निर्देशित सामाजिक व्यवस्था को आदर्श मानकर आगे बढाने का प्रयत्न किया गया है। वेदों और पुराणों की रचना शैली में व्यापक अन्तर है किन्तु धार्मिक सिद्धान्त तथ सामाजिक व्यवस्था के नियमों में पर्याप्त समानता है। इन पुराणों में सृष्टि सृजन, विनाश तथा विश्व का पुर्ननिर्माण देवताओं की वंशावली, मनुष्यों के युगों का विवरण, राजाओं की वंशावली और पौराणिक भूगोल वर्णित है। पौराणिक दृष्टि कोण में युगों को सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग में विभाजित किया गया है तथा पुराणों में ब्रह्मा को सृष्टि सृजेता, विष्णु को सृष्टि पालक और शिव को महान संहारक स्वीकार किया गया है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्ति के प्रेममार्ग का उत्क्रष्ट वर्णन है, इसमें श्रीकृष्ण और गोपिकाओं की प्रेमगाथा का विस्तृत वर्णन है। इस पुराण में कृष्ण को परमात्मा और उन्हें चाहने वालों को भक्त माना गया है। तथा भकित मार्ग को श्रेष्ठ दर्शाया गया है भक्तों को यह सलाह दी गयी है कि वे सुख दुःख में समान रहें और पवित्रता धारण करें, वह सदैव परहित के लिए जिन्दा रहे और संघर्ष करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति करे।

आचार्य बल्देव उपाध्याय के मतानुसार पुराणों से वैदिक साहित्य नकी पुष्टि होती है पुराणों की भाषा वेदों से सरल है। तथा वेदार्थ करने में जो त्रुटियाँ होती थीं उन्हें पुराणों के माध्यम से दूर किया गया है। पुराणों की कुल संख्या अठारह हैं तथा ये पुराण मत्स्य, मार्कण्डेय,भविष्य, ब्रह्माण्ड, वारह,विष्णु, वायु, शिव, अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरूड़, कूर्म तथा स्कन्द आदि पुराणों में विभाजित है। इसके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी है। इन सभी पुराणों ने प्राचीन इतिहास का संरक्षण किया है। ये सभी पुरण, सर्ग, प्रतिसर्ग, के माध्यम से लिखे गये हैं। इनके माध्यम से प्राचीन

भारतीय संस्कति स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। पुराण वास्तव में अति विशिष्ट ग्रन्थ हैं इनके माध्यम से उन प्राचीन भौगोलिक परिस्थितियों का ज्ञान उपलब्ध होता है, जिन्होंने यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया है।

श्री मद्भागवत महापुराण श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की सर्वोत्क्रष्ट रचना मानी जाती है, इस ग्रन्थ को पुराणों में सर्वाधिक लोक प्रियता उपलब्ध हुई है। इस ग्रन्थ में कर्मों का विश्लेषण तथा ज्ञान और भक्ति का विश्लेषण है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में बारह स्कन्ध है जिनके नौ स्कन्धों में विविध प्रकार के धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विश्लेषण है। दसवें स्कन्ध में भगवान श्रीकृष्ण का चरित्र सविस्तार वर्णित है, श्री कृष्ण का जन्म कंस के कारागार में होता है तथा उनका पालन पोषण गोकुल में नन्द और यशोदा के माध्यम से होता है। इसके पश्चात वे कंस का वध करके मथुरा के राजा बनते है उसके पश्चात कालयवन और जरासन्ध से उनके संघर्ष होते है। वे द्वारका पुरी का निर्माण करते है और अनेक स्त्रियों से विवाह करते है व अनेक लोगों का उद्धार भी करते है। भागवत पुराण में कुल मिलाकर अठारह हजार श्लोक उपलब्ध होते हैं यह पुराण अन्य पुराणों के श्लोकों की संख्या में छोटा है किन्तु कथानक की दृष्टि से श्रेष्ठ पुराणों के दस लक्षण जो बतलाये गये है वे सभी के सभी भागवत पुराण में उपलब्ध होते है। संस्कृति इतिहासकारों के मत में भागवत पुराण एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। जिसमें निराकार और साकार भक्ति का एकीकरण किया गया तथा अवतारवाद की पुष्टि की गयी है।

भागवत पुराण के रचनाकाल के सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद है, मुख्य रूप से यह रचना कृष्ण द्वैपायान वेदव्यास की मानी जाती है जो कुरूवंश के संस्थापक भी थे। उनका जन्म महाभारत युद्ध से भी पहले हुआ था, जबकि महाभारत तथा अन्य पुराणों की रचना, महाभारत युद्ध की समाप्ति के पश्चात राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय के बाद हुई, इसलिए किसी भी स्थिति में इस ग्रन्थ को कृष्ण द्वैपायन व्यास की रचना स्वीकार नहीं किया जा सकता। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि

इस ग्रन्थ की रचना छः सौ ईसा पूर्व से लेकर सम्राट हर्ष वर्धन के शासन काल के मध्य हुई तथा इसमें कृष्णद्वैपायन व्यास की शैली का अनुसरण किया गया। किसी भी पुराण के रचना कार ने पुराणों को रचना काल के सन्दर्भ में कोई निश्चित द्रष्टि कोण नहीं दिया।

श्रीमद्भागवत महापुराण के टीकाकार दीपदेव थे, जिनक अस्तित्व सन् 1260 से लेकर सन् 1271 तक था ये देवगिरि के राजा महादेव यदव के समकालीन थे। इनके उत्तराधिकारी रामचन्द्र सन् 1271 से 1308 तक रहे, इन्हीं के समय इनके मन्त्री हेमाद्रि पंडित थे तथा दीपदेव इनके मित्र थे। इससे यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि भागवत पुराण का रचनाकाल नवीं शाताब्दी से लेकर तेरहवीं तक का हो सकता है। इस विचार की पुष्टि सुप्रसिद्ध विश्वद्यालय के पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग के जयनरायन पाण्डेय करते हैं। उनके मतानुसार भागवत पुराण में तुर्कों के जो सन्दर्भ उपलब्ध होते है। वह यह सिद्ध करते है कि भागवत पुराण की रचना नवीं से बारहवीं शताब्दी की देन है।

जिस समय भागवत पुराण की रचना की जा रही थी उस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष विषम राजनीतिक परिस्थितियों में गुजर रहा था। भागवत पुराण में अनेक राजवंशों का उल्लेख है इसमें कुछ राजवंश अत्यन्त प्राचीन जिनका अस्तित्व प्राचीनकाल में ही समाप्त हो गया था। पौराणिक युग में सूर्यवंश और चन्द्रवंश अत्यन्त महत्व पूर्ण वंश थे, जिन्होंने हजारों वर्ष इस पृथ्वी पर राज्य किया। चन्द्रवंश का अस्तित्व छः सौ ईसा पूर्व तक राजा प्रतिचेत के समय तक रहा। पौराणिक युग में यदुवंशी भी महत्वपूर्ण शासकों में रहे, इसके पश्चात विदर्भ के राजा भी राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे। भागवत पुराण में ही विदेशी शासक यवनों के सन्दर्भ मे जानकारी उपलब्ध होती है। यवनों के आक्रमण उत्तर भारत में चौथी शताब्दी तक होते रहे।

जिस समय भागवत पुराण की रचना हुई उस समय की सांस्कृतिक और

सामाजिक परिस्थितियाँ भी इस पुराण के माध्यम से दिखलाई देती है। भागवत पुराण का रचनाकार बहुत ही कुशाग्र बुद्धि का था उसने तद्‌युगीन समाजिक व्यवस्था का जीता जागता चित्र इस पुराण में प्रस्तुत किया है। इस समय के लोग आश्रम व्यवस्था तथा वर्ण व्यवस्था का अनुपालन करते थे किन्तु परिस्थितियों के अनुसार जाति परिवर्तन सम्भावित था। विवाह की आठ पद्धतियाँ समाज में स्वीकार की गयी थी, कन्यादान एक श्रेष्ठदान था कन्यादान के साथ दहेज दान की भी प्रथा थी एवं कुलीन वर्ग में बहु विवाह प्रथा भी थी। व्यक्ति आयु के अनुसार ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों का अनुपालन किया करता था। वह विविध प्रकार के संस्कारों का भी अनुकरण करता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र, सभी अपने अपने वर्ण के अनुसार आचरण करते थे। मनुष्यों के अतिरिक्त यक्ष, राक्षस, तथा देवताओं का अस्तित्व भी था, व्यक्ति धर्म में पूर्ण विश्वास रखते थे तथा सभी जप,तप, विद्या, योग तथा समाधि का अनुसरण करते थे। जो व्यक्ति ज्ञानी नहीं थे वे विष्णु और उसके अवतारों को ईश्वर मानकर भक्तिभाव से उनकी पूजा करते थे।

तद्‌युगीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव भागवत के रचनाकार के ऊपर सीधा पडा है, रचनाकार के सुख दुःख आनन्द और वेदना की व्यापक परिभाषा भागवत महापुराण में विश्लेषित की है और यह निर्देशित किया है। कि वह विपरीत परिस्थितियों में बडे धैर्य और साहस के साथ अपने धर्म और संसकृति की रक्षा करे। चौथी शताब्दी से लेकर छठवीं शताब्दी का समय विविध धार्मिक परिवर्तनों का काल रहा है इस युग तक जैन और बौद्ध धर्म अस्तित्व में आ गये थे तथा बयालीस अन्य मत हिन्दू धर्म के अर्न्तगत पैदा हो गये थे। इस युग में हूणों और शकों के आक्रमण भारतवर्ष में हुए तथा उसके पश्चात तुर्कों के भी आक्रमण हुए जिनका सीधा प्रभाव समाज में पडा जिसका विवरण रचनाकार ने भागवत महापुराण में किया है।

भागवत महापुराण की रचँना शैली पाश्चात्य ऐतिहासिक रचना शैली से मेल

नहीं रखती। इसलिए कभी कभी यह भ्रम उतपन्न हो जाना स्वाभाविक है कि भागवत पुराण एक ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। यदि इस ग्रन्थ से धर्म और ज्ञान के अध्यायों को अलग कर दिया जाय और ऐतिहासिक घटनाओं को कालक्रम से जोड़ दिया जाय तो भागवत पुराण ऐतिहासिक ग्रन्थ सिद्ध हो जाता है। इतिहास लेखन की नवीन विधि सन् 1860 के बाद विकसित हुई, इस विधि का प्रयोग मैक्समूलर, वेबर, बी0ए0 स्मिथ, ड0 ग्रियर्सन और कनिंघम ने किया यह विधि वैज्ञानिक विधि थी। यदि पुराणों की रचना इस विधि के अनुसार हुई होती तो कोई भी व्यक्ति पुराणों को ऐतिहासिक ग्रन्थ मानने से इन्कार न करता। पुराणों की रचना में काल क्रम का ध्यान नहीं रखा गया,इसलिए उसमें वर्णित घटनाक्रम को कालक्रम से नहीं जोडा जा सकता, फिर भी हम पाश्चात्य विद्वानों का यह कथन किसी भी रूप में स्वीकार नहीं कर सकते कि अन्य पुराण और भागवत पुराण ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। भागवत काल में यज्ञों का विशेष महत्व था क्योंकि इसमें यज्ञ, यज्ञशाला, यूप, पशु, यज्ञीय पात्र, कुश आदि का वर्णन सविस्तार है। भागवत पुराण में वर्णित वर्ण और जाति की उत्पत्ति का सिद्धान्त ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर है तथा सामाजिक जातियों के स्तर का निर्धारण भी कर्म और वंश के अनुसार है। इस युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त दास चाण्डाल आदि वर्णसंकार जातियाँ भी थी। इस युग में आश्रम व्यवस्था और सामाजिक संस्कारों पर विशेष बल दिया जाता था, उच्चवर्ग के लोगों को यह बाध्यता थी कि वह ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का पालन करे। स्त्री शिक्षा भी इस युग में महत्व पूर्ण थी, मुख्य रूप से स्त्रियों को व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। इस युग की वेषभूषा, वस्त्र धारण तथा अलंकरण के सन्दर्भ में भी भागवत पुराण में उल्लेख उपलब्ध होते है, स्त्री पुरूषों की वेष–भूषा अलग–अलग थी तथा उनके कर्मो का विभाजन भी प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुसार था। व्यक्ति इस युग में अपना मनोरंजन द्रुत क्रीडा, मृगया, झूला, मल्लयुद्ध, जलक्रीडा, गोष्ठी, अभिनय, नाटक, एवं संगीत के माध्यम से करता

था भागवत पुराण में इनका वर्णन उपलब्ध हो जाता है। भागवत पुराण के रचनाकार ने जिन परिस्थितियों को देखा उन्हें ऐतिहासिक साक्ष्य मानकर उनका वर्णन भागवत पुराण में किया। भागवत पुराण को प्राचीन पौराणिक पद्धति में रचित ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वीकार करना ही अधिक श्रेष्ठ होगा।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का विशेष महत्व है, अनेक विद्वानों ने इस व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था की तारीफ की है। यह व्यवस्था वंश जाति, भोजन जन्म जातीय श्रेणी तथा जाति कर्म पर आधारित है व यह व्यवस्था वेदों के समय से भारतवर्ष में है। इस व्यवस्था के अनुससार प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति को अपने जातीय कर्म का पालन करना पडता है। जातीय वर्चस्व को बनाये रखने के लिए व्यक्ति इसका पालन करते है। ब्राह्मण जाति सर्वोक्रष्ट है उसे यह निर्देशित किया गया है। कि वह अपनी उच्चता और पवित्रता बनाए रखे। प्रत्येक वर्ण के लिए अपने अपने कर्म अनिवार्य थे। ब्राह्मण के पश्चात क्षत्रिय का द्वितीय स्थान था तथा इनका कार्य समाज की रक्षा करना था। तृतीय वर्ग में वैश्य आते थे जो कृषि और व्यवसाय करते थे। चतुर्थ वर्ण में शूद्र थे जिनका कार्य द्विजातियों की सेवा करना था। कुछ लोगों का मानना है कि वर्ण व्यवस्था परम्परा, रंग, कर्म, सेवा, गुण, तथा जन्म के सिद्धान्तों पर निर्भर थी। भागवत पुराण में वर्णित वर्ण व्यवस्था वंश और कर्म के सिद्धान्तों पर आधारित थी।

वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त उसके व्यावहारिक सिद्धान्त से अलग जान पडता है। धार्मिक सिद्धान्त के अनुसार समस्त संसार परमात्मा की क्रति है और वर्ण व्यवस्था भी उसी के द्वारा निर्मित है किन्तु वर्ण व्यवस्था का व्यावहारिक सिद्धान्त समाज के विकास की वैज्ञानिक विधि पर आधारित है। जब समाज का विकास हुआ उस समय यह अनुभव किया गया कि ज्ञान सुरक्षा तथा वस्त्र की आपूर्ति और व्यक्ति सेवा में समाज की प्रमुख आवश्यकताएँ है। इसलिए इनको समझते हुए बुद्धिमान प्राणियों को ज्ञान अथवा विद्या का कार्य सौपा गया, शारीरिक सबलता

रखने वाले व्यक्तियों को सुरक्षा का कार्य सौंपा गया, साधन हीन व्यक्ति को सेवा का कार्य सौंपा गया, यह सिद्धान्त उपयुक्त प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों और पुरूषों के कार्य में भी विभाजन किया गया। स्त्रियों का कार्य संतान उत्पन्न करना, उनका पालन पोषण करना तथा घर ग्रहस्थी के काम को देखना था। जबकि पुरूषों का कार्य परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करना था। इसके अतिरिक्त वह सामाजिक व्यवहार भी देखता था। प्रारम्भ में यह सिद्धान्त कर्म पर आधारित तथा किन्तु बाद में यह वंश परम्परा के अनुसार हो गया, फिर भी यह सिद्धान्त जिनका निर्माण वर्ण व्यवस्था के लिए हुआ था वे परिस्थितयों के अनुसार शिथिल भी होते रहे। कभी–कभी परिस्थितियों के अनुसार वर्ण कर्म का परित्याग भी लोगों को करना पडा, इसके अनेक उदाहरण भागवत पुराण में भी उपलब्ध होते है। कभी–कभी विपरीत परिस्थितियों के कारण वर्णसंकरता भी उत्पन्न हुई। यह वर्णसंकरता के दो भिन्न वर्णों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के कारण हुई तथा इससे अनेक उपजतियाँ उत्पन्न हुई वर्ण के संकरता से छुटकारा पाने के लिए अनेक उपाय भी धर्म ग्रन्थों में सुलझाये गये है प्रायश्चित करने के पश्चात वर्णसंकर व्यक्ति अपने पूर्व वर्ण में पुनः लौट सकता था।

समाज में प्रत्येक वर्ण का अपना–अपना महत्व और प्रतिनिधित्व था, वेदों ने ही वर्ण धर्म को उत्पन्न किया और वेद ही संरक्षक थे, कालान्तर में पुराणों ने इस व्यवस्था को और अधिक मजबूत किया। भागवत पुराण के मतानुसार वेदों की रचना त्रेता युग में हुई और त्रयी विद्या का विकास हुआ। इसके पहले केवल एक ही वर्ण था, इसके पश्चात चार वर्ण तथा चार आश्रमों का निर्माण हुआ। श्रीमद्भागवत् पुराण के अनुसार बुद्धिजीवियों अथवा ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया इनका कार्य ज्ञान लेना, ज्ञान देना, धार्मिक संस्कार सम्पन्न कराना तथा दान लेना और दान देना था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों को यह निर्देश था कि वह चरित्रवान, पवित्र, ज्ञानवान, संतोषी, सत्यभाषी, दयाशील और इन्द्रिय निग्रह रहे। क्षत्रिय को यह निर्देशन था कि

वह शक्ति अर्जित करके वीरता का प्रदर्शन करता हुआ अपने राज्य की प्रजा तथा ब्राह्मणों की रक्षा करे, वैश्य को यह निर्देश था कि वह कृषि और व्यवसाय से सामाजिक आवश्यकता की वस्तुओं की आपूर्ति करे तथा ब्राह्मणों आदि की सेवा करे। शूद्रों को यह निर्देश था कि ये समाज के उच्च वर्ग की सेवा करे। यदि जनसंख्या के आधार पर वर्ण व्यवस्था का वर्गीकरण किया जाय तो सबसे कम जनसंख्या ब्राह्मणों की, उसके पश्चात क्षत्रियों की फिर वैश्यों की तथा सर्वाधिक शूद्र जाति के लोग है। पौराणिक काल में शूद्रों की पचास जातियाँ उपलब्ध होती है ये जातियाँ कला, शिल्प, तथा सेवा से अपनी जीविका का उपार्जन करती है। भागवत पुराण में इनका उल्लेख है।

वर्ण व्यवस्था को राजनीति ने भी प्रभावित किया है इस बात का उल्लेख भी हमें पौराणिक ग्रन्थों में मिलता है। चार वर्णों का निर्धारण समस्त वेदों और पुराणों ने स्वीकार किया है, किन्तु राजनीतिक प्रभाव के कारण वर्ण व्यवस्था की भेदभाव पूर्ण नीति रही ब्राह्मण को सर्वोच्च उसके पश्चात क्षत्रिय को द्वितीय स्थान, वैश्य को तृतीय स्थान और शूद्र को चतुर्थ स्थान देना पूर्ण रूपेण राजनीति से प्रभावित था। एक ऐसा वर्ग मुक्त रखा गया जो सर्वोच्च वर्ग कहलाता था तथा उसके हाथ में सम्पूर्ण सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का कार्य सौप दिया गया। उसे दोष मुक्त माना गया तथा अपराध करने पर भी उसे कम दण्ड का पात्र माना गया, यदि ब्राह्मण कोई अपराध करता है तो उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता था अथवा जो दण्ड दिया जाता था वह अन्य जातियों की अपेक्षा बहुत कम था। क्षत्रिय को भी यह निर्देष था कि वह ब्राह्मण की रक्षा करे और उसके साथ अपराध करने की स्थिति में भी विनम्रता का व्यवहार करे, किन्तु अन्य जाातियों के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार करना यह राजनीति से प्रेरित नहीं था तो क्या था। भारतवर्ष के इतिहास में अनेक ऐसे विदेशी यात्रियों के वर्णन मिलते है। सुप्रसिद्ध विदेशी यात्री ह्वेनसांङ ने सम्राट हर्षवर्द्धन के क्रिया कलापों का वर्णन किया है। उसके अनुसार ब्राह्मणों को अधिक

छूट दी जाती थी तथा उन्हें जो भूमिदान में दी जाती थी वह कर मुक्त होती थी इस तरह से ब्राह्मणों को प्रोत्साहन दिया जाता था। राजा राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिए दण्ड व्यवस्था का साहारा लेता था, उस समय दण्ड देने का अधिकार केवल राजा का था और राजा परम्पराओं के अनुसार दण्ड देता था। इसमें भी वह राजनीतिक पक्षपात का सहारा लेता था, यद्यपि राजा अपनी शासन व्यवस्था के लिए मन्त्रियों की नियुक्ति भी करता था किन्तु निरंकुश होने के कारण वह मन्त्रियों का आदेश मानने के लिए बाध्य नहीं था। इस युग में भी ब्राह्मणों को छूट और शूद्रों के साथ कटुता का व्यवहार होता रहा भागवत पुराण में भी जो वर्णन वर्ण व्यवस्था का उपलब्ध होता है। उसमें भी राजनीति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भागवत पुराण के कलियुग वर्णन में बिगडती हुई राजनीतिक व्यवस्था पर चिन्ता प्रकट की गयी है और यह कहा गया है कि विदेशी आक्रमण कारियों के कारण जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी है उसका दूर किया जाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि यह सच है कि जब राज्य व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो जाती है और राजधर्म विहीन हो जाता है उस समय प्रजा का आचरण भी बिगड़ता है। इसलिए राजनीति को नियन्त्रित रखने की आवश्यकता है तथा प्रजा के साथ भेदभाव पूर्ण बर्ताव करने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के कारण अनेक उत्थान पतन हुए है जिनसे प्रेरणा लेने की आवश्यकता है।

भारतीय वर्ण व्यवस्था को धर्म ने भी प्रभावित किया है धर्म का निर्माण कब और किन परिस्थितियों में हुआ, इसका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। केवल यह पता लगता है कि जनसंख्या के विकास के साथ बुद्धिजीवियों ने एक महाशक्ति की परिकल्पना करके सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुछ नियमों का निर्माण किया जो आगे चलकर धर्म के रूप में जाने गये। धर्म सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि सृजन के लिए परिकल्पित परमात्मा को श्रेय प्रदान किया गया तथा उसके रूप, गुण, निवास स्थान तथा कार्यक्षमता की भी परिकल्पना की गयी।

समस्त धर्मों में परमात्मा के सन्दर्भ में यही परिकल्पना स्वीकार की जाती है। भागवत पुराण में ब्रह्मा, विष्णु, और महेश एक महाशक्ति द्वारा उत्पन्न किए गये है। जिन्होंने सतोगुणी रजोगुणी और तमोगुणी सृष्टि की रचना की तथा यह सारा संसार उसी विराट पुरूष का ही अंग है। भागवत पुराण में इस विराट स्वरूप के सन्दर्भ में कई स्थानों में वर्णन उपलब्ध होता है। इस परमात्मा ने मुख से ब्रह्मा, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघों से वैश्य और पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति की, वर्ण की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यही सिद्धान्त समस्त पुराणों और स्मृति ग्रन्थों में भी उपलब्ध होते है। भागवत पुराण में वर्णित परमात्मा पुर्नजन्म के सिद्धान्त के अनुसार प्राणियों की रक्षा के लिए अवतार धारण करता है तथा अवतार धारण करके दुष्टों का संहार करता है। श्री कृष्ण परमात्मा के बीसवें अवतार है किन्तु व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार विलक्षण शक्ति धारण करने वाला व्यक्ति ईश्वर के रूप में भारतवर्ष में स्वीकार कर लिया जाता है। मनुष्य से शक्तिशाली देवता और देवता से शक्तिशाली परमात्मा होता है। भारतीय धर्म के अनुसार शक्ति के समस्त रूप शिव के समस्त रूप और विष्णु के समस्त रूप मिलकर धार्मिक व्यवस्था का निर्माण करते है। इसीलिए भारतवर्ष में शक्ति,शिव और वैष्णव मत प्रथक–प्रथक धर्मों के रूप में स्वीकार किए जाते है फिर भी इनमें धार्मिक समन्वय है। इसके अतिरिक्त भी सूर्य वायु, अग्नि, इन्द्र, आदि देव भी पूज्य माने जाते है तथा समस्त वर्ण के लोग धर्म के इसी स्वरूप को मानते है। पुराणों के माध्यम से देवता और परमात्मा को मूर्ति आकृति प्रदान की गयी, उनके लिए देवालयों का निर्माण हुआ तथा विशिष्ट प्रकार की पूजा पद्धतियाँ अलग–अलग देवताओं के अनुसार बनायी गयी। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए जप, तप, ज्ञान, यज्ञ, दान आदि का सहारा लिया गया। विविध प्रकार के यज्ञों का वर्णन भागवत पुराण में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त तीर्थ यात्रा पर भी बल दिया गया, तीर्थयात्रा के लिंए कोई जातीय बधंन नहीं रखे गये, चारों वर्ण के लोग तीर्थ यात्रा कर सकते थे। भागवत पुराण में अनेक तीर्थ स्थलों का वर्णन उपलब्ध होता है

जिनकी यात्रा कृष्ण के बडे भाई बलराम ने की थी। इसके अतिरिक्त सद्ग्रन्थों का पाठ करना और कराना धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है। जो लोग पढे लिखे है वे लोग भागवत जैसे महापुराणों का श्रवण योग्य ब्राह्मणों से कर सकते है।

भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक भावना ने शूद्रों को भी प्रभावित किया है। यह वर्ग समाज का चतुर्थ वर्ग है तथा संसाधन हीन और बुद्धि से भी कमजोर है। अनेक धार्मिक ग्रन्थों में शूद्रों से परहेज करने का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति में बेहना, लोहार, निषाद, रंगवतरक, स्वर्णकार, तेली ओर धोबी को अछूत माना किया गया है। तथा उनके यहाँ भोजन करने के लिए मना किया है। उनके साथ छुआ छूत का बर्ताव करने के सन्दर्भ में अनेक धार्मिक ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होता है। उन्हें निम्नस्तर का माना गया है। जब वर्ण व्यवस्था का निर्माण हुआ उस समय से शूद्रों को बहिष्क्रत माना गया और उनके साथ कोई न्याय नहीं किया गया है। इस बात के कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते कि उन्हें निम्न स्तर का क्यों माना गया। वे शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकते थे उच्चवर्ग का मुकाबला नहीं कर सकते थे, तथा उनके परिधान आभूषण और उनकी आवासीय व्यवस्था सवर्णों से अलग थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य, शूद्रों के स्वामी थे और शूद्रों को इनकी सन्तुष्टि के लिए कार्य करना पडता है। राजनीतिक दृष्टि से भी शूद्रों को संरक्षण उपलब्ध नहीं था लेकिन एक बात अवश्य थी कि शूद्रों को किसी प्रकार का कोई कर भी नहीं देना पडता था। यदि शूद्र कही जमीन में गडा धन प्राप्त करता था तो राजा को उसे अधिक मात्रा में धन देना पडता था। यदि किसी सवर्ण के कोई शूद्र पत्नी है और सवर्ण पत्नी भी है, यदि उनके पति की मृत्यु हो जाती है। सवर्ण पत्नी के जीवित रहते शूद्र पत्नी को पति की सम्पत्ति में अधिकार मिलेगा। भागवत पुराण में भी शूद्रों के सन्दर्भ में विवरण उपलब्ध होता है। पौराणिक ग्रन्थों में वर्ण व्यवस्था के कठोर नियमों के कारण ही शूद्रों की स्थिति दयनीय हुई। एक सच सर्वभैमिक हैं कि सम्पूर्ण सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का निर्माता मनुष्य स्वतः है धर्म और समाज

का निर्माण परमात्मा कृत कभी नहीं माना जा सकता। यदि परमात्मा सामाजिक व्यवस्था और धर्म का निर्माता होता तो वह तो वह शूद्रों के साथ किसी भी प्रकार का अन्याय नहीं करता किन्तु जब धर्म और परमात्मा दोनों ही परिकल्पित है। तो विषम सामाजिक व्यवस्था के लिए दोषी कौन है यह एक ज्वलंत प्रश्न है।

मनुष्य का जन्म जब पृथ्वी में हुआ तो वह पृथ्वी के अन्य जीवों से प्रथक था, उसे परमात्मा ने अन्य जीवों से अधिक बुद्धि प्रदान की तथा दो पैरों से चलने की शक्ति दी। धर्म शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार परमात्मा ने सृष्टि सृजन के प्रथम दिन पृथ्वी और स्वर्ग का निर्माण किया, दूसरे दिन उसके लिए अकाश का निर्माण किया, तीसरे दिन उस के लिए भूमि और पेड़ पौधे का निर्माण किया इसके पश्चात मनुष्य संसार में आया । सृष्टि निर्माण के सन्दर्भ में अनेक सिद्धान्तों का विवरण धर्म ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। इसमें से अधिकांश सिद्धान्त परिकल्पित है। जब जीव पैदा हुआ उस समय उसके शरीर में मस्तिष्क अथवा इच्छा शक्ति और बौद्धिक शक्ति उत्पन्न हुई। भागवत पुराण में सृष्टि सृजेता परमात्मा को निराकार और साकार दृश्य व अद्रश्य दोनों रूपो में माना गया है किन्तु अभी तक कोई भी ग्रन्थ परमात्मा को यथार्थ रूप में परिकल्पित नहीं कर पाया। केवल इतना ही संत्य है कि पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद पंचमहाभूतों के सहयोग से सतो, रजो, और तमों गुणीजीव पैदा हुआ। इसके पश्चात बीज और भूमि के सिद्धान्त के अनुसार मैथुन प्रक्रिया से सृष्टि का विस्तार हुआ, यह सृष्टि का विस्तार आज तक इसी रूप में चल रहा है। युवावस्था में पुरूष और स्त्री दाम्पत्य सूत्र बंधनों में बँधकर सृष्टि सृजन प्रक्रिया को आगे बढाते है।

मनुष्य प्राकृतिक स्थिति से ऊपर भौगोलिक पर्यावरण से प्रभावित हुआ तथा उसने अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के माध्यम से नाना प्रकार के अनुभव ग्रहण किये इससे उसके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ। ज्ञान उदित होने के पश्चात भाषा का जन्म हुआ, जिससे उसकी अभिव्यक्ति शक्ति का विस्तार हुआ और अभिव्यक्ति

शक्ति के आधार पर ही उसने परमात्मा और धर्म के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कल्पनायें की। जिन सिद्धान्तों की व्याख्या भागवत पुराण में है उन सिद्धान्तों की पुष्टि जीव उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक भी करते है। उनके अनुसार जीव की उत्पत्ति के लिए प्रकृतिवा द का सिद्धान्त ही सार्थक है। इस सिद्धान्त के अनुसार जलज, श्वेतज, और अण्डज तीन प्रकार के प्राणी पैदा हुये, इनमें जलचर, नभचर और थलचर के नाम से पुकार गया। ये जीव सूक्ष्म मध्यम और स्थूल आकार के थे सृष्टि सृजन का यही सिद्धान्त सर्वमान्य प्रतीत होता है तथा सृष्टि सृजन के साथ–साथ जीव के प्राकृतिक कर्मों का भी उदय हुआ।

मनुष्य भी संसार के अन्य प्राणियों की भाँति एक प्राणी है इसलिए उसके प्राकृतिक कर्म भी अन्य प्राणियों जैसे है। वह अपने जीवन के अस्तित्व के लिए भोजन करता है थकावट दूर करने के लिए सोता है। अन्य प्राणियों से भयभीत रहता है और मैथुन करके अपने ही जैसे प्राणियों की वृद्धि करता है। वह एक ज्ञानवान प्राणी है वह अपने सुख दुःख की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है। उसने नियमित कर्मों का अनुसरण कर धर्म को जन्म दिया है तथा धर्म के व्यवहारिक नियम वह उपदेशों के माध्यम से दूसरों से ग्रहण करता है इस प्रकार वह सामान्य धर्म का पालन करता है। सामान्य धर्म के सम्बन्ध में वेदों, उपनिषदों, पुराणों और भागवत में अनेक वर्णन उपलबध होते है। व्यक्ति का सामान्य धर्म यह है कि वह नित्य सूर्योदय से पूर्व उठे, शौच क्रिय से निवृत्त हो, स्नान आदि से शरीर को पवित्र करके स्वच्छ वस्त्र धरण करे, उसके पश्चात नियमित जप, तप, यज्ञ, ज्ञान और दान का सहारा लेकर देव आराधन करे तत्पश्चात परिवार के प्रति समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों का पालन करे। इसमें वह नैमित्ति कर्म वर्णाश्रम धर्म का अनुपालन करे तथा पुरूषार्थ भाव को हृदय में रखकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, की प्राप्ति के लिए कार्य करे। उसके व्यक्तिगत धर्म सत्य, दया, तप, शौच, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, संतोष, समाज सेवा, देवआराधना, मौन चिन्तन, अन्न धन भूमिदान आदि देना है।

यह व्यक्ति के सामान्य कर्मों में शामिल है। तथा इनका उल्लेख अन्य धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त भागवत पुराण में भी मिलता है। उसे ग्रन्थों के माध्यम से यह निर्देश दिया गया है कि व्यक्ति अपनी दिनचर्या, काल को विभाजित करके प्रारम्भ करे। वह प्रातःकल उठे मलमूत्र त्याग करे, देह को स्वच्छ बनायें, सुन्दर वस्त्र धारण करे, जप और तर्पण आदि करे, यदि उसके पास संसाधन हें तो वह पंच महायज्ञों का आयोजन करे देव प्रतिमाओं का पूजन करें, तीर्थाटन करे और तीर्थों में दान आदि करे। व्यक्ति आयु के अनुसार ज्ञान, वैराग्य, तथा त्याग का सहारा ले, उसे चाहिए कि अपने जीवन के अन्त में अपने द्रव्य को यज्ञ, तप, योग स्वाध्याय और ज्ञान के लिए व्यय करे। वह धर्म और आध्यात्म के माध्यम से अपने आप को पवित्र कर सकता है तथा इससे उसे उत्तम गति उपलब्ध हो सकती है।

इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति जो धर्म का अनुसरण करता है, वह मृत्यु के उपरान्त उत्तम गति प्राप्त करना चाहता है। वह सोचता है कि यदि उसका पुर्नजन्म हो तो उसे दारूण दुःख न झेलना पडे और उसे मृत्यु के उपरांत या तो स्वर्ग प्राप्त हो अथवा मोक्ष की गति प्राप्त हो। वह चाहता है कि वह देह बंधनों को सदैव के लिए छोड दे और उसे परमात्मा का स्थाई स्नेह प्राप्त हो जाय। वह जानता है कि सारा संसार ईश्वर के वश में है क्योंकि ईश्वर सारे संसार का स्वामी है। इसलिए यदि उत्तम कर्म से इन्द्रियों के वश में रखकर धर्म का अनुसरण किया जाय तो प्राणी को उत्तम गति प्राप्त हे सकती है। भागवत पुराण में यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि यदि व्यक्ति पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, संतोष, सरलता, सम, दम, तप, समता आदि गुण अपने अन्दर धारण कर ले और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखे, काम, क्रोध, मद, लोभ, की भावनाओं से दूर हो जाय तो वह पुण्यात्मा बनकर परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। उसको निष्काम भाव से परमात्मा का भजन और कीर्तन करना चाहिए, ऐसा करने से उसे बैकुण्ठ लोक की प्राप्ति हो सकती है। उसे अपने जीवन में पुण्य के कार्य करना चाहिए, पाप के कार्यो से बचना चाहिए, अच्छे कर्मो के

माध्यम से स्वर्ग प्राप्त करने की आकांक्षा रखना चाहिए। पाप कर्मों को करके व्यक्ति नरक गामी होता है ये कर्म उसे नहीं करने चाहिए तथा सदैव हर प्राणी को मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चहिए। समय के कारण वह सतोगुण, तमोगुण और रजोगुण धारण करता है किन्तु वह इन गुणों से अपने स्वार्थों की पूर्ति करता है उसे केवल सतोगुण का सहारा लेना चाहिए और विराट पुरूष परमपिता परमात्मा के लिए कार्य करना चाहिए। इस विराट पुरूष के शरीर में सम्पूर्ण लोक और देवता निवास करते हैं, संसार की कोई भी वस्तु परमात्मा से अलग नहीं है। जब व्यक्ति अज्ञानी रहता है उस समय वह स्थूल शरीर को ही सब कुछ मानता है और मन तथा बुद्धि के अनुसार आचरण करता है। यदि वह ज्ञानवान हो जाय और अपने ह्रदय में व्याप्त सूक्ष्म शरीर और परमात्मा की जानकारी प्राप्त कर ले तो वह स्थूल शरीर को नश्वर समझने लगेगा तथा उसे पंचतत्व से निर्मित पिण्ड मात्र मानेगा और उसका प्रेम विश्वविधाता की तरफ अपने आप हो जायेगा। जब वह परमात्मा से प्रेम करेन लगेगा तो निश्चित ही वह उत्तम गति और मोक्ष को प्राप्त करेगा, व्यक्ति की सदगति और दुर्गति का निर्धारण उसके कर्म करते है। इसलिए कर्म के माध्यम से ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है।

धार्मिक संस्कार यज्ञ अदि कराने के लिए भारतीय समाज में पुरोहितों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। उसका मूलकारण यह है कि प्राचीनकाल में शिक्षा का प्रचार–प्रसार कम था। एक वर्ग जो विद्या क धनी हो गया और पढ़ लिख गया तो समाज को उसी के ऊपर आश्रित रहना पडा, पहले यह पुरोहित वर्ग कर्म और ज्ञान के आधार पर सम्मान पाता था किन्तु बाद में इसका सम्मान वंश परम्परा के अनुसार हो गया और इसे राजनीतिक संरक्षण भी मिल गया। प्राचीनकाल में ब्राह्मणों का कार्य वेदाध्ययन करना, वेदों के अध्ययन कराना, धार्मिक यज्ञ आदि सम्पन्न कराना और ब्रह्मण व्रत्ति से अपनी जीविका उपार्जित करना था। विशिष्ट योग्यता के कारण पुरोहित वर्ग को राजनीतिक संरक्षण उपलब्ध हुआ। ब्राह्मण शूद्रों

को सहयोग दे सकता था और शूद्रों से सहयोग ले सकता था किन्तु धार्मिक कार्यो के लिए वह शूद्रों से दान नहीं ले सकता था। ब्राह्मणों को एक मात्र दान लेने का अधिकार था। दूसरा वर्ग दान लेने का अधिकारी नहीं था धर्म के यह निर्देश थे कि यदि ब्राह्मण यज्ञ के लिए, गुरू को दक्षिणा देने के लिए और अपनी कन्या के विवाह के लिए दान माँगता है तो उसे दान दिया जाना चाहिए किन्तु धर्मशास्त्रों में यह भी निर्देश था कि यदि वह नियमित साधनों से जीविका उपार्जित नहीं कर सकता तो वह कृषि और व्यवसय कर सकता है। ब्राह्मणों को देव, मुनि, द्विज, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेक्क्ष, चाण्डाल आदि कोटियों में उसके कर्मों के अनुसार विभाजित किया गया है। इसी प्रकार ब्राह्मणों के विभाजन वंश, कर्म, और व्यवसाय के अनुसार भी किया गया है उनका का मूल्यांकन सदैव उनकी योग्यता के अनुसार होता रहा है। ब्राह्मणों को यह निर्देश था कि वे धार्मिक कार्यों के माध्यम से ही जीविका उपार्जित करें और दान आदि माँग कर परिवार का पालन पोषण करें। ब्राह्मणों का समाज में महत्व बहुत अधिक था, सभी धार्मिक ग्रन्थ ब्राह्मणों के महत्व को स्वीकर करते है। समाज में ब्राह्मणों की मान्यता गुरू और पुरोहित के रूप में थी तथा धार्मिक कृत्य करने का उन्हें विशेष अधिकार प्राप्त था। ब्राह्मणों पर राजाओं का कोई नियन्त्रण नहीं था। ब्राह्मणों के अपराध करने पर दण्ड में भी छूट दी जाती थी। अन्य वर्णो की अपेक्षा ब्राह्मणों का अधिक सम्मान था उन्हें कर में छूट दी जाती थी। लोगों को यह निर्देष था कि वे ब्राह्मणों के साथ विनम्रता का व्यवहार करें। श्रीमद्भागवत पुराण में भी ब्राह्मणों को जन्म और कर्म से शुद्ध माना गया है। भारतीय समाज में जिस धार्मिक व्यवस्था का वर्णन है। उसमें ब्राह्मणों को विशेष सम्मान प्राप्त है तथा वे ही जन्म से लेकर मृत्यु तक समस्त कर्मों को सम्पन्न कराने वाले है।

भारतीय समाज को आवश्यकतानुसार आश्रम व्यवस्था में विभाजित किया गया था। वेदों और शास्त्रों के रचनाकारों ने सम्पूर्ण आयु को सौ वर्ष का माना था और

प्रत्येक पच्चीस वर्ष की आयु को विशिष्ट आश्रमों में विभााजित किया था। वे आश्रम ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास थे, इसलिए चारों वर्णों की आश्रम व्यवस्था अलग–अलग वर्णों के हिसाब से निर्धारित की गयी थी। तथा यह आश्रम व्यवस्था हमारे संस्कारों से भी सम्बन्धित थी। जो सोलह संस्कार हमारे यहाँ अपनाये गये उनका सम्बन्ध सम्पूर्ण आश्रम व्यवस्था से था, अनेक पौराणिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख कई स्थानों पर उपलब्ध होता है। ब्राह्मण वर्ण को आश्रम व्यवस्था का पालन कठोरता से करना पडता था क्षत्रिय वर्ग को इसमें कुछ ढील थी, परन्तु वैश्यों और शूद्रों को आश्रम व्यवस्था का अनुपालन बहुत आवश्यक था।

मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य पुरूषार्थ है यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार भागों में विभाजित है। पुरूषार्थ का सम्बन्ध आश्रम व्यवस्था से सीधा जुडा हुआ है। व्यक्ति ब्रह्मचर्य का अनुपालन करता हुआ धर्माचरण सीखता है और पचीस वर्ष तक कठिन साधना करता हुआ ज्ञान अर्जित करता है ताकि वह ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात धर्म के मार्ग में संलग्न रहे विवाहित होने के पश्चात वह ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है तथा परिवार को सुखी रखने के लिए अर्थ अर्जित करता है और संचित धन को अपनी इच्छा शक्ति के पूरा करने के लिए व्यय करता है। वह अपने सम्पूर्ण मनोरथ को धन के माध्यम से पूरे करता है। पचास वर्ष की आयु के पश्चात वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है तथा धन और परिवार का मोह न करता हुआ अपना समय तीर्थ यात्रा में व्यतीत करता है और धार्मिक कार्यों में दिलचस्पी लेता है। जब उसकी अवस्था पचहत्तर साल की हो जाती है तो वह सांसारिक वेदनाओं से छुटकारा पाना चाहता है और मोक्ष की कामना करने लगता है। वह सत्कर्मों और पुरूषार्थ के आधार पर सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाता है और उसे परलोक में उत्तम गति मिलती है। भागवत पुराण में पुरूषार्थ के मोक्ष प्राप्ति का उत्तम साधन माना गया है।

भारतीय संस्कृति एक विशिष्ट संस्कृति है जिसकी अनेक विशेषताएँ है,

सर्वप्रथम इस संस्कृति को भौगोलिक पर्यावरण ने प्रभावित किया, काश्मीर से लेकर कन्या कुमारी तक और आसाम से लेकर महाराष्ट्र और गुजरात तक जिस संस्कृति का निर्माण हुआ है। वह एक विशिष्ट संस्कृति है। इस संस्कृति का निर्मात कौन था? इस सन्दर्भ में कोई जानकरी नहीं है। ऐसा लगता है कि यह संस्कृति अपने आप विकसित हुई तथा इसे विदेशी आक्रमणकारियों ने भी प्रभावित किया। भारतवर्ष में हूण, कुषाण, यवन, तुर्क, आदि जातियाँ आयी और उनका सीधा प्रभाव यहाँ की संस्कृति में पडा। भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में अनेक इतिहासकारों ने अपने विचार प्रकट किये है। यह संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है इस संस्कृति में आध्यात्मिक भावनाओं की प्रधानता है तथा यह संस्कृति उच्च्य कोटि के दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रभावित है और इस संस्कृति में धर्म का प्रभाव सर्वाधिक है। इस संस्कृति के अर्न्तगत अनेक प्रकार के देवी देवताओं की पूजा की जाती है। यहाँ के व्यक्ति वर्ण और आश्रम व्यवस्था क अनुसरण करते है। यहाँ का व्यक्ति सहनशील है तथा मानवीय गुणों का समादर करता है और वर्ण धर्म व आश्रम धर्म का पालन करने वाला है। इस संस्कृति ने विशिष्ट कला और साहित्य को जन्म दिया है जिससे इसकी प्रतिष्ठा सम्पूर्ण विश्व में फैली ।

धर्म और परमात्मा आज तक अपरिभाषित है, फिर भी धर्मशाास्त्रों ने दोनों को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। वेदों की संरचना त्रेता युग में हुई उसके पश्चात कृष्णद्वैपायन व्यास तथा अन्य विद्वानों ने पुराणों और उप पुराणों की रचना की। इसके पश्चात अनेक स्मृति ग्रन्थ लिखे गये किन्तु धर्म और परमात्मा दोनों ही अपरिभाषित बने रहे। यहाँ पर एक महाशक्ति के रूप में परमात्मा की परिकल्पना की गयी तथा उसे सृष्टि का कर्ता धर्ता माना गया, उसकी उपासना शिव शक्ति और विष्णु के रूप में की गयी। इसके अतिरिक्त सूर्य, वायु, अग्नि, वरूण, इन्द्र आदि देव भी उपासना के केन्द्र बने, और धर्मशास्त्र के माध्यम से श्रेष्ठ मानवीय जीवन के सिद्धान्त गढे गये। धर्म के अनुसार भारतीय सामाजिक व्यवस्था के प्रति आदर भाव

रखना सिखलया गया, साधू सन्तों पर श्रद्धा रखी गई, तीर्थ स्थलों का धार्मिक महत्व बढ़ा, सभी जीव जन्तुओं के प्रति दया की भावना रखी गयी, ईश्वर को विश्व का स्वामी माना गया और मोक्ष प्राप्त करने के लिए उसकी उपासना की गयी। परमात्मा की स्वीकृति सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में की गयी और यह माना गया कि परमात्मा धर्म की रक्षा के लिए समय–समय पर अवतरित होते है। धर्म और भक्ति के सन्दर्भ में वेदों के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी उदाहरण उपलब्ध होते है। पुराणों में शिव, शक्ति, सूर्य, विष्णु, अग्नि, आदि की उपासना के सन्दर्भ में अनेक वर्णन उपलब्ध होते है किन्तु भागवत पुराण में विष्णु को ही ईश्वर का स्वरूप माना गया है। अन्य सभी देवताओं को उसके आधीन रखा गया है तथा अवतारवाद को प्रमुखता दी गयी है। जब कोई विलक्षण व्यक्ति संसार में उत्पन्न होता है उस समय उसे ईश्वर का माना जाता है। भगवान श्रीकृष्ण विष्णु के बीसवें अवतार थे जिनका जन्म धर्म के उद्धार के लिए हुआ था। पौराणिक धर्म एक ईश्वर वाद और बहुदेववाद पर आधारित है, ये ईश्वर को निराकार और साकार दोनों मानते है। इनके मतानुसार शरीर, मन, बुद्धि, तथा धर्म आचरण के अनुसार ही ईश्वर की उपलब्धि सम्भावित है।

भागवत पुराण के अनुसार ईश्वर के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखना एक प्राचीन परम्परा है। जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति विशेष में विशिष्ट गुणों के दर्शन करता है तो उसके प्रति श्रद्धा अपने आप पैदा हो जाती है और उसके अनुकरणकर्ता उसे परमात्मा के रूप में स्वीकार करने लगते है। हर महापुरूष जिसे ईश्वर समझा जाता है उसके अन्दर अनेक विशिष्ट गुण होते है। उसकी शक्ति और लोक कल्याण के कार्यों को देखकर अनेक व्यक्ति उसके अनुकरण कार्ता बन जाते है। भागवत पुराण में भगवान श्रीकृष्ण को विराट स्वरूप विष्णु का अवतार माना गया है उन्होंने कंस के कारागार में जन्म लिया और उनका पालन पोषण नन्द तथा यशोदा के यहाँ हुआ। उन्होंने ब्रज धाम में रहकर पूतना जैसी राक्षसी का वध किया, उसके पश्चात

अनेक राक्षसों का वध किया, इन्द्र का घमण्ड चूर किया, गोवर्धन पर्व त उठाकर ब्रज वासियों की रक्षा की, मथुरा के राजा कंस का वध किया, जरासन्ध और शिशुपाल का वध किया तथा महाभारत युद्ध में पाण्डवों का साथ दिया इन कृत्यों से भगवान कृष्ण के अनुकरण कर्ता करोडों की संख्या में हो गये। पहले उनका स्नेह ब्रज बालाओं से हुआ उसके पश्चात अन्य लोग उनके भक्त बने, उन्होंने द्वारका नगरी बसायी तथा अनेक घमण्डी राजाओं का घमण्ड चूर किया। कृष्ण के अतिविशिष्ट कार्यों ने उन्हें ईश्वर का स्थान दिलाया। वैष्णव धर्म के अर्न्तगत भगवान विष्णु के चर्तुभुज स्वरूप को स्वीकारा गया और यह माना गया कि जो व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति के साथ विष्णु रूप भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण दर्शन, पूजा, अर्चन करता है वह बैकुण्ठ लोक को प्राप्त होता है। भागवत पुराण में भागवत भक्ति के सन्दर्भ में अति विशिष्ट उदाहरण उपलब्ध होते है। भगवान श्री कृष्ण ने हिंसा मूलक यज्ञों का विरोध किया, इसके विपरीत उन्होंने प्रेम से परिपूर्ण श्रद्धा भक्ति का विस्तार किया इसलिए उनके प्रति भक्तों का आकर्षण बढ़ा। यदि वे जन कल्याणकारी कर्म न करते होते वे परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित न हो पाते, उनको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति शुद्ध हृदय से आत्म त्याग और संयम का रास्ता अपनाकर यदि प्रयत्न करे तो वह भगवान को प्राप्त कर सकता है। भागवत भक्ति परमात्माको प्राप्त करने का एक सहज मार्ग है। जिसको अपनाने से हृदय में विशेष प्रकार के आनन्द की उपलब्धि होती है। यदि व्यक्ति सद्कर्म करता हुआ निष्कपट भाव से भागवत भक्ति का अनुसरण करता है तो वह मृत्यु के उपरान्त उत्तम गति को प्राप्त होता है और बैकुण्ठ लोक में वास करता है जहाँ भगवान विष्णु लक्ष्मी सहित सदैव विराजमान रहते है।

भक्ति परम्परा अत्यन्त सरल होने के कारण समाज में प्रचारित प्रसारित हुई और इसका विकास बडी तेजी से हुआ। यदि वेदमार्ग का अनुसरण करके परमात्मा की भक्ति की जाती तो वह सामान्य ग्रहस्थ के लिए अत्यन्त कठिन उपाय होता

ज्ञानमार्ग के माध्यम से व्यक्ति जप, तप, यज्ञ और योग का सहारा लेता है। इस मार्ग में इन्द्रिय निग्रह के माध्यम से शरीर को नाना प्रकार का कष्ट दिया जाता है किन्तु भक्ति परम्परा में शरीर को कष्ट देने का कोई विधान नहीं है। सामान्य व्यक्ति ग्रहस्थ आश्रम का पालन करता हुआ ईश्वर के साकार स्वरूप में आशा रखता हुआ वह उसकी उपासना कर सकता है। वह निष्कपट भाव से भगवान के चरणों पर श्रद्धा रखता हुआ पूजा, अर्चना, विधि को अपना कर उसे प्राप्त कर सकता है। जो व्यक्ति कृष्ण की मूर्ति की पूजा करता है मन्दिरों में जाकर उनके दर्शन करता है, उनसे सम्बन्धित तीज–त्योंहारों का अनुसरण करता है और तीर्थ यात्रा करता है वह भी श्रेष्ठ भक्त माना जाता है। समाज मे इस भक्ति भावना का व्यापक प्रभाव पडा इस भक्ति भावना से प्रेरित होकर अनेक राजाओं ने विभिन्न स्थानों में सुप्रसिद्ध वैष्णवमन्दिरों का निर्माण कराया तथा अनेक ग्रन्थ वैष्णव भक्ति के सन्दर्भ में लिखे गये।

कृष्ण भक्ति क्या है तथा उसे किस रूप में स्वीकारा जा सकता है यह भी एक विचारणीय विषय है इस सन्दर्भ में भागवत् पुराण में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है लोगों का यह स्वभाव है। कि वह अपने स्वार्थ के लिए परमात्मा को मानता है। वह चाहता है कि उसे जीवन में सदैव सुख रहे उसे दुःख के दर्शन कभी न हों तथा उसकी सम्पूर्ण मनोकामनाएं पूरी हो, इसलिए वह भगवान की भक्ति करता है किन्तु सुख और दुख व्यक्ति को अपने कर्मों के अनुसार उपलब्ध होते है। कर्म ही उसे कष्ट देते है और कर्म ही उसके दुःख के करण बनते है, इसलिए व्यक्ति को कर्म प्रतिफल तो भोगना ही पडता है। यदि व्यक्ति संसार को दुख का सार मानकर निष्काम भाव से भगवान की भक्ति करे तो उसकी पीडा अपने आप दूर हो जायेगी तथा उसे परमात्मा के दर्शन हो जायेगें। इसलिए वह इन्द्रियों में नियन्त्रण रखकर भगवान श्री कृष्ण की भक्ति करे, जिस प्रकार भगवान श्री कृष्ण पशुओं पर दया भाव रखते थे उसी प्रकार उनका भक्त भी अन्य प्राणियों पर दया भाव रखे और जो भी करे वह

हर कर्म परमात्मा को समर्पित करके करे। उसे यह जानना चाहिए कि जिस प्रकार से आत्मा निराकार होता हुआ भी आकार धारण करता है। उसी प्रकार उसका परमात्मा भी निकराकार होता हुआ भी संसार के कष्ट दूर करने के लिए आकृति धारण करता है। सच्चा भागवत भक्त वह है जो सम्पूर्ण संसार को सात्विकं द्रष्टि से देखे, परमात्मा के भक्तों का समादर करे, समस्त प्राणियों में समानता का भाव रखे और भगवान की समस्त लीलाओं का गुणगान करे वह निष्ठा के साथ परमार्थ के कार्य करे और जन कल्याण में लगा रहे। श्रीकृष्ण का अवतार परमात्मा का आनन्द अवतार है, ऐतिहासिक दृष्टि से परमात्मा, पुर्नजन्म तथा किसी व्यक्ति का अवतार मान्य नहीं है किन्तु जब किसी व्यक्ति के अन्दर रूप, गुण, और कर्म किसी दूसरे महान व्यक्ति से मेल खाते हैं उस समय उसे अवतारी की संज्ञा दे दी जाती है।

आज का भारतीय समाज यही स्वीकार करता है कि वासुदेव नन्दन श्रीकृष्ण परमात्मा के अवतार थे। परमात्मा के सन्दर्भ में सभी धर्म अपना–अपना दृष्टि कोण रखते हैं और उसके अस्तित्व को स्वीकार करते है। यदि किसी व्यक्ति विशेष में अलौकिक शक्ति का बोध हो जाय तो उसे भी परमात्मा की शक्ति के रूप में स्वीकार करना कोई बडी बात नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण को विलक्षण व्यक्ति के रूप में स्वीकरा गया ओर उनकी उपासना की जाने लगी तथा यह धारणा भी बनी रही कि परमात्मा अविनाशी है और सभी जीवों में निवास करता है इसलिए दूसरे जीव का अपमान करने वाला व्यक्ति परमात्मा का भक्त और उपासक कभी नहीं हो सकता , जब परमात्मा सब जीवों की उत्पत्ति का कारण है तो सभी जीवों के प्रति मित्रता भाव रखते हुए दान, मान, और सम्मान का व्यवहार करना चाहिए। ग्रहस्थ व्यक्ति को भी श्राद्ध, देवपूजा, हवन, तथा दान करना चाहिए, धर्मोपदेश को श्रवण करना चाहिए और भोजन में मांस मदिरा का सेवन किसी प्रकार न करना चाहिए। पाखण्ड और अधर्म का सहारा छोडकर उसे मन में सन्तोष धारण करना चाहिए और लोभ से दूर रहना चाहिए। सच्चा वैष्णव वासनात्मक वृत्तियों से दूर रहे संकल्प युक्त रहे

गुरू का आदर करे और योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की उपासना परमात्मा मानकर करे। भगवान श्रीकृष्ण उद्धव को उपदेश देते हुए यह कहते हैं कि व्यक्ति यथार्थ का बोध करे तथा परमात्मा और जीव दोनों में अन्तर न करे। परमात्मा और जीव कभी एक दूसरे से बिछुडते नहीं है वे साथ ही रहते है। वैष्णव उपासक कृष्ण की लीलाओं की चर्चा करें , जन्माष्टमी रामनवमी आदि व्रत रहें, धार्मिक स्थलों का निर्माण करें मन्दिरों में उत्सव करे, तीज–त्योहारों को उत्साह पूर्वक मनायें, धार्मिक स्थलों की यात्रा करें, घरों में भी कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित करें और आदर पूर्वक उनका पूजन करें। सूर्य, आदित्य, ब्राह्मण, गऊ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल और पृथ्वी इनकी उपासना ही परमात्मा की उपासना है। निराश्रित गायों को धान खिलाकर परमात्मा की उपासना की जा सकती है तथा परमात्मा के चर्तुमुखी स्वरूप का ध्यान करके उसकी उपासना की जा सकती है। व्यक्ति सत्संग के माध्यम से अपने कर्मो में सुधार ला सकता है। भागवत महपुराण के अनुसार श्रीकृष्ण को परमात्मा माना गया है तथा उन्हें सांख्य दर्शन का उपदेशक और धर्म का संरक्षक कहा गया है। भागवत पुराण के अनुसार भगवान विष्णु दुष्टों के संहारक और भक्तों के संरक्षक है जब जब भक्तों पर विपत्ति होती हे और पृथ्वी दुष्टों के भार से बोझिल हो जाती है। उस समय पर मात्मा अवतार धारण करते है और भक्तों की रक्षा करते हैं। अन्य पुराण भी इसकी पुष्टि करते है। भागवत मत के प्रचार–प्रसार होने के कारण भारतीय समाज ने कृष्ण को विष्णु अवतार के रूप में स्वीकार किया है तथा व्यक्ति उन्हें परमात्मा मानकर उनकी मूर्तियों की पूजा करते है। राधा–कृष्ण की मूर्तियाँ सर्वत्र पूजी जाती है। और वैष्णव धर्मावलम्बी तिलक और तुलसीमाला धारण करते है। तथा भागवत पुराण का पठन पाठन और श्रवण करते है और मथुरा द्वारका तथा जगन्नाथपुरी की यात्रा बडी ही श्रद्धा से करते है।

भागवत महापुराण में वर्णित भगवान श्री कृष्ण का जन्म तथा उनकी अन्य लीलाएँ बैष्णव धर्म का अंग बन गयी। परमात्मा जब जन्म नहीं लेता और न उसकी

मृत्यु होती है तो उस समय यह कैसे माना जा सकता है कि परमात्मा अवतरित होता है किन्तु यह एक सत्य है कि पंच महाभूतों से जो स्थूल शरीर निर्मित होता है उसका विनाश भी होता है। उस स्थूल शरीर के अर्न्तगत एक आत्म तत्व ऐसा है जिसका सृजन और विनाश कभी नहीं होता उसी तत्व के कारण परमात्मा को अविनाशी कहा गया है। यहाँ पर कृष्ण को एक महापुरूष के रूप में यदि स्वीकार किया जाय तो उनका जन्म लेना और मरना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। हमने उन्हें परमात्मा का स्वरूप इसलिए प्रदान किया है ताकि वे हमारी स्मृतियों में चिरकाल तक बने रहें। परमात्मा का जन्म दुष्टों के संहार के लिए और भक्तों की रक्षा के लिए होता है, इसलिए भगवान श्रीकृष्ण का जन्म शुभ मुहूर्त में भाद्रकृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ। वे अपनी दिव्य शक्ति के साथ अवतरित हुए, उनके दिव्य स्वरूप को देखकर देवकी और वसुदेव दोनों ही आश्चर्य चकित हुए तथा बाद में उन्होंने बाल स्वरूप धारण किया। भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण जन्म का सम्बन्ध वैष्णव धर्म से है। इसलिए कृष्ण जन्म को धर्म से सम्बन्धित माना जाता है और उनके जन्म दिन को धूमधाम से मानाने की परम्परा है। श्रीकृष्ण ने जो क्रीडायें की वे सब की सब अपने आप धर्म से जुड गयी पूतना बध, गउवें चराना, विविध प्रकार की रॉस लीलाएँ करना, अनेक प्रकार के राक्षसों का बध करना, गोपिकाओं के साथ चीर हरण रॉस और महारॉस, वेणुवादन माखन चोरी और मॉ यशोदा को प्रसन्न करने के लिए की गयी अनेक बाल लीलाएँ हमारे धर्म का अंग बन गयी। भागवत पुराण के रचयिता ने भगवान श्रीकृष्ण को महानायक के रूप में प्रस्तुत किया है तथा कंस, जरासन्ध और शिशुपाल को खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। इस महाग्रन्थ में गोपिकाएँ अनन्य प्रेमिकाओं के रूप में दर्शायी गई है उनकी प्रेम भावनाएँ धर्म से जुडी हुई है। यदि देखा जाय तो कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन लीलामय है और अनुकरणीय हैं, अनेक विद्वानों ने उनकी लीलाओं को धर्म और आध्यात्म से जोडा है। वैसे तो लीलाएँ तीन भागों में विभाजित है जिन्हें सृष्टि लीला, संसार लीला और नित्य लीला नाम से सम्बोधित किया जाता

है। जब परमात्मा सृष्टि सृजन के लिए कार्य करता है तो वह सृष्टि लीला कहलाती हैं जब वह जन्म मृत्यु और मोक्ष के लिए कार्य करता है उस समय उसे संसार लीला कहते है। जब वह माया शक्ति का सहारा लेकर लीलाएँ करता है। तो वे उसकी विचित्र लीलाएँ होती हे। भगवान श्रीकृष्ण ने अनेक आश्चर्य कारी लीलाएँ की है। जिन्होंने पूरे विश्व को अपनी ओर आकर्षित किया है।

व्रत, तीज–त्योहार हमारे धर्म और हमारी संस्कृति से सम्बन्धित है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक उत्थान पतन से गुजरता है उसे कुछ कार्य अपने लिए कुछ कार्य परिवार के लिए कुछ कार्य समाज के लिए और कुछ कार्य राष्ट्र के लिए करना पडते हैं। वह जिस लोक व्यवहार को अपने जीवन में अपनाता है उनका सम्बन्ध उसके व्यक्ति गत जीवन वर्ण और आश्रम से भी होता है। वह जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों से भी गुजरता है। वह जन्म लेते ही किसी न किसी धर्म से सम्बन्धित हो जाता है और अपने परिवार के अनुसार वह धर्म का अनुसरण करता है वह ईश्वर और देवों की उपासना अपनी पारिवारिक परम्पराओं के अनुसार करता है। वह व्रत, तीज–त्योंहारों का अनुसरण भी अपने परिवार के अनुसार करता है। इन तीज–त्योहारों को वह कायिक, वाचिक और मानसिक रूप से स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त वह नित्य, भौगोलिक, काम्य, एक भुक्त, अपाचित, मितमुक्त, चान्द्रायाण और प्राजापत्य विधियों का सहारा लेकर तीज त्योहारों और व्रतों का अनुपालन करता है तथा वह कार्य हानि से बचने के लिए और व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए व मन को शान्त रखने के लिए इनका अनुपालन करता है। वह अपने व्रतों का शुभारम्भ धर्मशास्त्र के नियमानुसर करता है, वह सर्वप्रथम पंचदेवों की उपासना करता है, पंचोपचार करता है तथा निश्चित तिथि में उनका अनुपालन करता है। व्रत करने से उसे पापों से छुटकारा मिलता है। व्यक्ति व्रत और तीज–त्योंहारों का अनुपालन करने के लिए स्वतः प्रयत्न करता है। यदि वह व्रत न कर पाये तो पति–पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र, पुरोहित, भाई और मित्र से भी यह कार्य करा

सकता है। हर तीज–त्योहार और पर्व किसी न किसी घटना और समय से सम्बन्धित होते है। इनका सम्बन्ध व्यक्ति के जन्म से, मृत्यु से, विजय से और घटनाओं से होता हैं। तीज–त्योहार और व्रत तीनों मे व्यापक अंतर है फिर भी ये तीनों एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते है। तीज त्योहारेंा और व्रतों का धार्मिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व है, यह हमारी धार्मिक और सामाजिक भावनाओं को उजागर करते है। हमारी परम्पराओं का विश्लेषण करते है तथा हमारे इतिहास को एक नई दृष्टि दिशा देते है। इस प्रकार तीज और त्योहार तथा व्रत धर्म और संस्कृति के प्रतीक है।

तीज, त्योहारों को अनुसरण हम अपनी संस्कृति को संरक्षित करने के लिये करते हैं। संस्कृति का जो स्वरूप आज हमे दिखलाई दे रहा है वह हमें परम्पराओं के अनुपालन के कारण दिख रहा है। इनके अनुपालन का उद्देश्य यह भी हो सकता है कि हम अपनी संस्कृति को संरँक्षित करना चाहते है महापुरूषें की स्मृतियां अपने मस्तिष्क में जीवित रखना चाहते है, लोक कलाओं को संरक्षित करना चाहते है तथा सामाजिक समन्वय बनाये रखना चाहते है। तीज त्योहारों को हम क्षेत्रीय स्तर पर स्थानीय स्तर पर और साम्प्रदायिक स्तर पर तथा जातिगत स्तर पर बनाये रखने का प्रयत्न करते है। ये तीज त्योहार व्यक्तिगत एक स्थान में सम्पन्न होने वाले मेले के रूप में सम्पन्न होने वाले और घरों में सम्पन्न होने वाले होते है। कुछ तीज त्योहार केवल पुरूषों के होते है। कुछ तीज–त्योहार केवल स्त्रियों के होते है और कुछ तीज त्योहार स्त्री और पुरूष दोनो मिल कर मनाते है। भागवत पुराण में अनेक तीज त्योहार का वर्णन संक्षेप में उपलब्ध होता है। तीज–त्योहारों का विभाजन मौसम के अनुसार भी होता है। भारतीय सम्वत सर चैत्रमास की शुक्ल पक्ष की परीवा(प्रतिपदा) से प्रारम्भ होता है। इसी सम्वतसर के अनुसार भारतीय पंचागो का निर्माण होता है तथा समस्त तीज त्योहार इसी पंचाग के अनुसार निंधारित रहते है।

हमारा नव वर्ष चैत्रमास से प्रारम्भ होता है उसके प्रथम दिन को हम नवसम्वत

सर दिवस के रूप में मनाते है। इसी दिन से नवरात्रि के व्रत भी प्रारम्भ होते है जो नव दिन चलते है इनमें देवियों की पूजा होती है। चैत्रमास में ही तिसुवा सोमवारों का व्रत महिलाओं द्वारा रखा जाता है इसके बाद संकष्ठ चतुर्थी का व्रत होता है। इसके पश्चात अरून्धती व्रत किया जाता है यह चैत्र शुक्ल तृतीया को समाप्त होता है। इसी दिन मत्स्य अवतार जयंती भी सम्पन्न होती है। चैत्र शुक्ल नवमी को रामनवमी का त्योहार रामजन्म के उपलक्ष में होता है। चैत्र शुक्ल पूर्णमासी को पजून पूनों का त्योहार होता है इसी दिन हनुमान जंयती भी कुछ स्थानों पर मनायी जाती है।

वैशाख माह में भी अनेक व्रतों का आयोजन होता है इस मास में कृष्ण पक्ष की एकादशी को बरूथिनी एकादशी के रूप में मनाया जाता है। इसी माह में आसामाई व्रत भी होता है। यह कृष्ण पक्ष की द्वितीया को होता है इसी महीने में अक्षय तृतीया का व्रत होता है इसी दिन गौरी पूजा का व्रत भी होता है और परशुराम जयंती भी मनायी जाती है। वैशाख माह की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को नरसिंह जंयती का त्योहर होता है। इसी माह में शुक्ल पक्ष की सप्तमी को कमल सप्तमी के रूप में मनाया जाता है। वैशाख शुक्ल की द्वादशी को मधुसूदन पूजा होती है तथा वैशाख शुक्ल की पूर्णमासी को वैशाखी पूर्णिमा का त्योहार सम्पन्न होता है।

ज्येष्ठ माह में, ज्येष्ठ शुक्लपरीवा के दिन करवीर व्रत रखा जाता है। ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष तृतीया को पार्वती जन्म का त्योहार होता है। ज्येष्ठ मास की अष्टमी को शिव पूजा का विधान है। ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को गंगा दशहरा होता है। ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी, निर्जला एकादशी के रूप में, मनायी जाती है ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को वट सावित्री व्रत का आयोजन होता है जो पूर्णमासी तक चलता रहता है।

आषाढ माह में भी अनेक तीज त्योहार होते है। इस माह की शुक्ल पक्षकी द्वितीया को रथयात्रा निकलती है तथा पंचमी को स्कन्द षष्ठी का व्रत होता है। इसी

माह की अष्टमी को महिषघ्हनी व्रत होता है। इस माह की शुकल पक्ष की एकादशी के देवशयनी एकादशी केरूप में मनाया जाता है तथा द्वादशी के दिन वामन अवतार की पूजा की जाती है। चर्तुदशी के दिन श्रीहरि पूजा होती है। आषाढ़ माह की पूर्णमासी के दिन कोकिला व्रत रखा जाता है इसी दिन व्यास पूर्णिमा भी मनायी जाती है। इसी माह की कृष्ण पक्ष की एकादशी को योगिनी एकादशी के रूप मे मनाया जाता है।

श्रावण मास में अनेक तीज त्योहार सम्पन्न होते है। इस माह के प्रत्येक सोमवार को शिवव्रत का अयोजन होता है तथा प्रत्येक मंगलवार को मंगलागौरी पूजन होता है। श्रावण मास की एकादशी के दिन कामिका एकादशी का व्रत रखा जाता है। श्रावण मास की शुक्ल पंचमी को नाग पंचमी का त्योहार होता है। इसी माह की नवमी को निउरी नवमी के नाम से मनाया जाता है। शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी को रक्षाबन्धन का त्योहार होता है।

भाद्रपद माह में तीज, त्योहारों का शुभारम्भ कजली तृतीया से होता है। इस माह की चौथ को बहुला चौथ के नाम से मनाया जाता है तथा पंचमी को गूगा पंचमी के नाम से मनाते है। भाद्रपद में जब मघा नक्षत्र पडता है उस समय महम व्रत का आयोजन होता है। कृष्ण पक्ष की षष्ठी को चन्द्र षष्ठी के रूप में मनाया जाता है। इस माह की सप्तमी को पुत्र व्रत के नाम से मनाया जात है तथा अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी के रूप में मनाया जाता है। इस माह की नवमी को गंगा नवमी के नाम से मनाते हैं, इसी माह की एकादशी को अजा एकादशी के नाम से मनाते है। इस माह की द्वादशी को गोवत्स द्वादशी के नाम से मनाते है। इस माह की अमावस्या को कुशग्रहणी अमावस्या के रूप में मनाते है। शुक्ल पक्ष की परीवा को महत्त माख्य शिव व्रत मनााया जाता है तथा द्वितीया को गाज बीज पूजन के रूप में मनाया जाता है व तृतीया को हरतालिका व्रत रखा जाता है। चतुर्थी को शिव चतुर्थी व्रत किया जाता है। षष्ठी को सूर्य षष्ठी और चम्पाषष्ठी के रूप में मनाया जाता है सप्तमी को

सतांन सप्तमी व्रत रखा जाता है अष्टमी को दूर्वा अष्टमी अथवा राधा अष्टमी के रूप में मनाया जाता है द्वादशी वामन द्वादशी के रूप में मनायी जाती है तथा चतुर्दशी अनन्त चतुर्दशी के रूप में मनायी जाती है और इस माह की पूर्ण मासी को उमामहेश्वर व्रत रखा जाता है।

आश्विन माह में अनेक तीज त्योहार अैर व्रत होते है। इस माह के पन्द्रह दिन पितृपक्ष के नाम से पुकारे जाते है और पन्द्रह दिन तक श्राद्ध कार्य किये जाते है। इस माह में कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन जीवित्तपुत्रिका व्रत रखा जाता है तथा एकादशी को इन्द्राएकादशी के नाम से मनाया जाता है। शुक्ल पक्ष क़ी दशमी को विजयदशमी के रूप में मनाया जाता है। इसी पक्ष की एकादशी को पापांकुशी एकादशी के रूप में मनाया जाता है तथा इस माह की पूर्णिमाा को शरद पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है।

कार्तिक मास में भी अनेक तीज–त्योहार सम्पन्न होते है। इस माह में कृष्ण पक्ष की चतुर्थी के करवा चौथ का त्योहार मनाया जाता है इसके पश्चात कृष्ण पक्ष की अष्टमी को अहोई अष्टमी के रूप में मनाया जाता है तथा एकादशी को तुलसी एकादशी के नाम से मनाने का विधान है । इस माह की चर्तुदशी को नरकचौदस के नाम से मनाया जाता है। इस माह की षष्ठी को सूर्य षष्ठी के रूप में मनाते है। तथा अष्टमी को गोपाठ की होती है और नवमी को अक्षय नवमी का त्योहार मनाते है। इस माह की एकादशी को भीष्म पंचक या देउठानी एकादशी के रूप में मनाते है। इस माह की पूर्णमासी को कार्तिक स्नान पूर्णिमा के नाम सेमनाया जाता है।

मार्गशीर्ष माह में भी अनेक तीज त्योहार सम्पन्न होते है। इस माह की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भैरव जयंती या कालाष्टमी के रूप में मनाया जाता है। इसी मास में अवशान अथवा श्मशान देवी की पूजा कृष्ण पक्ष की दशमी को होती है इसी दिन दत्तात्रेय जंयती भी मनायी जाती है तथा शुक्ल पक्ष की एकादशी को मोक्षदा एकादशी के रूप में मनाते है।

पूष माह में भी अनेक तीज त्योहार यहाँ सम्पन्न होते हैं। इस माह में कृष्ण पक्ष की एकादशी को सफला एकादशी के रूप में मनाया जाता है और इस माह की अमावस्या को मौनी अमावस्या के रूप में मनाया जाता है।

माघ मास में भी अनेक तीज–त्योहार होते है। माघ मास की कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को मकरसंक्रान्ति को त्योहार सम्पन्न होता है। इसी माह में कृष्ण चतुर्थी को सकठ गणेश का व्रत होता है तथा कृष्ण पक्ष की एकादशी को षठतिला एकादशी के रूप में मनाया जाता है। इस माह की अमावस्या को भी मौनी अमावस्या के रूप में मनाते है। इसी माह की शुक्ल पक्ष की पंचमी को बसंत पंचमी का त्योहार होता है तथा षष्ठी के दिन शीतला षष्ठी का त्योहार मनाया जाता है और सप्तमी के दिन अचला सप्तमी अथवा सूर्य सप्तमी का त्योहार होता है। इस माह की एकादशी को जया एकादशी के रूप में मनाया जाता है तथा पूर्णिमा के दिन माघी पूर्णिमा का त्योहार होता है।

फाल्गुन मास में भी अनेक तीज त्योहार होते है। इस माह में कृष्ण पक्ष की एकादशी को विजया एकादशी के रूप में मनाया जाता है तथा त्रयोदशी को महाशिवरात्रि का व्रत होता है। फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की चर्तुदशी को अविघ्नकर व्रत होता है तथा इसी माह की अष्टमी को सीता अष्टमी का व्रत होता है। इस माह की शुक्ल पक्ष की एकादशी को आँवला एकादशी के रूप में मनाया जाता है। फाल्गुन मास की पूर्णमासी के दिन होली का त्योहार होता है। जब कभी अधिमास अथवा न्यूनमास होते है उस वर्ष मे अधिमास व्रत करने का विधान है इसी प्रकार जब सूर्य एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति में प्रवेश करता है उस समय भी व्रत का विधान है। जब कभी सूर्य ग्रहण अथवा चन्द्र ग्रहण पडते है उस दिन भी व्यक्ति व्रत करते है और दान पुण्य करते है।

भागवत पुराण में भी अनेक तीज–त्योहारो के वर्णन उपलब्ध होते है। जिस समय श्रीमद्भागवत पुराण की रचन हुई उस युग में जिन तीज–त्योहारों का

आयोजन होता रहा है उनका वर्णन भागवत पुराण में है। तीज त्योहार भारतीय संस्कृति से जुडे हुये है तथा उनका आयोजन तदयुगीन परिस्थितियों के अनुसार होता रहा है। भागवत पुराण में दत्तात्रेय जंयती का उल्लेख मिलता है। यह पर्व मार्गशीर्ष माह की कृष्ण पक्ष की दशमी को सम्पन्न होता है। दूसरा त्योहार नवसम्वतसर दिवस का मिलता है इसका सम्बंध भगवान के सातवें प्रजापति अवतार से है। इसके अतिरिक्त ऋषभ देव जंयती का वर्णन भी भागवत पुराण में है। भागवत पुराण में मत्स्य अवतार जयंती का उल्लेख मिलता है यह त्योहार चैत्रशुक्ल की पंचमी को मनाया जाता है। भागवत पुराण में धन्वन्तरि जयंती का भी उल्लेख है। यह त्योहार कार्तिक माह की कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को मनाया जाता है। भागवत पुराण में नरसिंह अवतार जयंती का भी उल्लेख है यह त्योहार वैशाख शुक्ल पक्ष की चर्तुदशी को सम्पन्न होता है। भागवत पुराण में वामन द्वादशी का भी उल्लेख है तथा परशुराम जंयतीका भी उल्लेख मिलता है। भागवत पुराण में गुरूपूर्णिमा का भी उल्लेख है। इस पुराण में पुंसवनव्रत, पयोव्रत तथा शिवरात्रि व्रत, का उल्लेख है। भागवत भक्ति का प्रचार प्रसार होने के पश्चात कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित तीज त्योहारो का महत्व बढ जाता है क्योकि कृष्ण भक्ति अहिंसा को प्रोतसाहित करती है तथा सात्विक और माधुर्य गुणों से जुडी हुई है। इसलिये एकादशी, पूर्णमासी, कार्तिक मास के व्रत और भाद्रपद मास के व्रत कृष्ण भक्ति से जुडे हुये है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में वैष्णव धर्म का प्रचार–प्रसार व्यापक रूप से हुआ। जब वैष्णव धर्म नही था उस समय वैदिक धर्म ही प्रधान था और यज्ञों का ही महत्व था भागवत पुराणमें भी यज्ञों के महत्व को स्वीकार किया गया है। इसी पुराण में एक उल्लेख राजा दक्ष का मिलता है और एक तीसरे यज्ञ का उल्लेख राजा पृथु का मिलता है जिसने सौ अश्वमेंध यज्ञ किये। भगवान श्रीकृष्ण ने यज्ञों के स्वरूप बदलने के प्रयत्न किये तथा ऐसे यज्ञों को बन्द कराने का प्रयत्न किया जिनमें हिंसा का प्रयोग होता था। उन्होने वैष्णव यज्ञों का शुभारम्भ कराया और जन्म तथा मृत्यु स्मृति

से जुडे हुये त्योहारो को प्राथमिकता प्रदान की। इसके अतिरिक्त वैष्णवधर्म से जुडी हुई घटनाओं को भी तीज त्योहारों से जोडा गया और उनको मनाने की विधियाँ सुनिश्चित की गयी।

भारतवर्ष में धार्मिकअनुष्ठानों का आयोजन अतिप्राचीन काल से होता रहा है। इन अनुष्ठानों के माध्यम से व्यक्ति आत्मा अैर शरीर का शुद्धिकरण करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि किसी भी प्रकार की विघ्न बाधायें उसके जीवन मे न आयें । वह वेद विधियों का अनुसरण करता हुआ अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार आचरण करता था तथा उन्हीं कर्मो को करता था जो धर्म शास्त्रों में वर्णित हैं। मुख्य रूप से जप, तप, यज्ञ, दान और ज्ञान को धर्म मानकर उनका अनुपालन करता था। इन धार्मिक अनुष्ठानों का उल्लेख वेदों और विविध पुराणों में उपलब्ध होता है। वह अपने समस्त संस्कार जिनमें गर्भाधान, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, वेदाध्ययन, विवाह, तथा मृत्यु संस्कार आदि शामिल थे। वह उनका अनुपालन शास्त्र विधि से करता था और इसे एक धार्मिक अनुष्ठान ही मनता था। इसके अतिरिक्त वह नैमित्तिक धर्म का अनुपालन भी करता था। जिसके अर्न्तगत वह देव आराधना करता था, अपने जीवन में पंच महयज्ञों का आयोजन करता था, अनेक उपकर्म करता था, धार्मिक स्थलों का दर्शन करता था, तीर्थयात्रा करता था तथा धार्मिक ग्रन्थों का पठन–पाठन और श्रवण करता था और सदैव सदाचारी बनने का प्रयत्न करता था। भारतीय समाज में धार्मिक अनुष्ठानों और धार्मिक कृत्यों का सम्मान था जो व्यक्ति इनकृत्यों को सम्पन्न कराते थे वे सम्मानित व्यक्ति माने जाते थे।

धार्मिक स्थानों का वर्णन अनेक पुराणों में उपलब्ध होता है और उनका दर्शन करना धार्मिक कार्य माना जाता था। समस्त पुराणों में प्रयाग को सर्वश्रेष्ठ तीर्थ की संज्ञा दी गई है तथा दूसरे तीर्थ के रूप में सप्तगोदावर और गोकर्ण तीर्थ की मान्यता है। भारतवर्ष में अनेक तीर्थ स्थल ऐसे है जिनका सम्बन्ध शिव से है इनमें मुख्य रूप से कैलाशमानसरोवर, अमरनाथ , बैजनाथ, कालेश्वर, कालींजर तथा

काशी आदि है। अनेक तीर्थ स्थल ऐसे है जिनका सम्बन्ध देवी उपासना से है प्रमुख शक्ति स्थलों मे विन्ध्याचल, कालीकट, वैष्णव देवी , मैहर, कमाख्या आदि हैं। प्रसिद्ध वैष्णव तीर्थो में आयोध्या, मथुरा, जगन्नाथपरी, तिरूपति बाला जी और द्वारकापुरी है। व्यक्ति तीर्थयात्रा के माध्यम से भारत के भौगेलिक सीमाओं को जान लेता था, इसके अतिरिक्त अनेक क्षेत्रों की सभ्यता, संस्कृति और भाषा का ज्ञान भी उसे उपलब्ध होता था। तीर्थ यात्रा से उसे स्वास्थ्य लाभ होता था और उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती थी। तीर्थयात्रा करने के लिये कोई जातिबंधन नही है कोई भी व्यक्ति जो पारिवारिक बंधनों से मुक्त होता था वह तीर्थ यात्रा कर सकताथा तीर्थयात्रा में व्यक्तिगत दुर्गुण छोड दिये जाते थे तथा देवतओं को प्रसन्न करने के लिये दान आदि कर्म किये जाते थे। तीर्थ स्थल में प्राण त्यागना, मुडंन कराना और कन्यादान आदि करना शुभ माना जाता थें। पौराणिक ग्रन्थों मे अनेक तीर्थ स्थलों का वर्णन आया है इनके दर्शन से तीर्थ यात्रियों को लाभ होता था । भागवत पुराण में भी अनेक तीर्थ स्थलों का वर्णन है यह यात्रा कृष्ण के भाई बलराम जी द्वारा की गई थी। भागवत पुराण में उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों के प्रमुख तीर्थो का उल्लेख है। तीर्थ यात्रा का प्रभाव मनुष्य के ऊपर बहुत अधिक पडता है। वह धार्मिक भावना से तीर्थ यात्रा करता है तथा तीर्थ यात्रा के पश्चात वह अपने आचरणों को शुद्ध सात्विक और धर्मानुकूल बना लेता है।

धर्म पर विश्वास करने वाला व्यक्ति किसी न किसी प्रकार उज्जवल भविष्य की परिकल्पना करता है इसलिये वह शुभ मुहुर्त में कार्य करना चाहता है। कभी–कभी अशुभ मुहुर्त में किये जानेवाले कार्य का दुष्परिणाम उसे भोगना पडता है। भागवत महापुराण में शकुन और अपशकुन का वर्णन सविस्तार उपलब्ध होता है, आकाश में उल्कापत होना, पृथ्वी मे भूकंप आना, प्राणियों में अचानक रोग उत्पन्न हो जाना, आदि अपशकुन माने गये है। जब किसी भी पुरूष की बांयी जाँघ और बांयी आँख व बांयी भुजा बार बार फडके तो उसे अपशकुन कहते है। इसी प्रकार सियाँरिन

सूर्योदय के समय सम्मुख मुँह करके रोये और कुत्ता अकारण ही भौंके (रोये) तो उसे भी उपशकुन मानते है। जब बुरे पशु अपना स्वभाव बदल दें, उल्लू और कौवा रात में कर्कश स्वर करने लगे तो और गाय के बछडे दूध पीना बन्द कर दें उसे अपशकुन माना जाता है।

इसी प्रकार भागवत पुराण में शकुनों का भी वर्णन उपलब्ध होता है। जब कोई गाय अपने बछडे को दूध पिलाती दिखाई पडे तो बहुत शुभ माना जाता है। इसी प्रकार जब कोई यात्रा पर जाता है और उसे जल से भरा हुआ घट दिखाई पडे तो उसे शुभ माना जाता है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सुअर के दर्शन भी शुभ है उससे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

स्त्री और पुरूष दोनों मिलकर समाज की स्थापना करते हैं, यदि ये दोनों आपस में न मिलते तो किसी भी रूप में सृष्टि सृजन सम्भावित न होता। परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का सृजन किया उस समय बीज तत्व पुरूष को प्रदान किया और भूमि तत्व नारी को प्रदान किया तथा बीज और भूमि के सम्मिलन को सृष्टि के विकास का आधार बनाया। आगें चलकर इसे मैथुन सृष्टि की संज्ञा दी गयी तथा समस्त जीवों को नर और मादा दो भागों में विभक्त किया गया। देवी भागवत पुराण के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश का सृजन नारी शक्ति से हुआ, बीज ग्रहण करने के उद्देश्य से वह पुरूष तत्व से जुड़ी। सृष्टि संरचना के सन्दर्भ में वेद, पुराणों और स्मृतिग्रन्थों में अनेक उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। समस्त संसार का विकास एक पुरूष और एक नारी से हुआ है। आज जो भी हमें दिखायी दे रहा है उसी प्रथम पुरूष और प्रथम नारी का क्रिया—कलाप है। देव, दानव, मनुष्य, राक्षस, यक्ष आदि सब इसी प्रकार से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए स्त्री संसार की महत्वपूर्ण पात्रा है, उसी ने संसार को विकसित किया है, उसी ने संसार को पाला है पुरूष तो एक संरक्षक मात्र है। इस संसार में धर्म, कर्म, सभ्यता और संस्कृति स्त्री की प्रेरणा से ही पैदा हुए हैं, इसलिए संसार में स्त्रियों का महत्व पुरूषों से अधिक है।

वेदों, पुराणों, स्मृतिग्रन्थों और भागवत पुराण में स्त्रियों के महत्व को स्वीकार किया गया है। सर्वप्रथम स्त्री को माता के रूप में देखते है वह हमें जन्म देने वाली है और हमारी पालन पोषण करने वाली है। आज देवताओं और दैत्यों का अस्तित्व कश्यप ऋषि की पत्नी दिति अैर अदिति के करण है। आज मनुष्य का अस्तित्व मनु और शतरूपा के कारण है। आज गणेश का अस्तित्व पार्वती के करण है और कृष्ण का अस्तित्व देवकी और यशोदा के कारण है। जहाँ यह स्त्री पुत्र को जन्म देती है वहीं उसका पालन पोषणभी करती है तथा संतान के हित का चितंन भी करती है। भागवत पुराण में देवकी अैर यशोदा को माता के रूप में दर्शाया गया है। स्त्री पर दया करना और उसका सम्मान करना आदि काल से धार्मिक कार्य माना जाता है वह हमारी माता ही नही है। अपितु गुरू भी रही है। इसी प्रकार पुत्री के रूप में भी कन्या को दया का पात्र माना जाता था। उसका पालन पोषण बडे दुलार से किया जा रहा है तथा उसके विवाह आदि में कन्या का पिता अपनी क्षमता के अनुसार दहेज देता था तथा पिता की सम्पति पर उसका भी अधिकार स्वीकार किया गया है। अनेक स्त्रियों तपस्विनी और धार्मिक अनुष्ठान करनेवाली हुई है। जिनका उल्लेख पुराणों में मिलता है। अनेक स्त्रियों विविध विद्याओं मे पारंगत थी उनकी दक्षता नृत्य एवं संगीत कला में थी इसके उदाहरण भी भागवत पुराण मेंउपलब्ध होते है। भागवत पुराण में गायन नृत्य तथा वादन तीनों केउदाहरण उपलब्ध होते है। प्राचीन काल में स्त्रियां चित्र कला में भी निपुण थीं, वे पुरूषों के अभाव में स्वयं अपनी रक्षा कर सकती थीं स्त्री योद्धाओं का वर्णन पुराणों मे यत्र तत्र मिलता है। धार्मिक अनुष्ठानों में भी स्त्रियों का सदैव सहयोग रहा है। यज्ञ, देव आराधना, तीज त्योहार, व्रत, तीर्थयाात्रा और श्राद्ध आदि कार्यों में स्त्रियों का पूर्ण सहयोग रहा है। उनका सहयोग संतनों के योग्य बनाने मे भी रहा है, वह ग्रहस्थी के कार्यों में भी सहयोग प्रदान करती है। भागवत पुराण में स्त्रियों के कर्तव्यों का उल्लेख है, विधवा औरतों के लिये भी अनेक प्रकार के निर्देश भागवत पुराण में उपलब्ध होते है।

पौराणिक युग में सतीप्रथा अनुपालन होता था तथा किसी भी स्त्री को पति वियोग सहन नहीं था, इसलिये वे पतियों के साथ अग्नि में प्रवेश कर जाती थीं। पौराणिक युग मे स्त्रियों के मध्य पर्दा प्रथा विशेष रूप से प्रचलित नही थी, किन्तु कही–कही पर्दा प्रथा के भी दर्शन होते है। पुराणों के रचनाकाल तक स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। कालान्तर में इस स्थिति में परिवर्तन हुआ किन्तु विधवा स्त्रियों की स्थिति सही नहीं थी इस युग में बहु विवहा प्रथा थी किन्तु स्त्रियों में अनेक पति रखने का अधिकार नही था। द्रौपदी का वृतान्त इसका अपवाद प्रतीत होता है।

भागवत पुराण में स्त्रियों के कर्तव्य का उल्लेख हुआ है, इस पुराण में पृथ्वी को भी एक स्त्री ही माना गया है तथा इसके कर्तव्यों का निर्धारण करते हुये उसे संसार की रचना का पालनहार और शक्ति का स्वरूप माना गया है। यह शक्ति भी परमात्मा के समान अपरिभाषित है, यह प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में निवास करती है बिना शक्ति के वह कोई कार्य नही कर सकता। नारी कर्तव्यो का उल्लेख करते हुये पुराणों का यह निर्देश है कि प्रजनन, लालन–पालन स्त्री का पुनीत कर्तव्य है। इसके पश्चात वहग्रहस्थ आश्रम के सम्पूर्ण कर्तव्यों का अनुपलन करे, पति को सहयोग दे, कन्या के रूप में वह अपने मात पिता की आज्ञा का पालन करे तथा धर्म का अनुपालन निष्ठा से करे, तीज त्येहार व्रत आदि कार्यो में वह दिलचस्पी ले तथा ऐसे कार्य करे जिनसे परिवार की प्रतिष्ठा बढे।

भागवत पुराण में अनेक महिला पात्रों का उल्लेख मिलता है। भागवत पुराण के प्रारम्भ से लेकर उसकेअन्त तक अनेक महिला पात्र उपलब्ध होते है किन्तु भागवत श्रीकृष्ण से सम्बन्धित महिलाओं में देवकी का प्रमुख स्थान है। देवकी, देवक की पुत्री, कंस की चचेरी बहन वसुदेव की पत्नी और श्रीकृष्ण की माता थी। देवकी के पश्चात प्रमुख़ नारी पात्र नन्द की पत्नी यशोदा थी, इन्होने कृष्ण का पालन पोषण किया और उन्हें इस योग्य बनाया कि वे कंस के सहांरक, ब्रज के रक्षक तथा द्वारका पुरी के नरेश के रूपमें विख्यात हुये और जिन्होंने महाभारत युद्ध में महत्वपूर्ण

भूमिका निभाई । कृष्ण को योग्य बनाने में यशोदा का ही हाथ था। अन्य महिला पात्रों मे गोपिकाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान था, ये कृष्ण की अनन्य प्रेमिकाये थी और कृष्ण को परमात्मा के रूपमें स्वीकार कर चुकी थी इनके सन्दर्भ में भागवत पुराण में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। गोपिकाओं के पश्चात रूक्मणी एक महिला पात्र है जो कृष्णकी पत्नी के रूपमें उन्हे सहयोग प्रदान करती है वे विदर्भ नरेश भीष्मक की पुत्री थी। जाम्बवंती कृष्ण की दूसरी पत्नी थी, जो जाम्बवंत की पुत्री थी। द्रोपदी कृष्ण की मानद बहन थी तथा कालिन्दी, मित्रबंदा, सत्या, भद्रा, सत्यभामा, आदि इनकी पत्नियाँ थी तथा सुभद्रा इनकी बहन थी। भागवत पुराणमें वर्णित नारी पात्र श्री कृष्ण से निकटता से जुडे हुए है।

भागवत पुराणमें ऐसे पुरुष पात्र हैं जिन्होंने सदैव स्त्रियों को सम्मान दिया है और उन्हे हर प्रकार का सहयोग प्रदान किया। पुरूषों का नारियों से सम्बन्ध माता, पत्नी, बहन और पुत्री के रूप में था। भागवत पुराण के पुरूष पात्र वसुदेव सदैव अपनी पत्नी देवकी के रक्षक प्रतीत होते है और अन्त तक उनके सहयोगी बने रहते है। भागवत पुराण के द्वितीय पुरूष पात्र नन्द बाबा भी अपनी पत्नी यशोदा के प्रति समर्पित है वे सदैव उन्हे सहयोग प्रदान करते है। भगवान श्रीकृष्ण भागवत पुराण के प्रमुख पुरूष पात्र है और नायक है। वे स्त्रियों के प्रति उदार भावना रखते है। वे अपनीदोनो माताओं देवकी और यशोदा से बहुत स्नेह करते है। तथा गोपिकाओं को वे अपनी अनन्य प्रेमिका मानते है। उन्हे खुश रखने का प्रयत्न करते हैं वे अपनी पत्नियों के प्रति भी उदार भावना रखते है और उन्हे सहयोग प्रदान करने है। उनका व्यवहार अपनी बहन द्रौपदी और सुभद्रा के प्रति अत्यंत उदार है, वे एक भाई के रूप में बहनों के प्रति अपना कर्तव्य निर्वाह करते है। इसके अतिरिक्त बलराम, उद्धव, कंस, सुदामा, आदि पुरूष पात्र है, जो स्वभाव से कटु अथवा विनम्र होते हुये भी स्त्रियों के प्रति उदार भाव रखते है और उन्हे सहयोग प्रदान करते है।

यदि सम्पूर्ण भागवत पुराण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एंव धर्म का विश्लेषण

किया जाये तो भागवत के रचनाकार ने तद्युगीन समाज को यथार्थ स्वरूप भागवत महापुराण के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उस युग में भारतीय संस्कृति का जो व्यावहारिक स्वरूप प्रचलित था रचनाकार ने उसका स्वरूप इस ग्रन्थ के दर्पण के माध्यम से दिखलाने का प्रयत्न किया है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि भागवत महापुराण केवल धार्मिक ग्रन्थ ही नही बल्कि तदयुगीन परिस्थितियों को दर्शाने वाला तथा समाज और धर्म को प्रतिबिम्बित करने वाला एक ऐतिहासिक ग्रन्थ भी है।

शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन—

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध भागवत पुराण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एवं धर्म से सम्बन्धित है इस शोध प्रबन्ध का लेखन कार्य अत्यन्त कठिन कार्य था उसका मूल कारण यह था कि भागवत पुराण का रचनाकार और उसका काल आज तक अज्ञात है। अधिकांश व्यक्तियों की इस मान्यता है कि इस ग्रथं की भी रचना कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा की गयी थी, किन्तु यह ग्रन्थ के रचनाकार व्यास को भगवान के सत्रहवें अवतार के रूप में स्वीकार करता है।

'ततः सप्तदशे जातः सप्यवत्यां पराशरात्।

चक्रे वेदतरोः शाखा द्रष्ट्रा पुंसोऽल्पमेधस।।'[1]

यह अवतार भगवान श्रीराम के पहले का था। भगवान श्री कृष्णद्वैपायन व्यास का अवतार पराशर ऋषि के पुत्र के रूप में हुआ था वे सत्ववती के पुत्र थे जो बाद में कुरू वंश की महारानी बनी इसलिये कृष्णद्वैपायन व्यास जिनके सामने कृष्ण उत्पन्न ही नही हुये यह ग्रन्थ उनके द्वारा नहीं लिखा जा सकता। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ से यह बोध होता है कि सम्पूर्ण भागवत प्रसंग सूत जी के द्वारा राजा परीक्षित को सुनाया गया। राजा परीक्षित अभिमन्यु के पुत्र थे इसलिये जब भगवान श्रीकृष्ण सांसारिक शरीर का परित्याग करके परमधाम को चले गये उसके बाद कभी इस ग्रन्थ की रचना हुई। इस ग्रन्थ में महात्मा बुद्ध को ईश्वर के इक्कीसवें अवतार केरूप में स्वीकार किया गया है जो इस बात का संकेत देता है कि यह ग्रन्थ महात्मा बुद्ध

1- भागवत पुराण, 1-3-21;

के अस्तित्व के बाद कभी लिखा गया, क्योकि महात्मा बुद्ध को भागवत पुराण के में इक्कीसवाँ अवतार स्वीकार कियागया है। भागवत पुराण में जिस सत्य, अंहिसा, प्रेम

'ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।

बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकटेषु भविष्यति।।'[1]

सदाचार, और सदभाव, का विस्तार से वर्णित किया गया है। वह प्राचीन भारतीय धर्म पद्धति के अनुकूल न होकर बौद्ध और जैन धर्म से ज्यादा प्रभावित जान पडती है। भगवान श्रीकृष्ण भागवत पुराण के नायक होने के नाते उन यज्ञों के सदैव विरोध करते दिखाई देते है जिनमें हिंसा का सहारा लिया जाता था। इससे यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म का अहिसां का सिद्धान्त भागवत पुराण कें रचनाकार को प्रभावित करता रहा, जिसका उल्लेख उसने किया।

भागवत पुराण में विदेशी आक्रमणकारियों का उल्लेख भी यदा कदा मिलता है तथा जिन राजवंशो का विवरण इसमें उपलब्ध होता है वे काफी बाद के प्रतीत होते है। जरासन्ध के वंश में शिशुपाल और उसके आगे राजाओ का वर्णन है उसके पश्चात मौर्य वंश के राजाअें का वर्णन मिलता है। भागवत पुराण में चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके मंत्री कौटिल्य का वर्णन उपलब्ध है।

'स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजों राज्येऽभिषेक्ष्यति।

तत्सुतो वारिसारस्तु ततश्चशोकवर्धनः।।'[2]

चन्द्रगुप्त मौर्य 320 ई0 पू0 में था। इसके पश्चात शुंग वंश कशासन स्थापित होगा। इसके शासक पुष्यमित्र, अग्नि मित्र और सुज्येष्ठ आदि होगे इनका शासन 112 वर्षो तक रहेगा। इसवंश ने 185 ई0 पू0 से लेकर 75 ई पू0 तक राज्य किया

'ततौ भागवतस्तस्माद देवभूतिरिति श्रुतः।

शुगं दशैते भोक्ष्यन्ति भूर्मि बर्षशताधिकम्।।'[3]

इसके पश्चात कण्व वंशीय शासकों ने राज्य किया उसका उल्लेख भी भागवत पुराण में है, यह वंश तीन सौ पैतलीस वर्ष तक राज्य करता रहा।

1- भागवत पुराण, 1-3-24; 3- वही, 12-1-18;
2- वही, 12-1-13;

'काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशश्च पश्च च।

शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगें।'[1]

इन शासकों ने ईसा की प्रथम शताब्दी तक राज्य किया। सुशर्मा का राज्य 40 ई पू0 से 30 ई0 पू0 तक रहा। इसके पश्चात भारतवर्ष में विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हुये।यवनों तथा तुर्को के आक्रमण भारतवर्ष में हुये, तुर्को के आक्रमण भारतवर्ष में सतवी शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर बारहवीं शताब्दी तक हुये। इन सब

'ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरूष्ककाः।

भूयो दश गुरूण्डाश्च मौना एकादशैव तु।।'[2]

साक्ष्यों के माध्यम से यह सिद्ध होता है कि भागवत पुराण की रचना कभी नवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच किसी विद्वान रचनाकार ने की क्यों कि कोई इतना बडा भविष्य वक्ता नही हे सकता कि वह भविष्य के सन्दर्भ में ऐसे कथानक की संरचना कर दे जो बिल्कुल सही उतरे। यह कृष्णद्वैपायन व्यास की रचना किसी भी स्थिति में नही हो सकती है।

भागवत पुराण में तदयुगीन परिस्थितियों का वर्णन भविष्यवर्णन के रूप में किया गया है जा भविष्य वर्णन न होकर तदयुगीन परिस्थितियों का वर्णन है। भागवत रचनाकार कहता है कि उस युग में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो गयी थी कि धनी व्यक्ति का सम्मान होने लगा था, शक्तिशाली व्यक्ति न्याय अपने पक्ष में करा लेता था। उस युग में स्त्री पुरूष दोनो स्वेच्छाचारी हो गये थे धर्म की मान्यताये

'वित्तमेव कलौ नृणाजन्मचारगुणोदयः।

धर्मन्यायव्यवस्थाया कारणं बलमेव हि।।'[3]

समाप्त हो गयी थी तथा धर्म मे नाना प्रकार के पाखण्ड शाामिल हो गये थे। शारीरिक सौन्दर्य पर बल दिया जाने लगा था, जातीय व्यवस्था चरमरा गयी थी। लुटेरों का आतंक बढ गया था, राजा निर्दयी हो गये थे, प्रकृति भी व्यक्तियों का साथ नहीं दे रही थी तथा अपराधी बढ गये थे और व्यक्ति अनीति से जीविका चला

1- भागवत पुराण, 12-1-21; 3- वही, 12-2-2;
2- वही, 12-1-30;

रहे थे।

'पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु।
चौर्यानृतवृथा हिंसानाना वृत्तिषु वै नृषु।।'[1]

ये सम्पूर्ण परिस्थितियाँ हूणों, शकों, यवनों, और तुर्कों, के आक्रमण के पश्चात भारतवर्ष में उत्पन्न हो गयी थी जिनका यथार्थ चित्रण भागवत पुराण के रचनाकार ने किया था। ये परिस्थितियाँ श्रीकृष्ण के समय की किसी भी प्रकार से प्रतीत नही होती क्योकि भागवत का रचनाकर श्रीकृष्ण से इक्कीस सौ वर्ष बाद पृथ्वी पर आया है इसलिये जिन सामाजिक और धार्मिक स्थितियों का वर्णन भागवत पुराण में हुआ है वह पूर्व मध्य युग की है।

शोध प्रबन्ध का शीर्षाक भारतीय समाज और धर्म से सम्बन्धित है। शोध प्रबन्ध में भागवत पुराणमें वर्णित सामाजिक व्यवस्था और धर्म का ही विश्लेषण शोध छात्र के द्वारा किया गया है। शोध छात्र ने यह पूरा ध्यान रखा है कि शोध प्रबन्ध विषयान्तरित न हो और अपने निश्चित बिन्दुओं की परिधि के भीतर हो किन्तु शोध छात्र ऐसे तर्को को स्वीकार नही कर सका जो ऐतिहासिक दृष्टि से किसी प्रकार का साक्ष्य नहीं रखते। परिकल्पित घटनायें और सुन्दर साहित्यिक वर्णन ऐतिहासिक परिधि में नही आते इसलिये शोध छात्र ने उन पर विचार नही किया है क्योकि ऐसे वर्णन और विवरण केवल कल्पना जन्य होते हैं तथा उनका उपयोग किसी व्यक्ति को महिमा मण्डित व निन्दित करने के लिये किया जाता है। इतिहास का इससे कोई लेना–देना नही है।

शोध के उद्देश्य–

शोध छात्र का यह उद्देश्य होता है कि वह अपने शोध विषय में कुछ नया खोजे तथा उन तथ्यों को उजागर करे जिनके बारे में अभी तक प्रकाश नहीं डाला गया है। शोध छात्र ने अपने शोध प्रबन्ध के माध्यम से कतिपय नवीन ऐतिहासिक साक्ष्यों को अन्वेषित किया है जिनके सन्दर्भ में अन्य शोध कर्ताओं ने अभी तक कोई

1- भागवत पुराण, 12-2-13;

प्रकाश नहीं डाला, मुख्य रूप से किसी भी इतिहास कार ने अभी तक भागवत महापुराण को ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार नहीं किया था। वे लोग इसे मात्र धार्मिक ग्रन्थ ही समझते रहें है किन्तु शोध छात्र ने इस भागवत पुराण को एक ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है। इस गन्थकी रचना पूर्व मध्यकाल की है तथा इसमें जो सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक व्यवस्था वर्णित है वह भी उसी युग की है। शोध प्रबंध के माध्यम से तद्‌युगीन सामाजिक व्यवस्था को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। इस व्यवस्था के अर्न्तगत व्यक्तियों के रहन सहन का स्तर, वस्त्राभरण, आभूषण, सामाजिक सम्बन्ध, वर्ण व्यवस्था, तीजत्योहार, अमोद प्रमोद के संसाधन और तद्‌युगीन सामाजिक परम्पराओं को शोध प्रबंध के माध्यम से उजागर किया गया है। भारतीय धर्म के यथार्थ पर जो भ्रम का आवरण पडा हुआ था। उस भ्रम के आवरण को हटाने का प्रयत्न भी शोध प्रबन्ध के माध्यम से किया गया है। पौराणिक आख्यानों में जिन समाजिक आदर्शों की परिकल्पना की गयी थी, उनका अध्ययन भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाकर किया गया है। शोध प्रबंध अपने उद्‌देश्य की पूर्ति में पूरी तरह सफल हुआ है तथा शोध छात्र अपने द्वारा किए गये प्रयासों से पूरी तरह संतुष्ट है।

शोध की विषय सामग्री—

शोध प्रबंध की विषय सामाग्री पूरी तरह से भागवत पुराण पर आधारित है। सबसे प्रथम इसकी विषय समाग्री में भागवत पुराण के उन स्थलों को ग्रहण किया गया है जिनको तद्‌युगीन ऐतिहासिक साक्ष्यों से जोडा जा सकता था। सम्पूर्ण भागवत पुराण में अन्य पुराणों की भाँति विषय सामागी को रखा गया है जिसमें प्रलय,सृष्टि सृजन, सृष्टि विकास, सामाजिक व्यवस्था और धर्म के समान सिद्धान्तों को विस्तार से वर्णित किया गया है। यह विषय सामाग्री अन्य पुराणों से मिलती जुलती है किन्तु भागवत पुराण का दशम् स्कन्ध भगवान श्रीकृष्ण चरित्र को उजागर करता है तथा उनके जन्म से लेकर उनके परलोक गामी होने तक समस्त घटनाओं

को वर्णन करता है। इसमें अनेक लीलाएँ धर्म और पारलौकिकता से सम्बन्धित है। भागवत पुराण का ग्यारहवाँ और बारहवाँ स्कन्ध तद्युगीन परिस्थितियों और धर्म से सम्बन्धित है। शोध प्रबन्ध में भागवत पुराण की उस विषय सामग्री को रखा गया है जिसका सम्बन्ध समाज तथा धर्म के अतिरिक्त मत्स्य पुराण, विष्णु पराण, ब्रह्मण्ड पुराण आदि ग्रन्थों को भी शोध प्रबंध की विषय सामाग्री में शामिल किया गया है इन पुराणों से उन अंशो को ग्रहण किया गया है जिनकी समतुलना भागवत पुराण के विविध अंशो से की जा सकती है। शोध प्रबंध की विषय सामग्री में अनेक धर्मग्रन्थों और स्मृतियों को भी शामिल किया गया है क्योंकि यह धर्म ग्रन्थ और स्मृतियाँ भारतीय धर्म की आधार शिला है और भारतवर्ष के निवासी इन स्मृति ग्रन्थों में विश्वास रखते है। मुख्य रूप से मनु स्मृति, गौतम धर्म सूत्र, अपस्तम्ब धर्मसूत्र, वशिष्ठ धर्म सूत्र, विष्णु धर्मसूत्र, हारीत धर्मसूत्र, शंख धर्मसूत्र तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र को भी शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री में शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त प्राचीन अभिलेख, ताम्रपत्र, प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा महत्वपूर्ण शोध प्रबन्ध भी शोध छात्र के शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री में शामिल किए गये है। एक विस्तृत अध्ययन के पश्चात शोध प्रबंध को पूरा किया गया।

शोध की समतुलना–

सन् 1790 से पूर्व भारतवर्ष में इतिहास लेखन की कोई शैली उपलब्ध नहीं थी यहाँ तक कि इतिहास राजाओं के आश्रय में रहने वाले राजकवि और पुरोहित 'भट' शैली मे लिखा करते थे। इसमें कल्पना और असत्य का सहारा लेकर आश्रय दाता के व्यक्तित्व को व्यक्त किया जाता था, और उसकी कमजोरियों को गुणों में परिवर्तित कर दिया जाता था तथा एक दूसरी शैली पुराण लेखन शैली थी जो प्राचीन काल से प्रचलित थी। इस शैली के माध्यम से प्राचीन कथाओं को पुराणों में शामिल करके उन्हें धर्म कथाओं के रूप में सुनाया जाता था, किन्तु सन् 1790 के बाद जब हमारा परिचय अंग्रेजों से हुआ, उस समय इतिहास लेखन की नवीन शैली

से हमारा परिचय हुआ। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्धान मैक्स मूलर, बेवर, बी0 ए0 स्मिथ और डा0 ग्रियर्सन ने भारतीय इतिहास को समझने का प्रयत्न किया और उसके सन्दर्भ में बहुत कुछ लिखा भी है। भारतीय इतिहास पर शोध कार्य भी प्रारम्भ हुए इसके लिए आर्कोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया जनरल आफ एशिपाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, ऑल इण्डिया रिपोर्टर आर्कोलजिकल सर्वे रिपोर्टस, आर्कोलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया, बाम्बे ब्रा०च, रॉयल ऐशियाटिक सोसाइटी, भण्डार कर ओरिएण्टल रिसर्च पूना, एपिग्रैफिया इण्डिका, इण्डियन ऐण्टीक्वेरी इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, जर्नल आफ दि बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसाइटी, जर्नल आफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (लन्दन), सैक्रेड बुक आफ दि ईस्ट (मैक्समूलर द्वारा सम्पादित) आदि ग्रन्थों के माध्यम से भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास उजागर हुआ। इसके पश्चात जब भारतवर्ष में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, उस समय शोध छात्रों को प्रोत्साहित किया गया कि वे विविध विषयों में शोध कार्य करें उस समय से शोध कार्य आज तक होते आ रहे है। पुराणो पर भी अनेक शोध कार्य इतिहास के विद्वानों ने किए है। सुप्रसिद्ध इतिहास कार श्री आर0 सी0 हाजरा ने मत्स्य पुराण पर शोध कार्य किया, उनका शोध प्रबन्ध शोध छात्र को अध्ययन करने के लिए उपलब्ध हुआ। उनका प्रयास सराहनीय है किन्तु उनके शोध प्रबंध में कुछ ऐसे बिन्दु छूट गये है जिन पर विचार किया जाना आवश्यक था। शोध छात्र ने उन कमियों को अनुभव किय इसके पश्चात डा0 हरि नरायण दुबे का शोध कार्य और उनका शोध प्रबन्ध शोध छात्र ने देखा उनक कार्य भी बहुत उत्तम था, किन्तु शोध प्रबन्ध ा में विशिष्ट ऐतिहासिंक दृष्टि केण नहीं अपनाया गया था। यह कमी शोध छात्र को खटकी । श्री सिद्धेश्वरी नारायण रॉय का 'पौरणिक धर्म एवं समाज' पर लिखा गया शोध ग्रन्थ भी शोध छात्र ने पढा इस ग्रन्थ में पौराण्कि उदाहरण तो बहुत अधिक मिलते है किन्तु उनके सत्य के ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने में यह शोध ग्रन्थ सफल नहीं हो सका।

यदि उपरोक्त शोध प्रबंधो से शोध छात्र के शोध प्रंबध की तुलना की जाय तो शोध छात्र का शोध प्रबंध भले ही इनसे उत्तम सिद्ध न हो, किन्तु उसमें अनेक ऐसे नवीन चितंन बिन्दु उपलब्ध हुए हैं जिनकी चर्चा उपरोक्त शोध प्रंबधो में नही है। भागवत पुराण पर शोध छात्र का शोध प्रबंध कठिन परिश्रम के पश्चात तैयार किया गया है। इसमें तद्‌युगीन समाज और धर्म को नवीन ऐतिहासिक दृष्टि कोणों से देखा गया है। इससे शोध छात्र का शोध प्रबंध उपरोक्त शोध प्रबंधो की तुलना में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण रखने वाला शोध प्रबंध है।

शोध के परिणाम–

शोध छात्र ने विश्वविद्यालय से शोध विषय की स्वीकृति के उपरान्त पाँच वर्ष तक लगातार कठोर परिश्रम किया है। शोध प्रंबध पूरा करने के लिए बाँदा के विभिन्न पुस्तकालयों के अतिरिक्त इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ तथा दिल्ली के अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकालयों में विषय से सम्बन्धित पुस्तको की खोज की उनका गहन अध्ययन किया तथा कुछ पुस्तक विक्रेताओं के यहां उपलब्ध थी उन्हे खरीदा और उनका अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त इतिहास के अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों से भी मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क हुआ। इस शोध प्रबन्ध से निम्न परिणाम उपलब्ध हुए हैं।

1– भागवत पुराण की ऐतिहसिक ग्रन्थ के रूप में मान्यता–

अभी तक यह ग्रन्थ केवल धार्मिक ग्रन्थ के रूप में माना जाता था तथा इसका श्रवण बडी श्रद्धा के साथ वैष्णव भक्त किया करते थे । शोध छात्र ने सुप्रसिद्ध भागवताचार्य स्व0 सरयू प्रसाद से भागवत श्रवण करने का अवसर उपलब्ध हुआ तथा इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में उनसे वार्तालाप भी हुआ उसके पश्चात इस ग्रन्थ का अध्ययन शोध छात्र के द्वारा किया गया तथा शोध छात्र ने इसे ऐतिहासिक गन्थ के रूप मे मान्यता प्रदान की कयोकि इसमें पूर्व मध्यकाल की सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक व्यवस्था का वर्णन है जो अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से मिलता है।

2— भागवत धर्म का बौद्धधर्म से सम्बन्ध—

श्री मद्भागवत महापुराण में जिस भागवत धर्म का उल्लेख है वह कृष्ण्युगीन धार्मिक व्यवस्था से मेल नही खाता है। कृष्ण को भागवत धर्म के अर्न्तगत महामानव और परमात्मा का अवतार माना गया है किन्तु कृष्ण का परमात्म स्वरूप सर्वत्र सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार और सदव्यवहार पर बल देता है और उन यज्ञों का विरोध करता है। जिनमें हिंसा का प्रयोग अथवा पशु बलि दी जाती थी। क्यों कि भागवत पुराण की रचना बौद्ध और जैन धर्म के प्रचार प्रसार के बाद की गयी है। इसलिए यह अनुभव होता है कि भागवत की रचनाकार बौद्धधर्म के सिद्धान्तों से पूरी तरह प्रभावित था। इसीलिए उसने बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को भागवत् धर्म से जोडा और स्वतः महात्मा बुद्ध को भगवान का अवतारी बतलाया।

3— भागवत की रचना और रचनाकार के सन्दर्भ में शोध छात्र का नवीन दृष्टिकोण—

अधिकांश धर्म परायण व्यक्ति जिनका कोई इतिहास से लेना देना नहीं है वे समस्त पुराणों का रचनाकार कृष्णद्वैपायन वेदव्यास को मानते है किन्तु कृष्णद्वैपायन का अस्तित्व भगवान श्रीराम से भी पूर्व था और वे स्वतः विष्णु के सत्रहवें अवतार थे इसलिए श्रीकृष्ण और उनके जन्म से जुडी हुई घटनाएँ उनके काल की नहीं थी। इसलिए यह ग्रन्थ उनके द्वारा रचा हुआ नहीं हो सकता। भागवत पुराण में अनेक ऐसे राजवंशों का वर्णन है जिनका अस्तित्व भारतवर्ष में दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में था। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह गन्थ पूर्वमध्य युग की रचना है, किन्तु वास्तविक रचनाकार अभी भी गहन अन्धकार में है। जिसकी खोज करना शोध छात्र के वश में नहीं था।

4— अवतार वाद के सन्दर्भ में सन्देह पूर्ण दृष्टिकोण—

भागवत धर्मावलम्बी विष्णु को परमपिता परमेश्वर के रूप में स्वीकार करते है और उनके विराट स्वरूप से ही अनेक अवतारों को दर्शाते है तथा यह भी स्वीकार

करते है कि परमात्मा अजन्मा और अविनाशी है व उसके लिए अनेक तर्क भी प्रस्तुत करते है। शोध छात्र किसी भी प्रकार से इतिहास का विद्यार्थी होने के कारण अवतरवाद और पुर्नजन्म को स्वीकार करने में असमर्थ है। श्रीमद्भागवतपुराण में श्रीराम और परशुराम दोनों को ईश्वर अवतारी माना गया है किन्तु राम का अन्त त्रेतायुग में हो जाता है और श्री परशुराम द्वापर युग में भी बने रहते है। इसी प्रकार कृष्ण और बलराम दोनों को ही ईश्वर का अवतारी कहा गया है, किन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि एक परमात्मा एक साथ दो रूपों में प्रकट होता है।

यदि ऐतिहासिक दृष्टि कोण से विश्लेषण किया जाय तो विलक्षण प्रतिभा वाला व्यक्ति जो सर्वशक्तिमान है तथा लोक कल्याण के कार्य करता है, उसी को परमात्मा का दर्जा प्रदान किया जा सकता है। इसी प्रकार देवता दैत्य, दानव, राक्षस और मनुष्य कर्मानुसार इस गति के प्राप्त करते है। भागवत पुराण में इनकी आकृतियों को जिस रूप से प्रस्तुत किया गया है उनकी यह आकृति यर्थात के विपरीत है तथा परिकल्पना पर आधारित है। देवता, दैत्य और राक्षस जाति को रूप परिवर्तित करते हुए दिखलाया गया है। जब कि मनुष्य के पास वह शक्ति नहीं थी यह भी कपोल कल्पित और यथार्थ से परे प्रतीत होता है।

5— वैदिक धर्म का समर्थन और विरोध—

एक ओर समस्त पुराण, वेदों और उसके समस्त सिद्धान्तों का समर्थन करते है। दूसरी ओर उनका विरोध करते दिखलाई देते है। वेदों में ईश्वर का कोई स्वरूप नहीं है तथा उसे अजर—अमर और अजन्मा माना है। समस्त पुराणों और भागवत पुराण में भी उसका यही स्वरूप माना गया है किन्तु जब परमात्मा दुष्टों के विनाश के लिए पंचमहाभूतों का सहारा लेकर रूप, रस और गुण के अनुसार आकृति धारण करके जन्म लेता है। वहाँ वैदिक सिद्धान्तों की अवहेलना हो जाती है। वेदों में देवताओं की परिकल्पना की गयी है। और उन्हें परमात्मा से जोडा गया है, किन्तु पुराणों में उन्हें ठोस आकृति प्रदान की गयी। वेद, पाखण्डवाद और मूर्तिपूजा के घोर

विरोधी है। जबकि समस्त पुराण और भागवत मूर्ति पूजा के समर्थक है तथा भगवान की मूर्तियाँ बनाकर उन्हें पूजने की निर्देश भी देते है। इसी प्रकार जप, तप, यज्ञ, ज्ञान, और दान दोनों ही धर्म का अंग मानते हैं, किन्तु यज्ञ पद्धति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के उद्देश्यों को देखते हुए पुराण अवलम्बियों की वैदिक पद्धति से अलग प्रतीत होती है। मूर्ति पूजा, भजन, कीर्तन, ये भागवत पुराण के बताये हुए रास्ते है। इसके विपरीत वैदिक धर्म विविध प्रकार के यज्ञों पर बल देता है इसलिए ऐसा लगता है कि अन्य पुराण और भागवत् पुराण वैदिक धर्म के समर्थक और विरोधी दोनों ही है।

6— समाज और धर्म के यथार्थ पर नवीन प्रकाश—

तद्युगीन समाज और उसके व्यावहारिक स्वरूप का दर्शन भागवत पुराण में सर्वत्र दिखलाई देता है। इस युग में वर्ण और आश्रम व्यवस्था का अनुपालन समाज में होता था, किन्तु परिस्थितियों वश इन नियमों का उल्लंघन भी होता रहता था। विविध प्रकार के संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज में प्रचलित थे उनका अनुपालन समाज में होता था। इसके अतिरिक्त समाज में अपराधी तत्व भी थे। जो सदैव पीडा पहुँचाने का प्रयत्न करते थे। लोकनायक कृष्ण ने इनका दमन भी किया। समाज में व्यक्तिगत स्वार्थ चरम सीमा पर था इसी भावना से प्रेरित होकर कंस ने अपनी चहेती बहन देवकी का बध करने का प्रयत्न किया उसके पश्चात उसे और उसके पति को जेल की यातनाएँ दी व उसके सात पुत्रों का बध कर दिया। इस युग के अनेक राजा भी अपनी शक्ति के मद में चूर थे तथा जन कल्याण के स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थ को प्राथमिकता देते थे और समज में भी पर्याप्त स्वेच्छाचारिता थी। यदि कृष्ण और गोपिकाओं के सम्बन्धों को धर्म से न जोडा जाय तो इसे स्वच्छन्द आचरण ही कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कन्याओं का अपहरण किया जाता था और विवाह स्वयंम्बर प्रथा से उच्च कुल में होता था। इस युग के समाज में बहु विवाह प्रथा थी तथा स्त्रियों को उनके कर्तव्य का बोध कराया

जाता था, किन्तु पुरूषों के लिए ऐसी कोई बाध्यता नहीं थीं। संगीत, नृत्य, गायन, द्युतक्रीडा आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

धर्म के सम्बन्ध में भागवत पुराण से नवीन दृष्टिकोण की उपलब्धि होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण को परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए एक जन आन्दोलन भागवत धर्म के नाम पर चलाया गया तथा विष्णु को परमात्मा का स्वरूप देकर उसके विविध अवतारों को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया। जन अन्दोलन के माध्यम से वैष्णव मन्दिर बनवाने, उन्हें पूजने और उनके तीज–त्योहारों को मानने पर बल दिया गया। इस धर्म के माध्यम से ऐसे सरल मार्ग सुझाए गये जिनका अनुमान सरलता से किया जा सकता था। ऐसा लगता है कि भारतीय धर्म संस्कृति को विनाश से बचाने के लिए यह भागवत धर्म आन्दोलन खडा किया गया ताकि बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रचार–प्रसार को रोका जा सके इसीलिए भागवत पुराण की रचना भी की गयी।

शोध की उपयोगिता–

संसार में किया गया कोई भी कार्य अनुपयोगी नहीं हो सकता चाहे उसकी उपयोगिता कितने दिनों बाद हो। यह शोध प्रबन्ध पूरी तरह से उन लोगों के लिए उपयोगी है जो भारतीय सामाजिक व्यवस्था से और धर्म से प्रेम करते है। शोध छात्र होने के नाते मुझे स्वतः इस शोध प्रबन्ध के सन्दर्भ में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है किन्तु सार्थक परिश्रम निश्चित ही फलदायी होता है। इस ग्रन्थ के माध्यम से वे लोग लाभ उठा सकेगें जो भारतीय समाज और धर्म के यथार्थ को समझना चाहते है। हमारे पौराणिक ग्रन्थ किसी भी तरीके से अनुपयोगी नहीं है। वे ज्ञान के भंडार है और ऐसे सागर की तरह है जिनका तल कीमती रत्नों से भरा हुआ है, किन्तु आवश्यकता ऐसे अनुसंधान कर्ताओं की है जो सागरतल से रत्न निकाल लाएँ इसके लिए व्यापक प्रयत्न की अवश्यकता है।

जो छात्र भविष्य में पुराणों पर शोध कार्य करना चाहते है उनके लिए भी यह

शोध प्रबन्ध अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि इस शोध प्रबन्ध मे समाज और धर्म दोनों को नवीन द्रष्टि प्रदान की गयी है। उस दृष्टि से दिशा निर्देश लेकर शोध छात्र लाभ उठा सकते है तथा इसके आधार पर वे ऐतिहासिक साक्ष्यों की खोज करते हुए शोध के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है। शोध छात्रों को मेरा परामर्श है कि वे इस शोध प्रबन्ध से लाभ उठायें।

यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय के लिए भी एक अनुपम उपलब्धि सिद्ध होगा क्योंकि इस विश्वविद्यालय से भागवत पुराण में कोई शोध कार्य अब तक नहीं हुआ। मुख्य रूप से भागवत पुराण को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से शोध का विषय बनाना अत्यन्त कठिन कार्य था, किन्तु इस कार्य को पूरा करने के साथ—साथ मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरा यह शोध कार्य विश्वविद्यालय के लिए भी उपयोगी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मौलिक ग्रन्थ-

1. अग्नि पुराण : संपादित पंचानन तर्करत्न; अनुवादक एम0एन0दत्त; कलकत्ता; 1903।
2. अथर्ववेद : सायण भाष्य सहित, संपादित एस.पी. पंडित; बम्बई; 1895–98।
3. अथर्ववेदीय पअचपटलिका : भगवद्दत्त सम्पादित; लाहौर।
4. अर्थशास्त्र : कौटिल्य; संपादित आर0 शामाशास्त्री; मैसूर; 1923।
5. अपराजित पृच्छा : भुवनदेव, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज; बडौदा; 1950।
6. अपरार्क की टीका : याज्ञवल्वय, स्मृमिकार।
7. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : संपादित सतीशचन्द्र बसु, बनारस; 1897।
8. अमर कोश : अमर सिंह; संपादित हरगोविन्द शास्त्री, हरिदास संस्कृत सीरीज; वाराणसी; 1978।
9. अष्टादश पुराण दर्पण : ज्वालाप्रसाद मिश्र, वेकंटेश्वर प्रेस; बम्बई।
10. अष्टाध्यायी : पाणिनि, संपादित एस0सी0 बसु; दिल्ली; 1962।
11. अहिर्बुध्न्य संहिता : संपादित एम0डी0रामानुजाचर्य, अड्यार; मद्रास; 1916।
12. आपस्तम्ब गृह्वसूत्र : संपादित जी0ब्यूहलर, बाम्बे संस्कृत सीरीज; पूना, 1932।
13. आपस्तम्ब धर्मसूत्र : संपादित जी0ब्यूहलर, बाम्बे संस्कृत सीरीज पूना, 1932।
    : हिन्दी व्याख्याकार–डा0 उमेशचन्द्र पाण्डेय; वाराणसी; 1969।
14. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र : संपादित ए0सी0शास्त्री, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज; बडौदा, 1955।

15. आश्वलायन गृह्यसूत्र : हरदत्ताचार्य की टीका सहित, संपादित टी0 गणपति शास्त्री, त्रिवेन्दम; 1923।

16. आश्वलायन श्रौतसूत्र : संपादित एच0एन0आप्टे, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज; पूना, 1917।

17. उत्तरगीता गौड़पाद भाष्य सहित : संपादित श्रीवानी विलास प्रेस, श्रीरंगम्; विक्रमी सम्वत 1926।

18. उत्तर राम चरित्र : संपादित पी0वी0 काणे, बम्बई; 1929।

19. उपनिदान सूत्र : सरस्वती भवन टेक्सट; वाराणसी।

20. ऊँनविंशतिसंहिता : अत्रि; विष्णु हारीत आदि 19 स्मृतियाँ, संपादित वंगवासी प्रेस; कलकत्ता।

21. ऋग्वेद संहिता : सायण भाष्य सहित, 5 जिल्दों में; संपादित एन0 एस0 एवं सी.जी. काशीकर, वैदिक संशोधन मंडल; पूना; 1933–51।

22. ऐतरेय ब्राह्मण : संपादित आर0अनन्त कृष्णशास्त्री, त्रिवेन्दम; 1941।

23. कथासरित सागर : संपादित दुर्गाप्रसाद, बम्बई; 1920।

24. कल्पसूत्र : अनुवादित महोपाध्याय विनय सागर, प्रकृति भारती, जयपुर; 1977।

25. कर्मप्रदीप : कात्यायनकृत, संपादित एशियाटिक सोशायटी।

26. कात्यायन स्मृति : संपादित पाण्डुरंग वामन्काणे; बम्बई, 1943।

27. कात्यायन श्रौतसूत्र : संपादित ए0बेवर, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला; वाराणसी; 1972।

28. कामसूत्र : वात्सायन; संपादित दुर्गाप्रसाद; बम्बई।

29. काव्य मीमांशा : राजशेखर, गुज़रात, 1916।

30. कालिका पुराण : बम्बई, 1829।

31. कूर्म पुराण : संपादित पंचानन तर्करत्न, वगंवासी प्रेस; कलकत्ता से प्रकाशित; विक्रम सम्वत् 1322।

32. गरूड. पुराण : क्षेमराज श्रीकृष्ण द्वारा प्रकाशित; बम्बई, 1905।

33. गीत गोविन्द : जयदेव, बम्बई, 1929।

34. गोपथ ब्राह्मण : संपादित राजेन्द्रलाल मित्र व विद्याभूषण, कलकत्ता; 1872।

35. गोभिल गृहसूत्र : टीकाकार भट्टनारायण, संपादित सी, भटटाचार्य, कलकत्ता, 1936।

36. गौतम धर्मसूत्र : अनुवादक यू0सी पाण्डेय, काशी संस्कृत सीरीज, बनारस, 1966।

37. चतुवर्ग चिन्तामणि : हेमाद्रि, पूना, 1878।

38. चुल्लवग्ग : संपादित भिक्षु जे0 कश्यप, नालन्दा देवनागरी पॉलीसीरीज, नालन्दा, 1956।

39. छान्दोग्य उपनिषद : संपादित हरिनारायण आप्टे, आनंदाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1913।

40. जयाख्य सांहिता : संपादित एंबर कृष्णामाचार्य, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, भाग 54, बडौदा, 1931।

41. जातक : संपादित वी0 फासबल, लंदन, 1877–97।

42. तैत्तरीय आरण्यक : आनन्द आश्रम प्रेस, पूना, 1897।

43. तैत्तरीय ब्राह्मण : सायणाचार्य भाष्य सहित, संपादित विनायक गणेश आप्टे,आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज पूना, 1738।

44. तैत्रीय संहिता : आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1860।

45. दशकुमार चरित्र : दण्डिन, संपादित एम.आर. काले, बम्बई, 1917।

46. दशावतार चरित : क्षेमेन्द्र, बम्बई, 1923।

47. दान सागर : संपादित बी.भटटाचार्य, कलकत्ता, 1953–55।

48. दिव्यादान : संपादित ई0वी0 कावेल एवं ए.ए.नैल, एमस्टरडम, 1970

: पी.एल. वैद्य, दरभंगा, 1959।

49. दि सेकेड़ ला आर्फ दि आर्याज : आपस्तम्ब, गौतम, वसिष्ठ और बौधायन धर्मसूत्रो का जी. ब्यूहलर द्वारा अनुवाद, दिल्ली, 1964।

50. देवी भागवत : संपादित कमलकृष्ण स्मृतिभूषण, बिबलोथेका इण्डिका, कलकत्ता, 1903।

51. धर्मशास्त्र(हिन्दुविधि संहिता) : अनुवादक एम.एन. दत्त, कलकत्ता, 1908।

52. धर्मसिन्धु : संपादित काशीनाथ उपाध्याय, वेकंटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1961।

53. नवसाहसांक चरित : संपादित वामनशास्त्री, बम्बई, 1895।

54. नारद स्मृति : संपादित जे. जाली, कलकत्ता, 1895।

55. नारदीय पुराण : क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

56. नित्याचार प्रदीप : एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता।

57. निघण्टु तथा निरूक्त : संपादित लक्ष्मण स्वरूप, दिल्ली, 1962।

58. निरूक्त : यास्क, टीकाकार छज्जूराम शास्त्री एवं देवाश्रम शास्त्री, दिल्ली, 1963।

59. निर्णयसिन्धु : कमलाकर, संपादित चौखम्बा, वाराणसी।

60. नीतिकल्पतरू : क्षेमेन्द्र, पूना, 1956।

61. नीति वाक्यामृत : सोमदेव सूरि, बम्बई, 1887–88।

62. नैषधीय चरित : श्रीहर्ष, बम्बई, 1933।

63. पद्मपुराण : हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना, 1893।

64. पतंजलि महाभाष्य : संपादित आचार्य मधुसूदन प्रसाद मिश्र, वाराणसी, 1978।

65. पराशर स्मृति : मध्वाचार्य भाष्य सहित, बाम्बे संस्कृत सीरीज, बम्बई, 1893–1911।

66. परिशिष्ट पर्वन : हेमचन्द्र, संपादित एस. जैकोबी, कलकत्ता, 1883।

67, पारस्कर गृहसूत्र : संपादित एम.जी वक्रे, गुजराती प्रिंटिग प्रेस, 1917।

68, पृथ्वीराजरासो, चन्द्रबरदायी, : सपांदित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, अजमेंर 1941।

69. प्रबन्ध चिन्तामणि : मेरूतुंग, ए0 मी0 द्विवेदी 1940।

70. प्रायश्चित प्रकरण : संपादित गिरीशचन्द्र वेदान्ततीर्थ, वरेन्द्र रिर्सच सोसाइटी द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, 1927।

71. प्रायश्चित विवेक : संपादित जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता, 1927।

72. प्रिय दर्शिका : निर्णय सगर प्रेस द्वारा प्रकाशित, शकाब्द, 1806।

73. वृहत्संहिता : वाराहमिहिर, संपादित कर्न, विबलोथेका इण्डिका, कलकत्ता, 1865।

74. बृहद्धर्म पुराण : कलकत्ता, विक्रमसंवत 1314।

75. बृहदारण्यक उपनिषद : शंकराचार्य की टीकासहित, अनुवादिका स्वामी माधवानन्द, अल्मोडा, 1950।

76. बृहन्नारदीय पुराण : संपादित पंचानन तर्करत्न, बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, विक्रम संवत, 1316।

77. बृहस्पति स्मृति : संपादित के0वी0 आर0 आयंगर, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बडौदा, 1941।

78. ब्रह्मपुराण : क्षेमराज श्रीकृष्णदासद्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1906

79. ब्रह्मवैवर्त पुराण : क्षेमराज श्री कृष्णदास द्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1906।

80. ब्रह्मसूत्र : भास्कराचार्य भाष्य सहित, संपादित विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी 1915।

81. ब्रह्माण्ड पुराण : क्षेमराज श्रीकृष्णद्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1906।

82. बौधायन गृहसूत्र : संपादित आर0 शामाशास्त्री, मैसूर, 1927।

83. बौधायन धर्मसूत्र : हिन्दी व्याख्याकार उमेशचन्द्र पाण्डेय, चोखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1972।

84. बौधायन श्रौतसूत्र : संपादित डब्लू0कैलेण्ड, 2 भागों मे, हालैण्ड, 1903।

85. भगवद् गीता : गीता प्रेस, गोरखपुर, 1962।

86. भविष्य पुराण : क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1987।

87. भागवत पुराण : टीकाकार बी0 एल0एस0 पाणिष्कर, बम्बई, 1929।

88. भागवत पुराण : गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत

2050 ।

89. मत्स्य पुराण : हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना, 1907 ।

90. मदन पारिजात : सम्पादित मदन पाल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1893 ।

91. मनुस्मृति : कुल्लूक भटट की टीका सहित, बम्बई, 1946 ।

92. महाभारत : गीताप्रेस गोरखपुर, 1968 ।

93. महाभाष्य : पतंजलि, संपांदित एफ0 कीलहार्न, बम्बई ।

94. मार्कण्डेय पुराण : क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, बम्बई ।

95. मिताक्षरा : विज्ञानेश्वर, बम्बई, 1909 ।

96. याज्ञवल्क्य स्मृति : मिताक्षरा की टीका सहित, संपादित जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे, बम्बई, 1914 ।

97. राजतरंगिणी : कल्हण, संपादित एम0ए0 स्टीन, बम्बई, 1892 ।

98. रामायण : वाल्मीकि, गीता प्रेस गोरखपुर, 1967 ।

99. लिंग पुराण : संपादित जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता 1885 ।

100. वाराह पुराण : कलकत्ता, 1893 ।

101. वामन पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई,

102. वायु पुराण : हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना, 1905 ।

103. वसिष्ठ धर्मसूत्र : संपादित फ्यूहरर, पूना, 1930 ।

104. विष्णु धर्मसूत्र : संपादित पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, विक्रम संवत, 1316 ।

105. विष्णुधर्मोत्तर पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

106. विष्णु पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई ।

107. शतपथ ब्राह्मण : संपादित ए. वेषर, 1924 ।

108. शिव पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

: वगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, प्रकाशित कलकत्ता, विक्रम संवत 1314 ।

109. शिशुपाल बध : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई ।

110. श्रीमद्भागवत : पण्डित पुस्तकालय काशी, विक्रम संवत 2019।

111. शुक्रनीतिसार : अनुवादक वी.के सरकार, पाणिनी कार्यालय, प्रयाग, 1914।

112. स्कन्द पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1937।

113. स्मृति चन्द्रिका : देवण्ण भटट, संपादित एल.श्री निवासाचार्य, मैसूर, 1914–21।

114. सूत संहिता : सायण, टीका सहित आनन्दाश्रम, पूना।

115. सांख्यायन श्रौतसूत्र : अनुवादक डब्ल्यू0 कालैण्ड, दिल्ली, 1980।

116. सौर पुराण : पूना, 1924।

117. हरिवंश पुराण : संपादित आर. किंजवदेरकर, आनन्दआश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1936

: नीलकण्ठ टीका के साथ, संपादित पंचानन तर्करत्न वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित कलकत्ता विक्रम संवत 1312।

118. हर्षचरित : बाण, संपादित पाण्डुरंग वामन काणे, बम्बई, 1918।

119. हारीत संहिता : संपादित पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, विक्रम संवत 1316।

सहायक ग्रन्थ–

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण : प्राचीन भारतीय लोकधर्म, अहमदाबाद, 1964।

: हर्षचरितः एक साँस्कृतिक अध्ययन, भारतीय राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1953।

: पाणिनी कालीन भारतवर्ष, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, विक्रमसंवत 2012।

: मार्कण्डेय पुराण : एक साँस्कृति अध्ययन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

: वामन पुराणः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1964।

2. अली, एस0एम0 : द ज्यॉग्रफी आफ द पुराणाज, नई दिल्ली, 1966 ।

3. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव : सोर्सेज ऑफ हिन्दु धर्म, शोलापुर, 1952 ।

: पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, दिल्ली, 1956 ।

: एजूकेशन इन ऐंशिएण्अ इण्डिया, वाराणसी, 19635 ।

4. अय्यर शिवस्वामी, पी0एस0 : इवोल्युशन ऑफ हिन्दु मारल, लेक्चर कलकत्ता, 1935 ।

5. आप्टे, वी.एस : सोशल एण्ड रिलिजस लाइफ इन दि गृहसूत्राज, बम्बई, 1954 ।

6. आयंगर, के0 वी0 आर. : आस्पेक्टस ऑफ दिऐशिंयन्ट इडियन इकनामिक थॉट, वाराणसी, 1965 ।

: सम आस्पेक्टस आफ दि हिन्दू ब्यू ऑफ लाइफ एकार्डिग टु धर्मशास्त्र, बडौदा, 1952 ।

7. इलियट, सी0 : हिन्दुज्म एण्ड बुद्धिज्म, वाल्युम।।, लंदन, 1921 ।

8. उपाध्याय, बल्देव : भारतीय दर्शन, वाराणसी, 1959 ।

: पुराण विमर्श, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1978 ।

: वैष्णवसम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त, चौखमबा, बाराणसी ।

: संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1983 ।

9. उपाध्याय, भगवतशरण : इण्डियन कालिदास, इलाहाबाद, 1947 ।

10. उपाध्याय, रामजी : प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति, इलाहाबाद, 1963 ।

11. उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, दिल्ली, 1961 ।

12. ओझा, मधुसुदन : पुराण निर्माणा धिकरणम् एवं पुराणोत्पत्ति प्रसंग, जयपुर, संवत 2009 ।

13. ओमप्रकाश : पोलिटिकल आइडियाज इन दि पुराणाज,

इलाहाबाद, 1977।

14. कनिंघम, ए0 : ऐंशिएण्ट ज्यॉग्राफी ऑफ इण्डिया।

15. करमबेलकर, वी0 डब्ल्यू : दि अथर्वेदिक सिविलाइजेशन : इटस प्लेस इन दि इण्डो–आर्यन कल्चर, नागपुर, 1959।

16. कविराज, गोपीनाथ : भारतीय संस्कृति और साधना, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, 1963।

17. काणे, पाण्डुरंग वामन : धर्मशास्त्र का इतिहास, 5 भागों में, अनुवादक अर्जुन चौबे कश्यप, लखनऊ, 1980।

18. कीथ, ए0वी0 : द रिलीजन एण्ड फिलासफी ऑफ द वेद एण्ड द उपनिषदस, हार्वर्ड ऑरियन्टल सीरीज वाल्यूम 31832, 1925।

19. कुप्पु स्वामी जी, बी : धर्म एण्ड सोसायटी, मद्रास, 1977।

20. केरफे,ल डब्ल्यू0 : दस पुराण पंच लक्षण, बान, 1927।

21. कोसम्बी, डी0डी0 : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, नई दिल्ली, 1977।

: एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफॅ इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई, 1975।

22. घुर्ये, जी0एस0 : कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, न्यूयार्क, 1950।

23. घोषाल, यू0 एन0 : हिस्ट्री ऑफ हिन्दू पालिटिकल थ्योरीज,।

24. चकलादार, एच0सी0 : सोशल लाइफ इन ऐंशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1929।

25. चक्रवर्ती, के0 सी0 : ऐंशिएण्ट इण्डियन कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन।

26. चतुर्वेदी, परशुराम : वैष्णव धर्म, इलाहाबाद, 1953।

27. चैतन्य कृष्णा : ए न्यु हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, वाराणसी, 1965।

28. जायसवाल, सुवीरा : ओरिजन एण्ड डेवलपमेंन्ट आफ वैष्णविज्म, हिन्दी अनुवाद, दिल्ली, 1976।

29. जायसवाल, के0पी0 : इम्पीरियर हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।

: मनु एण्ड याज्ञवल्क्य, कलकत्ता, 1930।

30. जाली, जे0 : हिन्दु लॉ एण्ड कस्टम, कलकत्ता, 1928।

31. जैन, जगदीश चन्द्र : जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, वाराणसी, 1965।

32. झा, एवं श्रीमाली : प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1981।

33. टैगोर, रवीन्द्रनाथ : गीतांजलि।

34. डार्विन : डिसेन्ट आफ मैन।

35. डे0, एस0 के0 : हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर।

36. डेकमेयर, सी0 : किंगशिप एण्ड कम्यूनिटी इन अर्ली इण्डिया, बम्बई, 1962।

37. तिवारी, गौरीशंकर : उत्तरी भारत में ब्राह्मणों की स्थिति, शोध प्रबन्ध।

38. तिलक, बी0जी0 : आर्कटिक होम आर्फ द वेदाज।

39. थापर, रोमेश : ट्राइव, कास्ट एण्ड रिलीजन इन इण्डिया, कलकत्ता, 1968।

40. दत्त, एन0के0 : ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया, कलकत्ता, 1968।

41. दिनकर, रामधारी सिंह : भारतीय संस्कृति के चार अध्याय।

42. दीक्षितार, वी0 आर0आर0 : पुराण इण्डेक्स (3 वाल्यूम), मद्रास।

43. दुबे, सत्यमित्र : मनु की समाज व्यवस्था, कलकत्ता, 1964।

44. दुबे, हरिनारायण : पुराण समीक्षा, इलाहबाद, 1984।

45. देवरज, एन0 के0 : सम्पादित भारतीय दर्शन, लखनऊ, 1978।

46. देवहूति, डी0 : हर्ष ए पोलिटिकिल स्टडी, दिल्ली, 1983।

47. देश मुख, एन0 के0 : रिलीजन इन वैदिक लिटरेचर,बम्बई, 1933।

48. धुरिया, प्रतापचन्द्र : शूद्र और नारी, 1963।

49. नेगी, जे0एस0 : सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज, इलाहाबाद, 1966

50. प्रसाद, ईश्वरी : प्राचीन भारतीय कला राजनीति धर्म दर्शन,

एवं शैलेन्द्र शर्मा : इलाहाबाद, 1984।

51. प्रभु , पी0एच0 : हिन्दु सोशल आर्गेनाइजेशन।

52. प्रसाद, बेनी : हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता।

53. पाटिल, डी0आर : कल्चरल हिस्ट्री फ्रार्म वायु पुराण, दिल्ली, 1981।

54. पार्जीटर, ए0 ई0 : ऐंशियन्ट इण्यिन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, आक्सफोर्ड, 1922।

: डायनेस्ट्रीज आफ द कलिएज।

55. पाण्डेय, जी0सी0 : भारतीय परम्परा के मूल स्वर, दिल्ली, 1981।

56. पाण्ड्येय, सत्यनारायण एवं श्रीकान्त पाण्ड्येय : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, मेरठ, 1995।

57. पाण्डेय, वी0 : हरिवंश पुराण, एक सांस्कृतिक विवेचन, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1960।

58. पाणिक्कर, के0एम0 : ए सर्वे आफ इण्यिन हिस्ट्री, बम्बई, 1947।

59. पाण्डेय, रामजी : पुराणों में वर्णित गणिकाओं की स्थिति, वाराणसी, 1988।

60. पाण्डेय, राजबली : हिन्दु संस्कार।

61. पुसाल्कर, ए0डी0 : स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुराणाज, बम्बई, 1955।

62. फ्लीट, जे0 एफ0 : कार्पस इंस्क्रिप्सनम इंडिकेरम, वाल्यूम।।,

63. फुच, स्टीफेन : दि ओरिजिन आफ मैन एण्ड हिज कल्चर, बम्बई 1963।

64. बनर्जी, एस0सी0 : धर्मसूत्राज : ए स्टडी इन देयर ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट, कलकत्ता, 1962।

: आस्पेक्टस आफ ऐंशिएन्ट इण्डियन लाइफ फाम संस्कृत सोर्सेज, कलकत्ता 1972।

65. बसु, जोगिराज : इण्डिया आफ दि एज ऑफ दि ब्राह्मन्स, कलकत्ता 1969।

66. ब्लूमफील, एम0 : दि रिलीजन आफ, द वेद, दिल्ली, 1972।

67. बनर्जी, स0सी0 : इण्डियन सोसाइटी इन दि महाभारत, वाराणसी, 1976।

68. बाशम, ए0एल0 : अद्भुत भारत, आगरा, 1978।

: दि आजीविकाज।

: ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, 1975।

69. बुल्के, कमिल : रामकथा, इलाहाबाद, 1964।

70. बोस, देवब्रत : दि प्राब्लम्स आफ इण्डियन सोसायटी, न्यूयार्क, 1968।

71. बोस, एन0 के0 : दि स्ट्रक्चर ऑफ हिन्दू सोसायटी, दिल्ली, 1975।

72. भट्टाचार्य, रमाशंकर : अग्नि पुराणस्य विषयानुक्रमणी, वाराणसी, 1953।

: इतिहास पुराण का अनुशीलन, वाराणसी, 1963।

: पुराण गत वेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1965।

73. भण्डारकर, डी0आर0 : सम ऑस्पेक्टस आफ ऐंशियन्ट हिन्दू पालिटी, कार्माइकेल लेक्चर्स, 1968।

74. भण्डारकर, आर0पी0 : वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम, कलेक्टेड वर्क्स आफ आर0जी0 भण्डारकर, पूना, 1928।

75. मजूमदार, आर0सी0 : कारपोरेट लाइफ इन ऐंशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1922।

: संपादित हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पीपुल, वाल्यूम I-IV, भारतीय विद्या भवन, बम्बई 1951–1962।

76. मनकड, डी0आर0 : पुराणिक क्रोनोलॉजी।

77. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 1974।

78. मिश्र, उर्मिला प्रकाश : प्राचीन भारत में नारी, भोपाल, 1987।

79. मिश्र, वी0डी0 : सम आस्पेक्टस आफ इण्डियन आर्क्यालाजी इलाहाबाद, 1977।

80. मित्र, वेद : इण्डिया ऑफ धर्मसूत्राज, दिल्ली, 1969।

81. मीस, जी0एच0 : धर्म एण्ड सोसायटी, हेग, 1935।

82. मुकर्जी, राधाकुमुद : ऐंशियण्ट इण्डियन एजूकेश्न दिल्ली, 1969।
: प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, वाराणसी, 1980।
: हिन्दु सिविलाइजेशन।

83. मुल्ला, डी0एफ0 : प्रिन्सिपल्स ऑफ हिन्दु लॉ, बम्बई, 1960।

84. मेन : ऐंश्येण्ट लॉ, संस्करण, 1930।

85. मैक्डॉनल, ए0ए0 : ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पुर्नमुद्रण, दिल्ली, 1972।

86. मैक्समूलर : हिस्ट्री ऑफ ऐंशियण्ट संस्कृत लिट्रेचर।

87. मैकाइवर एण्ड पेज : सोसायटी।

88. मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भारती भण्डार, प्रयाग, विक्रम संवत 2007।

89. यादव, बी0एन0एस0 : सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, इन द टवेल्थ सेन्चुरी ए0डी0, इलाहाबाद, 1973।

90. रसेल, बी0 : ह्ययूमन सोसाइटी इन एथिक्स एण्ड पोलिटिक्स, लन्दन 1954।

91. राज, भारतीय : प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता, इलाहाबाद, 1981।

92. राय, उदयनारायण : प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1965।

93. रायचौधरी, एच0सी : पॉलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐंशियण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1953।

94. राय, सिद्धेश्वरी नारायण : पौराणिक धर्म एवं समाज, पंचनद पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, 1978।

95. राव, के0 एल0एस0 : दि कान्सेप्ट ऑफ श्रद्धा : इन दि ब्राह्मन्स, उपनिषद्स एण्ड दि गीता, दिल्ली, 1974।

96. राव, विजय बहादुर : उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति, वाराणसी, 1966।

97. रैप्सन, ई0जे0 : सम्पादित, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, वाल्यूम।, दिल्ली, 1962।

98. रोमश, के0वी0 : इण्डियन एपिग्राफी, जिल्द–1, दिल्ली, 1984।

99. ला, बी0सी0 : ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृ लिटरेचर, पुर्नर्मुदण, दिल्ली, 1972।

100. ला0 एन0एन0 : आस्पेक्टस आफ एंशिएण्ट इण्डियन पॉलिटी, ऑक्सफोर्ड, 1921, पुर्नर्मुद्रित 1960।

101. लिंगत, आर0 : द क्लासिकल लॉ आफ इण्डिया, अनुवादक जे0डी0एम0 डेरेट, नई दिल्ली, 1973।

102. लो, सिडनी : विजन ऑफ इण्डिया, 1907।

103. वल्वलकर : हिन्दु सोशल इंस्ट्यूशन्स,।

104. व्यास, एस0एन0 : इण्डिया इन दि रामायण एज, दिल्ली, 1967।

105. विंटरनित्ज, एम0 : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, दो जिल्दों में पुर्नमुद्रण, दिल्ली, 1972।

106. विद्यामार्तण्ड, पंडित धर्मदेव : वेदों का यथार्थ स्वरूप।

107. विद्यालंकार, निरूपण : भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति, मेरठ, 1971।

108. विल्सन, एच0एच0 : इंट्रोडक्सन टु द इंग्लिश ट्रांसलेशन आफ द विष्णु पुराण।

: पुराणाज ऑर ऐन एकाउण्ट ऑफ देयर कण्टेंट एण्ड नेचर।

109. वेबर, ए : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, लन्दन, 1914।

110. वेबर, मैक्स : दि सोशियोलाजी ऑफ रिलीजन, लन्दन, 1965।

111. शर्मा, आर0एन0 : एंशिएण्ट इण्डिया ऐकार्डिगं टु मनु, दिल्ली, 1980।
: ब्राह्मन्स थ्रो दि एजेज : ए स्टडी आफ देयर सोशल, कल्चरल, पोलिटिकल, रिलीजियस एण्ड इकनामिक लाइफ, दिल्ली, 1977।
: कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऐज रिवील्ड इन श्रौत सूत्राज, दिल्ली, 1977।

112. शर्मा, रामशरण : शूद्रों का प्राचीन इतिहास, अनुवादक विजयनाथ ठाकुर, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, दिल्ली, 1979।
: इण्डियन फ्यूडलिज्म, नई दिल्ली, 1980।
: सोशल चेन्ज इन अर्ली मिडुवल इण्डिया (ए0डी0 500–1200), नई दिल्ली, 1980।
: प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचना, दिल्ली, 1992।
: प्राचीन भारत में राजनीतिक विचारएवं संस्थायें, नई दिल्ली, 1992।
: ऐंशिएण्ट इण्डिया (ए0डी0 300–1200), नई दिल्ली, 1980।

113. शर्मा, बी0एन0 : सोशल लाइफ इन नार्दन इण्डिया, दिल्ली, 1966।

114. शल्य, यशदेव : संस्कृति : मानव कर्तव्य की व्याख्या, जयपुर, 1969।

115. शामशास्त्री, आर0 : इवोलूशन ऑफ इण्डियन पालिटी, कलकत्ता, 1920।

116. शास्त्री, के0ए0एन0 : आस्पेक्टस आफ इण्डियाज हिस्ट्री एण्ड कल्चर, दिल्ली 1974।

117. शास्त्री, जे0एल0 : पालिटिकल थॉट इन द पुराणाज, लाहौर, 1944।

118. शेरिंग : ट्राइब्स एण्ड कॅस्टम।

119. श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र : प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद, 1991।

: प्राचीन भारत की संस्कृति तथा कला, इलाहाबाद, 1988।

120. सरकार, डी0सी0 : सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, कलकत्ता, 1942।

: लैण्ड लार्डिज्म एण्ड टेनेन्सी इन ऐंशिएण्ट एण्ड मिडुवल इण्डिया, लखनऊ, 1969।

121. सरकार, यू.सी0 : एप्रोच्स इन हिन्दू लीगल हिस्ट्री, होशियारपुर, 1958।

122. सरस्वती, बी0एन0 : ब्राह्मणिक रिचुवल ट्रेडीशन, शिमला, 1977।

123. सिकदर, जेन्सी0 : स्टडीज इन दि भगवती सूत्र, मुजफ्फरपुर, 1964।

124. सिंह, एम0एम0, : लाइफ इन नार्थ–ईस्टर्न इण्डिया इन प्री–मौर्यन टाइम्स, दिल्ली, 1967।

125. सिंह, एम0 आर0 : ए क्रिटिकल स्टडी आफ द ज्याग्रफिकल डाटा इन द अर्ली पुराणाज, कलकत्ता, 1972।

126. सिंह, रणजीत : धर्म की हिन्दू अवधारण, इलाहाबाद 1977।

127. स्टर्नबक, एल0 : जुरिडिकल स्टडीज इन ऐंशिएण्ट इण्डियन लॉ,वाराणसी, 1965–67।

128. हाजरा, आर0सी0 : पौराणिक रिकार्डस आफॅ हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, दिल्ली, 1975।

129. हापकिन्स, ई0डब्ल्यू : दि म्युचुवल रिलेसन्स आफ दि फोर कास्टस एकार्डिंग टु दि मानवधर्मशास्त्र दिल्ली, 1976।

: दि सोशल एण्ड मिलेट्री पोजीशन ऑफ दि रूलिंग कास्ट इनऐंशिएण्ट इण्डियाऐज रिप्रजेन्टेड, बाई दि संस्कृत एपिक्स, पुनर्मुद्रण, दिल्ली, 1972।

130. हिन्ड्रे, आर0 : कम्प्रेटिव एथिक्स इन हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट ट्रेडीसन्स, दिल्ली, 1978।

131. त्रिपाठी, पी0वी0 : पुरूषार्थ चतुष्टय, वाराणसी, 1970।